भूमिका

अठारह पुराणो की जो सूचियां विभिन्न धर्म ग्रंथों मे दी गई हैं उनमे वामन पुराण का नम्बर चौदहवां है। पर इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि यह अन्य पुराणो की अपेक्षा कम महत्त्व का है। यद्यपि इसका आकार छोटा ही है पर इसमे पुराणो के सभी अंगों का यथोचित वर्णन किया गया है और इसकी प्रतिपादन शैली अनेक पुराणों और उप पुराणो मे अधिक स्पष्ट और विवेचनापूर्ण है। इसकी एक विशेषता यह है कि इसमे जो प्रसिद्ध पौराणिक उपाख्यान दिये हैं, उनमे अन्य पुराणो से आश्चर्यजनक भिन्नता है। कहीं-कहीं तो पुराण लेखक ने कई-कई कथाओं को मिला कर एक नई कथा ही रच डाली है।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यद्यपि यह एक शैव पुराण के रूप में प्रसिद्ध है, पर इसमें विष्णु को कहीं उस तरह नीचा नही दिखाया गया है, जैसा कई अन्य पुराणो में मिलता है। इसमे इन दोनो को भी समान दर्जे पर माना गया है। साथ ही इसमे कहीं भी कोई ऐसा श्लोक नहीं मिलता जिसमें विष्णु की निन्दा की गई हो। जब कि कुछ शैव लेखक यहाँ तक लिख गये हैं कि "विष्णु दर्शन मात्रेण शिव द्रोहः प्रजायते" (विष्णु के दर्शन करने से शिव का द्रोह होता है) वहाँ "वामन पुराण" मे कई बार शिवजी विष्णु के समक्ष सहायतार्थ पहुंचे हैं और उनकी बड़ी स्तुति की है।

दक्ष यज्ञ और सती की कथा—

वामन पुराण की जिन कथाओं मे अन्य पुराणो से पृथक्ता पाई जाती है उनमें सब से अधिक ध्यान आकर्षित करने वाली कथा सती के देह त्याग की है। शिव पुराण, रामायण तथा अन्य सब पुराण-ग्रंथों मे हम यही पढ़ते आये थे कि शिव-भार्या सती निमंत्रण न आने पर भी अपने पिता दक्ष के यज्ञ में गई थीं और जब उसने वहाँ शिव का भाग न देखा तो वह वहाँ उपस्थित सब लोगों को अभिशाप देती हुई जलकर भस्म हो गई। यह समाचार सुन कर शिव

करके पार्वती के साथ विवाह करने को प्रेरित करे। पर जब वह शिवजी पर अपने बाण चलाने लगा तो उन्होंने क्रोधित होकर तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया।

पर 'वामन पुराण' की कथा में कहा गया है कि जिस समय शिवजी दक्ष-यज्ञ को ध्वंस कर रहे थे तो मदन ने उन पर 'उन्माद' 'सताप' 'विजृम्भण' शरों को चलाया जिनसे उनकी दशा विक्षिप्तों की सी हो गई और वे निरन्तर कामाग्नि में जलते हुये सती के लिये विलाप करने लगे। जब वे अत्यन्त व्यथित हो गये तो उन्होंने उन तीनों बाणों को कुबेर के पुत्र पाञ्चालिक को दे दिया। जब कन्दर्प उन पर पुनः प्रहार करने को प्रस्तुत हुआ तो वे उसके भय से भाग खड़े हुये और अनेक स्थानों में होकर दारु वन में प्रवेश कर गये। वहां ऋषियों की पत्नियां उनको देख कर क्षोभित हो गईं और कामेच्छा से उनके पीछे चलने लगीं। इस पर ऋषियों ने उनको शाप दिया कि तुम्हारा लिङ्ग गिर जाय वह लिङ्ग जब गिरा तो आकाश से पाताल तक व्याप्त हो गया। ब्रह्मा और विष्णु दोनों उस स्थान पर आये और ऊपर तथा नीचे की तरफ जाकर उस लिङ्ग का आदि अन्त देखने का प्रयत्न करने लगे। पर जब कहीं उसका आदि-अन्त नहीं मिला, तो दोनों मिल कर शिवजी की स्तुति करने लगे। उनसे सन्तुष्ट होकर शिवजी ने कहा कि यदि सब देवगण इस लिङ्ग की अर्चना करेंगे तो मैं इसे पुनः ग्रहण कर लूंगा। इस पर भगवान विष्णु ने चारों वर्णों द्वारा शिव लिङ्ग की पूजा का विधान किया। "इस के लिये नाना प्रकार की शक्तियों से विहित अनेक प्रमुख शास्त्रों की भी रचना की गई। इनमें प्रथम शैव नाम से विख्यात है, दूसरा पाशुपत है, तीसरा कालदमन और चौथा कापालिक है। शिव स्वयं शक्ति है, जो वसिष्ठ के पुत्र थे। उनका शिष्य 'गोपायन' तप को ही महान् धन समझने वाले भारद्वाज महा पाशुपत थे। उनका शिष्य सोमकेश्वर नाम वाला राजा हुआ। आपस्तम्ब भगवान कालास्य थे, उनका शिष्य कामेश्वर हुआ। धनद भी महान व्रत वाला था जिसका

शिष्य आर्योदर अत्यन्त वीर्यवान था। यद्यपि जाति से शूद्र था, किन्तु महान तपस्वी था। इस प्रकार भगवान विष्णु ने चारों वर्णों और चारों आश्रमों को भगवान शिव का पूजने वाला बना दिया।"

इसके पश्चात् जब भगवान शंकर चित्रवन में विचरण कर रहे थे तब कामदेव ने पुनः उन पर आक्रमण करने की तैयारी की थी। इस पर उन्होंने उसे क्रोध की दृष्टि से सिर से पैर तक देखा जिससे वह तुरन्त भस्म हो गया। अन्य ग्रन्थों में लिखा है कि भस्म होने के पश्चात् वह अनंग नाम से विख्यात हुआ और अपना प्रभाव सभी जीवधारियों पर प्रकट करता रहा। पर 'वामन पुराण' में कहा है कि दग्ध हो जाने के पश्चात् वह पाँच पौधों के रूप में परिणित हो गया जिनके नाम हैं—द्रुमपृष्ठ, चम्पक, बकुल, पाटला, जातीपुष्प। कामदेव ने जो बाण छोड़े थे वे फलों के सहस्रों प्रकार के वृक्ष हो गये।

काम-वासना तो वास्तव में एक अशरीरी शक्ति है जो समय समय पर मनुष्य की मनोवृत्तियों को विचलित करती रहती है। उसके बाणों द्वारा शिवजी का व्यथित होना अलंकारिक रूप का वर्णन ही समझा जा सकता है। 'वामन पुराण' में कामदेव के सहायक वसन्त का जैसा काव्यमय रूपक रचा गया है और अन्त में उसे जिस प्रकार इस देश के प्रसिद्ध सुगंधित पुष्पों के रूप में परिणित होता बताया गया है उससे यह समस्त वर्णन एक सुन्दर साहित्यिक रचना ही माना जायगा। 'कामदेव' अथवा 'मदन' की कल्पना सृष्टि विस्तार और प्रजा की उत्पत्ति का एक स्वाभाविक अंग है और भारतीय तथा विदेशी पुराण-ग्रन्थों ने इसे अनेक प्रकार से लिखा गया है।

भारत वर्ष का भौगोलिक वर्णन—

'सप्त द्वीप' का वर्णन भी पुराणों का एक आवश्यकीय वर्ण्य—विषय माना गया है। पुराने समय में आवागमन की कठिनाइयों के कारण लोगों को समस्त भारत वर्ष का भ्रमण कर लेना ही एक बहुत बात समझी जाती थी। इस लिये उस समय 'सप्त द्वीप' का जा

वर्णन लिखा गया है वह आज प्रत्यक्ष मे कही दिखाई नही पडता। केवल 'जम्बू द्वीप' की समता किसी प्रकार 'एशिया' से की जा सकती है। ऐसी दशा मे वामन पुराणकार ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो और यहाँ के पर्वत तथा नदियों का जो विस्तृत विवरण दिया है वह काफी महत्व पूर्ण है। उसमे बहुत से नाम यद्यपि बदले हुये हैं और कुछ काल्पनिक अथवा सुने सुनाये भी हो सकते हैं, तो भी प्राचीन तत्वों की खोज करने वालो के लिये वे काम के अवश्य हैं।

भारत वर्ष के पर्वतो का वर्णन करते हुये लिखा है कि "महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष पर्वत, विन्ध्य, और पारियात्र—ये सात 'कुलाचल' (मूल) कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रो पर्वत श्रेणियाँ भी यहा हैं जिनमे कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर दुर्धराचल, वात-धूम, वैद्युत, मैनाक, सरस, तु ग प्रस्थ, नागगिरि तथा गोवर्धन पर्वत यहा है। इनके अतिरिक्त उज्जयन्त, पुष्पगिरि, अर्बुद, रैवत, ऋष्यमूक, सगोमन्त, चित्रकूट, कृतस्मर, श्री पर्वत, कोकणक आदि आदि सैकडो पर्वत पाये जाते हैं।

नदियों का वर्णन करते हुये कहा कि "सरस्वती, पञ्चरूपा, कालिन्दी, हिरण्वती, शतद्रु, चन्द्रिका, नीला, वितस्ता, इरावती, कुहू, मधुरा, हाररावी, उशीरा, धातकी, रसा, गोमती, धूतपापा, बहुदा, दृप-द्वती, नि स्वार, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा, सरयू, सलोहित्या आदि नदियां हिमालय पर्वत के नीचे से आती हैं। इनके अतिरिक्त, पर्णासा, नन्दिनी, पावनी, मही, शरा, चर्मण्वती, लूपा, विदिशा, वेणु-मती, चित्रा, ओघवती, रम्या आदि नदियाँ पर्वत से उत्पन्न होने वाली हैं। परियात्र सोन नद, महा नदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशा, चित्रकूट, देविका, चित्रोत्पला, तमसा, करतोया, पिशाचिका, पिप्पल श्रेणी, विपाशा, वंजुलावती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती, चक्रिणी त्रिदिवा, वसु आदि सरितायें ऋक्ष—पर्वत के नीचे से बहन वाली हैं। बल्गुवाहिनी, शिवा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, सनिषधावती, वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमुद्वती, तोया रेवा महागौरी, दुर्गन्धा, वाशिला

रूप में सार्व भौम प्रार्थना दूसरी नहीं मिल सकती। हम यह भी कह सकते हैं कि हिन्दू धर्म के गायत्री महा मंत्र में जो प्रार्थना की जाती है वह उसी का विस्तृत और व्याख्या युक्त रूप है।

आगे चलकर सामान्य धर्मों का वर्णन करते हुये पुराणकार ने बहुत सी उपयोगी शिक्षायें दी हैं जो वर्तमान समय में भी ध्यान देने योग्य हैं। जैसे वृथा अटन, वृथा दान, वृथा पशुघात और वृथा दाराओं का परिग्रह एक सद्गृहस्थ को कभी नहीं करना चाहिये। वृथा अटन (आवारा गर्दी) से प्रत्यक्ष ही चरित्र की हानि होती है। वृथा दान से धन का नाश होता है और समाज में दोष उत्पन्न होते हैं। वृथा पशुघात पाप कार्य है जिसका कुपरिणाम परलोक में भोगना पड़ता है। वृथा स्त्रियों की संख्या बढ़ाने से सन्तान निकम्मी होती है और वर्ण संकरता बढ़ने की भी सम्भावना रहती है।"

सबसे बड़ा पाप—कृतघ्नता—

आज कल के अन्ध विश्वासी लोग सब से बड़ा पाप चौका-चूल्हा के नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने और पुराने रीति रिवाजों के त्याग को ही समझा करते हैं। किसी की निन्दा, चुगली, अकृतज्ञता आदि जैसी बातों में उनके ख्याल से कोई पाप नहीं। पर 'वामनपुराण' में कहा गया है—

"इस संसार में जो कृतघ्न होता है वही सबसे बड़ा महा पापी होता है। ब्रह्महत्या और गोहत्या जैसे महा पापों का तो कोई प्रायश्चित्त होता है, पर जो अपने उपकारी के प्रति कृतघ्न होता है उसका कोई उपाय और प्रायश्चित नहीं होता। वे कृतघ्न ऐसे होते हैं जो अपने हितचिन्तकों और सुहृदों के अनन्त उपकारों को भी मेट देते हैं। उन पापियों की कोई निष्कृति है ही नहीं।"

इसी प्रकरण में प्रसंगवश यह वर्णन आया है कि संसार के विभिन्न देशों में कौन-कौन वस्तुएँ श्रेष्ठ हैं। ऐसा विचार-विमर्श ज्ञान वृद्धि के लिये तो उपयोगी है ही साथ ही इसमें यह भी प्रतीत होता है कि

संसार में बिना गुणों के किसी का आदर नहीं होता । जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने गीता के दसवें अध्याय में प्रत्येक सर्व श्रेष्ठ वस्तु को ईश्वरीय विभूति बतलाया है उसी प्रकार 'वामन पुराण' में कहा गया है—

"जिस प्रकार देवगण में भगवान् जनार्दन सर्व श्रेष्ठ हैं, पर्वतों में गौरीशाद्रि वरिष्ठ हैं, समस्त आयुधों में सुदर्शन चक्र सर्वोत्तम है, पक्षियों में गरुड महान है, सर्पों में अनन्त नाग श्रेष्ठतम है, प्राकृतिक भूतों में पृथ्वी सबसे प्रमुख मानी जाती है, नदियों में सर्व शिरोमणि गंगाजी है, जलजों में पद्म श्रेष्ठ होता है । समस्त तीर्थ क्षेत्रों में जिस प्रकार कुरुक्षेत्र वरिष्ठ है, सरोवरों में मानसरोवर श्रेष्ठ है, पुष्प वनों में नन्दन वन सर्वाधिक प्रसिद्ध है, धर्म नियमों में सत्य पालन सर्वोपरि होता है । सब प्रकार के यज्ञों में अश्वमेध बड़ा है, तपस्वियों में कुम्भज ऋषि वरिष्ठ हैं । समस्त आगमों में वेद सबसे महान है, पुराणों में मात्स्य पुराण सर्व श्रेष्ठ है, स्मृतियों में मनुस्मृति सुन्दर है, तिथियों में दर्श अमावस्या और देवों में प्रमुख इन्द्र देव हैं, तेज के धारण करने वालों में सूर्य सर्व प्रधान होते हैं, नक्षत्रों में सबसे शिरोमणि चन्द्रमा होता है । धान्यों में शाली चावल, द्विपदों में विप्र, चतुष्पदों में गौ और सिंह श्रेष्ठ होते हैं ।

पुष्पों में जाती पुष्प, नगरों में काञ्चीपुरी, नारियों में रम्भा, तथा समस्त आश्रमों में गृहस्थ ही शिरोमणि होता है । पुरों में कुशस्थली, देशों में मध्य देश, फलों में आम, मूलों में कन्द तथा सब व्याधियों में अजीर्ण प्रमुख है । श्वेत पदार्थों में दुग्ध श्रेष्ठ है, पहिनने की वस्तुओं में कपास का वस्त्र, कलाओं में गणित, विज्ञानों में इन्द्र जाल, रसों में लवणरस वृक्षों में बरगद श्रेष्ठ है । सती नारियों में पार्वती, गौओं में कपिला, वृषों में नील वृष और नदियों में वैतरणी प्रधान है । जिस प्रकार ये सब पदार्थ अपनी श्रेणी के अन्य पदार्थों पर वरिष्ठता रखते हैं, उसी प्रकार पापियों में कृतघ्न ही सब से बड़ा पापी होता है ।"

निस्सन्देह कृतघ्नता का दोष बहुत बड़ा है और उससे विदित होता है कि ऐसे मनुष्य की मन-स्थिति अत्यन्त हीन है । जिसने हमारा छोटा या बड़ा कुछ भी उपकार किया है, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट

करना माननीय धर्म है और उसमे हमारा कुछ खर्च भी नहीं होता। वरन् इससे उपकार करने वाले को एक प्रोत्साहन, एवं प्रेरणा प्राप्त होती है, जिससे वह भविष्य मे और अधिक परोपकार के कार्य करने को प्रस्तुत हो सकता है। पर कृतघ्न स्वभाव का व्यक्ति इतने गिरे हुये स्तर का होता है कि वह अपने साथ की गई भलाई के बदले मे दो अच्छे शब्द कहना भी भारस्वरूप समझता है। इतना ही नही ऐसे भी कृतघ्न देखे गये है जो अपने उपकारी पर दोषारोपण करने, उसकी निन्दा करने, उसका अहित करने मे भी सकोच नही करते। इस प्रकार वे परोपकार और उदारता के इस स्रोत को सुखा डालना चाहते हैं जिससे अनेक कष्ट पीडितो का भला हो सकता है। इस दृष्टि से देखने पर कृतघ्नता वास्तव मे बहुत बडा दोष प्रतीत होती है।

कहाँ तो हम देखते हैं कि विवेक रहित पशु भी अपने साथ भलाई, सद्‌व्यवहार करने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और समय पडने पर उसके लिये आत्मत्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं, और कहाँ मनुष्य जैसा ऊँच-नीच को खूब समझने वाला प्राणी उपकारी की प्रशसा करने मे भी कृपणता करे या उसका बदला अपकार के रूप मे दे, तो उसे किस श्रेणी मे रखा जाय ? निश्चय ही उसे अधमाधम कहा जायगा और वह न्यायकर्ता प्रभु की दृष्टि मे घोर दण्ड का भागी होगा।

आत्मज्ञान की सर्व श्रेष्ठता—

पुराणो मे सब तरह का ज्ञान और विवेचन मिलता है। एक तरफ उनमे बिल्कुल साधारण तीर्थों का दर्शन मज्जन करने अथवा एकादशी, प्रदोष आदि का व्रत कर लेने से ही स्वर्ग—अपवर्ग की प्राप्ति का लाभ बतलाया गया है तो दूसरी तरफ ऐसे भी वर्णन मिलते हैं जिनमे तीर्थादि को बहुत निम्न कोटि का पुण्य बतलाया गया है, और आत्म-ज्ञान को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। शास्त्रों मे एक श्लोक आता है। कि "स्नान और दर्शन करने योग्य तीर्थ बालबुद्धि वाले (अल्प-ज्ञान युक्त) व्यक्तियो के लिये ईश्वर स्वरूप हैं। विद्वानों की दृष्टि मे

संसार का संचालन करने वाली दिव्य शक्तियाँ ही ईश्वर का वास्तविक रूप होती हैं। और आत्म ज्ञानियों की दृष्टि मे उनका आत्मा ही परमात्मा स्वरूप होता है।

"वामन पुराण" मे भी अन्य पुराणों की तरह तीर्थों और देव प्रतिमाओ, शिव लिङ्गो, पवित्र सरोवरो आदि का माहात्म्य भरा हुआ है और उनके द्वारा बहुत भारी पुण्य की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है, पर धर्म के स्वरूप का विवेचन करते हुये यह भी कह दिया है—

किंतेषा सकलैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम् ।
येषा चानन्तक चिमात्मन्येव व्यवस्थितम् ॥

(वा० पुरा० पृ० ४०४)

"जिसका अनन्तक चित्त आत्मा मे ही अवस्थित हो गया है उसको समस्त तीर्थों अथवा आश्रमों की क्या आवश्यकता है ?"

इसकी व्याख्या करते हुये पुराणकार कहते हैं कि "यह आत्मा एक नदी के तुल्य है, जो सयम स्वरूप पुण्य-तीर्थों वाली है। सत्य ही उसमे जल-स्वरूप है और शील तथा शम आदि से वह समन्वित है। इस नदी मे स्नान करने वाला महान पुण्यात्मा होता है तथा पवित्र हो जाता है। जल से यह अन्तरात्मा कभी शुद्ध नहीं होता। मनुष्य का यही परम धर्म है कि वह आत्मा के सबोध स्वरूप वाले सुख मे प्रविष्ट हो जाये। सन्त पुरुष आत्मतत्व को ही जानने योग्य कहा करते हैं। उसको प्राप्त करके यह देहधारी समस्त कामनाओ का त्याग कर दिया करता है। ब्राह्मण वही है कि जिसके पास समता-सत्य रूपी धन हो। इसके सिवा अन्य धन की उसे आवश्यकता नही। शील का पालन और सरल व्यवहार और शनैः-शनैः सासारिक व्यवहारो से उपराम हो जाना ब्राह्मण का कर्तव्य है।" (वा० पु० पृ० ४०५)

आज कल के जो पडा पुजारी केवल तीर्थ-स्नान और वहाँ पर पडो को दान देने को ही स्वर्ग का एक मात्र द्वार बतलाया करते हैं, उनके लिये उपरोक्त श्लोक ध्यान देने योग्य हैं। हिन्दू-धर्म और विशेषतः पुराणों को इन्हीं लोगों ने बदनाम किया है। उनमे हर जगह

गई कहा गया है कि दान हमेशा पूर्ण सदाचारी और त्यागी-तपस्वी ब्राह्मण को देना चाहिये। पर इन तीर्थ पुरोहितों का आचार कैसा होता है और त्याग और तपस्या की दृष्टि से उनके कर्म किस प्रकार के होते हैं, इस सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। आज कोई भी समझदार व्यक्ति उनका पक्ष-समर्थन करने को तैयार नहीं। सभी जानते हैं कि वे किस प्रकार गो० तुलसीदास जी की "बचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं" वाली उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं। 'वामन पुराण' का कहना है कि सच्चा ब्राह्मण सांसारिक धन की लालसा नहीं रखता, वरन उसका लक्ष्य प्राणी मात्र को सम दृष्टि से देखना और सत्य व्यवहार करना होता है। प्राचीन काल में ब्राह्मणों को जगत पूज्य कहा गया था और उनका दर्जा देवताओं से भी बढ़ कर माना गया था, उसका कारण यही था कि वे पूर्ण त्यागी और अपना ध्यान विशेष रूप से संसार के कल्याण की तरफ ही रखते थे। श्रेष्ठ ब्राह्मण दान लेने को बड़ी हीनता की बात समझते थे और जब राजाओं के आग्रह से उनको लेना भी पड़ता था तो उसको ज्ञान प्रचार और विद्या दान जैसे समाजोपयोगी कार्यों में ही लगाते थे। इसके मुकाबले में आज कल वे हर तरह का छल-बल करके और कभी तो इससे भी अधिक नीचता पर उतर कर अधिक से अधिक दक्षिणा प्राप्त करने में लगे रहते हैं। समाज और धर्म के सच्चे प्रेमी ब्राह्मणों को इस परिस्थिति को बदलने का प्रयत्न करना चाहिये।

दूषित कर्मों से बचने की प्रेरणा—

पुराणों का एक अंग नरक-वर्णन भी है। अन्य धर्म वालों में भी पापियों को दण्ड देने के लिये नरक का वर्णन किया गया है। जैसे ईसाइयों में 'हेल' और मुसलमानों में 'दोजख' की चर्चा मिलती है। पर जहाँ तक हम जानते हैं उन धर्मों में सिवाय इनका नाम आने के कोई विशेष वर्णन नहीं किया गया है। पर हिन्दू पुराणों में २१ नरकों का जैसा विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है और उनमें पापियों को

दिये जाने वाले दण्डो का जैसा प्रभावशाली चित्र खींचा है, उसका मुकाबला कहीं नहीं मिल सकता। यह वर्णन सभी पुराणों म मिलता-जुलता ही है, तो भी लेखन शैली की भिन्नता क कारण उसके प्रभाव म अन्तर पडता रहता है। वामन पुराण' मे जिन दुष्कर्मों के फलस्वरूप नरक भोगने का वर्णन किया है, उनकी अधिकता आजकल के जनसमुदाय मे बहुत देखने म आती है। इन दृष्टि स उसका कुछ अश यहाँ देना अनुचित न होगा—

"जो लोग गुरुजनो (माननीय पुरुषों) की निन्दा किया करते हैं, जो शुभकार्यों मे विघ्न-बाधा डाला करत हैं, जो अपने मित्रो, सहकारियो के साथ अनुचित भेदभ व का व्यवहार करते हैं वे नरकगामी होते हैं। जो अधम लालच क कारण एक पुरुष को कन्या देकर फिर उसे दूसरे को देता है, उसको यमदूत टुकडे टुकडे कर देते हैं। जो मनुष्य कुवाक्यो से सज्जन पुरुषो को पीडा पहुचाते हैं उसको नर्क के पक्षी अपनी तीव्र चोंच से छेदा करत हैं। जो लोग स्वार्थवश सत्पुरुषों की चुगली खाते हैं, बुराई किया करते हैं, उनकी जिह्वा को कौये खींचा करते हैं। जो नालायक लोग अपने पालन कर्त्ता क साथ नीचता का व्यवहार करते हैं वे मलमूत्र से भरे नर्क मे डाले जाते हैं। एक ही पंक्ति म बैठे लोगों को असमान भोजन के पदार्थ देता है, वे नरकों मे कष्ट सहन करते हैं। जो माता, ज्येष्ठ भाई, पिता, बहिन तथा अन्य पूज्य व्यक्तियों क साथ मारपीट करते हैं उनको लोहे की गर्म जंजीरो से बाधकर रौरव नरक मे डाल दिया जाता है। जो माँस आदि वृथा ही खाते हैं उनके मुंह मे गर्म लोहा और गुड डाल दिया जाता है।

"जो लोग सार्वजनिक उपयोग के कुआ, बावडी, तालाब, आदि जलाशयों और सभागृह आदि को नष्ट, भ्रष्ट कर देते हैं, उनकी देह का चमडा उतार कर नरक मे डाला जाता है जिससे वे निरन्तर विलाप करते रहते हैं। जो लोग सार्वजनिक उपयोग के स्थानो को व पदार्थों को शौच आदि से गन्दा करते हैं उनकी आंतो को कौए खींच ले जाते

है। जो मनुष्य अपने आश्रितों और शिष्ट व्यक्तियों का ध्यान छोड़ कर अपने ही शरीर का पोषण करने में संलग्न रहता है उसे 'श्वयोनि' (कुत्ते की योनि) नामक नरक में डाला जाता है। जो लोग दूसरे की धरोहर को मार बैठते हैं उनको 'वृश्चिकयातन' (बिच्छुओं के) नरक में रखा जाता है। जो लोग सार्वजनिक जलाशयों में विष्ठा, मल, मूत्र आदि डालते हैं, वे इन्हीं घृणित पदार्थों से भरे नरक में कष्ट पाते हैं। जो पापी कन्या को भ्रष्ट करते हैं, उसके गर्भ का नाश करते हैं, उनको नरक में कीड़ों और चीटियों से भक्षण कराया जाता है। जो व्यक्ति कूट-सत्य (झूठ को सच बनाकर) बोलते हैं, न्यायालय में झूठी गवाही देते हैं, वे महारौरव नरक में दस हजार वर्ष तक पड़े रहते हैं।"

नरकों का वर्णन विशेष रूप से उन व्यक्तियों को चेतावनी स्वरूप है जो अपने स्वार्थ के लिये समाज तथा अन्य व्यक्तियों का अभीष्ट किया करते हैं। अथवा जो स्वभाव से ही दुष्ट हैं और दूसरों का अनहित करने में ही जिनको अच्छा लगता है। ये नरक कहां हैं, इसी पृथ्वी पर हैं या किसी अन्य लोक में हैं, वे वास्तविक हैं अथवा उनका वर्णन अलंकारिक रूप में किया गया है, इस पर बहस करना निरर्थक है। यह कार्य निठल्ले लोगों को ही पसन्द आ सकता है। हम तो यही कहना चाहते हैं कि पाप कर्म, बुरा व्यवहार, दुराचार करने वालों को उसका प्रतिफल,दण्ड अवश्य किसी न किसी रूप में मिलेगा। नरकों के जो कष्ट ऊपर वर्णन किये गये हैं,उनको भोगते हुए अनेक व्यक्ति इस संसार में ही दिखाई पड़ते हैं। अतएव नरकों के वर्णन से हमको यह शिक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिए कि हम बुरे कर्मों से बचते रहें और यह विश्वास रखें कि हम जैसे भले या बुरे कर्म करेंगे, उनका वैसा ही फल हमको अवश्य भोगना पड़ेगा, यही प्रकृति का नियम है। 'कर्मफल' का सिद्धान्त अटल और अचल है,यह बात दूसरी है कि मन्द बुद्धि लोग उसे न समझ सकें। चोर, डाकू, बदमाश खोटे कर्म करते हुए उद्दतता पूर्वक

कहते रहते हैं कि उनका कोई कुछ नहीं कर सकता, पर हम निश्चय जानते हैं कि उनका नतीजा कभी अच्छा नहीं हो सकता । इसी प्रकार जो लोग छल, कपट, भ्रष्टाचार, मिलावट रिश्वत आदि के द्वारा धनी बनने की कोशिश करते हैं, उनका अन्तिम परिणाम भी बुरा ही होता है । चाहे आजकल घोर कलियुग का अंतिम दौर दौरा होने से लोगों की बुद्धि नष्ट हो गई हो और वे बुरे कर्मों को करके भी बेशर्मी से डींगें मारते रहें पर उनको 'कर्म फल' अवश्य भोगना पड़ेगा इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं ।

साम्प्रदायिक सद्भावना—

जैसा हम आरम्भ में कह चुके हैं, साम्प्रदायिक सद्भावना इस पुराण की बहुत बड़ी विशेषता है । इसे 'शैव पुराण' कहा गया है और इसमें शिवजी तथा देवी के सम्बन्ध की कथायें भी बहुत अधिक पाई जाती हैं जब कि कृष्ण और राम की चर्चा भी नहीं की गई है । तो भी इसमे शिवजी के साथ ही विष्णु की भी पूर्ण रूप से प्रशंसा की गई है, जिसके लिए पुराणकार की सम बुद्धि की प्रशंसा करनी पड़ती है । जब शिवजी के पुत्र स्वामि कार्तिक को देव-सैन्य के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया, तो उनकी माता पार्वती जी ने कहा कि अब तुम विष्णु भगवान के चरण स्पर्श करके उनका आशीर्वाद ग्रहण करो । स्कन्द तो यही जानते थे कि संसार में सब से बड़े देव तो महादेव ही हैं, तब हमको किसी अन्य के पैर छूने की क्या आवश्यकता ? उन्होंने कहा कि ये 'विष्णु जी' कौन हैं जिनका आदर करना मेरे जैसे उच्च पदवी-धारी के लिये भी आवश्यक है । तब उनको माता ने बतलाया—

> केवल त्विह मा देव तत्पिता प्राह शंकरः ।
> नान्यः परतरोऽस्माद्धि वयमन्ये च देहिनः ।।
>
> (५८।१०)

अर्थात्—"मैं तो इस सम्बन्ध में अधिक नहीं जानती, पर तुम्हारे पिता (शिवजी) कहते थे कि विष्णु ही परात्पर देव हैं जबकि हम सब देहधारी

है।" वैसे शास्त्रों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश को एक ही शक्ति के तीन रूप बतलाया है, तो भी शिवजी ने विष्णु के सृष्टि का पालक होने के नाते बड़ा पद दिया यह उनकी महानता ही मानी जायगी।

इसी प्रकार जब चण्ड-मुण्ड दानव देवी के साथ युद्ध करने को आये तो देवगण ने उनसे कवच पहिन लेने को कहा। पर देवी ने कहा कि ऐसे आक्रमणकारियों को मैं कुछ नहीं समझती और उनका सामना करने के लिये कवच पहिनने की कोई आवश्यकता नहीं। यह सुन कर शिवजी ने उनकी रक्षा के 'विष्णु पंजर' का उच्चारण किया। उसकी महिमा को बतलाते हुये कहा गया है—

एवं प्रभावो द्विज विष्णुपंजरः सर्वासु रक्षास्वभिकेहिगीतः।
कस्तस्य कुर्याद् भुवि वर्पहानिं यस्य स्थितश्चेतसि चक्रपाणिः॥

(१६-४३)

अर्थात् "विष्णु पंजर का ऐसा ही अमित प्रभाव है और रक्षा करने वाले प्रयोगों में उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गई है। जिसके हृदय में भगवान चक्रपाणि स्थित हों उसको कौन नीचा दिखा सकता है?

जब भगवान शंकर को ब्रह्मा का पाँचवा मुख छेदन करने से ब्रह्म-हत्या लगी और उनका कपाल शंकरजी के हाथ में चिपका रह गया तो वे उससे छुटकारा पाने को विष्णु भगवान की ही शरण में गये और उनकी इस प्रकार स्तुति की—

"हे समस्त देवों के स्वामिन्! आपको मेरा नमस्कार है। हे गरुड़-ध्वज! आपको मेरा प्रणाम है। हे शंख-चक्र-गदा को धारण करने वाले वासुदेव! आपको मैं विनीत भाव से नमस्कार करता हूँ। आप निर्गुण, अनन्त हैं, आपके स्वरूप का ज्ञान तर्क द्वारा नहीं हो सकता। आप विद्या और अविद्या से परे समस्त विश्व के अवलम्ब स्वरूप हैं। हे रजोगुण से युक्त ब्रह्ममूर्ते आप ही सनातन देव हैं, आपको मेरा नमस्कार है। हे नाथ! यह समस्त चराचर जगत आपके द्वारा ही रचा गया है। हे सतोगुण पर स्थित विष्णुमूर्ते! आप समस्त लोकों के स्वामी

हैं। हे महारुद्रो ! आपही सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाले हैं। हे तमोमूर्ते ! आपही रुद्र के रूप मे क्रोध से समुत्पन्न होने वाले हैं। इसी लिये मैं गुणो मे बँधा हुआ हूँ, जब कि आप सर्व व्यापी हैं। अतः आपको मेरा नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! यह भूमि आपकी ही है। जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन, शर्वरी सभी आपके ही रूप हैं, आपको मैं नमस्कार करता हू। धर्म-यज्ञ-तप-सत्य-अहिंसा-शौच-क्षमा-दान-दया लक्ष्मी और ब्रह्मचर्य के आधार आपही हैं। आप का ही स्वरूप चारों वेद हैं। आपही छै वेदाग, उपवेद और उन सब के ज्ञाता हैं। हे अच्युत ! हे चक्रपाणि ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। हे वामन और मत्स्य स्वरूप धारण करने वाले ! आपको ही मैं परम करुणासागर समझता हूँ, आप इस ब्रह्महत्या से मेरी रक्षा कीजिये। मेरे शरीर में स्थित जो यह अशुभ है, उसको आप नष्ट कर दीजिये। उसके कारण मैं दग्ध हो रहा हूँ। हे नाथ ! आप मुझे पवित्र कर दीजिये, आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।"

जब हम इस वर्णन की तुलना शिव पुराण के वर्णनो से करते हैं तो दोनो मे पृथ्वी-आकाश का-सा अन्तर दिखाई पड़ता है। उसमे सती ने ही जब दक्ष-यज्ञ मे शिव का भाग न होते हुये भी विष्णु और ब्रह्मा को उपस्थित देखा तो उसने उनकी घोर भर्त्सना करते हुए कहा—

"हे विष्णो ! क्या आप शिवजी के तत्व को नहीं जानते ? श्रुतियाँ उनको गुण रहित बताती हैं। हे मतिहीन ! यद्यपि प्राचीन समय मे भी शाल्व आदि की घटना मे तुमको अच्छी तरह समझा दिया गया था फिर भी तुमको ज्ञान नही हुआ और अपने स्वामी का भाग न देख कर भी तुमने अपना भाग स्वीकार कर लिया। हे ब्रह्मा ! तुम पहिले अहकारवश शिवजी से द्रोह करते थे जिससे तुम्हारे पाँचवें मुख को उन्होने छिन्न कर डाला। क्या तुम उस बात को भूल गये।"

फिर जब शिवजी का प्रधान गण वीरभद्र दक्ष-यज्ञ को नष्ट करने से नर सहित यज्ञभूमि मे पहुँचा तो उसने भी विष्णु को, इससे बुरी तरह

डाटा-फटकारा और कहा कि—"हे विष्णो ! तुमने किस अभिमान के वशीभूत होकर दधीचि के द्वारा दिलाई गई शंकर की शपथ का उल्लंघन किया ? क्या शिवजी की शपथ तोड़ने में तुम समर्थ हो ? तुम कौन हो ? तीनों लोकों में तुम्हारी रक्षा करने वाला कोई है ? सतो ने जो कुछ किया, क्या तुमने उसे नही देखा ? क्या दधीचि के वाक्यों को तुमने नहीं सुना ? क्या तुम भी दक्ष के यज्ञ में कुत्सितदान ग्रहण करने आये हो ? लो, मैं तुम्हें कुत्सितदान देता हूं ! हे विष्णो ! मैं तुम्हारे हृदय को त्रिशूल से विदीर्ण कर डालूंगा, मैं तुम्हें पृथ्वी में डालकर गला दूंगा तथा भस्म कर दूंगा।" अन्त में वीरभद्र ने विष्णु जी से कहा—

रे रे हरे दुराचार महेश विमुखाधम ।
श्रीमहारुद्रमाहात्म्य किन्न जानासि पावनम् ।।

"अरे दुराचारी विष्णो ! हे शिव विमुख अधम ! क्या तुम शिवजी के पवित्र माहात्म्य से अनभिज्ञ हो ?" इस प्रकार शिव पुराण में विष्णु की खूब छीछालेदर की गई है और उनके मुख से ही अपनी हीनता स्वीकार कराई गई है। जब दक्ष ने बार-बार उनके चरणों पर गिर कर यज्ञ की रक्षा करने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा—

'हे दुर्बुद्धि वाले दक्ष ! तुम कर्म-अकर्म को नहीं देखते हो। यह वीरभद्र रुद्रगणों का अधीश्वर है और हमारे विनाशार्थ ही यहाँ आया है। मैं यज्ञ में शिवजी की शपथ का उल्लंघन करके यहाँ ठहरा रहा उसका परिणाम अब प्रत्यक्ष ही मिल रहा है। हे दक्ष ! इस उत्पात को शान्त करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। शपथ का उल्लंघन करने से मैं भी शिवद्रोही हो गया। तुम्हारे ही दुष्कर्म के कारण मुझे भी यह दुःख मिला है, क्योंकि शिवद्रोही को सुख की प्राप्ति त्रिकाल में भी नहीं होती। इस दुःसमय में यह कैसा प्रलयकाल उपस्थित हुआ और हमारा तुम्हारा अमंगल आ पहुंचा। हम स्वर्ग पृथिवी या पाताल कहीं भी चले जायें, वीरभद्र के शस्त्र सभी स्थानों में पहुंच सकते हैं। शिवजी की आज्ञा से ही काल भैरव ने अपने नखों से ब्रह्माजी का पाँचवां शीश काट डाला था, तब भी हम उनका कुछ नहीं कर सके।"

इसी प्रकार शैव और वैष्णव पुराणों में एक दूसरे पर तरह-तरह के आक्षेप किये गये हैं, जिससे दोनों सम्प्रदाय वालों में प्राचीन काल में खूब तनातनी और संघर्ष हुए हैं। अब वह जमाना बीत चुका है, तो भी दोनों सम्प्रदायों के लाखों अनुयायी एक दूसरे को विरोधी समझते हैं और सहयोग पूर्वक कोई धार्मिक या सामाजिक कार्य करने को तैयार नहीं होते। घृणा का बीज बोने वाले साहित्य का निस्सन्देह बड़ा कुप्रभाव होता है, जिससे समाज और राष्ट्र को सैंकड़ों वर्ष तक हानि उठानी पड़ती है। इस दृष्टि से 'वामन पुराण' की समन्वयकारी नीति को हम प्रशंसनीय ही कह सकते हैं। उसमें जहाँ विष्णु की स्तुति की गई है वहाँ शिवजी की स्तुति भी अनेक स्थानों पर पाई जाती है। दारु वन की घटना में ही शिवलिंग का सम्वरण करने के लिये ब्रह्माजी समस्त ऋषियों के साथ भगवान शंकर की शरण में पहुँचे और उनसे अपने अपराधों की क्षमा माँगते हुए कहा—

"जिसका कभी अन्त नहीं है, ऐसे वरदान प्रदान करने वाले पिनाकधारी स्थाणु देव, परमात्मा महादेव की सेवा में हम सादर प्रणाम करते हैं। हे तारक ! भुवनों के स्वामी, ज्ञानों के भण्डार ! आपके लिये सर्वदा हमारा नमस्कार है। आप ही पुरुषोत्तम और सबसे महान देव हैं। हृदय के पद्म में शयन करने वाले आपके लिये नमस्कार है। घोर पापियों के लिए प्रचण्ड क्रोध वाले आपके लिये नमस्कार है। हे धूरी के नायक ! आपके हाथ में शूल रहता है और आप समस्त विश्व पर कृपा-भाव भी रखते हैं, आपको हमारा नमस्कार है।"

इसी प्रकार एक अन्य स्थान में कहा गया है—"मैं शूलपाणि देव के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानता। भगवन् ! आप ही जगत के गुरु हैं। ये समस्त ब्रह्मादिक सुर आपके आश्रय से ही स्थित हैं। समस्त देवों में महान् कार्य करने और कराने वाले सब कुछ आप ही हैं। ये समस्त देवगण आपके प्रसाद से ही आनन्द प्राप्त करते हैं।"

वेदों और शास्त्रों में स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि इस समस्त जगत में एक ही दैवी सत्ता व्याप्त है और उसी को लोग

अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार पृथक-पृथक नामों से पुकारते हैं। भगवान के नामों मे देश और भाषा भेद के कारण अन्तर होना स्वाभाविक है, पर नाम-भेद के कारण आपस मे लडाई-झगडा करना अथवा एक दूसरे के 'भगवान' को गालियाँ देना बुद्धिमत्ता का नहीं वरन् मूर्खता का ही चिह्न है। इसलिए हिन्दू-धर्म के विविध सम्प्रदायों के अनुयायिओं को भविष्य के लिये अपनी गलती का सुधार करना चाहिये।

एक कथा के अनेक रूप—

हमने अन्य पुराणों की भूमिकाओं मे भी अनेक बार यह समझाने का प्रयत्न किया है कि पौराणिक कथाओ की यथातथ्यता के सम्बन्ध मे बहस करनी अथवा उनको पूरी तरह से सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना अनावश्यक है। पुराणकारो ने भी स्वय भी उनको 'उपाख्यान' कहा है जिसका अर्थ 'कहानी-किस्सा' ही होता है। उन्होने प्राचीन किम्बदन्तियो के आधार पर सामान्य जनता को शिक्षा देने के लिये इन 'धर्म-कथाओ' की रचना की है। पर जो लोग अनपढ हैं अथवा जिनमे साहित्यिक ज्ञान का सर्वथा अभाव है, वे जब इनको सुनते हैं तो यही ख्याल करते हैं कि इनका एक एक अक्षर ज्यो का त्यो बिल्कुल सही है और ऐसी समस्त घटनाएँ वास्तव मे हुई हैं।

ऐसे लोगो को हम फिर यह समझाना चाहते हैं कि यदि उनका विचार ठीक होता तो पुराणो मे एक ही कथा को कई कई प्रकार से वर्णन नही किया जाता। यदि हम कई पृथक-पृथक पुराणो में पाये जाने वाले अन्तर का ख्याल न भी करे तो एक ही पुराण मे एक घटना के सम्बन्ध मे दो प्रकार की कथाये क्यों पाई जाती हैं?' इसी वामन पुराण मे दारु वन मे शिवजी के नग्न होकर घूमने और ऋषियो के शाप देने का वर्णन दो स्थानो मे दो प्रकार स किया गया। उनमे से एक कथा तो छटे अध्याय मे आई है जिसका सारांश हम आरम्भ मे दे चुके हैं। दूसरी कथा ४३ वें अध्याय मे आई है। इसमे कहा गया है—

"एक बार जगदम्बा उमा के साथ भगवान शकर आकाश मार्ग से

था रहे थे। उस समय देवी ने अनेक ऋषियों को घोर तप में लीन देखा। वे इससे बड़ी दुःखित हुईं और देवेश्वर शंकर से कहने लगीं कि ये दारुवन में रहने वाले ऋषिगण आपका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये बहुत क्लेश सहन कर रहे हैं, अब उनके ऊपर दया कीजिये। ये विचारे शुष्क स्नायु और अस्थियों वाले अभी तक सिद्धि प्राप्त नहीं कर सके हैं। भगवान शंकर ने हँसकर कहा—"हे देवि! आप तात्विक रूप से धर्म की अत्यन्त गहन (गूढ़) गति को नहीं जानती। ये सब लोग धर्म को नहीं जानते और न ये काम का त्याग कर सके हैं। ये लोग क्रोध से भी मुक्त नहीं हो सके हैं। ये केवल मूढ़ बुद्धि वाले लोग हैं।'

यह सुन कर पार्वतीजी को बड़ा कौतूहल हुआ और कहने लगी कि आप जो कहते हैं उसे प्रत्यक्ष करके दिखलायें। इस पर शंकरजी पार्वती को आकाश में ही छोड़कर मुनियोंके पास पहुँचे। उस समय वे युवावस्था वाले, अत्यन्त सुन्दर, बिल्कुल नग्न और फूलों से सजे हुए थे। वे कपाल हाथ में लेकर भिक्षा माँगते हुए मुनियों के आश्रम में चले गये। उन ब्रह्म-वादी मुनियों की स्त्रियाँ उन कौतुकप्रिय शंकरजी पर मोहित हो गईं और आपस में कहने लगीं 'आओ! इस भिक्षुक का दर्शन करें।' वे सब बहुत से कन्द, मूल, फल लेकर उनके समीप पहुँचीं। शंकरजी ने बड़ी प्रसन्नता से उनकी भिक्षा ली और कहा—आपका कल्याण हो, ये तपस्वी आपके आश्रय से ही स्थित हैं। वे स्त्रियाँ कहने लगीं—आप तो परम सुन्दर तपस्वी हैं। आप किस व्रत का पालन करते हुए नग्न विचरण कर रहे हैं? शंकर जी ने हँसते हुए कहा कि "मेरे व्रत का रहस्य प्रकट नहीं किया जा सकता। पर जो इसे अपने आप समझ जाते हैं वे अपना परम सौभाग्य मानते हैं। उन स्त्रियों ने कहा कि हम भी ऐसा ही करेंगी। ऐसा कह कर वे कामवश होकर शंकर जी से लिपट गईं। यह देखकर वे ऋषिगण बड़े क्रोध में भर गये और लकड़ी-पत्थर उठा कर शंकरजी के लिंग पर मारने लगे। इस प्रकार उनके प्रहार से शिवजी का लिंग वहीं गिर गया और वे स्वयं अन्तर्धान हो गये।"

इसके पश्चात् सब ऋषि बहुत डर कर ब्रह्माजी के पास गये।

उन्होंने भी उनको क्रोध करने और कामनाओं में ग्रस्त रहने के लिए फटकारा। तब सब मिलकर शिवजी की शरण में गये, तो उन्होंने कहा कि उस लिंग की सदैव पूजा करते रहने से ही तुम्हारा उद्धार हो सकेगा। तब से लिंग पूजा बराबर प्रचलित है।

यही कथा 'स्कन्द पुराण' में भी दी गई है। पर उसमें न तो कामदेव से डर कर भागने की बात कही गई है और न उमादेवी को कौतुक दिखाने का वर्णन है। उसमें कहा गया है कि शिवजी भिक्षा मांगते हुये स्वाभाविक रूप से ही दारुवन में पहुंच गये थे और वहाँ ऋषि पत्नियाँ अकस्मात् उनके पीछे चल पड़ीं। एक अन्य पुराण में कहा गया है कि एक बार जब ब्रह्मा और विष्णु में इस बात पर झगड़ा हुआ कि उन दोनों में से कौन बड़ा है, तो उनके सामने दिव्य शिवलिंग उत्पन्न हो गया और उन दोनों में यह शर्त ठहरी कि जो कोई इस लिंगके अंतिम छोर का पता लगा लावे वही बड़ा माना जाय। विष्णु नीचे की तरफ गये और ब्रह्मा ऊपर की ओर। वापस लौटने पर ब्रह्मा ने केतकी के पेड़ से झूँठी गवाही दिलवाई कि उनने लिंग का अंतिम छोर देख लिया। इसी अपराध में उनका पचम सिर काट डाला गया और विष्णु को वरिष्ठ पद मिल गया।

जब पाठक पुराणों में एक कथा का कई तरह का वर्णन पढ़ेंगे तो वे किसको सच समझ सकेंगे ? इनमें पहली कथा उस समय की बतलाई गई है जब कि सती ने दक्ष यज्ञ में देहत्याग किया। और दूसरी उस समय की है जब हजारों वर्ष बाद सती ने हिमाचल के घर में जन्म ले लिया और कई हजार वर्ष तपस्या करके शिवजी के साथ विवाह किया। पहली कथा में शिवजी सती के वियोग में विक्षिप्त की तरह—बिना कुछ सोचे समझे इधर-उधर घूम रहे थे और दूसरी में वे अपनी प्रिया को जगत का कौतुक दिखाने के लिये नाटक का-सा खेल कर रहे थे। हम तो कहते हैं कि इनमें से किसी भी कथा में वास्तविकता का प्रश्न उठाना बेकार है। ये दो भिन्न कथा वाचकों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल रच डाली हैं और किसी कारण वश दोनों एक ही पुराण में

सम्मिलित हो गई हैं। लेखकों का एक मात्र उद्देश्य अपने विचारानुसार सर्वसाधारण को धार्मिक शिक्षा देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

इस प्रकार के परस्पर विरोधी वर्णन अन्य पुराणों मे भी पाये जाते हैं। विभिन्न पुराणों में प्रत्येक कथा को इस ढग से लिखा है कि दूसरे से उसका मेल ही नहीं बैठता। पुराणों की क्या बात 'वाल्मीकि रामायण' और तुलसी रामायण के कथानकों मे ही जगह-जगह बहुत अन्तर पाया जाता है।

पुराणो का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से इस प्रकार एक ही घटना के सम्बन्ध मे तरह-तरह की कथाओं के लिखे जाने का कारण सहज में समझ मे आ जाता है। वर्तमान पुराण वास्तव मे एक समय म एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गये हैं, वरन् उनमे कथा वाचक व्यास लोगो द्वारा समय-समय पर नये-नये उपाख्यान का समावेश किया गया है जो सैकड़ो वर्षों में सैकड़ों ही "व्यासो" द्वारा देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार लिखे जाते रहे हैं। ये सब धार्मिक कथायें हैं, जिनका मूल आधार प्राचीन जन श्रुतियाँ अथवा वैदिक साहित्य के गूढ वर्णनों से प्राप्त हुआ था। धार्मिक शिक्षाओं के साथ ही अनेक लेखकों ने उनमे ज्ञान, विज्ञान, व्यवहारिक जानकारी, उद्योग धन्धे सम्बन्धी विषयों का भी समावेश कर दिया है, जिनका कुछ अंश अभी तक उपयोगी और महत्वपूर्ण है।

बलि-वामन चरित—

जिस घटना पर इस पुराण का नामकरण किया गया है वह बलि और वामन चरित्र इसमे अपेक्षाकृत अल्प परिमाण में ही वर्णन किया गया है। ऋग्वेद तथा अन्य वेदों मे भी कई जगह यह कहा गया है कि "यह समस्त जगत् विष्णु के तीन चरणों के अन्तगत है।" इसी की व्याख्या करते हुए ब्राह्मण ग्रंथों में कुछ संक्षिप्त कथानक जोड़ दिया गया है। उसके बाद पुराणकारों ने अपने काव्य और साहित्यिक ज्ञान द्वारा उसे एक प्रभावशाली उपाख्यान का रूप दे दिया। इस पुराण मे राजा

बलि का जो वैभव वर्णन किया गया है, उसकी दानशीलता की प्रशंसा की गई है, भगवान वामन का महान प्रभाव दिखलाया गया है, वह सब एक पाठक को एक सुन्दर काव्य की तरह ही ज्ञात होता है। बलि के कथानक की एक विशेषता यह है कि दानव होते हुए भी उसे परम धर्मात्मा, यशस्वी और दानी चित्रित किया गया है। कहा गया है कि जब वह देवताओं पर विजय प्राप्त करके स्वर्ग के अधिपति के रूप में सिंहासनासीन हुआ तो उसके धर्म-राज्य में पाप-कर्म पूर्णतः नष्ट हो गये और सर्वत्र सतयुग ज्ञात पड़ने लगा। तब कलियुग वहाँ से भागकर ब्रह्माजी के पास पहुँचा और कहने लगा—

"हे देवश्रेष्ठ ! मेरा जो स्वाभाविक धर्म है उसे महाराज बलि ने नष्ट कर दिया है, अर्थात् मेरे समय में जो कुछ होना चाहिए था उससे आज सब कुछ विपरीत हो रहा है।" ब्रह्माजी ने कहा—"हे कलियुग ! बलि ने केवल तेरा ही स्वभाव अपहरण नहीं किया है वरन् समस्त जगत के स्वभाव को अपहृत कर लिया है। यह देखो इन्द्र, वरुण, मरुत् आदि यहाँ बैठे है, इनका भी सब कुछ अपहृत हो गया है। बलि के प्रभाव से यह बिचारा भास्कर भी इस समय हीनता को प्राप्त हो रहा है।"

बलि के धार्मिकता, न्याय और सत्यपरायणता तथा शौर्य-वीर्य को देख कर त्रैलोक्य की लक्ष्मी भी उसके पास गई और कहने लगी कि "मैं इन्द्र की राज्य लक्ष्मी थी। इस समय तुम्हीं सभी से अधिक शौर्य और वीर्य शाली हो, अतएव मैं तुम्हारे पास आ गई हूँ। हे दानवों में श्रेष्ठ ! आपने अपने सत्कर्मों से अपने पितामह प्रह्लाद को भी जीत लिया है। ऐसा कह कर वह चन्द्रमा की सी द्युति वाली जय श्री राजा बलि में प्रविष्ट हो गई। उसके पश्चात् ह्री, भति, द्युति, प्रभा, गति, क्षमा, भूति, विद्या, मीति, दया, मति, श्रुति, स्मृति, धृति, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि सब बलि के ही आश्रित हो गई।"

राजा बलि की दानशीलता भी अपार वर्णन की गई है। जब भगवान वामन उससे दान माँगने को चले तो समस्त जगत चलायमान

हो गया और दानवों का तेज अपहृत होता जान पड़ा। इस पर बलि ने दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य से इसका कारण पूछा। उन्होंने समाधि योग द्वारा सारा रहस्य जानकर कहा कि—"भगवान वामन दान मांगने को तेरे यज्ञ मे आ रहे हैं। वे तेरा सर्वस्व लेकर इन्द्र को दे देंगे। इसलिए तुम उनसे किसी प्रकार के दान की प्रतिज्ञा न करना, वरन् यही कहना कि मेरे पास दान देने को कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर बलि कहने लगा—

"हे ब्रह्मन्! अन्य के द्वारा जब मुझसे याचना की जावे तो मैं कैसे कह दूँ कि मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। फिर जिसमे भी उन देवेश्वर से जो समस्त संसार के भयों का हरण करने वाले हैं। जो प्रभु अनेक व्रतों और उपवासों द्वारा आराधित किये जाते हैं, वही मेरे सम्मुख आकर किसी प्रकार का दान मांगें तो इससे बड़ा जीवन-लाभ और क्या हो सकता है? जिस परात्पर प्रभु की कृपा प्राप्त करने के लिये मनुष्य शौच आदि गुणों से समन्वित होकर तरह-तरह के यज्ञ किया करते हैं, वही देव साक्षात् होकर स्वयं मुझसे कहें कि 'कुछ दान दो, तो यह तो मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य ही समझा जायगा। मैंने पूर्व जन्म म कोई बहुत बड़ा सुकृत और तप किया हूँगा जिससे भगवान मेरे पास आकर मांगें और मेरे दिये हुए दान को ग्रहण करें। इससे अधिक महत्वपूर्ण पुण्योदय और हो ही नहीं सकता।"

"हे गुरुदेव! मेरे घर पर समागत होने वाले प्रभु को मैं कैसे कह सकूँगा कि मैं दान देने के लिये कुछ भी नहीं रखता। मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँगा, पर यह कभी नहीं कह सकता कि मेरे पास देने के लिये कुछ भी नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि यदि इस यज्ञ मे वास्तव मे भगवान श्रीहरि स्वयं आकर मुझसे दान की याचना करते हैं तो मैंने अपना वाञ्छित फल प्राप्त कर लिया। अन्य किसी वस्तु की तो क्या बात उनको मैं अपना मस्तक भी दान मे दे सकता हूँ। वह गोविन्द मुझसे यह तो कहें कि 'कुछ दान दो'—इससे अधिक श्रेष्ठ बात और क्या हो सकती है। "मेरे पास कुछ नहीं है" ऐसा तो मैंने आज तक अन्य याचना करने

वालों से भी कभी नहीं कहा, फिर उन भगवान अच्युत से, जो मेरे घर पर माँगने आयेंगे, मैं कैसे निषेधात्मक वचन कहूँगा। धीर पुरुषों को यदि दान देने मे विपत्ति भी सहन करनी पड़ती है तो वह श्लाघा के योग्य ही होती है। मेरे राज्य में कोई भी असुखी, दरिद्र और पीड़ित नहीं है। कोई भी ऐसा नहीं है जो अभूषित, उद्विग्न और प्रसाद से रहित हो। यह सब मैंने दानरूपी बीज का ही फल प्राप्त किया है। तो अब यह दान रूपी बीज यदि सबसे उत्तम पात्र जनार्दन प्रभु मे गिरता है तो फिर इस जीवन मे मैंने क्या नहीं प्राप्त कर लिया। मेरा यह दान तो विशिष्ट दान ही होगा जिससे देवगण भी सन्तुष्ट हो सकेंगे। यज्ञ के द्वारा आराधित भगवान हरि मेरे ऊपर कृपा करने को उद्यत हो गये, इसीलिये वे स्वयं मुझे दर्शन देने यहाँ आ रहे हैं।"

राजा बलि भगवान को दान देने के लिये ऐसा उत्सुक हो रहा था, कि वह उसमे किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने देना चाहता था। पर गुरु शुक्राचार्य इसे देवताओं की एक चाल मानकर दान देने का निषेध कर रहे थे। इसलिये बलि ने कहा—"जब भगवान गोविन्द यहाँ दान माँगने आवें तो आप ऐसी कोई विरोधी बात न कहें, जिससे मेरे दान में विघ्न पड़ जाय। या तो आप उस समय यहाँ रहें ही नहीं अथवा कुछ न बोलें।" अन्य पुराणों मे जो यह कहा गया है कि शुक्राचार्य अन्त तक राजा बलि को दान देने से रोकते रहे और अन्त मे जब वह हाथ में जल लेकर दान का संकल्प लेने लगा तो वे जलपात्र की टोंटी मे जा घुसे। इस पर वामन भगवान् ने टोंटी मे एक कुशा घुसा दी जिससे शुक्राचार्य का एक नेत्र फूटकर वे सदा के लिए काने हो गये। वामन पुराण में इसका कहीं भी जिक्र नहीं है। यह भी पुराणकारों द्वारा नई-नई तरह की कथा गढ़ लेने का एक उदाहरण है।

जब वामन भगवान ने यज्ञ मंडप में पहुँच कर बलि को आशीर्वाद दिया तो उसने अपनी राज्यकोष सर्वस्व उनके सम्मुख दान के लिए प्रस्तुत कर दिया। राजा हरिश्चन्द्र के उपाख्यान में तो विश्वामित्रजी को उनके राज्य का दान प्राप्त करने के लिये बड़े ढंग से काम लेना

पड़ा था, पर राजा बलि ने वामन भगवान के पहुँचते ही स्वयं कहा—

"हे भगवन्! मेरे यहाँ जो सुवर्ण, रत्न, मणियों का भंडार, गज, महिष, गौ, वस्त्र, आभूषण, जलाशय, भूमि आदि हैं, इनमें से जो कुछ आपको अभीष्ट हो उस सबको देने को मैं प्रस्तुत हूँ।" इस पर वामन भगवान ने तीन पैर भूमि माँगी। राजा ने बहुत कहा कि आप इतना छोटा दान क्यों माँगते हैं? पर जब दान लेने पर तीन पैर भूमि नापने का अवसर आया तो भगवान ने इतना बड़ा आकार धारण कर लिया कि उससे सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया। उसका जो वर्णन 'वामन पुराण' में दिया गया है, उससे भी प्रकट होता है कि यह बलि-वामन की कथा भगवान के विराटस्वरूप को प्रकट करने वाला एक उपाख्यान ही है। उसमें कहा है—

"जैसे ही राजा बलि के हाथ से दान के संकल्प का जल गिरा कि वह वामन स्वरूप अवामन हो गया और वहाँ पर उनका सर्व देवमय रूप दिखाई पड़ने लगा। चन्द्र और सूर्य दोनों उनके नेत्र थे, द्यौ शिर था, दोनों चरण भूमि थे, पाँवों की अँगुलियाँ पिशाच थे, हाथों की अँगुलियाँ गुह्यक थे। वामनदेव के जानुओं में विश्वेदेवा थे, जाँघों में साध्यगण स्थित थे। उनके अंगों में यज्ञ समूह थे और रेखाओं में अप्सरगण थीं। अशेष नक्षत्र ही उनकी दृष्टि थी और सूर्य की किरणें उनके केश थीं। उनके सब रोमों में महर्षिगण विराजमान थे। वामनदेव की बाहुएँ विदिशा थीं तथा श्रोत्र दिशाएँ थीं। अश्विनी कुमार श्रवण थे और वायु ही नासिका थीं। इन देव की वाणी में सत्य विराजमान था और जिह्वा में सरस्वती देवी स्थित थी। ग्रीवा में देव माता अदिति थी और त्वष्टा तथा पूषा दोनों भृकुटियाँ थीं। उनके मुख में स्वयं वैश्वानर विराजमान थे, पृष्ठ में वसुदेव थे, समस्त संधियों में मरुत देव थे। रुद्रगण इनके वक्षस्थल में विराजमान थे और महासागर ही उनके धैर्य थे। वामनदेव की कुक्षियों में समस्त वेद थे और मख जानुओं में स्थित थे।"

यह वर्णन किसी स्थूल शरीर का होने के बजाय इस समस्त

विश्व के विराट रूप का ही है। ऐसा ही विराट-स्वरूप-वर्णन गीता के ११ वे अध्याय मे भगवान कृष्ण का कहा हुआ है। इसे एक भौतिक दृश्य के बजाय ज्ञान दृष्टि से किया गया वर्णन ही मानना अधिक बुद्धि संगत है। इस प्रकार के अधिकांश पौराणिक उपाख्यान धर्म तत्व और सृष्टि विज्ञान के मूल तत्वो को सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियो को समझाने के उद्देश्य से ही लिखे जाते हैं। यह प्राचीन लेखक शैली की एक प्रणाली थी। उस समय सामान्य जनता मे पढ़ने-लिखने का रिवाज कम था और ज्ञान-विज्ञान की बातें भी थोड़े उच्च कोटि के व्यक्तियों तक ही सीमित रहती थी। इसलिये सामान्य जनता कथा-वार्ता मे उपस्थित होकर ही धर्म के नियमो की शिक्षा प्राप्त किया करती थी। आज भी यह प्रक्रिया देश के सभी—भागो मे न्यूनाधिक परिमाण मे प्रचलित है, और इसके द्वारा समाज का अशिक्षित वर्ग किसी हद तक धार्मिक आचार विचार का ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन को नियमित और सयमित रखने मे समर्थ होता है।

हम यह भी जानते है कि जब कथा-वाचको मे स्वार्थ-भाव की प्रबलता हो गई तो उन्होने धर्म-प्रचार के कार्य को गौण मानकर मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक दक्षिणा प्राप्त करने को बना लिया। तब पुराणों मे तीर्थ और व्रतो के माहात्म्यो का बहुत बड़े परिमाण मे समावेश किया गया और उन अवसरों पर तरह तरह के दान देने की प्रेरणा की गई।

हमने पुराणों के इन नवीन सस्करणो मे इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि इनकी समस्त उपयोगी बातों की रक्षा करते हुए अनावश्यक बातो को यथासभव कम कर दिया जाय। 'वामन पुराण' अपेक्षाकृत छोटा है और इसमें स्वार्थ की दृष्टि से लिखी व्यर्थ की बातें भी कम हैं इसलिए इसके थोड़े श्लोक ही हमने कम किये हैं। हमको पूर्ण आशा है कि जनता मे इस पुराण सीरीज का हार्दिक स्वागत होगा और इसके द्वारा पाठक हिन्दू-धर्म की जीवन को सार्थक बनाने वाली सत् शिक्षाओ को ग्रहण करेंगे।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

	भूमिका	३
१	श्री हरि ललित वर्णन	३३
२.	नरोत्पत्ति-प्रलय कथन	३९
३.	हरि-हर-सवाद वर्णन	४९
४.	हरि-वीरभद्र युद्ध वर्णन	५८
५.	शिवजी का कालस्वरूप वर्णन	६८
६	काम-दहन वर्णन	७८
७	प्रह्लाद युद्ध वर्णन	९९
८.	प्रह्लाद को वर-प्रदान वर्णन	११०
९	देव दानव युद्ध वर्णन	१२४
१०	अन्धक विजय वर्णन	१३४
११.	पुपूर द्वीप वर्णन	१४५
१२.	कर्म विपाक वर्णन	१५५
१३.	भुवन कोश वर्णन	१६६
१४.	धर्मानुशासन वर्णन	१७४
१५.	सुकेशी चरित्र वर्णन	१९५
१६.	अशून्य शयन द्वितीया कालाष्टमी व्रत	२०५
१७.	महिषासुर उत्पत्ति वर्णन	२१७
१८	देवी माहात्म्य वर्णन (१)	२२८
१९	देवी माहात्म्य वर्णन (२)	२३६
२०.	महिषासुर वध वर्णन	२४३
२१.	उमा सभव वर्णन	२५२
२२.	सरोवर माहात्म्य वर्णन	२६३
२३.	दैत्यराज बलि-वध वर्णन	२७१
२४.	बलि की देवताओ पर विजय	२७६

२५. कश्यप आदि का क्षीरसागर गमन २८२
२६. कश्यप कृत भगवत् स्तुति २८६
२७. अदिति कृत भगवत् स्तुति २८८
२८. अदिति को वर प्रदान वर्णन २९४
२९. प्रह्लाद कृत बलि निन्दा एवं शाप २९७
३०. ब्रह्मा कृत वामन स्तुति ३०५
३१. वामन-बलि चरित वर्णन ३१३
३२. सरस्वती स्तोत्र ३२९
३३. सरस्वती माहात्म्य वर्णन ३३४
३४. नाना तीर्थ माहात्म्य वर्णन ३३७
३५. नाना तीर्थ एवं वन माहात्म्य ३४५
३६. तीर्थ माहात्म्य वर्णन (१) ३५५
३७. तीर्थ-माहात्म्य वर्णन (२) ३६८
३८. मङ्कण कृत शिव स्तुति ३७४
३९. औशनस तीर्थ माहात्म्य ३७७
४०. अरुण सरस्वती माहात्म्य ३८३
४१. ऋणमोचन तथा काम्यक तीर्थ माहात्म्य ३९०
४२. दुर्गातीर्थ तथा स्थाणुवट माहात्म्य ३९६
४३. सृष्टि वर्णन तथा धर्म निरूपण ४०१
४४. ब्रह्मादि देव कृत शिवस्तुति ४१५
४५. स्थाणु लिङ्ग माहात्म्य ४२३
४६. नाना विधि शिव लिङ्ग माहात्म्य ४२८
४७. वेन चरित्र तथा शिवस्तुति ४३७
४८. वेन वर-प्रदान वर्णन ४६२
४९. चतुर्मुख कृत शिव स्तुति ४६८
५०. कुरुक्षेत्र माहात्म्य वर्णन ४७५
५१. शिव-उमा संवाद वर्णन ४७८
५२. देवगण की हिमालय से प्रार्थना ४९०

वामन पुराण

(प्रथम खंड)

१–श्री हरि ललित वर्णन

त्रैलोक्यराज्यमाच्छिद्य बलेरिन्द्राय यो ददौ ।
नमस्तस्मै सुरेशाय सदा वामनरूपिणे ॥१
पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्विदां वरम् ।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम् ॥२
कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना ।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥३
कथं च वैष्णवो भूत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
त्रिदशैर्युयुधे सार्द्धं मत्र मे संशयो महान् ॥४
श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहिता सती ।
शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव वरवर्णिनी ॥५
किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना ।
जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः ॥६
पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा ।
एतं मे संशयं छिन्धि सर्ववित्त्वं मतोऽसि मे ॥७

आरम्भ में मंगलाचरण किया जाता है और नमस्कारात्मक है। जिन भगवान् ने त्रिभुन के राज्य को अपना विशाल स्वरूप बढ़ाकर चरणों से नापते हुए समाच्छादित कर लिया था और सम्पूर्ण साम्राज्य का ग्रहण कर अर्थात् राजा बली का राज्य लेकर इन्द्र को प्रदान कर दिया था उन सुरों के ईश वामन रूपधारी भगवान् के लिये सर्वदा सादर नमस्कार है ॥१॥ एक समय में अपने ही आश्रम में सुस्थित होने

वाले और वाणी के बोलने वाले विद्वानों में परम श्रेष्ठ महर्षि पुलस्त्यजी से देवर्षि श्री नारदजी ने भगवान् वामन के आश्रय वाले इस पुराण के विषय में प्रश्न पूछा था ॥२॥ देवर्षि नारद ने पुलस्त्य मुनि से पूछा था—हे ब्रह्मन् ! प्रभु विष्णु श्री भगवान् विष्णु ने वामन अंगुल का छोटा-सा स्वरूप कैसे धारण किया था। पहिले समय में इस वामनत्व के रूप के धारण करने का क्या कारण हुआ था—यह सब परम जिज्ञासु होकर पूछने वाले मुझे आप कृपया बतलाने की कृपा करें ॥३॥ प्रह्लाद तो परम एवं उत्तम विष्णु के भक्त वैष्णव थे। ऐसे होकर भी उन दैत्यों में महान् श्रेष्ठ प्रह्लाद ने देवगण के साथ क्यों युद्ध किया था क्योंकि देव वृन्द तो सदा ही विष्णु भगवान् के प्रिय होते हैं ? इस विषय में मुझे बड़ा भारी संशय होता है ॥४॥ हे द्विजों में परमश्रेष्ठ ! यह सुना जाता है कि प्रजापति महाराज दक्ष की प्रिय पुत्री सती भगवान् शङ्कर की परम प्रिया पत्नी थी। वह वरवर्णिनी सती, जिसका मुख अतीव सुन्दर था, ऐसा क्या कारण उस समय में हो गया था कि उसने अपने शरीर का त्याग करके फिर हिमवान् के घर में, जोकि समस्त पर्वतों का राजा और महान् आत्मा वाला था, समुत्पन्न हुई थी ? ॥५-६॥ फिर उन्हीं देवों के भी वन्दनीय देव श्री शङ्कर की पत्नी हुई थी—ये सब सन्देह मेरे हृदय में होते हैं—आप अनुग्रह करके इन सब संशयों को दूर कर देवें। क्योंकि यह मैं भली भाँति समझता हूँ कि आप इस सभी बातों को अच्छी तरह से जानते हैं ॥७॥

तीर्थानां चैव माहात्म्यं दानानां चैव सत्तम ।
व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज ॥८
एवमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम् ॥९
पुराणं वामनं वक्ष्ये क्रमान्निखिलमादितः ।
अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम ॥१०
पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम् ।
उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमुपस्थितम् ॥११

ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च मे विद्यते गृहम् ।
यत्र वातातपौ ग्रैष्मो स्थितयोर्नौ गमिष्यतः ॥१२

एवमुक्तो भवान्यैतच्छंकरो वाक्यमब्रवीत् ।
निराश्रयोऽहं सुदति सदाऽरण्यचरः शुभे ॥१३

इत्युक्ता शंकरेणाथ वृक्षच्छायासु नारद ।
निदाघकालमनयत्सम शर्वेण सासती ॥१४

हे द्विजवर ! समस्त तीर्थों का क्या-क्या माहात्म्य होता है तथा बहुत-से दानों का जिनका शास्त्रों में बड़ा विधान बताया गया है क्या माहात्म्य है । हे श्रेष्ठतम ! अनेक व्रत एवं उपवासों की क्या महिमा है तथा उनका किस प्रकार का विधान होता है—यह सभी आप मेरे समक्ष में वर्णन करने की कृपा करें ॥८॥ जब इस प्रकार से मुनियों में परम-श्रेष्ठ पुलस्त्यजी से देवर्षि ने प्रश्न किये थे तो बोलने वालों में अति कुशल पुलस्त्य मुनि ने तपस्या के निधि देवर्षिनारद से कहा था ॥९॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! अब मैं सम्पूर्ण वामन पुराण को ही आरम्भ से आपके सामने बतलाता हूँ । आप अपने चित्त को सावधान एवं स्थिर करके उसका श्रवण करिये ॥१०॥ बहुत पहिले प्राचीन काल में हैमवतीदेवी ने मन्दराचल पर विराजमान भगवान् महेश्वर से ग्रीष्म काल को वर्त्तमान देखकर यह वचन कहा था ॥११॥ हे देवेश्वर ! यह परम दारुण घोर ग्रीष्म काल उपस्थित हो गया है और मेरा कोई भी घर निवास करने के लिये नहीं है जहाँ पर स्थित होकर हम दोनों की यह उष्ण वात और आतप (धूप) जोकि ग्रीष्म की महान् दारुण हैं, निकल जावें अर्थात् इनसे बचाव हो सके ॥१२॥ जब इस रीति से भवानी के द्वारा भगवान् शंकर से प्रार्थना की गई तो महेश्वर प्रभु ने इनसे यह वचन कहा था—हे शुभे ! हे सुन्दर दन्तों वाली देवि ! आप तो खूब जानती हैं कि मैं तो एक तापस घोर वन में विचरण करने वाला व्यक्ति हूँ । मेरा कोई भी आश्रय करने का स्थान है ही नहीं ॥१३॥ हे नारद ! जब ऐसा शंकर ने देवी से कह दिया तो फिर

भवानी ने एक वृक्ष की छाया में ही प्रभु शम्भु के साथ रहकर सती ने सम्पूर्ण वह ग्रीष्म काल व्यतीत किया था ॥१४॥

निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुतः ।
घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरावबान् ॥१५
तं दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमुपस्थितम् ।
प्रोवाच वाक्यं देवेशं सती सप्रणयं तदा ॥१६
निवान्ति वाता हृदयावदारणा गर्जन्त्यमी तोयधरा महेश ।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्युतो वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः ॥१७
पतन्ति धारा गगनात्परिच्युता बकाबलाकाश्च भजन्ति तोयदान् ।
कदम्बसर्जार्जुनकेतकीनांपुष्पाणिमुष्णन्ति च मारुतादिना ॥१८
श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात् ।
नीचोद्धतान्सत्पुरुषा यथाऽऽश्रयान्प्रवृद्धमूलानपि सत्यजन्ति ॥१९
इमानि यूथानि तथा मृगाणां स्वरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो ।
धावन्ति हृष्टानि वनस्थलीषु सर्वा भुवस्तोयद संप्रवृद्धया ॥२०
राजन्ति शष्पावृतसस्ययुक्तास्तथाऽचिराभाः सुतरां स्फुरन्ति ।
रम्येषु नीलेषु घनेषु देव नूनं समृद्धिं मलिनस्य दृष्ट्वा ॥२१

इस प्रकार से वह ग्रीष्म ऋतु का समय तो निकल गया था । इसके अन्त में अब वर्षा ऋतु का समय उपस्थित हो गया था जिसमें मेघों के गर्जन की भीषण ध्वनि होती थी और सभी दिशाओं में महान् घोर अन्धकार छा गया था तथा सभी स्थल जनों से रहित और एक अद्भुत से हो गये थे ॥१५॥ ऐसे वर्षा के काल को उपस्थित देखकर दक्ष की पुत्री सती ने पुनः उस समय में परम पुण्य के साथ देवेश्वर से यह प्रार्थना की थी ॥१६॥ सती ने कहा—हे महेश्वर ! ये वायु हृदय को चीर देने वाली चल रही है और ये मेघ बहुत ही भीषणता के साथ गर्जन करते हैं । इन नीले वर्ण वाले घने मेघों के मध्य में विद्युत् की चमक होती है । बादलों की गर्जन सुनकर मयूरों की ध्वनियाँ चारों ओर हो रही हैं ॥१७॥ वर्षा की अविरल धाराऐं पड़ रही हैं । इस समय आकाश और भूमि सर्वत्र जलमय दिखलाई दे रहे हैं । बकों (बगुला)

की पक्ति मेघों का सेवन करने का आनन्द प्राप्तकर रही हैं। वायु के तीव्र झोकों से कदम्ब-सर्ज्ज-अर्जुन और केतकी के पुष्प झड़-झड़ कर वृक्षों से गिर रहे हैं ।।१८।। मेघों की इस गर्जना को सुनते ही हम गण तुरन्त ही सरोवरों का त्याग करके जा रहे हैं क्योंकि वर्षा के कारण अशोभन जल की अस्वच्छता उन्हें रुचिकर नहीं होती है । जिस प्रकार से प्रवृद्ध मूल वाले अपने आश्रयों को भी नीच तथा उद्धत पुरुषों से घिर जाने पर सत्पुरुष उनका त्याग करके अन्यत्र ही चले जाया करते हैं वैसे ही हंसों ने भी जलाशयों को त्याग दिया था ।।१९।। हे शम्भो ! देखिये, ये मृगों के झुण्ड के झुण्ड भागे जा रहे हैं और किसी अन्य आश्रय में रमण करने के इच्छुक हैं । सभी जीव इस वन की स्थली में जहाँ-तहाँ प्रसन्न होकर भाग दौड़ कर रहे हैं और यह सम्पूर्ण भूमि मेघों की वृष्टि से परिपूर्ण हो गई है ।।२०।। इस भूमि पर चारों ओर घास निकल आई है, फसलें उग रही हैं और तुरन्त ही ये सब अपने ही आप स्फुरित होकर प्रकट हो गई हैं ।।२१।।

चरन्ति शूरास्तरणोद्गमेषु उद्वृत्तवेगाः सहसैव निम्नगाः ।
जाताः शशाङ्काङ्कितचारुमौलेकिमत्रचित्रं यदनुज्ज्वलं जनम् ।।२२
श्रयन्ति नीचानुगता हि योषितो नीलेषु मेघेषु समाश्रितं नभः ।
पुष्पेषु सर्ज्जा मुकुलेषु नीपाः फलेषु च श्रीश्च पयस्स्वथापगाः ।।२३
पत्रेषु पद्मं पु महासरांसि सुदुस्तरः संप्रति वर्षकालः ।
इतोदृशे शंकर दुःसहेऽद्भुते काले सुरौद्रे ननु ते ब्रवीमि ।।२४
गृहं कुरुष्वात्र महाचलोत्तमे सुनिर्वृता येन भवामि शम्भो ।
इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं श्रुत्वा वचो वाक्यमिदं बभाषे ।।२५
न मेऽस्ति वित्तं गृहसंचयार्थे मृगारिचर्मावृतदेहिनः प्रिये ।
ममोपवीतं भुजगेश्वरः फणी कर्णेऽपि पद्मश्च तथैव पिङ्गलः ।।२६
केयूरमेकं मम कम्बलस्त्वहिर्द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः ।
नागस्तथैवाश्वतरोऽहिकङ्कणं सव्ये तरे तक्षक उत्तर तथा ।
नीलोऽपि नीलाञ्जनतुल्यवर्णः श्रोणीतटे राजति सुप्रतिष्ठः

इस वर्षा के काल में शूर लोग तरणोद्गमों में विचरण कर रहे हैं। समस्त नदियाँ सहसा ही उद्वृत्त वेग वाली हो गई हैं अर्थात् अत्यन्त वेग के साथ बह रहीं हैं। हे प्रभो ! आपके मस्तक पर तो चन्द्र विराजमान है किन्तु जो साधारण जन तो उज्ज्वल इस समय मे नहीं है—इसमें क्या विचित्रता है ? ॥२२॥ आकाश में एकदम नील वर्ण वाले मेघ छाये हुए हैं इस समय मे नदियाँ नीचों के भी अनुगत होकर उनका समाश्रण कर लिया करती हैं क्योंकि उनका स्वभाव भीरु होता है। पुष्पों मे सर्ज (सहजना), मुकुलों में कदम्ब और फलों मे भी है। नदियो मे अथाह जल भरा हुआ है ॥२३॥ यह वर्षा का काल पत्रों मे, पद्मो मे तथा महान् सरोवरों मे सर्वत्र इस समय सुदुस्तर हो गया है। हे शकर ! इस तरह के ऐसे दुस्सह और अद्भुत एव महान् भीषण काल के उपस्थित हो जाने पर मैं पुन आपकी सेवा मे विनम्र निवेदन करती हूँ ॥२४॥ हे शम्भो ! यहाँ पर इस महान् एव उत्तम पर्वत पर कही एक निवास के लिये घर बनाइये जिससे मैं सुनिर्वृत हो सकूँ। ऐसे कानों को सुनने मे प्रिय लगने वाले वचन को श्रवण करके सती से यह वचन बोले ॥२५॥ हे प्रिये ! घर को निर्माण कर उसके सञ्चय के करने के लिये मेरे पास तो कुछ भी धन नही है क्योकि यह तो तुम देखती ही हो कि मैं तो व्याघ्र चर्म से ही अपना सम्पूर्ण शरीर ढककर रहा करता हूँ। मेरा उपवीत भी सर्पों का राजा भुजग ही है। मेरे कान मे भी उसी भाँति एक पद्म रहता है, पिगल ही मेरा केयूर है। मेरे पास कम्बल भी दूसरा ही सर्प है। अन्य धनञ्जय नाग मध्य हाथ का कंकण है तो दूसरे हाथ का तक्षक है और नीले अञ्जन के समान नील वर्ण वाला नील श्री मेरे श्रोणी तट में प्रतिष्ठित है ॥२६-२७॥

इति वचनमथोग्र शकरात्सा मृडानी
श्रुतमपि तदसत्य श्रीमदाकर्ण्य भीता।
अवनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकृच्छ्रा
त्परिवदति सरोष लज्जयो च्छ्रस्य चोष्णम् ॥२८

किमेव सश्रितायास्तु प्रावृट्कालः प्रयास्यति ।
वृक्षमूले स्थितायास्तु सुनयेन वदाव्यय ॥२८
घनावस्थितदेहायाः प्रावृट्कालः प्रयास्यति ।
यथाऽम्बुधारा न तव निपतिष्यन्ति विग्रहे ॥३०
ततो हरस्तद्घनखण्डमुन्नतमारुह्य तस्थौ सह दक्षकन्यया ।
ततोऽभवन्नाम महेश्वरस्य जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुत दिवि ॥३१

पुलस्त्य मुनि ने कहा—उस देवी मृडानी ने इस भांति के अतीव उग्र वचन भगवान् शंकर से सुन थे किन्तु वे सब श्री युक्त होते हुए भी असत्य हैं ऐसा श्रवण करके सती भयभीत हो गई थी फिर अपने स्वामी के इस कष्ट पूर्ण निवास से दुःखित होकर सती न भूमि तल की ओर देखा था और क्रोध के साथ लज्जा से एक उष्ण श्वास लेकर कहने लगी ॥२८॥ देवी ने कहा—इस प्रकार से सश्रित रहने वाली मेरा यह वर्षा ऋतु का काल कैसे व्यतीत होगा ? हे अविनाशी प्रभो ! आप ही एक न्यायोचित उत्तर प्रदान कीजिए कि मैं इस घोर वर्षा के दारुण काल में वृक्ष के मूल में किस तरह स्थित रह सकूगी ? ॥२९॥ भगवान् शंकर ने कहा—घनो मे अवस्थित देह वाली आपका यह वर्षा ऋतु का समय निकल जायेगा । इससे जल की धारा आपके शरीर पर नहीं गिरेंगी ॥३०॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके अनन्तर एक उन्नत घन के खण्ड पर शंकर समारूढ हो गये थे और वहीं पर दक्ष की कन्या सती के साथ स्थित हो गये थे । तभी से भगवान् महेश्वर का 'जीमूत केतु'—यह नाम पड गया था । इसका अर्थ है मेघों की ध्वजा । यह नाम सर्वत्र देवलोक मे प्रसिद्ध है ॥३१॥

२—नरोत्पत्ति—प्रलय कथन

ततस्त्रिनेत्रस्य गतः प्रावृट्कालो घनोपरि ।
लोकानन्दकरी रम्या शरत्समभवन्मुने ॥१

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तल वृक्षाश्च ककाः सरितस्तटानि ।
पद्मानि गन्ध निलयानि वायसा रुरुर्विषाण कलुष जलाशयाः ॥२

विकासमायान्ति च पङ्कजानि चन्द्रांशवो भान्ति लताःसुपुष्पाः ।
नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि सन्तश्च संतोषमनुव्रजन्ति ॥३
सरस्सु पद्मं गगने च तारका जलाशयेष्वेव तथा पयांसि ।
सतां च चित्तं हि दिशांमुखैः समवैमल्यमायान्तिशशाङ्ककान्तयः ॥४
एतादृशे हरः काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम् ।
सतीमादाय शैलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ ॥५
ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थितः समशिलातले ।
रेमे स शंभुर्भगवान्सत्या सह महाद्युतिः ॥६
ततो गतायां शरदि प्रवृद्धे चैव शैशवे ।
दक्षः प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम् ॥७

पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके अनन्तर वह वर्षा ऋतु का समय भगवान् शंकर का उस घन के ऊपर ही व्यतीत हो गया था । हे मुने ! फिर सभी लोगों का आनन्द प्रदान करने वाली तथा परम रमा शरद् ऋतु आ गई थी ॥१॥ शरत्काल के आते ही नील वर्ण वाले मेघों ने आकाश का त्याग कर दिया था अर्थात् मेघों के न रहने से आकाश एकदम निर्मल एवं स्वच्छ हो गया था । काकों ने वृक्षों का त्याग कर दिया था और नदियों में जो वर्षा में एकदम उभार आकर तटों को घेर लिया था वह भी शान्त हो गया था और तटों को नदियों ने त्याग दिया था । पद्मों ने गन्ध को, वायसों ने अपने निलयों अर्थात् निवासों को, रुरु ने निपाण को तथा जलाशयों ने कलुषता (मैलापन) का त्याग कर दिया था ॥२॥ शरत्काल के आते ही कमलों में खिलावट आ गई थी । चन्द्रमा की स्वच्छ किरणें शोभायुक्त दिखाई देने लगी थीं । सभी लताएं सुन्दर पुष्पों से शोभित हो गईं थीं । जो हृष्ट गोकुल अर्थात् गौओं का समुदाय था और सन्त पुरुषों को भी अतीव सन्तोष हो गया था । वर्षारम्भ में ही सन्त लोग यात्रा स्थगित कर एक ही स्थान पर स्थिर हो जाते हैं क्योंकि तीर्थाटनों में सर्वत्र मार्गावरोध हो जाता था ॥३॥ सरोवरों में कमल, आकाश में तारे, जलाशयों में जल, सत्पुरुषों का चित्त, दिशाओं के मुखों के साथ चन्द्रमा की किरणें सभी

विमनता को प्राप्त हो गये थे ॥४॥ ऐसे समय में भगवान् हर मेघ की पीठ पर अधिवास करने वाली सती को लेकर शैलों के शिरोमणि मन्दराचल पर चले गये थे ॥५॥ इसके अनन्तर मन्दराचल की पीठ पर स्थित होकर समशिला के तल पर शम्भु भगवान जिनकी महान् द्युति थी, सती के साथ रमण करते थे ॥६॥ फिर शरत्काल भी व्यतीत हो गया था और देवोत्थापनी एकादशी तिथि आ गयी थी। केशव प्रभु के प्रबुद्ध होने पर प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्ष ने यज्ञ करने का समारम्भ किया था ॥७॥

> द्वादशैव स चादित्यान्छक्रादींश्च सुरोत्तमान् ।
> सकश्यपान्समामन्त्र्य सदस्यान्समचीकरत् ॥८
> अरुन्धत्याऽनुसहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम् ।
> सहाऽनुसूययाऽत्रिं च सह धृत्या च कौशिकम् ॥९
> अहल्यया गौतमं च भरद्वाज ममायया ।
> चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नृषिमङ्गिरसं तथा ॥१०
> आमन्त्र्य कृतवान्दक्ष. सदस्यान्यज्ञकर्मणि ।
> सदस्यान्गुणसंपन्नान्वेदवेदाङ्गपारगान् ॥११
> धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽहिंसया सह ।
> निमन्त्र्य यज्ञवाटस्य द्वारपालार्थमादिशत् ॥१२
> अरिष्टनेमिन चक्रे इध्माहरणकारिणम् ।
> चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नृषिमङ्गिरसं तथा ॥१३
> मृष्टान्नपानसत्कारे सम्यग्दक्षः प्रयुक्तवान् ।
> भृगुं च सत्रसत्कारे सम्यग्दक्षः प्रयुक्तवान् ॥१४

उस समय में प्रजापति ने शक्र (इन्द्र) आदि सभी श्रेष्ठ देवगण को–बारह आदित्यों को और कश्यप के सहित सभी सदस्यों का समामन्त्रित करके यज्ञ का कर्म किया था ॥८॥ शंसित व्रत वाले अरुन्धती के सहित वसिष्ठ मुनि को और अनुसूया के सहित अत्रि मुनि को तथा धृति के सहित कौशिक मुनि को आमन्त्रित किया था ॥९॥ अहल्या पत्नी के समेत गौतम को, ममाया के साथ भरद्वाज को और चन्द्रा के सहित

आङ्गिरा ऋषि को भी हे ब्रह्मन ! दक्ष प्रजापति ने निमन्त्रित किया था ॥१०॥ दक्ष ने सकल गुण गणों से सुसम्पन्न तथा वेदों एवं वेदों के अंग में शास्त्रों पारगामी विद्वान समस्त सदस्यों को उस यज्ञ कर्म में आमन्त्रित करके यज्ञ का आरम्भ किया था ॥११॥ दक्ष ने अहिंसा धर्म पत्नी के सहित धर्म का आव्हान किया था और धर्म को आमन्त्रित करके उनको यज्ञ द्वार के द्वारपाल के कर्म में नियुक्त करने की आज्ञा दे दी थी ॥१२॥ अरिष्ट ने मिको इध्म के आहरण करने वाले कर्म में नियोजित किया था। दक्षने मिश्राग्र पात्र के सत्कार करने के कर्म में भली भाँति से प्रयुक्त किया था। भृगुमुनि को सत्र के सत्कार करने के कार्य में नियुक्त किया था ॥१४॥

तथा चन्द्रमस देव रोहिण्या सहित शुचिम् ।
धनानामाधिपत्ये स युक्त वाह्नि प्रजापतिः ॥१५
जामातृन्दुहितृश्चैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः ।
सशंकरा सती मुक्त्वा मखे सर्वान्यमन्त्रयत् ॥१६
किमर्थं लोकपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः ।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि न निमन्त्रित. ॥१७
ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आद्योऽपि भगवाञ्छिव. ।
कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमन्त्रितः ॥१८
किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
कपाली भगवाञ्जातः कर्मणा केन शकरः ॥१९
शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
प्रोक्ता ह्यादिपुराणेषु ब्रह्मणाऽव्यक्तमूर्तिना ॥२१
पुरा त्वेकार्णवे लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रे प्रनष्टपवनानले ॥२१

रोहिणी के सहित परम पवित्र चन्द्रदेव को धर्म के आधिपत्य के कार्य में नियुक्त किया था। प्रजापति ने अपनी सभी पुत्रियों को तथा जमाइयों को भी आमन्त्रण किया था और धेवतों को भी बुलाया था। उस मख में सभी का आमन्त्रण किया था केवल एक पुत्री सती और

उसके पति शंकर जामाता का आमन्त्रण नहीं किया था ।।१५-१६।। देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! क्या कारण था कि लोकपति दक्ष ने धन के स्वामी महेश्वर को निमन्त्रित नहीं किया था जो कि सब मे ज्येष्ठ, परम श्रेष्ठ, अतीव वरिष्ठ और आद्यपी थे ।।१७।। पुलस्त्य मुनि ने कहा—भगवान् शिव निश्चय ही ज्येष्ठ-श्रेष्ठ वारधि और अग्र भी थे किन्तु वे कपाल धारण करने वाले हैं—यही समझकर प्रजापति दक्ष ने उनको आमन्त्रित नहीं किया था ।।१८।। देवर्षि नारदजी ने कहा—किस कारण से देवगण मे परम श्रेष्ठ त्रिलोचन शूलपाणि कपालों के धारण करने वाले हो गये थे । भगवान् शंकर का ऐसा क्या कर्म था जिससे उनको ऐसा करने को विवश होना पड़ा था ।।१९।। पुलस्त्य मुनि ने कहा था—हे नारद ! आप इस विषय की एक परम पुरानी कथा का श्रवण करो और सावधान हो जाओ । इस कथा को आदि पुराणों में अव्यक्त मूर्ति वाले ब्रह्माजी ने कहा था जिसे मैं इस समय में आपको श्रवण करा रहा हूँ ।।२०।। पहिले समय में जब कि ये समस्त लोक नष्ट हो गये थे और स्थावर जगम कुछ भी शेष नहीं था । केवल एक मात्र सागर ही दिखलाई देता था । चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र-वायु और अनल सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं ।।२१।।

> अप्रतर्क्यमविज्ञेयं भावाभावविवर्जितम् ।
> निमग्नवीरुत्सतृणं तमोभूतं सुदुर्दिनम् ।।२२
> तस्मिन्स शेते भगवान्निद्रां वर्षसहस्रकीम् ।
> रात्र्यन्ते सृजते लोकान्राजसं रूपमास्थितः ।।२३
> रेजे स पञ्चवदनो वेदवेदाङ्गपारगः ।
> स्रष्टा चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः ।।२४
> तमोमयस्तथैवान्यः समुद्भूतस्त्रिलोचनः ।
> शूलपाणिः कपर्दी च अक्षमालां च दर्शयन् ।।२५
> ततो महात्मा ह्यसृजदहंकारं सुदारुणम् ।
> येनाक्रान्तावुभौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ ।।२६
> अहंकारावृतो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम् ।

को भवानिह सम्प्राप्तः केनसृष्टोऽसि मां वद ॥२७
पितामहोऽप्यहङ्कारी प्रत्युवाचाथ को भवान् ।
भवतो जनकः कोऽस्य जननी वा तदुच्यताम् ॥२८

वह समय कुछ ऐसा अद्भुत होता है कि कोई भी उसकी तर्कना नहीं कर सकता है और किसी के भी ज्ञान का विषय नहीं होता है। भाव और अभाव दोनों ही से रहित वह समय होता है। सभी वीरुत्–तृण आदि सागर के जल में निमग्न हो जाते हैं। एक दम सर्वत्र घना अन्धकार और दुर्दिन छाया रहता है ॥२२॥ उस स्थिति में वह परात्पर भगवान् एक सहस्र वर्ष की निशा में योग निद्रा का आनन्द लेते हुए शयन किया करते हैं। जब उनकी उस निद्रा की समाप्ति होती है तो पुनः रूप में समास्थिति होकर निरन्तर लोकों का सृजन किया करते हैं ॥२३॥ वह पाँच मुख वाला प्रभु, समस्त वेदों तथा वेदांगों में पारगत, अद्भुत दर्शन वाले इस सम्पूर्ण चराचर जगत के सृजन करने वाले हैं ॥२४॥ उसी भाँति तमोमय अन्य त्रिलोचन समुद्भूत होते हैं। हाथ में शूल ग्रहण किये हुए, कपर्दी और अक्षों की माला को दिखाते हुए प्रकट होते हैं। यह भी उसी प्रभु का एक दूसरा स्वरूप है ॥२५॥ इसके अनन्तर महान् आत्मा वाले प्रभु ने अतिशय दारुण अहङ्कार का सृजन किया था जिसने उन दोनों देवों को जो ब्रह्मा और शंकर नाम वाले थे, आक्रान्त कर लिया था ॥२६॥ अहङ्कार से समावृत होकर रुद्र देव ने अपने पितामह से कह दिया था। आप यहाँ पर कौन हैं ? मेरी रचना किसने की थी ? मुझे यह बतलाओ ॥२७॥ उधर पितामह ब्रह्माजी अहङ्कार से आक्रान्त थे ही। उनने भी रुद्रदेव से कहा—आप कौन हैं ? यहाँ पर आपका पिता तथा माता कौन हैं ? हमको यह सब बतलाइये ॥२८॥

इत्यन्योन्यं पुरा ताभ्यां ब्रह्मेशाभ्यां किल प्रियः ।
परिवादोऽभवत्तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत् ॥२९
भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पतत् ।
धारयन्नतुलां वीणां कुर्वन्किलकिला ध्वनिम् ॥३०

ततो विनिर्जित. शम्भुर्मानिना ब्रह्मयोनिना ।
तस्थावघोमुखो दीनो ग्रहाक्रान्तो यथा शशी ॥३१
पराजिते लोकपतौ देवेन परमेष्ठिना ।
क्रोधान्धकारित रुद्रं पञ्चम मुखमब्रवीत् ॥३२
अह ते प्रतिजानामि तमोमूर्त्ते त्रिलोचन ।
दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान् ॥३३
इत्युक्त शकरः क्रुद्धो ब्रह्माण घोरचक्षुषा ।
निदग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवानज ॥३४
तयस्त्रिनेत्रस्य समुद्भवन्ति वक्त्राणि पञ्चाथ सुदुर्दशानि ।
सित च रक्तं कनकावदात नील तथा पिञ्जरक च रौद्रम् ॥३५

इस प्रकार से परस्पर मे उन दोनो ब्रह्मा और शिव का एक बडा ही प्रिय परिवाद हो गया था। वहाँ पर फिर आपकी उत्पत्ति हुई थी ॥२६॥ आप भी समुत्पन्न होते ही उस समय मे एक अनुपम वीणा हाथ मे धारण करते हुए किला-किला ध्वनि करते हुए ऊपर चले गय थे ॥३०॥ इसके अनन्तर यह हुआ कि यह महामानी ब्रह्माजी ने शम्भु को जीत लिया था और वह शम्भु नीचे की ओर मुख करके अत्यन्त दीन दशा मे ग्रहो से आक्रान्त शशि की भाँति ही सस्थित हो गय थे ॥३१॥ परमेष्ठी देव के द्वारा लोको के स्वामी शिव के पराजित हो जाने पर क्रोध से अन्धकार युक्त पाचवाँ रुद्र मुख मे बोला ॥३२॥ हे तम की मूर्तिवाले त्रिलोचन! मैं आपको जानता हूँ। आप सर्वदा नग्न रहने वाले वृषभ पर समारूढ होकर रहा करते हैं। आप तो इस लोक के सहार करने वाले हैं ॥३३॥ इस तरह से जिस समय मे भगवान् शकर स कहा गया था तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और और अपने परम घोर नेत्र से ब्रह्माजी को निर्दग्ध कर देने की कामना की थी। भगवान् अज ने निरन्तर यह देखा था ॥३४॥ इसके पीछे भगवान् त्रिनेत्र अर्थात् शिव के सुदुर्दर्श पाँच मुख समुत्पन्न हो गय थे। उन पाचो मुखो क पाँच तरह के वर्ण थे—एक श्वेत था—दूसरा रक्त—सुवर्ण के समान, आसुर—नील और पिञ्जरक रौद्र था ॥३५॥

वक्त्राणि दृष्ट्वाऽर्कसमानि सद्यः पितामहो वाक्यमुवाच रुद्रम् ।
समाहृतस्याथजलस्यबुद्बुदा भवन्तिकितेपुपराक्रमोऽस्ति ॥३६
तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तेन शंकरेण महात्मना ।
नखाग्रेण शिरश्छिन्नं ब्राह्मं परुषवादकम् ॥३७
तच्छिन्नं शंकरस्यैव सव्ये करतलेऽपतत् ।
पतते न कदाचिच्च तदा करतलाच्छिरः ॥३८
अथ क्रोधावृतेनाथ ब्रह्मणाऽद्भुतकर्मणा ।
सृष्टस्तु पुरुषो धीमान्कवची कुण्डली शरी ॥३९
धनुष्पाणिर्महाबाहुर्बाणशक्तिधरोऽव्ययः ।
चतुर्भुजो महातूणी आदित्य समदर्शनः ॥४०
स त्वाह गच्छ दुर्बुद्धे मा त्वां शूलिन्निपातये ।
भवान्पापसमायुक्तः पापिष्ठं को जिघांसति ॥४१
इत्युक्तः शंकरस्तेन पुरुषेण महात्मना ।
प्रियायुक्तो जगामाथ रुद्रो बदरिकाश्रमम् ॥४२

भगवान पितामह सूर्य के समान पाँचों मुखों को देखकर तुरन्त ही रुद्र से यह वचन बोले–ब्रह्माजी ने कहा—समाहृत जो जल होता है उसमें भी बुलबुले हो जाया करते हैं उनमें आपका क्या पराक्रम है ? ॥३६॥ यह ब्रह्मा की वाणी सुन कर महात्मा शंकर को महान क्रोध आ गया था और फिर उन्होंने अपने नख के अग्र भाग से ब्रह्माजी का जो यह कठोर वचन बोलने वाला शिर छिन्न कर दिया था ॥३७॥ वह छिन्न हुआ शिर शंकर के ही सव्य करतल में गिर गया था और वह हाथ में पड़ा हुआ शिर किसी भी प्रकार से हाथ से नीचे नहीं गिरा था ॥३८॥ इसके अनन्तर क्रोध से समावृत ब्रह्मा ने, जिनके अद्भुत कर्म थे, एक पुरुष का सृजन किया था जो बहुत धीमान्–कवचधारी, कुण्डलों को पहिने हुए, हाथ में धनुष धारण करने वाले, महान् बाहुओं से युक्त बाण की शक्ति धारण करने वाला तथा अव्यय था। महान् तूण वाले–चार भुजाओं से युक्त और सूर्य के तुल्य तेजयुक्त दिखलाई देते थे ॥३९-४०॥ उसने शंकर से कहा–हे दुष्ट बुद्धि वाले ! तुम यहाँसे चले जाओ।

हे शूलिन्! मैं तुम्हारा वध नहीं करता हूँ। क्योंकि आप तो महान् पापो से समायुक्त हैं। ऐसे घोर पापी को कौन मारता है ॥४१॥ उस महान् आत्मा वाले पुरुष के द्वारा इस तरह से जब शंकर से कहा गया था तो वह रुद्र प्रिया के साथ ही बद्रिकाश्रम को चला गया था ॥४२॥

नरनारायणस्थान पर्वते हि हिमालये ।
सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरिता वरा ॥४३
तत्र गत्वा च त दृष्ट्वा नारायणमुवाच ह ।
भिक्षा प्रयच्छ भगवन्महाकारुणिकोऽसि भोः ॥४४
इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्रं वचनमब्रवीत् ।
सव्य भुज ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर ॥४५
नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन महेश्वरः ।
सव्य नारायणभुजं ताडयामास वेगवान् ॥४६
त्रिशूलाभिहतान्मार्गात्तिस्रो धारा विनिर्ययुः ।
एका गगनमाश्रित्य स्थिता ताराभिमण्डितम् ॥४७
द्वितीया न्यपतद्भूमौ ता जग्राह तपोधनः ।
अत्रिस्तस्मात्समुद्भूतो दुर्वासाः शंकरांशतः ॥४८
तृतीया न्यपतद्धारा कपाले रौद्रदर्शने ।
तस्माच्छिशुः समभवत्सन्नद्धः कवची युवा ॥४९

हिमवान् पर्वत मे नर नारायण भगवान् का स्थान है। जहाँ पर सरिताओं में परम श्रेष्ठ एव पुण्यमयी सरस्वती नदी बहती है ॥४३॥ वहाँ पहुँचकर रुद्रदेव ने भगवान् नारायण का दर्शन किया था और उनसे प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप मुझे भिक्षा प्रदान कीजिए मैं अत्यन्त ही करुणा से पूर्ण दशा मे स्थित हूँ ॥४४॥ जब इस रीति से प्रार्थना पूर्वक भिक्षा की याचना की गई तो धर्म पुत्र ने रुद्रदेव से यह वचन कहा था—हे महेश्वर! अपने त्रिशूल से सव्य भुजा को ताडित करो ॥४५॥ भगवान् नारायण के वचन का श्रवण करो। महेश्वर ने उसी समय में वेग से युक्त होकर भगवान् नारायण के सव्य भुजा को त्रिशूल के द्वारा प्रताड़ित किया था ॥४६॥ जिस स्थान पर त्रिशूल

ने अवभि हनन किया था उस मार्ग से तीन धाराऐं विनिर्गत हुई थीं उन तीन धाराओं में से एक धारा ने तो आकाश का आश्रय ग्रहण कर लिया था और उस ताराओं से अभि मण्डित गगन में जाकर स्थित हो गई थी। दूसरी धारा भू मण्डल में गिर गयी थी उसको तपोधन ने ग्रहण कर लिया था। वह तप को ही धन मानने वाले अत्रि मुनि थे। उनसे ही शकर के अंश से दुर्वासा मुनि प्रकट हुए थे ।।४६-४७।। तीसरी धारा महान् रौद्र दर्शन वाले कपाल में गिरी थी। उससे एक शिशु समुत्पन्न हुआ था जो भली भांति सनद्ध–युवा और कवचधारी था ।।४८।।४६।।

श्यामावदातः शरचापपाणिर्गर्जन्यथा प्रावृषि तोयदोऽसौ।
इत्यब्रुवन्कस्यविनाशयामिस्कन्धाच्छिरस्तालफलयथैव ।।५०
स शङ्करोऽवेत्य वचो बभाषे नरं हि नारायण बाहुजातम् ।
निपातयैन नर दुष्टवाक्य ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम् ।।५१
इत्येवमुक्तः स तु शङ्करेण आद्य धनुस्त्वाजगवं प्रसिद्धम् ।
जग्राहतूणानि तथाऽक्षयाणि युद्धाय वीरः स मतिंचकार ।।५२
ततः प्रबुद्धौ सुभृशं महाबलौ ब्रह्मात्मजो बाहुभवश्चशार्वः ।
दिव्य सहस्रं परिवत्सराणा ततो हरेणापि विरञ्चिरूचे ।।५३
जितस्त्वदीयः पुरुषः पितामहनरेण दिव्याद्भुतकर्मणाबली ।
महापृषत्कैरभिपत्य ताडितस्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव ।।५४
ब्रह्मा तमीशं वचन बभाषे नेहास्य जन्मन्यजितस्य शम्भो ।
पराजित चोच्यतेऽसौ त्वदीयो नरो मदीयः पुरुषोमहात्मा ।।५५
इत्येवमुक्त्वा वचन त्रिनेत्रं चिक्षेप सूर्ये पुरुष विरञ्चि ।
नरं नरस्यैव तदा स विग्रहे चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः ।।५६

इस उत्पन्न होने वाले युवा के हाथ में शर और चाप थे–श्याम तथा अवदान (श्वेत) वर्ण से युक्त था। वह उसी समय में इस तरह गर्जना कर रहा था जैसे वर्षा की ऋतु में मेघ गर्ज रहा हो। वह समुत्पन्न युवा यह मुख से बोल रहा था कि जैसे ताल का फल गिरे उसी भांति धड़ से शिर को काट कर मैं इस समय में किस का विनाश कर

डालूं ॥५०॥ तभी समय में उसके पास भगवान् शंकर उपस्थित होकर उनसे यह वचन बोले—हे नर ! नर और नारायण की बाहुओं को नियंत्रित कर दो । यह सैकड़ों सूर्यों के समान प्रकाश वाले–ब्रह्मा के पुत्र और दुष्ट वचन बोलने वाले हैं ॥५१॥ इस तरह से भगवान् शंकर के द्वारा कहे जाने पर उसने आदि में होने वाला परम प्रसिद्ध आजगव धनुष ग्रहण किया था और साथ ही अक्षय तूण भी ग्रहण किये थे । उस वीर को तुरन्त ही युद्ध करने के लिए अपनी बुद्धि स्थिर करली थी ॥५२॥ इसके अनन्तर अत्यन्त महान् बल वाले वे दोनों भी प्रबुद्ध हो गये थे उनमें एक तो ब्रह्मा का पुत्र था और दूसरा बाहु से समुत्पन्न शिव का पुत्र था । यह युद्ध दिव्य एक सहस्र वर्षों तक हुआ था । इसके अनन्तर भगवान् हर के द्वारा ब्रह्माजी से कहा गया था ॥५३॥ हे पितामह ! परम दिव्य एवं अद्भुत कर्म्म वाले नर के द्वारा यह महान् बलशाली आपका पुरुष जीत लिया गया है । महान् पृषत्कों के द्वारा अभिपतन करके यहाँ पर दशों दिशाओं में अद्भुततर युद्ध हुआ है ॥५४॥ ब्रह्माजी ने उस समय शिव से यह वचन कहे थे—हे शम्भो ! इसके इस जन्म में यह यहाँ पर अजित है । यदि इसको पराजित करने की ही इच्छा है तो आपका यह नर और मेरा पुरुष महात्मा है ॥५५॥ इन नर त्रिनेत्र से कह कर ही विरक्ति ने पुरुष को सूर्य पर प्रक्षिप्त कर दिया था । उस समय में देव ने धर्म्म से प्रभव होने वाले नर के विग्रह में नर को प्रक्षिप्त कर दिया था ॥५६॥

३—हरि-हर-संवाद वर्णन

ततः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते ।
संताप मगमद्‌ब्रह्म श्चितयाऽऽकुलितेन्द्रियः ॥१
ततः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचयप्रभा ।
संरक्तमूर्धजा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम् ॥२
तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम् ।

कासित्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्वद ॥३
कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा ।
ब्रह्महत्याऽस्मि सम्प्राप्ता मां प्रतीच्छ त्रिलोन ॥४
इत्येवमुक्त्वा वचन ब्रह्महत्या विवेश तम् ।
त्रिशूलपाणिन रुद्र सम्प्रतापितविग्रहम् ॥५
ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम् ।
आगच्छन्नो ददर्शाथ नरनारायणावृषी ॥६
अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः ।
जगाम यमुना स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इसके अनन्तर उस महान् दारुण कपाल के हाथ में स्थित होने पर भगवान् रुद्रदेव चिन्ता से आकुलित इन्द्रियों वाले होकर बहुत अधिक सन्ताप को प्राप्त हो गये थे ॥१॥ इसके पश्चात् नीले अञ्जन की राशि के समान प्रभा वाली महान् भयानक स्वरूप से युक्त सरक्त केशों से समन्वित अत्यन्त रौद्ररूप वती ब्रह्म हत्या भगवान् हर के समीप में आकर प्राप्त हो गई थी ॥२॥ उस आई हुई विकराल स्वरूप वाली ब्रह्म हत्या को देख कर भगवान् हर ने उससे पूछा था—तू कौन है और क्यों आई है ? तेरे इस महान् रौद्र स्वरूप से आने का क्या प्रयोजन है—यह मुझे बतलादे ॥३॥ इसके अनन्तर महा दारुण स्वरूप वाली ब्रह्म हत्या कपाली से बोली—मैं ब्रह्म हत्या हूँ। हे त्रिलोचन ! मैं आपके पास आ गई हूँ अब मेरी प्रतीक्षा करो ॥४॥ ब्रह्म हत्या ने इतना ही कह कर उस शिव के स्वरूप में प्रवेश कर दिया था जो अपने हाथ में त्रिशूल धारण किये हुए थे और सन्तापित विग्रह वाले महान् रुद्र स्वरूप वाले थे ॥५॥ उस ब्रह्म हत्या से अभिभूत होकर भगवान् शङ्कर बदरिकाश्रम में आ गये थे । इसके उपरान्त वहाँ आकर ऋषि नर नारायण के दर्शन उन्होंने नहीं किये थे ॥६॥ धर्म के पुत्रों का दर्शन न करके चिन्ता और शोक से युक्त होकर यमुना में स्नान करने के लिये चले गये थे किन्तु वह यमुना नदी भी शङ्कर को देखते ही शुष्क जल वाली हो गई थी ॥७॥

कालिन्दी शुष्कसलिला निरीक्ष्य वृषकेतनः ।
प्लक्षजा स्नातुमगमदन्तर्द्धानं च सा गता ॥८
ततोऽनुपुष्करारण्य मागधारण्यमेव च ।
सैन्धवारण्यमेवासौ गत्वा श्रान्तो यदृच्छया ॥९
तथैव निमिषारण्य धर्मारण्य तथेश्वरः ।
स्नातो नैव च सा रौद्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत ॥१०
सरित्सु तीर्थेषु तथाऽऽश्रमेषु पुण्येषु देवायतनेषु सर्वतः ।
समाप्लुतो योगयुतोऽपि पापान्नावाप मोक्षं वृषभध्वजोऽसौ॥११
ततो जगाम निर्विण्णः शंकरः कुरुजाङ्गलम् ।
तत्र गत्वा ददर्शाथ चक्रपाणिं खगस्थितम् ॥१२
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा हरः स्तोत्रमुदैरयत् ॥१३
नमस्ते देवतानाथ नमस्ते गरुडध्वज ।
शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥१४

वृष के तन प्रभु शिव ने सूखे हुए जल वाली यमुना को देखकर फिर प्लक्षजा मे स्नान करने को गमन किया था किन्तु वह भी इनको देखकर अन्तर्धान हो गई थी ॥८॥ इसके पश्चात् शिव पुष्करारण्य—मागधारण्य—सैन्धवारण्य को गये थे और उपर्युक्त स्थलों मे जाकर यदृच्छा से श्रान्त हो गये थे ॥९॥ इसी प्रकार से निमिषारण्य तथा धर्मारण्य मे पहुचकर शिव ने स्नान किया था किन्तु उस महा रौद्र स्वरूप वाली ब्रह्म हत्या ने उनको नही छोडा था ॥१०॥ समस्त पवित्र नदियो मे—तीर्थों मे—परम पुण्य मय देवायतनो में सर्वत्र सभी ओर शिव ने स्नान एव दर्शन किये थे। योग का भी अभ्यास किया था किन्तु भगवान् वृषभ ध्वज ने उस महान् पाप से छुटकारा प्राप्त नहीं किया था ॥११॥ इसके अनन्तर शङ्कर को महान् निर्वेद प्राप्त हो गया था और फिर वह कुरुजाङ्गल को चले गये थे। वहाँ पर पहुँच कर गरुड पर सस्थित भगवान् चक्रपाणि के दर्शन पाकर भगवान् ने किये थे ॥१२॥ पुण्डरीक के समान सुन्दर नेत्रों वाले और शङ्ख-चक्र और गदा इन आयुधो को हाथ में धारण करने वाले

भगवान् विष्णु का दर्शन करके अपने दोनो हाथो को जोड कर हर ने स्तोत्र का उच्चारण किया था ॥१३॥ भगवान् हर ने कहा—हे सम्पूर्ण देवो के स्वामिन् ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है । हे गरुड-ध्वज ! आपको मेरा प्रणाम है। आप शख-चक्र और गदा को हाथो मे धारण करने वाले हैं। हे वासुदेव ! आपको मेरा नमस्कार है ॥१४॥

नमस्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे ।
ज्ञानाज्ञाननिरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते ॥१५
रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्त्ते सनातन ।
त्वया सर्वमिद नाथ जगत्सृष्ट चराचरम् ॥१६
सत्वाधिष्ठितलोकेश विष्णुमूर्त्ते अधोक्षज ।
प्रजापाल महाबाहो जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥१७
तमोमूर्त्ते अह ह्येष त्वदशक्रोधसभव. ।
गुणाभियुक्तो देवेश सर्वव्यापिन्नमोऽस्तु ते ॥१८
भूरिय त्व जगन्नाथ जलमम्बर पावकौ ।
वायुर्बुद्धिर्मनश्चापि शर्वरी त्व नमोऽस्तु ते ॥१९
धर्मो यज्ञस्तप सत्यमहिंसा शौचमार्जवम् ।
क्षमा दान दया लक्ष्मी ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर. ॥२०
त्व साङ्गाश्च चतुर्वेदास्त्व वेद्यो वेदपारगः ।
उपवेदो भवानीश सर्वोऽसि त्व नमोऽस्तु ते ॥२१

आप समस्त गुणों से रहित एव अनन्त है। आपका स्वरूप प्रकृष्ट तर्क ना करने के योग्य नहीं है ऐसे वेधा आपके लिये मेरा नमस्कार है। आप ज्ञान और अज्ञान के अवलम्ब से रहित हैं और सबका अवलम्ब हैं आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥१५॥ हे रजोगुण से युक्त ! हे ब्रह्ममूर्त्ते ! आप सर्वदा से चले आने वाले हैं। आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है। हे नाथ ! यह समस्त स्थावर जङ्गम जगत् आपके ही द्वारा रचा गया है ॥१६॥ हे विष्णु मूर्त्ते ! आप सत्व पर अधिष्ठित रहते हैं और सम्पूर्ण लोकों के आप स्वामी हैं। हे अधोक्षज ! हे महाबाहो ! आप सम्पूर्ण

प्रजाजनों के पालन-पोषण करने वाले हैं। हे जनार्दन ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है ।।१७।। हे तपोमूर्त्ते ! यह मैं तो आपके अंश स्वरूप क्रोध से समुत्पन्न होने वाला हूँ। हे देवेश ! मैं तो गुणों से अभियुक्त हूँ। आप तो सभी मे व्यापक रहने वाले हैं। ऐसे आपके लिए मेरा नमस्कार है ।।१८।। हे जगत् के नाथ ! यह भूमि भी आप ही हैं। जल-आकाश-अग्नि-वायु-बुद्धि-मन और शर्वरी सभी आपका ही स्वरूप है। आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है ।।१९।। धर्म-यज्ञ-तप-सत्य-अहिंसा-शौच-क्षमा-दान-दया-लक्ष्मी और ब्रह्मचर्य सभी आपका ही स्वरूप है। अर्थात् इन सबके ईश्वर आप ही हैं ।।२०।। आप ही का स्वरूप ये चारों वेद हैं तथा इन चारों वेदों के छैः अङ्ग शास्त्र हैं। आप ही जानने के योग्य हैं और आप वेदों के पारगामी मनीषी हैं। हे भवानीश ! आप ही उपवेद हैं और सभी कुछ आप ही का स्वरूप है। आपके लिये मेरा नमस्कार है ।।२१।।

नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे नमोऽस्तु ते वासनमीनमूर्त्ते।
लोकेभवान्कारुणिकोमतोमेत्रायस्वमांकेशवपापबन्धात् ।।२२

ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं यद्ब्रह्महत्याभिभवं बभूव।
दग्धोऽस्मिनष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारीपुनीहिनाथोऽसिनमोनमस्ते ।।

एवं स्तुतश्चक्रधरः शंकरेण महात्मना।
प्रोवाच भगवान्वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाय हि ।। २४

महेश्वर शृणुष्वेमां मम वाचं कलस्वनाम्।
ब्रह्महत्याक्षयकरीं शुभदां पुण्यवर्द्धनीम् ।।२५

योऽसौ ब्रह्माण्डके पुण्ये मदंशप्रभवोऽव्ययः।
प्रयागे वसते नित्यं योगशायीतिविश्रुतः ।।२६

चरणाद्दक्षिणात्तस्य विनिर्याता सरिद्वरा।
विश्रुता वरणेत्येवं सर्वपापहरा शुभा ।।२७

सरिदन्या द्वितीयाच आसीरित्येव विश्रुता।
ते उभे तु सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये बभूवतुः ।।२८

हे अच्युत ! हे चक्रपाणे ! आपकी सेवा मे मेरा बारम्बार नमस्कार है। हे वामन और मीन का स्वरूप धारण करने वाले ! आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है। इस लोक मे मैं आपको ही परम करुणा का सागर समझता हूँ। हे केशव ! अब आप ही मुझे इस पाप के बन्धन से बचाइये अर्थात् मेरी ब्रह्महत्या से रक्षा कीजिए ॥२२॥ मेरे शरीर में स्थित जो यह अशुभ है उसका आप नाश कर दीजिए जो कि ब्रह्म हत्या के अभिभव से समुत्पन्न हो गया था। मैं दग्ध हो गया हूँ और एकदम नष्ट होगया हूँ। मैं असमीक्ष्यकारी हूँ। आप ही मेरे नाथ हैं। मुझे पवित्र कीजिए। मेरा आपकी सेवा मे बारम्बार नमस्कार है ॥२३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—महात्मा शकर के द्वारा इस प्रकार से भगवान् विष्णु की जब स्तुति की गई थी तो भगवान् विष्णु ने ब्रह्महत्या के क्षय के लिये यह वचन कहा था ॥२४॥ भगवान् श्रीहरि ने कहा—हे महेश्वर ! अब आप मधुर स्वर वाली मेरी इस वाणी का श्रवण करो जो कि ब्रह्म-हत्या के नाश कर देने वाली है और शुभ प्रदान करने वाली तथा पुण्य के वर्धन करने वाली भी है ॥२५॥ परम पुण्य स्वरूप ब्रह्माण्डक मे यह मेरे ही अश से समुत्पन्न अव्यय प्रयाग मे नित्य निवास किया करता है और योगशायी—इस नाम से ससार मे प्रसिद्ध है ॥२६॥ इनके दक्षिण चरण से एक परम श्रेष्ठ सरित निकली है जो कि 'वरणा'—इस नाम से विश्रुत है। यह वरणा समस्त पापो के हरण करने वाली एव परम शुभ है ॥२७॥ दूसरे चरण से भी अन्य एक सरित् है जो इसी नाम से प्रसिद्ध है। ये दोनों ही नदियाँ अतीव श्रेष्ठ हैं और सम्पूर्ण लोकों की पूजा के योग्य हुई हैं ॥२८॥

तयोर्मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशायिन, ।
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ॥२९
तत्तादृशाऽस्ति नगरी पुण्या वाराणसी शुभा ।
यस्या हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम् ॥३०
विलासिनीना रशनास्वनेन श्रुतिस्वरो ब्राह्मण पुङ्गवानाम् ।
शुचिस्वरत्वगुरवोनिशम्यहास्यान्विता सन्ति मुहुर्मुहुस्ताः ।३'

व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु पदान्यलक्तारुणि तानि दृष्ट्वा ।
ययौशशीविस्मयमेवयस्यांकिम्वित्प्रयातास्थलपद्मिनीयम् ।।३२
तुङ्गानि यस्या सुरमन्दिराणि रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु ।
दिवाऽपिसूर्यंपवनान्विनाभिर्दीर्घाभिरेवमुपताकिकाभि. ।।३३
भृङ्गाश्चयस्या शशिकान्तभित्तौप्रलोभ्यमानाःप्रतिबिम्बितेषु ।
आलक्ष्ययोषिद्विमलाननाब्जेष्वीयुर्भ्रमान्नवचपुष्पकान्तरम् ।।
परिश्रमश्चापि पराजितेषु नरेषु समोहनखेलनेन ।
यस्या जलक्रीडनसगतासु नस्त्रीषु शभो गृहदीर्घिकासु ।।३५

इन दोनों नदियो के मध्य म जो भी देश है वह सम्पूर्ण शेष योग-शायी का ही है । वह त्रिभुवन मे परम श्रेष्ठ समस्त पापो का प्रमोचन करने वाला तीर्थ है ।।२९।। उसी के तुल्य परमपुण्यमयी एव अतीव शुभ वाराणसी नगरी है जिसमें निवास करन वाले भोगी पुरुष भी इस ससार से लय को प्राप्त हो जाया करते हैं अर्थात् ससार से छुटकारा पा जाते हैं ।।३०।। विलासिनियो के रसना (कटिभूषण) के शब्द के साथ श्रेष्ठ ब्राह्मणों का श्रुति का स्वर होता है । गुरु वर्ण शुचि स्वरत्व का श्रवण करते हैं तो वे बारम्बार हास्यान्वित होती हैं ।।३१।। चतुष्पथो मे गमन करने वाली नारियों के चले जाने पर उनके चरणो में लगे हुए महावर के लाल चिह्नों को देखकर चन्द्रमा जिस वाराणसीपुरी में परम विस्मय को प्राप्त हो जाया करता है कि क्या यहाँ पर यह स्थलपद्मिनी ने गमन किया है अर्थात् चन्द्रमा को उन रक्तचिह्नो से स्थल कमलिनी का सन्देह हो जाया करता है ।।३२।। वह ऐसी परम सुन्दर पुरी है कि जिसमे देव मन्दिर बहुत ही ऊँचे हैं जो सन्ध्या के समय मे अर्थात् रात्रि के आरम्भ काल मे चन्द्रमा को भी अवरुद्ध कर दिया करते हैं । दिन के समय मे भी वायु से युक्त बड़ी विशाल पताकाओ से सूर्य्य को भी समावृत कर दिया जाता है ।।३३।। जिस पुरी में भृङ्ग (भौंरे) चन्द्रकान्त मणियों की निर्मित भित्तियों पर प्रतिबिम्बित ललनाओं के विमल मुखों पर प्रलोभ्यमान (ललचाये हुए) उन्हें देखकर भ्रम से अन्य पुष्पों पर नहीं जाया करते हैं ।।३४।। वह वाराणसी पुरी ऐसी है कि जिसमे समो-

द्दन क्रीडा से पराजित नरों के विषय मे घर की दीर्घिकाओं (वापी) मे जल की क्रीडाओ मे सगत स्त्रियो मे हे शम्भो ! परिश्रम भी नहीं होता है ॥३५॥

न चैव कश्चित्परमन्दिराणि रुणद्धि शभो सह मारुतेन ।
नचावलानातरसापराक्रमकरोतियस्यासुरतंहिमुक्त्वा ॥३६
पाशग्रन्थिर्गजेन्द्राणा दानच्छेदो मदच्युतौ ।
यस्या मानमदौ पुंसा करिणायौवनागमे ॥३७
प्रियदोषा सदा यस्या कौशिकानेतरे जना. ।
तारागणेऽकुलीनत्व मेघ वृत्तच्युतिर्विभो ॥३८
भूतिलुब्धा विलासिन्यो भुजगपरिवारिता. ।
चन्द्रभूषितदेहाश्च यस्या त्वमिवशकर ॥३९
ईदृशाया सुरेशान वाराणस्या महाश्रमे ।
वसते भगवॅल्लोल सर्वपापहरो रविः ॥४०
दशाश्वमेध यत्प्रोक्त मदशो यत्र केशवः ।
तत्र गत्वासुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्स्यसि ॥४१
इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन वृषध्वजस्त शिरसा प्रणम्य ।
जगामवेगाद्गरुडोयथाऽसौवाराणसीपापविमोचनाय ॥४२

हे शम्भो ! वहाँ पर मारुत के साथ कोई भी पर मन्दिरों का अवरोध नहीं करता है और जिस वाराणसीपुरी मे अबलाजनों पर सुरत को छोड कर कोई भी अपना पराक्रम नहीं किया करता है ॥३६॥ जिस वाराणसी पुरी में केवल गजेन्द्रों की ही पाश ग्रन्थि होती है और मदच्युति में ही दानच्छेद हुआ करता है। पुरुषो और हाथियों का मान तथा मद यौवन के आगम के समय मे ही होता है ॥३७॥ जिस पुरी मे सर्वदा दोषों से प्यार करने वाले कौशिक ही होते हैं इतर (अन्य) पुरुषो को दोष प्रिय नहीं होते हैं। अकुलीनत्व केवल तारागण मे ही होता है और मेघ में हे विभो ! वृत्तच्युति हुआ करती है ॥३८॥ वाराणसी पुरी में विलासिनी नारियाँ भूति (भस्म—ऐश्वर्य) की लुब्धक तथा भुजङ्गों (विरागी-सर्प) से परिवारित (घिरी हुई) होती है। हे शङ्कर ! आपकी

ही भाँति वहाँ पर समस्त नारियां चन्द्र से भूषित (चन्द्र के समान अथवा मुखरूपी चन्द्र से शोभित) देहों वाली होती हैं ॥३९॥ हे सुरेशान ! इस प्रकार श्री वाराणसी पुरी में मेरे आश्रम में सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाले भगवान् लोल रवि निवास किया करते हैं ॥४०॥ जो दशाश्वमेघ कहा गया है वह मेरा ही अंश केशव है । हे सुरश्रेष्ठ ! वहाँ पर जाकर आप अपने किये हुए पाप से मोक्ष प्राप्त करेंगे ॥४१॥ इस प्रकार से भगवान् गरुडध्वज के द्वारा जब वृषभध्वज से कहा गया था तो भगवान् शङ्कर ने उनको प्रणाम किया था और फिर वह गरुड के समान वेग से अपने पापों के विमोचन करने के लिये वाराणसी में चले गये थे ॥४२॥

गत्वा सुपुण्या नगरीं सुतीर्थां दृष्ट्वा च लोलं स दशाश्वमेघम् ।
स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः स केशवं द्रष्टुमुपाजगाम ॥४३

केशवं शंकरो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश ब्रह्महत्या क्षयं गता ॥४४
नेदं कपालं दवेश मद्धस्तं परिमुञ्चति ।
कारणं वेद्मि नैवैतत्तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥४५
महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत् ।
विद्यते कारणं वत्स तत्सर्वं कथयामि ते ॥४६
योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो,हृद- पद्मोत्पलैर्वृतः ।
एप तीर्थवरः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥४७
एतस्मिन्प्रवरे पुण्ये स्नानं शोभनमाचर ।
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्ष्यति ॥४८

ततः कपाली लोके च ख्यातो रुद्र भविष्यसि ।
कपालमोचनेत्येव तीर्थं चेदं भविष्यति ॥४९

एवमुक्तः सुरेशेनकेशवेन महेश्वरः ।
कपालमोचने सस्नौ वेदोक्तविधिना मुने ॥५०

स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य परिच्युतं हस्ततलात्कपालम् ।
नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं तत्तीर्थवर्यं भगवत्प्रसादात् ॥५१

उस परम पुण्यमयी एवं सुन्दर तीर्थों वाली वाराणसी नगरी में जाकर शंकर ने वहाँ पर लोल और दशाश्वमेध का दर्शन किया था। तीर्थों में स्नान करके पापों से विमुक्त होकर फिर भगवान् शंकर केशव के दर्शन करने के लिये गये थे ॥४३॥ शंकर ने भगवान् केशव का दर्शन करके उनको प्रणाम किया और यह वचन बोले—हे हृषीकेश ! आपके प्रसाद से ही मेरी ब्रह्महत्या नष्ट हुई है ॥४४॥ हे देवेश ! किन्तु यह कपाल अभी भी मेरे हाथ को नहीं छोड़ता है। मैं इसका कुछ भी कारण नहीं जानता हूँ। आप ही कृपा करके मुझे बतलाने के योग्य हैं ॥४५॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—महादेव के इस वचन का श्रवण करके भगवान् केशव यह वाक्य कहने लगे। हे वत्स ! इसमें कुछ कारण है, वह सभी अब मैं तुमको बतलाता हूँ ॥४६॥ जो यह मेरे आगे एक दिव्य ह्रद पद्म और उत्पलों से समावृत है। यह परम पुण्यमय देव तथा गन्धर्वों से पूजित एक अतीव श्रेष्ठ तीर्थ है ॥४७॥ इस परम प्रवर पुण्यमय तीर्थ में आप शोभन स्नान करिये। स्नान भर करने ही से आज ही यह हाथ में सलग्न कपाल आपके हाथ को छोड़ देगा ॥४८॥ इसके अनन्तर भी आप लोक में कपाली रुद्र—इस नाम से प्रसिद्ध होंगे। यह तीर्थ 'कपाल मोचन'—इस नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करेगा ॥४९॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—देवों के स्वामी केशव भगवान् के द्वारा इस प्रकार से जब महेश्वर से कहा गया तो हे मुने ! उन्होंने वेद में वर्णित विधि से उस कपाल मोचन तीर्थ में स्नान किया था ॥५०॥ उस तीर्थ में स्नान करने वाले त्रिपुरान्तक के हस्ततल से वह कपाल च्युत हो गया था। भगवान् के प्रसाद से वह श्रेष्ठ तीर्थ कपाल मोचन नाम से विश्रुत हो गया था ॥५१॥

४—हरि-वीरभद्र युद्ध वर्णन

एवं कपाली संजातो देवर्षे भगवान्हरः।
अनेन कारणेनासौ दक्षेण न निमन्त्रितः ॥१

एतस्मिन्नन्तरे देवीं द्रष्टुं गौतमनन्दिनी ।
जया जगाम शैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम् ॥२
तामागतां सती दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह ।
किमर्थं विजया नागाज्जयन्ती चापराजिता ॥३
सा देव्या वचनं श्रुत्वा उवाच परमेश्वरी ।
गता निमन्त्रिताः सर्वा मखे मातामहस्य ताः ॥४
समं पित्रा गौतमेन मात्रा चैवाप्यहल्यया ।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोत्सुका ॥५
किं त्वं न व्रजसे तत्र तथा देवो महेश्वरः ।
नामन्त्रितासि तातेन उताहोस्विद्व्रजिस्यसि ॥६
गतास्तु ऋषयः सर्वे ऋषिपत्न्यस्तथा सुराः ।
मातृष्वसः शशांकश्च सपत्नीको गतः क्रतुम् ॥७

श्री पुलस्त्य महर्षि ने कहा—हे देवर्षे ! इस प्रकार से वह कपाली भगवान् हर हो गये थे । इसी कारण से प्रजापति दक्ष ने उनको अपने यज्ञ में निमन्त्रण नहीं दिया था ॥१॥ इसी बीच में देवी का दर्शन करने के लिये गौतमनन्दिनी जया सुन्दर कन्दराओं वाले शैलेन्द्र मन्दराचल पर गई थी ॥२॥ वहाँ पर आई हुई उस अकेली जया को देख कर सती ने उससे कहा था कि विजया जयन्ती और अपराजिता किसलिये यहाँ नहीं आई हैं ? उसने देवी के इस वचन का श्रवण कर वह परमेश्वरी से कहने लगी कि वे सब मातामह के यज्ञ में निमन्त्रित होकर वहाँ पर चली गई हैं । पिताजी महर्षि गौतम के तथा माता अहिल्या के साथ सब यज्ञोत्सव देखने के लिये गई हैं । वहाँ पर जाने के समुत्सुक मैं भी हूँ केवल आपसे मिलने के लिये यहाँ पर चली आई हूँ ॥३–५॥ क्या आप वहाँ पर नहीं चल रही हो तथा देव महेश्वर भी वहाँ यज्ञ में नहीं जा रहे हैं ? क्या पिताजी ने आपको आमन्त्रित नहीं किया है या आप जायेंगी ? ॥६॥ सभी ऋषिगण और ऋषियों की पत्नियाँ भी गई तथा सभी सुरवृन्द वहाँ गये हैं । मौसेरा भाई शशांक साथ लेकर वहाँ यज्ञ में गया है ॥७॥

चतुर्दशसु लोकेषु जन्तवो ये चराचराः ।
निमन्त्रिताः क्रतौ सर्वे किं वा त्वं न निमन्त्रिता ॥८
जयायास्तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं सती ।
मन्युनाऽभिप्लुता ब्रह्मन्पञ्चत्वमगमत्तदा ॥९
जया मृता सतीं दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता ।
मुञ्चती वारि नेत्राभ्यां सुस्वरं विललाप ह ॥१०
आक्रन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
आः किमेतदितीत्युक्त्वा जयाभ्यासमुपागत ॥११
आगतो ददृशे देवीं लतामिव वनस्पतेः ।
कृत्तां परशुना भूमौ श्लथाङ्गीं पतितां सतीम् ॥१२
देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां प्रपच्छ शंकरः ।
किमियं पतिता भूमौ निकृत्तेव लता सती ॥१३
सा शंकरवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत् ।
श्रुत्वा मखे च स्वाबज्ञा भगिन्यः पतिभिः सह ॥१४
आदित्याखिलेषु लोकेषु समं शक्रादिभिः सुरैः ।
मातृष्वसा विपन्नेयमन्तर्दुःखेन दह्यति ॥१५

चौदह भुवनों मे जो भी चर और अचर जन्तु हैं वे सभी आमन्त्रित किये गये हैं। उस क्रतु मे जब सभी को निमन्त्रण दिया गया है तो क्या आपको ही निमन्त्रित नही किया गया है ? ॥८॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—जया के इस वचन को, जो कि एक वज्रपात के ही समान था, श्रवण करके हे ब्रह्मन् ! सती को इतना अधिक क्रोध आया कि उससे अभिप्लुत होकर उसी समय मे सती पञ्चत्व को प्राप्त हो गई थी ॥९॥ जया ने जब देखा कि सती मृत्युगत हो गई है तो वह भी क्रोध और शोक से परिप्लुत हो गई थी। उसके दोनों नेत्रो से अश्रुपात करते हुए वह उच्च स्वर से विलाप करने लगी ॥१०॥ उसके इस क्रन्दन की ध्वनि का श्रवण करके शूलपाणि भगवान् त्रिलोचन ने कहा—यह क्या हो गया है—इतना कहकर फिर भगवान् शंकर जया के समीप मे पहुँचे थे ॥११॥ वहाँ पर आये हुए शिव ने देवी को फरसा से काटी हुई

वनस्पति की लता की भाँति भूमि पर पड़ी हुई शिथिल अगों वाली सती को देखा था ॥१२॥ उस देवी को इस प्रकार से भूमि पर निपतित देख कर शकर ने जया से पूछा था कि क्या कारण हुआ जिससे यह सती काटी हुई लता के समान भूमि पर गिर गई है ? ॥१३॥ उस जया ने भगवान् शंकर के इस वचन का श्रवण कर यह वचन शंकर से कहा—अपने पतियों के साथ सभी बहिन मखोत्सव में सम्मिलित होने को गई हैं और अपनी अवज्ञा निमन्त्रण न पाने के कारण जो हुई है उसका श्रवण करके ही अन्तर्दुःख से दग्ध होती हुई यह मातृस्वसा विपन्न हो गई है क्योंकि तीन लोक में शक्र आदि सुरगणों के सहित आदित्य भी उसमें सम्मिलित होने को जा रहे हैं ॥१४-१५॥

तच्छ्रुत्वाऽस्य वचो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो बभौ ।
क्रुद्धस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेरुः पावकार्चिषः ॥१६
ततः क्रोधाग्निनेत्रस्य गात्ररोमोद्भवा मुने ।
गणाः सिंहमुखा जाताः वीरभद्र पुरोगमा ॥१७
गणैः परिवृतस्तस्मान्मन्दराद्रिमसाह्वयम् ।
ततः कनखलं तस्माद्यत्र दक्षोऽयजत्क्रतुम् ॥१८
ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महाबलः ।
दिशि प्रत्युत्तरायां च तस्थौ शूलधरो मुने ॥१९
जया क्रोधाद्गदां गृह्य पूर्वं दक्षिणतः स्थिता ।
मध्ये त्रिशूलभृच्छर्वस्तस्थौ क्रुद्धो महाक्रतौ ॥२०
मृगारिवदनं दृष्ट्वा देवा शक्र पुरोगमाः ।
ऋषयो देवगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन् ॥२१

पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके अनन्तर इस अतीव रौद्र वचन को श्रवण करके भगवान् रुद्र भी क्रोध से आप्लुत होकर शोभित हो गये थे। अत्यन्त क्रुद्ध शंकर के समस्त अगों से अग्नि की अर्चियाँ निकल रही थीं ॥१६॥ हे मुने ! इसके पश्चात् क्रोध से भगवान् त्रिनेत्र के गात्र के रोमों से समुत्पन्न सिंह के समान मुख वाले गण पैदा हो गये थे जिनमें वीरभद्र सबका अग्रनायक था ॥१७॥ उस समय शंकर गणों

से परिवृत हो गये थे। मन्दराचल से हिमसाह्वय तक और इसके आगे कनखल और उससे आगे उस स्थान तक जहाँ तक दक्ष प्रजापति यज्ञ कर रहे थे सर्वत्र गण फैल गये थे ॥१८॥ हे मुने! इसके अनन्तर महान् बलशाली गणों के स्वामी वीरभद्र शूल धारण करके उत्तर दिशा की ओर अवस्थित हो गया था ॥१९॥ जया क्रोध से गदा को ग्रहण करके दक्षिण दिशा की ओर स्थित हो गई थी। मध्य भाग में त्रिशूल धारण करके भगवान् शंकर उस महाक्रतु में अत्यन्त क्रुद्ध होकर स्थित हो गये थे ॥२०॥ इन्द्र आदि प्रमुख देवगण मृगारि वदन को देखकर तथा समस्त ऋषिवृन्द और गन्धर्वगण यह सोचने लगे थे कि यह क्या कारण उपस्थित हो गया है जिससे कि यह यज्ञभूमि को इस प्रकार से समाक्रान्त कर लिया गया है ॥२१॥

ततस्तु धनुरादाय शरानाशीविषोपमान् ।
द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपाद्रवत् ॥२२
तमापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः ।
करेणैकेन जग्राह त्रिशूलं वज्रसन्निभम् ॥२३
कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान् ।
चतुर्थेन गदा गृह्य धर्ममभ्यद्रवद्गणः ॥२४
ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम् ।
तस्थावष्टभुजो भूत्वा नानायुधधरोऽव्ययः ॥२५
खड्गचर्म्मगदाप्रासपरश्वधवराङ्कुशैः ।
चापमार्गणभृत्तस्थौ हन्तुकामो गणेश्वरम् ॥२६
गणेश्वरोऽपि संक्रुद्धो हन्तुं धर्म्मं सनातनम् ।
ववर्ष मार्गणांस्तीक्ष्णान्यथा प्रावृषि तोयदः ॥२७
तावन्योन्यं महात्मानौ शरचापधरौ मुने ।
रुधिरारुणसिक्ताङ्गौ किंशुकाविव रेजतुः ॥२८

इसके अनन्तर द्वार पर रक्षा करने वाले धर्म ने सूर्य के समान शरों को और धनुष को ग्रहण करके उस समय में वीरभद्र से युद्ध किया था ॥२२॥ सम्पूर्ण गणों के स्वामी वीरभद्र ने धर्म को सहसा अपने ऊपर

आक्रमण कारी देखा तो उसने अपने एक हाथ से त्रिशूल ग्रहण किया था जोकि वज्र के सदृश था ॥२३॥ दूसरे हाथ में कार्मुक ग्रहण किया था और तीसरे हाथ में बाणों को ग्रहण किया था। चौथे हाथ में गदा ले ली थी और फिर उसने धर्म्म के साथ घोर युद्ध किया था ॥२४॥ इसके अनन्तर धर्मराज ने गणेश्वर को चार भुजाओं वाला आठ भुजाओं से युक्त हो गया था ॥२५॥ खड्ग–चर्म–गदा–प्रास–परशु–अंबर-अंकुश और चापमार्गण इन सबको धारण करके गणेश्वर का हनन करने की इच्छा की थी ॥२६॥ उधर गणेश्वर वीरभद्र भी अत्यन्त सक्रुद्ध होकर सनातन धर्म के हनन करने के लिये उताऊ हो गया था। उसने अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की थी जिस तरह वर्षा काल में मेघ जल की धाराएँ छोड़ा करता है ॥२७॥ हे मुने ! वे दोनों ही परस्पर में महान् आत्मा वाले शरों और चापों को धारण करने वाले युद्ध करते हुए रुधिर से अरुण एवं सिक्त अङ्गों वाले होगये थे और किंशुक वृक्षों के समान शोभित हो रहे थे ॥२८॥

मृधे वरास्त्रं गणनायकेन जितः स धर्मस्त्वरसा प्रसह्य ।
पराङ्मुखोऽभूद्विमनामुनीन्द्रसवीरभद्रःप्रविवेशयज्ञम् ॥२९
यज्ञवाटं प्रविष्टं तु वीरभद्रं गणेश्वरम् ।
दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधा मुने ॥३०
वसवोऽष्टौ महाभागा ग्रहा नव सुदारुणाः ।
इन्द्राद्याद्वादशादित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि ॥३१
विश्वे देवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
यक्षाः किंपुरुषा भूताःखगाश्चक्रधरास्तथा ॥३२
नृपा वैवस्वतादवंशाद्विविधा ये च विश्रुताः ।
सोमवंशोद्भवाश्चान्ये भोजकीर्तिमहीभुजः ॥३३
दितीजा दानवाश्चान्ये येऽन्ये तत्र समागताः ।
ते सर्वेऽप्यद्र यशौद्रं वीर भद्रमुदायुधाः ॥३४
सानापनत एवाशु बाणचापधरो गणः ।
अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करैः ॥३५

उस महान् दारुण युद्ध में गणों के नायक वीरभद्र अपने श्रेष्ठ अस्त्रों के प्रयोग के द्वारा वेग के साथ बल पूर्वक उस धर्म को जीत लिया था और उदास होकर वह द्वार पर रक्षा करने वाला धर्म पराङ्मुख होगया था। हे मुनीन्द्र ! फिर उस वीरभद्र ने उस यज्ञ में अन्दर प्रवेश कर दिया था ॥२६॥ उस यज्ञ वाट में गणेश्वर वीरभद्र को देखकर हे मुनिवर ! कि वह अन्दर प्रवेश कर चुका है सभी देवगण जो वहाँ पर संस्थित थे अपने २ आयुधों के साथ सहसा उठ खड़े हुए थे ॥३०॥ आठों वसुगण-महान् भाग वाले अत्यन्त दारुण जो रुद्र-इन्द्र प्रभृति बारह आदित्य और एकादश रुद्रगण—विश्वेदेवा-साध्य-सिद्ध-गन्धर्व-पन्नग-यक्ष-किम्पुरुष-भूत-खग तथा चक्रधर सभी उठकर खड़े हो गये थे ॥३१-३२॥ वैवस्वत वंश से दो प्रकार के नृपगण थे जोकि प्रसिद्ध हैं। एक तो सोमवंश में समुत्पन्न होने वाले हैं और दूसरे भोज की कीर्ति करने वाले राजा लोग हैं ॥३३॥ दिति से समुत्पन्न दानव लोग और जो अन्य लोग थे और वहाँ पर समागत हुए थे। वे सभी लोग उस महान् रौद्र रूप वाले वीरभद्र पर अपने २ आयुध ग्रहण करके टूट पड़े थे ॥३४॥ उस वीरभद्र महान् गणों के स्वामी ने उन सबको अपना चाप तथा वाण धारण कर शीघ्र ही गिरा दिया था और अपने शरों के समूह के द्वारा बड़े वेग के साथ उस गणेश्वर ने सभी के साथ युद्ध किया था ॥३५॥

ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन् ।
गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तांश्चिच्छेद च बिभेद च ॥३६
शरैः शस्त्रैश्च सततं वध्यमाना महात्मना ।
वीरभद्रेण देवाद्यास्त्ववहारमरोचयन् ॥३७
ततो विवेश गणपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम् ।
जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रत्ययन्धत ॥३८
ततो महर्षयो दृष्ट्वा मृगेन्द्रवदनं गणम् ।
भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमच्युतम् ॥३९
तानार्तांश्चक्रभृद्दृष्ट्वा महर्षींस्त्रस्तमानसान् ।
न भेतव्यमितीत्युक्त्वा समुत्तस्थौ वरायुधः ॥४०

समानम्य ततः शार्ङ्गं शराना शीविषोपमान् ।
मुमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान् ॥४१
ते तस्य कायमासाद्य अमोघा वै हरेः शराः ।
निपेतुर्भुवि भग्नाशा नास्तिकादिव याचकाः ॥४२

उन सब ने अपने अतुल शरों की वर्षा गणेश्वर पर की थी किन्तु वीरभद्र ने भी अपने श्रेष्ठतम अस्त्रों के द्वारा उन सबको काट डाला था और भेदन कर दिया था ॥३६॥ निरन्तर शस्त्रों और शरों के द्वारा बाध्यमान होकर जोकि महान् आत्मा वाले वीरभद्र के द्वारा प्रयुक्त किये गये थे सभी देव आदि ने अपना पराजय ही ठीक समझा था ॥३७॥ इसके अनन्तर वह गणेश्वर वीरभद्र उस महान् विस्तार वाले यज्ञ के मध्य में प्रविष्ट हुआ था, जहाँ पर ऋषिवृन्द हवन करते हुए हवियों को लेकर संस्थित थे ॥३८॥ इसके अनन्तर उन महर्षि गण ने मृगेन्द्र (सिंह) के समान मुख वाले वीरभद्र गण को देखा था। वे सब उसे देखकर अत्यन्त भयभीत हो गये और सब ने उस अग्नि में हवन करने के कार्य को छोड़ कर भगवान् अच्युत की शरण ग्रहण की थी ॥३९॥ चक्रधारी प्रभु ने उन सब आर्तों को देखकर जो महर्षि गण त्रस्त मन वाले हो रहे थे प्रभु ने उनसे कहा—तुम सब डरो मत, इतना उनसे कह कर स्वयं अपने श्रेष्ठ आयुध ग्रहण कर उसके सामने समुपस्थित होगये थे ॥४०॥ भगवान् हरि ने इसके उपरान्त अपने शार्ङ्ग धनुष को समानमित करके आशीविष (सर्प) के समान शरों को जोकि काया के आवरण को चीर देने वाले थे वीरभद्र के ऊपर छोड़े थे ॥४१॥ वे श्रीहरि के शर जो अमोघ थे उस वीरभद्र की काया में पहुँचकर नास्तिक पुरुष से याचना करने वाले की भाँति भग्न आशा वाले होकर भूमि पर गिर पड़े थे ॥४२॥

शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमापन्नान्वीक्ष्य केशवः ।
दिव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥४३
तानस्त्रान्वासुदेवेन प्रक्षिप्तान्गणनायकः ।
वारयामास शूलेन गदया मार्गणैस्तथा ॥४४

दृष्ट्वा विपन्नान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः ।
त्रिशूलेन समाहत्य पातयामास भूतले ॥४५
ता गदा विफला दृष्ट्वा लाङ्गलं प्राक्षिपद्धरिः ।
लाङ्गलं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत् ॥४६
मुसलं वीरभद्राय सचिक्षेप हलायुधः ।
पूर्ववन्मुसलाघातं वीरभद्रो न्यवारयत् ॥४७
मुसलं सहतं दृष्ट्वा लाङ्गल च निवारितम् ।
वीरभद्रायचिक्षेप चक्र क्रोधात्खगध्वजः ॥४८
तमापतन्त शतसूर्यकल्पं सुदर्शन प्रेक्ष्य गणेश्वरस्तु ।
शूलं परित्यज्य जगार चक्रं तथा मधुं मीनवपुः सुरेन्द्रः ॥४९

भगवान् केशव ने जब देखा कि उनके वे अमोघ वार भी मोघता (विफलता) को प्राप्त होगये हैं तो फिर उन्होंने अपने दिव्य अस्त्रों के द्वारा वीरभद्र को प्रच्छादित करने के लिए उद्योग किया था ॥४३॥ उस गणनायक ने वासुदेव भगवान् के द्वारा प्रक्षिप्त उन अस्त्रों को अपने शूल-गदा और शरों से वारित किया था ॥४४॥ भगवान् केशव ने अपने-अपने सभी अस्त्रों को विपन्न देखकर फिर माधव प्रभु ने अपनी गदा का प्रक्षेप किया किन्तु उसको भी उस गणेश्वर ने त्रिशूल से समाहत कर भूतल पर गिरा दिया था ॥४५॥ श्री हरि ने उस अपनी गदा को जब विफल देखा था तो फिर लाङ्गल का प्रक्षेप किया था । उस लाङ्गल का भी गणेश्वर ने अपनी गदा से प्रतिवारण कर दिया था ॥४६॥ हलायुध ने फिर वीरभद्र पर अपने मुसल को प्रक्षिप्त किया था किन्तु उस वीरभद्र ने पूर्व की ही भाँति उस मुसल के आघात का भी वारण कर दिया था ॥४७॥ गरुड़ध्वज प्रभु ने अपने प्रक्षिप्त किये हुए मुसल को सहत देखा और लाङ्गल को निवारित देखा तो फिर उन्हें महान् क्रोध आ गया था और फिर वीरभद्र पर बड़े ही कोप से सुदर्शन चक्र का प्रहार किया था ॥४८॥ उस शत सूर्यों के समान महान् तेज से युक्त चक्र को अपने ऊपर आता हुआ देखकर गणेश्वर ने अपने शूल को

छोड़ दिया था और उस चक्र को मीन वपु सुरेन्द्र द्वारा मधु की भाँति उसने निगल लिया था ॥४६॥

चक्रं निगीर्णे गणनायकेन क्रोधातिरक्ताऽसितचारुनेत्रः ।
मुरारिरभ्येत्य गणाधिपेन्द्रमुत्क्षिप्य वेगाद्भुवि निष्पिपेष ॥५०
हरिबाहुरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले ।
सहितं रुधिरोद्गारैर्मु खाच्चक्रं विनिर्गतम् ॥५१
ततो निःसृतमालोक्य चक्रं कैटभनाशनः ।
समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह ॥५२
हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम् ।
गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम् ॥५३
ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोणिताप्लुतम् ।
निश्वसन्त यथा नागं क्रोधं चक्रे तदाऽव्ययः ॥५४
ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽपि प्रभुना ।
पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः ॥५५
वीरभद्रमथादिश्य भद्रकाली च शंकरः ।
विवेश क्रोधताम्राक्षो यज्ञवाटं त्रिशूलभृत् ॥५६
ततस्तु देवप्रवरे जटाधरे त्रिशूलपाणौ त्रिपुरान्तकारिणि ।
दक्षस्य यज्ञं विशतिक्षयंकरेजातोमुनीनांप्रवरोहि साध्वसः ॥५७

गण नायक के द्वारा उस सुदर्शन चक्र को निगीर्ण कर जाने पर क्रोध से अत्यन्त रक्त एवं असित चारु नेत्रों वाले मुरारि ने उस गणाधिप को ऊपर उठा कर बड़े वेग से भूमि पर निष्पिष्ट कर दिया था ॥५०॥ श्रीहरि के बाहुओं के महान् वेग से भूतल पर विशेष रूप से निष्पिष्ट उस गणेश्वर के मुख से रुधिर के उद्गारों के सहित वह सुदर्शन चक्र बाहिर निकल आया था ॥५१॥ इसके अनन्तर कैटभदैत्य के संहार करने वाले प्रभु ने जब देखा कि उनका सुदर्शन चक्र बाहर निकल आया है तो फिर हृषीकेश ने पुनः उस वीरभद्र को छोड़ दिया था ॥५२॥ भगवान् हृषीकेश के द्वारा मुक्त किया हुआ वीरभद्र जटाधर के समीप में पहुँच कर

भगवान् वासुदेव से अपने पराजय को निवेदन किया था ॥५३॥ इसके उपरान्त जटाधर प्रभु ने अपने गणेश्वर वीरभद्र को जब शोणित से आप्लुत (लोहू लुहान) देखा था और वह एक क्रोधित नाग की भाँति उस समय मे श्वास ले रहा था तो उस समय मे शम्भु ने महान् क्रोध किया था ॥५४॥ इसके अनन्तर क्रोध से अभिभूत शम्भु ने उस वीरभद्र को उस समय मे पूर्वोद्दिष्ट स्थान मे आयुधों के सहित निवेशित कर दिया था ॥५५॥ इसके अनन्तर उस वीरभद्र को आदेश देकर तथा भद्रकाली को आज्ञा प्रदान करके फिर भगवान् शकर क्रोध से लाल नेत्रों वाले होकर तथा त्रिशूल धारण कर उस यज्ञ भूमि मे स्वयं ही प्रविष्ट हुए थे ॥५६॥ इसके उपरान्त समस्त देवो मे परम श्रेष्ठ देव, त्रिपुर दैत्य के संहार करने वाले, त्रिशूल हाथ में धारण किये हुए, जटाधारी और सबका क्षय करने वाले शम्भु को यज्ञ भूमि मे प्रवेश करते हुए देखा तो उस समय मे समस्त मुनियो को बहुत ही अधिक भय समुत्पन्न हो गया था ॥५७॥

५—शिवजी का कालस्वरूप वर्णन

जटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधादारक्तलोचनम् ।
तस्मात्स्थानादपाक्रम्य कुब्जाम्रेऽन्तर्हितः स्थितः॥१
वसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सस्रुपुर्वेगतोमुने ।
सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा सीता नाम सरस्वती ॥२
एकादश तथा रुद्रास्त्रिनेत्रा वृषकेतनाः ।
कान्दिशीका लयं जग्मुः समभ्येत्याथ शंकरम् ॥ ३
विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः ।
समासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महामुने ॥४
चन्द्रः समं नक्षत्रगणैर्निशा समुपदर्शयन् ।
उत्पत्याऽरुह्य गगनं स्वमधिष्ठानमास्थितः ॥५

कश्यपाद्याश्च ऋषयो जपन्तः शतरुद्रियम् ।
पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मुने ॥ ६
असकृद्दक्षदयिता दृष्ट्वा रुद्रं बलाधिकम् ।
शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं विललाप ह ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—भगवान् श्री हरि ने जिस समय में देखा कि जटाधर भगवान् शंकर महान् क्रोध से लाल नेत्रों वाले होकर वहाँ पर स्वयं ही समागत हो रहे हैं तो भी श्री हरि उस स्थान से हटकर एक कुब्ज आम्र में जाकर अन्तर्हित होकर संस्थित हो गये थे ॥१॥ हे मुने! आठों वसुगण भगवान् हर को देखकर बड़े वेग से खिसक गये थे। वह सरितों में श्रेष्ठ सीता नाम वाली सरस्वती हो गई थी ॥१॥ एकादश रुद्र, तीन नेत्र वाले वृष के तन और कान्दवीक शंकर के समीप में जाकर लय को प्राप्त हो गये थे ॥३॥ विश्वेदेवा, अश्विनीकुमार, साध्य, मरुद्गण, अनल, भास्कर पुरोडाश को प्राप्त कर हे महामुने! उसका भक्षण कर रहे थे ॥४॥ चन्द्रमा समस्त नक्षत्रगणों के सहित निशाकाल को दिखाते हुए उछल कर आकाश में आरूढ़ हो गये और अपने अधिष्ठान पर समास्थित हो गये थे ॥५॥ कश्यप आदि जो ऋषिगण थे वे सब शत रुद्रिय का जाप करते हुए अपने हाथों में पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर हे मुने! उस समय में प्रणत होकर संस्थित हो गये थे ॥६॥ दक्ष प्रजापति की पत्नी ने उन महान् बलशाली शम्भु को देखा तो और शक्रादि सुरेशों की दशा को बार-बार देखा तो वह अत्यन्त दीन होकर विलाप करने लगी थी ॥७॥

ततः क्रोधाभिभूतेन शंकरेण महात्मना ।
तलप्रहारैरमरा बहवो विनिपातिताः ॥८
पादप्रहारैरपरे त्रिशूलेनापरे मुने ।
दृष्ट्याग्निना तथैवान्ये देवाद्याः प्रलयं गताः ॥६
ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन्तं सुरासुरान् ।
क्रोधाद्बाहू प्रसार्याथ प्रदुद्राव महेश्वरम् ॥ १०

समापतन्तं भगवान्समिरीक्ष्य त्रिलोचनः ।
बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करेणैकेन शङ्करः ॥११
कराभ्यां प्रगृहीतस्य शम्भुनाऽशुमतोऽपि हि ।
कराङ्गुलिभ्यो निश्चेरुर सृग्धाराः समन्ततः ॥१२
ततो वेगेन महता अशुमन्त दिवाकरम् ।
भ्रामयामास सतत सिंहो मृगशिशुं यथा ॥१३
भ्रामितस्यातिवेगेन नारदा शुमतोऽपि हि ।
भुजौ ह्रस्वत्वमापन्नौ त्रुटितस्नायुबन्धनौ ॥ १४

इसके अनन्तर यह हुआ था कि भगवान् शङ्कर को तीव्र क्रोध तो ही ही रहा था उन महात्मा शङ्कर ने उसी क्रोधावेश मे होकर अपने पदतल के प्रहारो से समस्त देवगणों को विनिपातित कर दिया था ॥८॥ हे मुने ! कुछ लोग पादो के प्रहारो से और दूसरे त्रिशूल के प्रहार से तथा अग्नि के द्वारा जितने भी देव आदि वहाँ पर थे वे सब लय को प्राप्त हो गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर पूषा ने हर को देखा कि वे सभी सुरो एव असुरों का विशेष रूप से निहनन कर रहे हैं तो वह क्रोध से अपनी बाहुओ को फैलाकर महेश्वर की ओर दौड़ा था ॥१०॥ भगवान् त्रिलोचन ने उस पूषा को अपनी ओर आता हुआ देख कर अपने एक ही हाथ से उसकी दोनो बाहुओ को ग्रहण कर लिया था ॥११॥ भगवान् शम्भु के द्वारा दोनो हाथो से गृहीत अशुमान की करागुलियो से चारो ओर रक्त की धाराऐं निकलने लगी थी ॥१२॥ इसके अनन्तर महान् वेग से उस अशुमान दिवाकर को भगवान् शम्भु ने निरन्तर घुमाना आरम्भ कर दिया था जिस तरह कोई सिंह एक छोटे से मृग के बच्चे को घुमाया करता है ॥१३॥ हे नारद ! अत्यन्त वेग से भ्रमित उस अशुमान की दोनों भुजाऐं बहुत छोटी हो गई थी क्योंकि उनके स्नायुओ के बन्धन त्रुटित हो गये थे ॥१४॥

रुधिराप्लुतसर्वाङ्गमंशुमानन्त महेश्वरः ।
सन्निरीक्ष्योत्ससर्जनमन्यतोऽभिजगाम ह ॥१५

इसके अनन्तर सभी दिवाकर शतक्रतु (इन्द्र) को अपना नायक बनाकर मरुद्गण और हुताश के सहित भय से दसों दिशाओं में चले गये थे ॥२१॥

प्रतियातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या दितीश्वराः ।
नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयो मुने ॥२२
ततस्त यज्ञवाट तु शंकरो घोरचक्षुषा ।
ददर्श दग्धु कोपेन सर्वांश्चैव सुरासुरान् ॥२३
ततो निलिलियिरे वीराः प्रणेमुर्दुद्रुवुस्तथा ।
भयादन्ये हर दृष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम् ॥ २४
ततोऽत्रयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसह समवैक्षत ।
दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूता भवन्क्षणात् ॥२५
अग्नौ प्रणष्टे यज्ञोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः ।
दुद्राव विपलचगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बरे ॥२६
तमेवानुससारेशश्चापमानम्य वेगवान् ।
शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः ॥२७
अर्द्धेन यज्ञवाटान्ते जटाधर इति श्रुतः ।
अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते ॥ २८

जब समस्त देवगण चले गये तो उनके चले जाने के पश्चात् प्रह्लाद आदि दितीश्वर नमस्कार करके हे मुनिवर ! हाथ जोड़कर सबके सब शङ्कर के समक्ष में खड़े हो गये थे ॥२२॥ इसके अनन्तर भगवान् शंकर ने उस यज्ञवाट को अपनी घोर दृष्टि से देखा था और कोप से सभी सुरों तथा असुरों को वहाँ पर दग्ध कर देने के लिये ऐसा किया था ॥२३॥ इसके अनन्तर सभी वीर लोग वहाँ से विलीन हो गये थे । कुछ ने उन्हें विनम्र होकर प्रणाम किया था और कुछ भाग गये थे । अन्य लोग भय से भगवान् हर के उस भीषण स्वरूप को ही देखकर वैवस्वत क्षय (मृत्यु) को प्राप्त हो गये थे ॥२४॥ इसके उपरान्त तीनों नेत्रों से अग्नियों ने अत्यन्त दुःसह देखा था । भगवान् शङ्कर के तीनों नेत्रों से देखते मात्र से ही क्षणमात्र में सब भस्मीभूत हो गये थे ॥२५॥ जब अग्नि ही

प्रणष्ट हो गया तो उसके विनष्ट हो जाने पर स्वयं यज्ञदेव भी एक अत्यन्त शरीर के धारण करने वाला मृग होकर दक्षिणा के सहित विक्लव गति से युक्त होता हुआ आकाश में भाग गया था ॥२६॥ उसी के पीछे शिव अपने चाप को आनमित करके वेगयुक्त हो चल दिये थे। कालरूप वाले भगवान् महेश्वर ने अपने पाशुपत शर को उस पर चढ़ा लिया था ॥२७॥ यज्ञशर के मध्य में अर्द्ध भाग से वह जराधर—इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे और अर्द्ध भाग से गगन में वह शर्व कालरूपी—इस नाम से कहे जाते थे ॥२८॥

कालरूपी स्त्वयाऽख्यात: शंभुर्गगन गोचर: ।
लक्षणं च स्वरूप च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥२९
स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदिष्ये कालरूपिण: ।
येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकहितेप्सुना ॥३०
यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांऽशक: ।
मेषो राशि: कुजक्षेत्र नच्छिर: कालरूपिण: ॥३१
आग्नेयांशास्त्रयो ब्रह्मन्प्राजापत्यं कवेगृ हम् ।
सौम्यार्द्ध वृषनामेदं वदनं परिकीर्तितम् ॥३२
मृगार्धमार्द्राऽदित्यांशास्त्रय: सौम्यगृहं त्विदम् ।
मिथुनं भुजयोस्तस्यगगनस्थस्य शूलिन: ॥३३
आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्लेषा शशिनो गृहम् ।
राशि: कर्कटको नाम पार्श्वे मखविनाशिन: ॥३४
पित्र्यर्क्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी ।
सूर्यक्षेत्रं विभोर्ब्रह्मन्हृदयं परिगीयते ॥३५

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे भगवन्! आपने अन्तरिक्ष में दिखलाई देने वाले भगवान् शम्भु को काल रूपी बतलाया है सो उनका पूर्ण लक्षण और स्वरूप का वर्णन करने की कृपा कीजिए क्योंकि इसके वर्णन करने की क्षमता एवं योग्यता आप में विद्यमान है ॥२९॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—त्रिपुरासुर के संहार करने वाले कालरूपी का स्वरूप मैं आपको बतलाऊँगा समस्त लोकों के हित करने की इच्छा

वाले जिसने हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सम्पूर्ण अम्बर व्याप्त कर लिया था ॥३०॥ जहाँ पर अश्विनी, भरणी तथा कृत्तिका का अ श स्वरूप मेष राशि कुरुक्षेत्र मे है वही उस काल रूपी शंकर का शिर है ॥३१॥ हे प्रह्लाद ! तीन आग्नेयांश और प्राजापत्य कवि (शुक्र) का गृह सौम्य स वृष नाम का यह वदन बतलाया गया है ॥३२॥ मृग शिरा का अग्र भाग, आर्द्रा और तीन आदित्य के अ श यह सौम्य गृह है । उस गगन म स्थित शूली प्रभु का यह भुजाओं का जोड़ा है ॥३३॥ आदित्य का अ श, पुष्य, आश्लेषा शशि का घर है । कर्कटक (कर्क) नाम वाली राशि है जो मख के विनाश करने वाले प्रभु के पार्श्व भाग होते हैं ॥३४॥ हे प्रह्लाद पितृ नक्षत्र, भगदैवत्य और उत्तरांश केशरी विभु का सूर्य क्षेत्र हृदय गाया जाता है ॥३५॥

उत्तराशास्त्रय पाणिश्चित्रार्धं कन्यका त्विदम् ।
सोमपुत्रस्य सद्मैतद्द्वितीय जठर विभो ॥३६
चित्राद्वितीय स्वातिर्विशाखायाशकत्रयम् ।
द्वितीय शुक्रसदन तुला नाभिरुदाहृता ॥३७
विशाखाशमनूराधा ज्येष्ठा भौमगृह त्विदम् ।
द्वितीय वृश्चिको राशिर्मेढ्रं कालस्वरूपिण. ॥३८
मूल पूर्वोत्तराशश्च देवाचार्यगृह धनु. ।
ऊर्वोर्तु गलमीशस्य अपराद्धं प्रगीयते ॥३९
उत्तराशास्त्रयश्चर्क्षं श्रवण मकरो मुने ।
धनिष्ठार्द्धं शनिक्षत्र जानुनी परिकीर्तिते ॥४०
धनिष्ठार्द्धं शतभिषा प्रोष्ठपादांशकत्रयम् ।
सौरे सद्मापरमिद कुम्भो जङ्घे च विश्रुते ॥४१
प्रोष्ठपादाशमेक तु उत्तरा रेवती तथा ।
द्वितीय जीवसदन मीनस्तौ चरणावुभौ ॥४२
एव कृत्वा कालरूप त्रिनेत्रो यज्ञं क्रोधान्मार्गणैराजघान ।
विद्धश्चासौवेदनाबुद्धिमुक्त खेसतस्थौतारकाभिश्चिताङ्ग ॥४३

तीन उत्तरा के अंश, पाणि (हस्त) और चित्रा का अर्ध भाग यह कन्यका है। सोम पुत्र का यह द्वितीय गृह है तथा विभु का यह जठर कहा जाता है ॥३६॥ चित्रा के दो अंश, स्वाती और विशाखा नक्षत्र के तीन अंश शुक्र के दूसरे गृह हैं तथा तुला राशि कालरूपी प्रभु की नाभि कही गई है ॥३७॥ विशाखा का एक अंश, अनुराधा, ज्येष्ठा यह भौम के गृह हैं। द्वितीय वृश्चिक राशि है कालरूपी शंकरका पेड़ू है ।३८। मूल,पूर्वोत्तरा का अंश वृहस्पति का गृह तथा धन राशि है। ईशके दोनों ऊरुओं का युगल अपराद्धं परिगीत किया जाता है ॥३९॥ तीन उत्तरा के अंश श्रक्ष श्रवण मकरराशि है धनिष्ठा का अर्ध भाग शनि का क्षेत्र होता है, ये कालरूपी के दोनों जानु हैं ॥४०॥ आधा भाग धनिष्ठा नक्षत्र का, शतभिषा और प्रोष्ठ पाद के तीन अंश सौरि का सद्म है जो कि यह अपर होता है कुम्भ राशि है और ये विभु की दोनों जांघें विश्रुत हैं ॥४१॥ प्रोष्ठपाद का एक अंश उत्तरा तथा रेवती यह जीव का दूसरा सदन है एवं मीन राशि है ये दोनों विभु के चरण कहे जाते हैं ॥४२॥ एवं भाँति से त्रिनेत्र प्रभु ने अपना काल रूप करके क्रोध से वाणों के द्वारा यज्ञदेव का हनन किया था। यह विद्ध होकर वेदना की बुद्धि से मुक्त होता हुआ तारकाओं से चित अंग वाला होता हुआ अन्तरिक्ष मे सस्थित हो गया था ॥४३॥

राशयः कथिता ब्रह्मंस्त्वया द्वादश वै मम ।
तेषां विस्तरतो ब्रूहि लक्षणानि स्वरूपतः ॥४४
स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां शृणु नारद ।
यादृशा यत्र संचारा यस्मिन्स्थाने वसन्ति च ॥४५
संचरस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु ।
नवशाड्वलसंछन्नवसुधायां च सर्वशः ॥४६
नित्यं चरति फुल्लेषु सरसां पुलिनेषु च ।
मेषः समानमूर्त्तिश्च अजाविक धनादिषु ॥४७
वृषः सदृशरूपेषु चरते गोकुलादिषु ।
तस्याधिवासभूमिस्तु कृषीवलधराश्रयः ॥४८

स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिग्रहम् ।
(वीणावाद्यधृङ् मिथुनं गीतनर्त्तनं शिल्पिषु ॥४९)

देवर्षि श्री नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने ये समस्त राशियाँ का वर्णन किया है जो कि सबरा में बारह होती हैं। अब आप कृपा करके उनका विस्तारपूर्वक लक्षण बतलाइए जो कि उनके स्वरूप से होते है ॥४४॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे नारदजी ! मैं अब आपको उन सब राशियों का स्वरूप बतलाता हूँ, आप श्रवण करिये। जैसे, जहाँ पर, जिस स्थान में सञ्चार निवास किया करते हैं ॥४५॥ इसका सञ्चार स्थान ही ग्राम्य रत्नाकरादि में तथा नवीन शाड्वल में सच्छन्न भूमि में सभी ओर हुआ करता है ॥४६॥ समान मूर्त्ति मेष नित्य ही फूलों में और सरोवरों के पुलिनों में तथा अजाविक धनादि में चरण किया करता है ॥४७॥ वृष सदृश रूप वाले गोकुल आदि में चरण किया करता है। उसकी अधिवास भूमि कृषिवल (किसान) की घराश्रय होती है ॥४८॥ स्त्री-पुरुषों में समान रूप है। (शय्या-आसन परिग्रह है तथा वीणा-वाद्य को धारण करने वाला एवं गीत-नृत्य शिल्पियों में मिथुन स्थित है ॥४९॥)

स्थित क्रीडा रतिर्नित्य विहार ध्वनिकस्य तु ।
मिथुन नाम विख्यात राशिर्द्विधाऽऽत्मकः शिव. ॥५०
कर्किकुलीरेण सम सलिलस्थः प्रकीर्त्तितः ।
केदारवापीपुलिनविविक्तानिरेव च ॥५१
सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभमिषु ।
वसते व्याघ्रपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च ॥५२
व्रीहिप्रदीपिकवरा भावारूढा च कन्यका ।
चरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नड्वलेषु च ॥५३
तुलापाणिश्च पुरुषो वीथ्यापणविचारक ।
नागराध्वनि शालासु वसते तत्र नारद ॥५४
श्वभ्रवल्मीक सचारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः ।
विषगोमयकीटादिपाषाणादिषु संस्थितः ॥५५

धनुस्तरङ्गजघतो दीप्यमानो धनुर्धरः ।
वाजिशूरास्त्रविद्वीरः स्थायी गजरथादिषु ॥५६

मिथुन में क्रीडा, रति और धनिक का विहार नित्य होता है। अतएव इसका मिथुन नाम प्रसिद्ध है। यह दो प्रकार के स्वरूप वाली परम शिव राशि है ॥५०॥ कर्क कुलीर के समान स्वरूप वाला होता है। यह राशि जल में स्थित रहने वाली बताई गई है। केदार, बावडी, पुलिन, विविक्त (निर्जन) भूमि भी इसके निवास स्थान होते हैं ॥५१॥ सिंह राशि तो ऐसी है जिसके निवास स्थल पर्वत,अरण्य,दुर्ग कन्दरा और भूमि हुआ करते हैं। यह व्याधों की पल्लियों में, गह्वरों में तथा गुहाओं में भी निवास किया करता है ॥५२॥ ब्रीहि और प्रदीपक करों में धारण करने वाली तथा नावों में समारूढ कन्या राशि का स्वरूप होता है। यह स्त्रियों के रति-स्थान में चरण किया करती है तथा नड्वलों में इसका निवास होता है ॥५३॥ हाथ में तुला (तराजू) धारण करने वाला एक पुरुष ही इसका स्वरूप है जो वीथि-आपण में विचरण किया करता है। नगर के मार्ग में, शालाओं में हे नारद ! यहाँ पर ही यह निवास किया करता है ॥५४॥ वृश्चिक का स्वरूप एक बिच्छू के समान आकृति जैसा ही होता है। यह श्वभ्रवल्मीक में सञ्चरण किया करता है। इसकी स्थिति विष, गोमय, कीटादि और पाषाण आदि में रहा करती थी ॥५५॥ धनु राशि का स्वरूप ऐसा होता है कि इसकी जघाएँ अश्व जैसी होती हैं। यह अतीव दीप्यमान स्वरूप वाला होता है तथा गज एवं रथ आदि में यह स्थायी रहा करता है ॥५६॥

मृगास्यो मकरो नाम वृषस्कन्धेक्षणो गजः ।
मकरोऽसौ नदीचारी वसते च महोदधौ ॥५७
रिक्तकुम्भश्च पुरुषः स्कन्धधारी जलाप्लुतः ।
द्यूतशालाचरः कुम्भः स्थायी शौण्डिकसद्मसु ॥५८
मीनद्वयमथासक्तं मीनस्तीर्थाब्धिसंचरः ।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसद्मसु ॥५९

लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेषादीनां महामुने ।
न कस्यचित्त्वयाऽऽख्येय गुह्यमेतत्पुरातनम् ॥६०
एतन्मया ते कथितं सुरर्षे यथा त्रिनेत्रः प्रममन्थ यज्ञम् ।
पुण्यं पुराणं परमं पवित्रमाख्यातवान्पापहरं शिवं च ॥६१

अब मकर का स्वरूप बताया जाता है। यह मृग के तुल्य मुख वाला, मकर नामधारी, वृष के समान स्कन्ध से युक्त और गज के सदृश ईक्षण वाला होता है। यह मकर नदियों में चरण किया करता है तथा महासागर में इसका निवास स्थान है ॥५७॥ रीते कुम्भवाला एक पुरुष है जो अपने कन्धों पर रखकर धरण किया करता है तथा जल से समाप्लुत रहता है। कुम्भ द्यूतशालाओं में विचरण करने वाला होता है तथा शौण्डिक (मदिरा विक्रेता) के गृह में स्थायी रूप से निवास किया करता है ॥५८॥ मीन का स्वरूप दो मीन एक दूसरे में समासक्त होते हैं और तीर्थ स्थल तथा समुद्र में सञ्चरण करने वाला है। यह परम पुण्य देशों में तथा देव और ब्राह्मणों के गृहों में निवास किया करता है ॥५९॥ हे महामुने ! जैसा आपने पूछा था मैंने मेष आदि राशियों के लक्षण आपको बतला दिये हैं। यह परम गोपनीय विषय है और अतीव पुरातन विषय है। आप इस विषय को कभी भी किसी से नहीं कहें ॥६०॥ हे सुरर्षे ! मैंने यह आपको सब बतला दिया है कि जिस तरह से भगवान् त्रिनेत्र ने यज्ञ का प्रमथन किया था। यह परम पुण्य पुराण है और अत्यन्त पवित्र है। यह अतीव मंगलमय तथा पापों के हरण करने वाला है जो कि मैंने तुमसे कहा है ॥६१॥

६—काम-दहन वर्णन

यत्त्वृचो ब्राह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यवपुः सदा ।
तस्य भार्या त्वहिंसा च तस्यामजनयत्सुतान् ॥१

हरिं कृष्णं च देवर्षे नरनारायणौ तथा ।
योगाभ्यासरतो नित्य हरिकृष्णौ बभूवतु ॥२
नरनारायणौ चैव जगतो हितकाम्यया ।
तप्येता च तपः सौम्यौ पुराणऋषिसत्तमौ ॥३
प्रालेयाद्रिं समागम्य तीर्थं बदरिकाश्रमे ।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे ॥४
नरनारायणाभ्यां च जगदेतच्चराचरम् ।
तापितं तपसा ब्रह्मन्संक्षोभं परमं ययौ ॥५
संक्षुब्धस्तपसा ताभ्यां क्षोभणाय शतक्रतु. ।
रम्भामप्सरसां श्रेष्ठां प्रेषयत्स महाश्रमम् ॥६
कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुध. ।
समं सहचरेणैव वसन्तेनाशु संगत. ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—एक बहुत अधिक वेद की ऋचाओं का ज्ञाता तथा दिव्य वपुधारी धर्म नामक एक ब्राह्मण था। उसकी भार्या अहिंसा नाम वाली थी। उस अपनी भार्या में उस धर्म ने पुत्रों को समुत्पन्न किया था ॥१॥ हे देवर्षे ! हरि और कृष्ण तथा नर और नारायण ये पुत्र धर्म के उत्पन्न हुए थे। उनमें जो हरि और कृष्ण नाम वाले पुत्र थे, वे सदा योग के अभ्यास करने ही में रति रखने वाले थे। जो नर एवं नारायण नाम वाले पुत्र थे वे इस जगत् के हित की कामना से तपश्चर्या करते थे। वे दोनों परम सौम्य एवं पुराण पुरुष और श्रेष्ठ ऋषि थे ॥२-३॥ प्रालेयाद्रि (हिमालय) पर्वत पर आकर बदरिकाश्रम नाम वाले तीर्थ में गङ्गा के विपुल तट पर परात्पर ब्रह्म का ग्रहण करके उन्होंने तप किया था ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! नर और नारायण इन दोनों के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत जिसमें स्थावर तथा चगम सभी सम्मिलित है तपश्चर्या से सन्तापित कर दिया गया है और यह अत्यन्त संक्षोभ को प्राप्त होगया है ॥५॥ उन दोनों के तप से संक्षुब्ध होकर इन्द्रदेव क्षोभ उत्पन्न करने के लिये अर्थात् तपस्या में विघ्न खड़ा करने के वास्ते सब में श्रेष्ठतम जो अप्सराओं में रम्भा

नाम वाली अप्सरा थी उसको उस महाश्रम मे भेजा था कि वह अपनी कला-कौशल से उनके तप मे अन्तराय उत्पन्न कर देवे और उनके मन में क्षोभ हो जावे ॥६॥ कामदेव तो अत्यधिक दुर्धर्ष होता ही है जिसका महान आयुध आम्र लतिकाओ का बौर (मञ्जरी) होता है। इसका साथ रहने वाला मित्र वसन्त ऋतु है उससे यह शीघ्र ही सगत हो जाया करता है ॥७॥

ततो माधवकन्दर्पौ सा चैवाप्सरसां वरा।
बदर्याश्रममागम्य विचिक्रीडुर्यथेच्छया ॥८
ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः।
निष्पत्राः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम् ॥६
शिशिरं नाम मातङ्गं विदार्य नखरैरिव।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने ॥१०
मया तुषारैश्च करी निर्जितः स्वेन तेजसा।
तमेवमहसल्लोध्रं वसन्तः कुन्दकुड्मलैः ॥११
वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिरे।
यथा नरेन्द्रपत्राणि कनकाभरणानि वै ॥१२
तेषामनु तथा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे।
स्वामिसं लब्धसमाना भृत्या राजसुता इव ॥१३
रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः।
भृत्या वसन्तनृपतेः सग्रामासृक्क्षता इव ॥१४

इसके अनन्तर माधव (वसन्त) और कन्दर्प ये दोनों तथा अप्सराओ मे परम श्रेष्ठ वह रम्भा उस बदर्याश्रम मे आकर अपनी इच्छा के अनुसार क्रीड़ा करने लगे थे इसके उपरान्त वसन्त ऋतु के भली भाँति प्राप्त होने पर किंशुक (ढाक के वृक्ष) जिनके रक्ततम पुष्पों के कारण अग्नि के समान प्रभा वाले थे और उनमें पुष्पो के ही गुच्छे एक दम लदे थे, पत्र एक भी दिखाई नहीं देता था। ऐसे किंशुक वृक्ष निरन्तर इस धरातल को शोभित कर रहे थे ॥६॥ उस समय मे शिशिर ऋतु रूपी हाथी मानों वसन्त रूपी केसरी के नखों से विदीर्ण

पुत्रजीवाशुकासङ्गरोमराजिविराजिता ।
वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता तस्मिन्वदरिकाश्रमे ॥२१

भौरो के समुदाय उस परम गहन वन मे पिञ्जरित होकर शोभायमान होते थे जिस तरह अपने सुहृदो के समागम हो जाने पर सज्जन पुरुष पुलकायमान अर्थात् हर्षातिरेक से रोमाञ्चित हो जाया करते हैं ॥१५॥ नदियों के तटों पर वेतस अपनी मञ्जरियो से विशेष रूप मे शोभा सम्पन्न थे। वे उस समय मे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों अँगुली के सकेत से यह कहने की इच्छा वाले थे कि हमारे समान कौनसा वृक्ष है ? ॥१६॥ हे देवर्षे ! उस समय की वह सुषमा एक तन्वी के सुन्दर स्वरूप का दृश्य उपस्थित कर रही थी। उस तन्वी के रक्ताशोक दोनो कर हैं और किंशुक उसके चरण हैं। वह नीलाशोककरो वाली है श्यामा है जिसके खिले हुए कमल ही मुख के तुल्य हैं ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! नील इन्दीवर (कमल) उस तन्वी के सुन्दर नेत्र हैं और बिल्वफल उसके सुन्दर शोभायमान स्तन हैं। खिले हुए कुन्द के पुष्प उस तन्वी के एकदम श्वेत एव समुज्ज्वल दाँतो की पंक्ति है और वह मञ्जरी के करो से शोभित है ॥१८॥ बन्धु जीव उस तन्वी के अधर हैं और शुभ्र सिन्धु वार नवाकुर हैं। वसन्त के समय मे कोयल अपनी मधुर एव श्रुतिप्रिय ध्वनियाँ निकाला करती हैं। यह ध्वनि ही उस तन्वी का शब्द है। वह ककोल रूपी वस्त्र धारण करने वाली अत्यन्त शुभ एव दिव्य तन्वी है ॥१९॥ मयूरो के समूह ही उसके केश कलाप हैं और सारसो के स्वर जो उस समय मे सुनाई देते हैं वे ही उस तन्वी के नूपुरो की सुमधुर ध्वनि है। हे ब्रह्मन् ! प्राग्वश उसकी रसना है और मत्त हस ही उसकी मन्द मस्तानी गति है ॥२०॥ हे पुत्र ! जीवाशुकासङ्ग रूपी रोमों की पंक्तियो से वह परम शोभित वसन्त लक्ष्मी उस समय मे वहाँ पर बदरिकाश्रम में सम्प्राप्त होगई थी ॥२१॥

ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्यानवद्यताम् ।
समीक्ष्य च दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत ॥२२

कोऽसावनङ्गो ब्रह्मर्षे तस्मिन्बदरिकाश्रमे ।
यं ददर्श जगन्नाथो देवो नारायणोऽव्ययः ॥२३
कन्दर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते ।
स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः ॥२४
किमर्थं कामदेवोऽसौ देवदेवेन शम्भुना ।
दग्धश्च कारणे कस्मिन्नेतद्व्याख्यातुमर्हसि ॥२५
यदा दक्षसुता ब्रह्मन्सती याता यमक्षयम् ।
विनाश्य दक्षयज्ञं स विचचार त्रिलोचनः ॥२६
ततो वृषध्वजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमायुधः ।
अपत्नीकं तदाऽस्त्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत् ॥२७
ततो हरः शरेणाथ उन्मादेनाशु ताडितः ।
विचचार तदोन्मत्तः काननानि सरांसि च ॥२८
स्मरन्सतीं महादेवस्तथोन्मादेन ताडितः ।
न शर्म लेभे देवर्षे बाणविद्ध इव द्विपः ॥२९

इसके अनन्तर नारायण ने आश्रम की अनवद्यता शुद्धता या पवित्रता को देखकर फिर उनने सभी दिशाओं की ओर समीक्षण किया था। इसके पश्चात् उन्होंने वहाँ पर कामदेव को देखा था ॥२२॥ श्री देवर्षि नारद जी ने कहा—हे ब्रह्मर्षे ! यह अनङ्ग उस बदरिकाश्रम में कौन था जिसको देख कर जगत् के स्वामी अव्यय अर्थात् अविनाशी भगवान् नारायण देव को भी विस्मय हुआ था ? ॥२३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—यह कन्दर्प हर्ष का पुत्र था जोकि 'कामदेव'—इस नाम से लोगों में कहा जाता है। इसको भगवान् शङ्कर ने अपने तीसरे नेत्र के द्वारा सदग्ध कर दिया था तो इसका कोई भी अङ्ग न रहने से यह अनङ्गत्व को प्राप्त हो गया था ॥२४॥ नारद मुनि ने कहा—क्या प्रयोजन उपस्थित होगया था कि देवों के भी वन्दमान देव भगवान् शम्भु ने इस कामदेव को दग्ध कर दिया था ? किस कारण के हो जाने पर ऐसी घटना घटित हुई थी—इस सबको कृपा कर आप विस्तार के सहित व्याख्या करने के योग्य होते हैं क्योंकि आप सभी कुछ जानते हैं

पुलस्त्य मुनि ने कहा—जिस समय में प्रजापति दक्ष की पुत्री सती, हे ब्रह्मन् ! यम क्षय अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो गई थी उसी समय में भगवान् त्रिलोचन को अत्यन्त भीषण क्रोध हो गया था और उनने उस दक्ष के यज्ञ का एकदम विध्वंस करके वे फिर इधर-उधर विचरण करने लगे थे ।।२६।। इसके अनन्तर इस कन्दर्प ने देखा कि इस समय में वृष-ध्वज शम्भु बिना पत्नी वाले हैं तो उस कुसुमों के आयुध वाले कन्दर्प ने उन्माद नामक अस्त्र के द्वारा शम्भु को अभिताडित किया था ।।२७।। इसके पश्चात् भगवान् हर ने उन्मादास्त्र से ताडित होकर कानन और सरोवर के समीप उन्मत्त होकर विचरण किया था ।।२८।। क्योंकि काम-देव के उन्मादास्त्र से शम्भु प्रताडित हो गये थे अतएव उस समय में महादेव को अपनी पत्नी सती का स्मरण हो आया था । हे देवर्षे ! उस समय में भगवान् शम्भु की ऐसी दशा हो गई थी वे बाणों से विद्ध हुए एक करीन्द्र की भाँति कहीं पर भी शान्ति प्राप्त न कर सके ।।२६।।

ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरित मुने ।
निमग्ने शंकरे चापो दग्धाः कृष्णत्वमागताः ।।३०
तदा प्रभृति कालिन्द्या भृङ्गाञ्जननिभं जलम् ।
आस्यन्दत्पुण्यतीर्था सा केशपाश इवावनेः ।।३१
ततो नदीषु पुण्यासु सरस्सु च सरित्सु च ।
पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च ।।३२
पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सानुषु ।
विचरन्स्वेच्छया नैव शर्मं लेभे महेश्वरः ।।३३
क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शंकरः ।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गी दक्षकन्या मनोरमाम् ।।३४
ध्यात्वा क्षणं स्वपिति च क्षणं स्वप्नायते हरः ।
स्वप्ने तथेदं गदति दृष्ट्वा दक्षस्य कन्यकाम् ।।३५

हे मुने ! इसके पश्चात् यह हुआ था कि वह देवेश प्रभु कालिन्दी ी में गिर पड़े थे । भगवान् शंकर के यमुना के जल में निमग्न हो ने पर यमुना के जल भी दग्ध होगये थे और तभी से उसके जल में

कृष्णता प्राप्त हो गई है ॥३०॥ उसी समय से कालिन्दी का जल भृङ्ग (भौंरा) तथा अञ्जन के सदृश होगया है। आस्यन्दमान पुण्य तीर्थ वाली वह कालिन्दी इस भूमि रूपिणी नायिका की केशपाश (शिर की चोटी) की भाँति दिखलाई देती है ॥३१॥ इसके अनन्तर भगवान् महेश्वर परम पुण्यमयी नदियों में—सरों में—सरिताओं में—सुरम्य पुलिनों में—वापियों में तथा नलिनियों में—पर्वतों में—रम्य वनों में और गिरिवरों की शिखरों में स्वेच्छा से चाहे जहाँ विचरण करते हुए भी किसी भी स्थल में सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सके थे ॥३२-३३॥ हे देवर्षि वर ! उस उन्माद की दशा प्रभु शंकर की ऐसी थी कि कभी तो वे गायन करने लगते थे तो कभी क्षणभर के लिये बिना ही स्पष्ट किसी कारण के रुदन किया करते थे। किसी क्षण में वे कुछ ध्यान करने लगते थे और उस ध्यान में वही तन्वङ्गी परम मनोरमा दक्ष की कन्या आ जाया करती थी ॥३४॥ कुछ अपनी वल्लभा सती का ध्यान करके फिर क्षणभर के लिए निद्रा हो जाती थी और उसी अवस्था में फिर भगवान् हर स्वप्न देखने लगते थे। उस समय उससे यह कहने लगते थे ॥३५॥

निर्घृणे तिष्ठ किं मूढे त्यजसे मामनिन्दिते ।
मुग्धे त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि मदनाग्निना ॥३६

सत्यं प्रकुपिता देवि मा कोपं कुरु सुन्दरि ।
पादप्रणामावनतमभिभाषितुमर्हसि ॥३७

श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पृश्यसे वन्द्यते प्रिये ।
आलिङ्ग्यसे च सततं किमर्थं नाभिभाषसे ॥३८

विलपन्तं जनं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते ।
विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्घृणा ॥३९

त्वयोक्तानि वचांस्येव पूर्वं मम कृशोदरि ।
त्वया विना न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम् ॥४०

एह्येहि कामसन्तप्तं परिष्वज सुलोचने ।
नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि शपे प्रिये ॥४१

इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणात् ।
उत्कूजति तथाऽरण्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः ॥४२

शिव स्वप्न में दक्ष की कन्या अपनी पत्नी सती से कहा करते थे—हे निर्घृणे ! ठहरो, हे मूढ़े ! मुझे क्यों त्याग कर जा रही हो ? तुम तो परम निर्दोष सुन्दरी हो । हे मुग्धे ! मैं आपका वियोग पाकर इस समय में कामाग्नि के द्वारा दग्ध हो रहा हूँ ॥३६॥ हे देवि ! क्या आप सच-मुच ही क्रोधित हो गई हो ? हे सुन्दरि ! मेरे ऊपर कोप मत करो क्योंकि अपने प्रिय पति से पत्नी को कोप करना उचित नहीं जान पड़ता है । यदि कुछ मुझसे भूल भी अनजान में होगई हो तो मैं उस गलती के क्षमापन के लिये आपके चरणों में अवनत होता हूँ अब तो आपको मुझसे भाषण करना ही चाहिए ॥३७॥ नित्यप्रति आप मेरी बातें श्रवण किया करती थीं और आप अपना प्रणयपूर्वक दर्शन भी दिया करती थी । हे प्रिये ! प्रतिदिन मेरे अङ्ग के साथ अपने सर्वाङ्गों का स्पर्श किया करती थी तथा वन्दना भी करती थीं । निरन्तर मुझसे आकर आलिङ्गन करती थीं । अब क्या हो गया है कि मुझसे आप अभिभाषण भी नहीं कर रही हैं ? इसका कारण क्या है ? ॥३८॥ इस प्रकार से करुण विलाप करते हुए अपने जन को देखकर किसके हृदय में चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो, दया का उद्गम न होगा ? विशेष रूप से अपने पति को करुण क्रन्दन करते हुए देखकर दया न हो—यह कैसी आश्चर्य की बात है ? हे बाले ! निश्चय ही आप तो अत्यन्त ही निष्ठुर प्रतीत होती हैं ॥३६॥ हे कृश मध्यम भाग वाली ! आपने तो मुझसे पहिले इस प्रकार के वचन कहे थे कि मैं आपके बिना कभी भी जीवित नहीं रहूँगी । क्या वे वचन आपने इस समय में बिल्कुल ही असत्य कर दिये हैं ? ॥४०॥ हे सुन्दर नेत्रों वाली प्रिये ! आइये, यहाँ मेरे समीप में आइये । मैं इस समय में काम से अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ आप मुझसे आकर आलिंगन करिये । हे प्रिये ! मैं अब सत्य शपथ पूर्वक यह कहता हूँ कि आपके मेरे समीप में आकर समालिंगन किये बिना अन्य कोई भी उपाय मेरे ताप के शान्त होने का नहीं है ॥४१॥ इस प्रकार से अत्यधिक

विलाप-कलाप करके स्वप्न के अन्त हो जाने पर शम्भु उसी क्षण में प्रतिबुद्ध होगये थे। फिर अरण्य में बारम्बार मुक्त कण्ठ से उत्कूजन किया करते थे अर्थात् जोरों से चिल्लाया करते थे ॥४२॥

तं कूजमानं विलपन्तमारात्समीक्ष्य कामो वृषकेतनं हि ।
विव्याध चापं तरसा विनाम्य सन्तापनाम्ना सुशरेण भूयः ॥४३
सन्तापनाम्नेण तदा स विद्धो भूयः स सन्तप्ततरो बभूव ।
सन्तापयंश्चापि जगत्समस्तं फूत्कृत्य फूत्कृत्य दिवानिशं स ॥४४
तं चापि भूयो मदनो जघान विजृम्भणास्त्रेण ततो विजृम्भे ।
ततो भृशं कामशरैर्वितुन्नो विजृम्भमाणः परितो भ्रमंश्च ॥४५
ददर्श यक्षाधिपतेस्तनूजं पाञ्चालिकं नाम जगत्प्रधानम् ।
दृष्ट्वा त्रिनेत्रो धनदस्य पुत्रं पार्श्वं समभ्येत्य वचो बभाषे ।
भ्रातृव्य वक्ष्यामि वचो यदद्य तत्त्वं कुरुष्वामितविक्रमोऽसि ॥
पाञ्चाल मां वक्ष्यसि तत्करिष्ये सुदुष्करं यद्यपि देवसंघैः ।
आज्ञापयस्वातुलवीर्य शम्भो दासोऽस्मि ते भक्तियुतस्तथेश ॥४७
नाशं गतायां वरदाम्बिकायां कामाग्निना प्लुष्टमथिग्रहोऽस्मि ।
विजृम्भणोन्मादशरैर्विभिन्नो धृतिं न विन्दामि रतिं सुखं च ॥४८
विजृम्भणं पुत्र तथैव तापमुन्मादमुग्रं मदनप्रणुन्नम् ।
नान्यः पुमान्धारयितुं हि शक्तो मुक्त्वा भवन्तं हि ततः प्रतीच्छ ॥४९

इस प्रकार से कूजन करने वाले विलाप करते हुए समीप में आकर वृष के तन शिव का समीक्षण करके कामदेव ने फिर अपने चाप विनमित करके बड़े वेग से सन्ताप नाम वाले शर से पुनः शम्भु को विद्ध कर दिया था ॥४३॥ सन्तापास्त्र से उस समय में विद्ध होकर वह शम्भु फिर और अधिक सन्तप्त हो गये थे। स्वयं तो शम्भु सतप्त हो ही रहे थे किन्तु फूत्कार करके समस्त जगत् को भी उन्होंने सन्ताप युक्त कर दिया था ॥४४॥ फिर उस मदन ने अपने विजृम्भण नामक अस्त्र से भगवान् शंकर पर प्रहार किया था जिससे वे विजृम्भण करने लगे थे। फिर इसके अनन्तर काम शरों से विशेष रूप से अत्यन्त अधिक उत्पीड़ित होकर सब ओर से विजृम्भमाण होकर भ्रमण कर रहे थे ॥४५॥ उस

समय में यक्षों के अधिपति कुबेर के पुत्र पाञ्चालिक को भगवान् शंकर ने देखा था जो जगत् का प्रधान था। धनद के पुत्र को देखकर शम्भु उसके समीप में पहुँच कर उससे यह वचन बोले—हे भ्रातृव्य! मैं आप से आज जो भी वचन कहूँगा उसे आप कर दीजिए क्योंकि आपके अन्दर अपरिमित विक्रम विद्यमान है ॥४६॥ पाञ्चालिक ने कहा—हे नाथ! आप मुझे जो भी आज्ञा करेंगे उसे मैं अवश्य ही करूँगा चाहे वह बड़े २ देव समूहों के द्वारा भी दुष्कर कार्य क्यों न हो। हे शम्भो! आप तो अतुल वीर्य वाले हैं। आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए। हे ईश! मैं तो पूर्ण भक्ति भाव से समन्वित आपका ही एक दास हूँ ॥४७॥ ईश्वर ने कहा—तुमको ज्ञात है कि वरदाम्बिका नाश को प्राप्त हो गई है। अब उसके मरने के पश्चात् मैं कामाग्नि के द्वारा दग्ध शरीर वाला हो गया हूँ। मैं विजृम्भण तथा उन्माद शरों के द्वारा विशेष रूप से विद्ध होकर कहीं पर भी धीरजरति और सुख की प्राप्ति नहीं कर रहा हूँ ॥४८॥ हे पुत्र! मदन के द्वारा प्रयुक्त किया हुआ विजृम्भण बहुत ताप वाला है और उन्मादास्त्र भी अत्यन्त उग्र है। इन दोनों अस्त्रों को अन्य कोई भी पुरुष धारण नहीं कर सकता है। केवल आप ही एक ऐसे हैं जो इनके धारण करने में समर्थ हैं सो आप इन्हें ग्रहण करें ॥४९॥

इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन यक्ष प्रतीच्छन्स विजृम्भणादीन्।
तोषं जगामाशु ततस्त्रिशूली तुष्टस्तदैव वचनं बभाषे ॥५०

यस्मात्त्वया पुत्र सुदुर्धराणि विजृम्भणादीनि प्रतीच्छितानि।
तस्माद्वरस्त्वाप्रतिपूजनाय ददामि लोकस्य च हास्यकारी ॥५१

यस्त्वां यदा पश्यति चैत्रमासे स्पृशेन्नरो वाऽर्चयते च भक्त्या।
वृद्धोऽथवा बालोऽथ युवाऽथ योषित्सर्वे तदोन्मादधरा भवन्ति ॥५२

गायन्ति नृत्यन्ति रमन्ति यक्ष वाद्यानि यत्नादपि वादयन्ति।
तवाग्रतो हास्यवचोऽभिरक्ता भवन्ति ते योगयुतास्तु ते स्युः ॥५३

ममैव नाम्ना भविता सि पूज्य पाञ्चालिकेशः प्रथितः पृथिव्याम्।
मम प्रसादाद्वरदो नराणां भविष्यसे पूज्यतमोऽभिगच्छ ॥५४

इत्येवमुक्तो विभुना स यक्षो जगाम देशान्सहसैव सर्वान् ।
कालञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्यो देशो हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः ॥५५
तस्मिन्सुपुण्ये विषये निविष्टो रुद्रप्रसादादपि पूज्यतेऽसौ ।
तस्मिन्प्रयाते भगवांस्त्रिनेत्रो देवोऽपि विन्ध्यगिरिमभ्यगच्छत् ॥

पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस तरह से वृषभध्वज के द्वारा कहे जाने पर उस यक्ष ने विजृम्भण आदि अस्त्रों को ग्रहण कर लिया था । उसी समय भगवान् त्रिशूली को पूर्ण सन्तोष हो गया था और वे अत्यन्त तुष्ट होकर इस प्रकार से वचन बोले—॥५०॥ श्री शंकर ने कहा—हे पुत्र ! क्योंकि तुमने सुदुर्धर इन विजृम्भण आदि अस्त्रों को ग्रहण कर लिया है इसी कारण से मैं तुमको वरदान दूंगा जो लोक में पूजन के लिए भी होगा और हास्यकारी भी होगा ॥५१॥ जो भी कोई मनुष्य चैत्रमास में जब भी आपको देखेगा—स्पर्श करेगा अथवा भक्तिभाव से आपका अर्चन करेगा चाहे वह वृद्ध हो—बालक हो, युवा हो अथवा योषित् ही क्यों न हो उसी समय में वे सभी उन्माद के धारण करने वाले बन जायेंगे ॥५२॥ (हे मदन ! फिर वे गान करते हैं, नृत्य करते हैं, रमण करते हैं और वाद्यों को भी यत्न से वादन करते हैं । आपके आगे हास्य वचन से अभिरक्त होते हुए वे सभी योग युक्त हो जाया करेंगे ॥५३॥) मेरे ही नाम से पृथिवी में पूज्य हो जायेंगे और पाञ्चालिकेश इस नाम से भूमण्डल में प्रसिद्ध होंगे । मेरे प्रसाद से आप मनुष्यों को वरदान प्रदान करने वाले हो जायेंगे तथा परम पूज्यतम भी होंगे—यह समझ लेना ॥५४॥ इस प्रकार भगवान् शंकर के द्वारा कहे हुए उस यक्ष ने सहसा ही समस्त देशों को गमन किया था । कालञ्जर के उत्तर की ओर हिमाद्रि से भी दक्षिण की ओर स्थित एक अतीव सुपुण्य देश है ॥५५॥ उस परम सुपुण्य देश में यह निविष्ट हो गया था और वहाँ पर भगवान् रुद्र देव के प्रसाद से यह पूजा जाता है ? उनके चले जाने पर परम देव भगवान् त्रिनेत्र भी विन्ध्यगिरि को चले गये थे ॥५६॥

तत्रापि मदनो गत्वा ददर्श वृषकेतनम् ।
दृष्ट्वा प्रहर्तुं कामश्च ततः प्रादुद्रुवे हरः ॥५७
ततो दारुवनं घोरं मदनाभिसृतो हरः ।
विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः ॥५८
ते चापि ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा मूर्ध्ना नताभवन् ।
ततस्तान्प्राह भगवान्भिक्षा मे प्रतिदीयताम् ॥५९
ततस्ते मौनिनस्तस्थुः सर्वं एव महर्षयः ।
तदाऽऽश्रमाणि पुण्यानि परिचक्राम नारद ॥६०
तं प्रविष्टं तदा दृष्ट्वा भार्गवात्रेययोषितः ।
प्रक्षोभमगमन्सर्वा हीनसत्त्वाः समन्ततः ॥६१
ऋते त्वरुन्धतीमेकामनसूयां च भामिनीम् ।
एतयोर्भर्तृपूजासु तच्चिन्तासु स्थितं मनः ॥६२
ततः संक्षोभिताः सर्वा यत्रायाति महेश्वरः ।
तत्र प्रयान्ति कामार्ता मदविह्वलितेन्द्रियाः ॥६३

वहाँ पर भी मदन ने जाकर भगवान् वृष के तन को देखा था और उनका वहाँ दर्शन करके उसने पुनः प्रहार करने की इच्छा वाला होकर प्रस्तुत हुआ तो फिर भगवान् हर वहाँ से भाग खड़े हुए थे ॥५७॥ इसके पश्चात् मदन से अभिसृत होकर भगवान् हर घोरतम दारु वन में प्रवेश कर गये थे। वहाँ पर ऋषि लोग अपनी पत्नियों के साथ व्यवस्थित थे ॥५८॥ वे सब ऋषिगण भी शिव का दर्शन कर सिर से प्रणत हुए थे। इसके अनन्तर भगवान् शंकर उनसे कहने लगे कि आप सब लोग मुझे भिक्षा प्रदान कीजिए ॥५९॥ इसको श्रवण करके वे सभी महर्षि वृन्द मौन व्रत धारण करके स्थित होगये थे क्योंकि वे सभी लोग त्रिकालदर्शी थे। हे नारद ! उस समय में शम्भु भगवान् उनके जो परम पुण्यमय आश्रम थे उनमें घूमने लगे थे ॥६०॥ उस समय में उनको प्रवेश करने वाले देखकर भार्गव तथा आत्रेय की पत्नियाँ सब परम क्षोभ को प्राप्त होगई थीं क्योंकि वे बिचारी सभी हीन सत्त्व वाली सब प्रकार से थी ॥६१॥ केवल एक तो अरुन्धती और एक अनसूया भामिनी को छोड़

कर सभी अत्यन्त क्षुब्ध हो गई थीं। इन दोनों का मन तो उस समय में अपने स्वामियों की पूजा तथा ध्यान में संलग्न था ॥६२॥ जिस भी आश्रम के अन्दर में भगवान् महेश्वर प्रवेश करते थे वहीं पर समस्त ऋषि पत्नियाँ अतीव मक्षोभ से समन्वित हो जाया करती थीं और वहीं पर काम से आर्त्त होकर मद से विह्वलित इन्द्रियों वाली होती हुई सब प्रयाण किया करती थीं ॥६३॥

त्यक्त्वाऽऽश्रमाणि शून्यानि स्वानि ता मुनियोषितः ।
अनुजग्मुर्यथा मत्त करिण्य इव कुञ्जरम् ॥६४
ततस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाङ्गिरसो मुने ।
क्रोधान्विताब्रुवन्सर्वेलिङ्गमापतता भुवि ॥६५
ततः पपात देवस्य लिङ्गं पृथ्वीं विदारयत् ।
अन्तर्द्धानं जगामाथ त्रिशूली नीललोहितः ॥६६
ततस्तत्पतितं लिङ्गं विभेद्य वसुधातलम् ।
रसातलं विवेशाथ ब्रह्माण्डे चोर्ध्वतोऽभिनत् ॥६७
ततश्चचाल पृथिवी गिरयः सरितो नगाः ।
पातालभुवनाः सर्वे जङ्गमाजङ्गमान्विताः ॥६८
संक्षुब्धान्भुवनान्दृष्ट्वा भूर्लोकादीन्पितामहः ।
जगाम माधव द्रष्टुं क्षीरोदं नाम सागरम् ॥६९
तत्र दृष्ट्वा हृषीकेशं प्रणिपत्य च भक्तितः ।
उवाच देव भुवनाः किमर्थं क्षुभिता विभो ॥७०

उन समस्त मुनियों की पत्नियों ने अपने आश्रमों का त्याग कर इधर-उधर प्रयाण कर लिया था और आश्रमों को सूना छोड़कर चली गई थीं। जिस प्रकार से किसी मदमस्त हाथी के पीछे हथिनियाँ चल दिया करती हैं उसी भाँति भगवान् शङ्कर के पीछे सबने अनुगमन कर दिया था ॥६४॥ हे मुने ! इस प्रकार की दशा को भार्गव-अङ्गिरा आदि ऋषियों ने देखा तो सब लोग अत्यन्त क्रोध से युक्त होकर बोले कि [illegible] ॥६५॥ ऋषियों के यह कहते ही लिंग भूमि पर गिर गया और उसने भूमि को विदीर्ण कर दिया था।

उसी समय मे भगवान् त्रिशूली नील लोहित वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ।।६६।। वह जो शिवलिंग भूमि पर गिरा था उसने भूमि का भेदन किया और फिर रसातल मे प्रवेश कर गया था । ऊर्ध्व भाग मे भी उसने ब्रह्माड का भेदन किया था । इस प्रकार से नीचे ऊपर दोनो ही भागो मे उसने भेदन किया था ।।६७।। उस शिवलिंग के पतन का महान् विशाल परिणाम यह हुआ था कि पृथिवी, गिरिगण, समस्त सरितायें, नग, पाताल, भुवन सब स्थावर और जगम चलायमान हो उठे थे । इनमे जो भी अपना आश्रय लेकर रहते थे वे भी सब चलायमान हो गये थे ।।६८।। पितामह ब्रह्माजी ने जब देखा था कि सभी भुवन भूलोक आदि अत्यन्त सक्षोभ से युक्त हो गये हैं तो क्षीराब्धि नाम वाले सागर मे भगवान् माधव के दर्शन करने के लिये उनकी सेवा मे समुपस्थित हुए थे ।।६९।। वहाँ पर हृषीकेश भगवान् का दर्शन करके उनके चरणो मे ब्रह्माजी ने प्रणाम किया और भक्ति-भाव से उनका भजनार्चन किया था । फिर ब्रह्माजी ने कहा था कि हे देव ! हे विभो ! ये समस्त भुवन किसलिये इतने क्षुभित हो गये हैं, इसका क्या कारण है ? ।।७०।।

अथोवाच हरिर्ब्रह्मन्छार्वो लिङ्गो महर्षिभिः ।
पातितस्तस्य भारार्त्ता सचचाल वसुन्धरा ।।७१
ततस्तदद्भुततमं श्रुत्वा देव पितामहः ।
तत्र गच्छाम देवेश एवमाह पुनः पुनः ।।७२
ततः पितामहो देवः केशवश्च जगत्पतिः ।
आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र लिङ्गं भवस्य तत् । ७३
ततोऽनन्तं हरिर्लिङ्गं दृष्ट्वाऽऽरुह्य खगेश्वरम् ।
पाताल प्रविवेशाथ विस्मयान्तरितो विभुः ।।७४
ब्रह्मा पद्मविमानेन ऊर्ध्वमाक्रम्य सर्वतः ।
नैवान्तमलभद्ब्रह्मा विस्मितः पुनरागतः ।।७५
विष्णुर्गत्वाऽथ पातालान्सप्तलोकपरायणः ।
चक्रपाणिर्विनिष्क्रान्तो लेभेऽन्तं न महामुने ।।७६

एव संस्तूयमानस्तु तस्मिन्दारुवने हरः ।
स्वरूपी ताविद वाक्यमुवाच वदता वरः ॥८१
किमर्थं देवतानाथौ परिभूतक्रम त्विह ।
मा स्तुवाते भृशास्वस्थ कामतापितविग्रहम् ॥८२
भवल. पातित लिङ्ग यदेतद्भु वि शकर ।
एतत्प्रगृह्या भूय. अतो देव वदावहे ॥८३

श्री हरि भगवान् और पितामह ने यह स्तवन किया था—हे शूलपाणे ! आपकी सेवा मे हम दोनो का नमस्कार सादर समर्पित है । हे वृषध्वज ! आपके लिये हमारा प्रणाम है । आपके अनेक एव अनन्त नाम हैं, जीमूत (मेघ) पर आप समारूढ होने वाले हैं । आप कवि हैं । हे शर्व ! हे त्र्यम्बक ! हे शकर ! आपको हमारा नमस्कार है ॥७८॥ आप महान् ईश्वर हैं । हे महेशान ! हे सुवर्णाक्ष ! हे वृषाकपे ! आप प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विध्वस करने वाले हैं और आप कालरूप हैं । आपके चरणो मे हमारा प्रणाम समर्पित है ॥७९॥ हे प्रभो ! इस सम्पूर्ण जगत् के आप ही आदि कारण हैं और हे परमेश्वर ! आप ही मध्य भी हैं तथा इसके अन्त भी आप ही हैं । ऐसे आपके लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥८०॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—उस दारुवन मे जब इस प्रकार से विष्णुदेव तथा परमेष्ठी के द्वारा भगवान् हरि स्तुति किये गये थे तो उस समय में स्वरूप धारण कर शम्भु ने जो कि बोलने वालो मे अतीव वरिष्ठ थे उन दोनों से यह वचन बोले ॥८१॥ भगवान् हरि ने कहा—सब हे देवगण के स्वामी ! यहाँ पर किस प्रयोजन के लिये आप दोनों आये हैं और मुझ जैसे अत्यन्त अस्वस्थ्य तथा काम से सतृप्त विग्रह वाले का स्तवन क्यों कर रहे हैं ? ॥८२॥ दोनो देवों ने कहा—हे शकर ! जो आपका लिंग इस भूमण्डल मे पातित कर दिया है उसको आप पुन ग्रहण करने की कृपा करें । इसीलिये हे देव ! हम आपकी सेवा में प्रार्थना कर रहे हैं ॥८३॥

यद्यर्चयन्ति त्रिदशा मम लिंग सुरोत्तमौ ।
तदेतत्प्रतिगृह्णीयां नान्यथेति कथचन ॥८४

ततः प्रोवाच भगवानेवमस्त्विति केशवः ।
ब्रह्मा स्वयं च जग्राह लिंगं कनकं पिङ्गलम् ॥८५
ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्च्चने ।
शास्त्राणि चैषां मुख्यानि नानोक्तिविदितानि च ॥८६
आद्यं शैवं परिख्यातमन्यत्पाशुपतं मुने ।
तृतीयं कालदमनं चतुर्थं च कपालिकम् ॥८७
शिवश्चासीत्स्वयं शक्तिर्वसिष्ठस्य प्रियः सुतः ।
तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुतः ॥८८
महापाशुपतश्चासाद्भरद्वाजस्तपोधनः ।
तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा ऋषयः सोमकेश्वरः ॥८९
कालास्यो भगवानासीदापस्तम्बस्तपोधनः ।
तस्य शिष्यो बभूवाथ नाम्ना क्राथेश्वरो मुने ॥९०
महाव्रती च धनदस्तस्य शिष्यश्च वीर्यवान् ।
अर्णोदर इति ख्यातो जात्या शूद्रो महातपाः ॥९१

भगवान् हर ने कहा—हे सुरों मे परम उत्तम आप दोनो ! यदि समस्त देवगण आप मेरे इस लिङ्ग की अर्चना करते हैं तो मैं पुनः इसको ग्रहण कर लूँगा अन्यथा किसी भी प्रकार से ग्रहण नहीं करूँगा ॥८४॥ इसके अनन्तर भगवान् केशव ने कहा था कि ऐसा ही होगा। ब्रह्माजी ने स्वयं उस सुवर्ण के समान पिंगल वर्ण वाले लिंग को ग्रहण किया था ॥८५॥ इसके अनन्तर भगवान् ने चारों वर्णों के पुरुषों को भी हर के अर्चन मे कर दिया था। इनके लिये नाना प्रकार की उक्तियों से विदित अनेक प्रमुख शास्त्रों की भी रचना की थी ॥८६॥ आद्य शैव नाम से परिख्यात है। हे मुने ! दूसरा पाशुपत नाम से प्रसिद्ध तृतीय कालदमन नाम से विश्रुत है और चतुर्थ कापालिक नाम से प्रसिद्ध है ॥८७॥ शिव स्वयं शक्ति है और वसिष्ठ का प्रिय पुत्र है। उसका शिष्य गोपायन इस नाम से विश्रुत हुआ था ॥८८॥ तप को ही महान् धन समझने वाले भरद्वाज महा पाशुपत थे। उसका शिष्य सोमकेश्वर नाम वाला राजा हुआ था ॥८९॥ तपोधन आपस्तम्ब भगवान् कालास्य

थे। उसका शिष्य हे मुने! कायेश्वर नाम वाला हुआ था ॥६०॥ महान् व्रत वाला धनद था और उसका शिष्य अत्यन्त वीर्य वाला अर्णोदर इस नाम से ख्यात था। वह जाति से शूद्र था किन्तु महान् तपस्वी था ॥६१॥

एवं स भगवान्ब्रह्मा पूजनाय शिवस्य तत्।
कृत्वा तु चातुराश्रम्यं स्वमेव भवनं गतः ॥६२
गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि उपसहृत्य तत्तदा।
लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिष्ठाय चचार ह ॥६३
विचरन्तं तदा भूयो महेशं कुसुमायुधः।
आरात्स्थित्वाऽग्रतो धन्वी सतापयितुमुद्यतः ॥६४
ततस्तमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधाध्मातदृशा हरः।
स्मरमालोकयामास शिखाग्राच्चरणान्तिकम् ॥६५
आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो द्युतिमानपि।
प्रादह्यत तदा ब्रह्मन्पादादारभ्य कक्षवत् ॥६६
प्रदह्यमानौ चरणौ दृष्ट्वाऽसौ कुसुमायुधः।
उत्ससर्ज धनुः श्रेष्ठं तज्जगामाथ पञ्चधा ॥६७
यदासीन्मुष्टिबन्धे तद्रुक्मपृष्ठं महाप्रभम्।
स चम्पकतरुर्जातः सुगन्धाढ्यो महाद्युतिः ॥६८

इस भाँति उन भगवान् ब्रह्माजी ने शिव के पूजन के लिये चारों आश्रमों मे विधान करके फिर वे अपने भवन में वापिस चले गये थे ॥६२॥ ब्रह्माजी के वहाँ से उक्त विधि से लिंगार्चन का पूर्ण विधान स्थिर करके चले जाने के पश्चात् भगवान् शङ्कर ने भी उस समय में उस अनन्त लिंग का उपसहार कर लिया था और चित्रवन में एक सूक्ष्म लिंग को प्रतिष्ठापित करके वे विचरण करने लगे थे ॥६३॥ इस तरह से भगवान् शङ्कर विचरण कर रहे थे तो उस समय में उस कुसुमायुध ने फिर महेश्वर पर उनके समीप में स्थित होकर आगे से धनुष धारण कर उन्हें सन्तापित करने की तैयारी की थी ॥६४॥ इसके अनन्तर जब वह कामदेव उनके सामने ही स्थित था तो उस पर शिव क्रोध से

साक्षात् दृष्टि से देखा था और शिखा से आरम्भ कर चरण पर्यन्त उसको देख डाला था ॥६५॥ इस प्रकार भगवान् त्रिनेत्र के द्वारा जब वह कामदेव वालोकित हुआ था, तो चाहे वह कितना भी द्युति से सम्पन्न था हे ब्रह्मन्! उसी क्षण में पाँव से लेकर सिर तक वह एक काष्ठ की भाँति उस समय में दग्ध हो गया था ॥६६॥ जिस समय में उस कुसुमायुध ने अपने दग्ध होते हुए चरणों को देखा था तो उसी क्षण इसने अपना देह छोड़ दिया था और वह पाँच प्रकार का हो गया था ॥६७॥ जो उसके मुष्टिबन्ध में था वह महान् प्रभा से युक्त रुक्मपृष्ठ था और वह महान् द्युति वाला सुगन्ध युक्त चम्पक का वृक्ष हो गया था ॥६८॥

नाभि स्थानं शुभाकारं यदासीद्वज्रभूषितम् ।
तज्जातं केसरारण्यं बकुलं नामतो मुने ॥६६

या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता ।
जाता सा पाटला रम्या भृङ्गराजिविभूषिता ॥१००

नाहोपरि तथा मुष्टौ स्थानं चन्द्रमणिप्रभम् ।
पञ्चगुल्माऽभवज्जाती शशांककिरणोज्ज्वला ॥१०१

ऊर्ध्वं मुष्टया अधः कोटयोः स्थानं विद्रुमभूषितम् ।
तस्माद्बहुपुटा मल्ली संजाता विविधा मुने ॥१०१

पुष्पोपगानि रम्याणि सुरभीणि च नारद ।
जातियुक्तानि देवेन स्वयमाचरितानि च ॥१०३

मुमोच मार्गणान्रम्याञ्छरीरे दह्यति स्मरः ।
फलोपगानि वृक्षाणि संभूतानि सहस्रशः ॥१०४

चूतादीनि सुगन्धीनि स्वादूनि विविधानि च ।
हरप्रसादाज्जातानि भोज्यान्यपि सुरोत्तमैः ॥१०५

एवं दग्ध्वा स्मरं रुद्रः संयम्य स्वतनुं विभुः ।
पुण्यार्थी शिशिराद्रिं स जगाम तपसेऽव्ययः ॥१०६

एवं पुरा देववरेण शंभुना
कामस्तु दग्धः सशरः सचापः ।
ततस्त्वनङ्गे ति महाधनुर्द्धरो
देवैः स्तुतो देववरैस्तु पूजित ॥१०७

नाभिस्थान शुभ आकार वाला जो वज्र से भूषित था वह हे मुने ! वह नाम से बकुल केसरारण्य होगया था ॥९९॥ और जो कोटि परम शुभ इन्द्रनील मणि से भूषित थी वह परम रम्य भृंगों की पंक्ति से शोभित पाटला होगई थी ॥१००॥ नाह के ऊपर तथा मुष्टि में जो स्थान चन्द्रकान्ता मणि के समान प्रभा वाला था वह पंच गुल्मा शशांक की किरणों के तुल्य अतीव समुज्वल जाती वृक्ष होगया था ॥१०१॥ मुष्टि के ऊपर और दोनों कोटियों के नीचे के भाग में जो स्थान था जो कि विद्रुमों से विभूषित था उससे हे मुने ! बहुत पुट वाली विविधा मल्ली उत्पन्न होगई थी ॥१०२॥ हे नारद ! पुष्पोपग सुरभि से युक्त परम रम्य जाति युक्त देव के द्वारा स्वयं ही समाचरित थे ॥१०३॥स्मर ने जो दह्यमान शरीर में परम रम्य बाण छोड़े थे वे फलोपग अर्थात् फलों से युक्त सहस्रों ही प्रकार के वृक्ष होगये थे ॥१०४॥ सुगन्ध से युक्त अतीव स्वाद वाले आम्र आदि अनेक प्रकार वाले वृक्ष भगवान् शंकर के प्रसाद से उत्पन्न होगये थे जो कि उत्तम सुरगणों के द्वारा भोजन करने के योग्य है ॥१०५॥ इस तरह से रुद्रदेव ने स्मर को दग्ध करके और विभु ने अपने शरीर को सर्वाग्नि बनाकर सुराची वह प्रभु जो अविनाशी हैं तपश्चर्या करने के लिए शिशिराद्रि पर चले गये थे ॥१०६॥ पहिले इस प्रकार से देवों में वरिष्ठ भगवान् शम्भु ने शरों के तथा चाप से संयुत कामदेव को दग्ध कर दिया था। इसके अनन्तर अंगों के भस्मीभूत हो जाने के कारण वह महान धनुष को धारण वाला जो कि देवों के भी द्वारा स्तुत एवं देव प्रवरों के द्वारा पूजित था अनंग इस नाम से संसार में विख्यात होगया था ॥१०७॥

—•••—

७–प्रह्लाद युद्ध वर्णन

ततोऽनङ्गं विभुर्दृष्ट्वा ब्रह्मन्नारायणो मुनिः ।
विहस्यैव वचः प्राह कन्दर्प इह आस्यताम् ॥१
तदक्षुब्धत्वमीक्ष्यास्य कामो विस्मयमागतः ।
वसन्तोऽपि महाचिन्ता जगामाशु महामुने ॥२
ततश्चाप्सरसो दृष्ट्वा स्वागतेनाभिपूज्य च ।
वसन्तमाह भगवानेह्येहि स्थीयतामितः ॥३
ततो विहस्य भगवान्मञ्जरीकुसुमावृताम् ।
आदायप्रावमुवर्णाङ्गीमूर्वोर्बाला विनिर्ममे ॥४
ऊरूद्भवा सकन्दर्पो दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
अमन्यत तदाऽनङ्गः किमियं सा प्रिया रतिः ॥५
तदेव वचनं चारु स्वक्षिभ्रू कुटिलालकम् ।
सुनासावंशाधरोष्ठमालोकनपरायणम् ॥६
तदेव चाप्यविरलौ पीवरौ मग्नचूचुकौ ।
राजेतेऽस्याः कुचौ पीनौ सज्जनाविव संहतौ ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इसके पश्चात् विभु नारायण मुनि ने उस अनंग को देखकर हँसकर उससे इस प्रकार के वचन कहे थे कि हे कन्दर्प ! यहाँ बैठ जाओ ॥१॥ भगवान् नारायण की उस अक्षुब्धता को देखकर कामदेव अत्यन्त विस्मय को प्राप्त होगया था। हे महामुने ! उस कामदेव का परम सखा वसन्त भी उस समय शीघ्र ही अत्यन्त चिन्ता को प्राप्त होगया था ॥२॥ इसके अनन्तर उन समस्त वहाँ पर समागत अप्सराओं को देखा था और उनका भी भगवान् ने परम स्वागत करते हुए उन्हें भी अभिपूजित किया था। फिर भगवान् ने कन्दर्प के सहचर परम घनिष्ठ सखा वसन्त से कहा था—यहाँ आजाओ और इस तरफ स्थित हो जाओ ॥३॥ इसके उपरान्त हँस कर भगवान् ने कुसुमों से समावृत मञ्जरी को ग्रहण करके पहिले सुवर्ण के समान अङ्गों वाली ऊरुओं से एक बाला का विशेष रूप से निर्माण किया था।

।।४।। उस कन्दर्प ने ऊरुओं से जन्म ग्रहण करने वाली सभी अंगो से अत्यन्त सुन्दरी बाला को देख कर उस समय मे उस अनग देव ने ऐसा माना था कि क्या यह उसकी प्रिया रति है ? ।।५।। उसके वही अतीव सुन्दरतम वचन थे और अत्यन्त सुन्दर नेत्र-भृकुटियाँ और कुटिल केशपाश थे। उसकी अतीव मनोरम नासिका-अधर-ओष्ठ और अवलोकन था ।।६।। उस परम सुन्दरी रति के निमग्न चूचुकों वाले अविरल एवं पीवर तथा पीन कुच सगत दो सज्जनो की भाँति विराजमान थे ।।७।।

तदेव तनु चार्वङ्ग्या वलित्रयविभूषितम् ।
उदर राजते श्लक्ष्ण रोमावलिविभूषितम् ।।८
रोमावली च जघनाद्याति स्तनतटद्वयम् ।
राजते भृङ्गमालेव पुलिनात्कमलाकरम् ।।६
जघन त्वतिविस्तीर्णं भात्यस्या रसनावृतम् ।
क्षीरोदमथने नद्धं भुजगेनेव मन्दरम् ।।१०
कदलीस्तम्भसदृशै रूर्ध्वमूलै रथोरुभिः ।
विभाति सा सुचार्वङ्गी पद्मकिञ्जल्कसन्निभा ।।११
जानुनी गूढगुल्फे च शुभे जङ्घे त्वरोमशे ।
विभात्यस्यास्तथा पादावलक्तकसमत्विषौ ।।१२
इति संचिन्तयन्कामस्तामनिन्दितलोचनाम् ।
कामातुरोऽसौ सजातः किमुतान्यो जनो मुने ।।१३
माधवोऽप्युर्वशी दृष्ट्वा संचिन्तयति नारद ।
किंस्वित्कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वय स्थिता ।।१४

उस अत्यन्त सुन्दरतम अगों वाली का वही अति रमणीय शरीर था और तीन बलियों से विशेष रूप से भूषित उसका उदर शोभा से युक्त था जो अत्यन्त श्लक्ष्ण एवं रोमावलि से विशेष भूषित था ।।८।। वह रोमों की पंक्ति जघनों से दोनो स्तनो के तट के समीप तक जारही थी जोकि पुलिन में कमलाकर (सरोवर या तड़ाग) तक जाने वाली भौंरों की कतार की भाँति शोभित होरही थी ।।६।। इस सुन्दरी के जघन स्थल रसना (काँधनी) से समावृत होकर जोकि अतीव विस्तार से युक्त

जघन थे अत्यन्त शोभित होरहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि क्षीर सागर के मन्थन के समय में मानो मन्दराचल पर्वत भुजग वासुकि के द्वारा नद्ध होरहा हो ॥१०॥ पद्मों के किञ्जल्क के समान सुन्दर अंगों वाली वह ललना कदली के स्तम्भों के तुल्य ऊर्ध्व मूलों वाले उरुओं से शोभा वाली थी ॥११॥ दोनों जानु गूढ गुल्फों वाले थे और दोनों जघन बिना रोमों वाले अत्यन्त शुभ थे। इस सुन्दरी के दोनों चरण अलक्तक के समान शिखा (कान्ति) वाले शोभा दे रहे थे ॥१२॥ हे मुनिवर! इस प्रकार की उस निर्मित ललना की सर्वांग सुन्दरता को देख कर मन में चिन्तन करते हुए कामदेव ने विचार किया कि यह कैसी परम सुन्दर नीननों वाली है। फिर उसी समय में वह स्वयं कामदेव कामातुर हो गया था अन्य जन की तो बात ही क्या है ॥१३॥ हे नारद! भगवान् माधव भी उर्वशी को देख कर मन में चिन्तन करते थे कि क्या कामदेव नृप की यह स्वयं स्थित राजधानी है ॥१४॥

अज्ञाता शशिनो नूनमियं कान्तिर्निशाक्षये ।
रविरश्मिप्रतापार्तिभीता शरणमागता ॥१५
इत्थं संचिन्तयन्नेव अवष्टभ्याप्सरोगणम् ।
तस्थौ मुनिरिव ध्यानमास्थितः स तु माधवः ॥१६
ततः स विस्मितान्सर्वान्कन्दर्पादीन्महामुने ।
दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं स्मितं कृत्वा शुभव्रतः ॥१७
इयं ममोरुसंभूता कामाप्सरसमाधवी ।
नीयतां सुरलोकाय दीयतां वासवाय च ॥१८
इत्युक्ताः कम्पमानास्ते जगृहुर्ह्युर्वशीं दिवम् ।
सहस्राक्षाय ते प्रोचू रूपयौवनशालिनीम् ॥१९
आचख्युश्चरितं ताभ्यां धर्मज्ञाभ्यां महामुने ।
देवराजाय कामाद्यास्ततोऽभूद्विस्मयः परम् ॥२०
एतादृशं हि चरितं ख्यातिमग्र्यां जगाम ह ।
पातालेषु तथा मर्त्ये दिक्ष्वष्टासु जगाम च ॥२१

रात्रि के क्षयकाल में अर्थात् निशा के अन्त में निश्चय ही यह चन्द्रमा की अशान्त कान्ति है जो सूर्य की रश्मियों के प्रताप की भांति से भीत होकर शरण में आई हुई है ॥१५॥ इस तरह से चिन्तन करते हुए ही अप्सरा गण को अवष्टब्ध करके वह माधव प्रभु एवं मुनि के समान ध्यान में समास्थित हो गये थे ॥१६॥ इसके अनन्तर हे महा-मुने ! वह शुभ वृत वाले भगवान् अत्यन्त विस्मय से समन्वित उन समस्त कन्दर्प आदि को देखकर मुस्कराते हुए यह वचन बोले ॥१७॥ यह मेरे ऊरुओं से जन्म ग्रहण करने वाली कामाप्सरस माधवी है। इसे अब सुरलोक में ले जाओ और वहाँ पर इन्द्रदेव को इसे दे दो ॥१८॥ इस प्रकार से जब उनसे कहा गया था तो वे सभी एक दम कम्पमान होगये थे और फिर उस उर्वशी को ग्रहण करके स्वर्गलोक का चले गये थे। उन सब ने वहाँ स्वर्गलोक में पहुँच कर उस रूप तथा यौवन से अत्यन्त सुन्दरी को इन्द्र को समर्पित करते हुए कहा था ॥१९॥ हे महा-मुने ! उन कामादि ने देवों के राजा इन्द्रदेव से उन दोनों धर्मजों का समस्त चरित कह दिया था और उसका श्रवण करके वहाँ अत्यन्त विस्मय हो गया था ॥२०॥ यह इस प्रकार का चरित है जो परम श्रेष्ठ ख्याति को प्राप्त हो गया था। केवल स्वर्ग लोक में ही नहीं अपितु पाताल लोक में, मनुष्य लोक में और आठों दिशाओं में यह चरित परम प्रसिद्ध हो गया था ॥२१॥

एकदा निहते रौद्रे हिरण्यकशिपौ मुने ।
अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम दानवः ॥२२
तस्मिञ्छासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके ।
मखान्भूम्या नृपतयो यजन्ते विधिवत्तदा ॥२३
ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्रा च कुर्वते ।
वैश्याश्च पशुवृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥२४
चातुर्वर्ण्यं ततस्तस्था वाश्रमे धर्मकर्मणि ।
वर्त्तन्त ततो देवा वृत्त्या युक्ताभवन्मुने ॥२५

ततस्तु च्यवनो नाम भार्गवेन्द्रो महातपाः ।
जगाम नर्मदा स्नातुं तीर्थं वै नाकुलेश्वरम् ॥२६

तत्र दृष्ट्वा महादेवं नदी स्नातुमवातरत् ।
अवतीर्णं प्रजग्राह नागः केकरलोहितः ॥२७

गृहीत स्तेन नागेन सस्मार मनसा हरिम् ।
संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः ॥२८

एक बार ऐसा हुआ था जबकि अत्यन्त रौद्र हिरण्यकशिपु दैत्य का निहनन होगया था तो हे मुने ! उसके पश्चात् उस समय में उसके राज्यासन पर प्रह्लाद नामक दानव का अभिषेक किया गया था जोकि हिरण्यकशिपु दैत्य का पुत्र था ॥२२॥ दैत्येन्द्र प्रह्लाद परम भक्त था अतएव उसके शासन करने पर उस समय में देवता तथा ब्राह्मणों की पूजा होती थी और समस्त नृप वृन्द विधि-विधान के साथ भूमण्डल के मखों (यज्ञों) का यजन भी करते थे ॥२३॥ सभी वर्णों वाले लोग अपने २ धर्मों का यथावत पालन किया करते थे। जो ब्राह्मण थे वे तपश्चर्या, धर्म और तीर्थयात्रा किया करते थे। वैश्य लोग पशु-पालन की वृत्ति को करते थे और शूद्र लोग सेवा-कार्य के करने में सर्वदा रत रहा करते थे ॥२४॥ चारों वर्णों के लोग धर्म के कर्मों में आश्रमानुसार स्थित थे। इससे यह हुआ कि सब देवगण वृत्ति में युक्त होकर रहते थे क्योंकि यजनार्चन में ही देवगण अपना-अपना भाग ग्रहण किया करते हैं ॥२५॥ इसके अनन्तर एक बार महान् तपस्वी भार्गवेन्द्र च्यवन नाम वाले ऋषि नाकुलेश्वर तीर्थ पर स्नान करने के लिये नर्मदा पर गये थे ॥२६॥ वहाँ पर महादेव के दर्शन करके ज्यों ही ऋषि ने स्नान करने के लिए नदी में अवतरण किया था वैसे ही नदी में उतरे हुए उनको केकर लोहित नाग ने ग्रहण कर लिया था ॥२७॥ उस नाग के द्वारा ग्रहण किये जाने पर च्यवन ऋषि ने मन में ही श्री हरि का स्मरण किया था। भगवान् पुण्डरीकाक्ष के स्मरण करने पर वह महान् सर्प विष रहित हो गया था ॥२८॥

नीतस्तेनातिरौद्रेण पन्नगेन रसातलम् ।
निर्विषश्चापि तत्याज च्यवनं भुजगोत्तमः ॥२९
संत्यक्तमात्रो नागेन च्यवनो भार्गवोत्तमः ।
चचार नागकन्याभिः पूज्यमानः समन्ततः ॥३०
विचरन्प्रविवेशाथ दानवानां महत्पुरम् ।
संपूज्यमानो दैत्येन्द्रैः प्रह्लादोऽस्य ददर्शतम् ॥३१
भृगुपुत्रो महातेजा पूजां चक्रे यथार्हतः ।
सम्पूजितोपविष्टश्च पृष्टश्चानामयं प्रति ॥३२
स चोवाच महातेजा महातीर्थं महाफलम् ।
स्नातुमेवागतोऽस्म्यद्य द्रष्टुं वै नाकुलेश्वरम् ॥३३
नद्यामेवावतीर्णोऽस्मि गृहीतश्चाहिना बलात् ।
समानीतोऽस्मि पाताले दृष्टश्चात्र भवानपि ॥३४
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं च्यवनस्य दितीश्वरः ।
प्रोवाच धर्मसंयुक्तं स वाक्यं वाक्यकोविदः ॥३५

वह नाग के विष से रहित हो गया था किन्तु उसने ऋषि को रसातल में ले जाकर पहुँचा दिया था वह परम अत्यन्त रौद्र रूप वाला था। वह उत्तम भुजग निर्विष तो हो ही गया था, वहाँ रसातल में पहुँच कर उसने ऋषि को छोड़ दिया था ॥२९॥ जैसे ही नाग के द्वारा वह भार्गवों में श्रेष्ठ ऋषि च्यवन त्यागे गये थे वे वहाँ पर सभी नागों की कन्याओं के द्वारा पूज्यमान हो गये थे। वहाँ सर्वत्र उनकी अर्चना होने लगी थी ॥३०॥ इसके अनन्तर वहाँ पर च्यवन ऋषि विचरण करते हुए जो दानवों का एक महान् पुर था उसमें उन्होंने प्रवेश किया था। वहाँ उस नगर में भी दैत्येन्द्रों के द्वारा उनकी अर्चना हुई थी और फिर उन्होंने प्रह्लाद का दर्शन किया था ॥३१॥ भृगु के पुत्र महान् तेजस्वी थे उनकी यथायोग्य स्वरूप के अनुरूप पूजा की थी। भली-भाँति पूजित होकर जब आसन पर बैठ गये तो उनके अनामय के विषय में प्रश्न किया गया था अर्थात् कुशल पूछी गई थी ॥३२॥ इन महान् तेज वाले च्यवन ऋषि ने कहा था कि जो महान् तीर्थ होता है उसका फल भी महान्

ही होता है। मैं तो आज केवल स्नान करने के लिये आया था और भगवान् नाकुलेश्वर प्रभु के दर्शन करने के लिये आया था ॥३३॥ मैं नदी में स्नान करने के लिये उतरा ही था कि सर्प ने मुझे बलपूर्वक ग्रहण कर लिया था। उसी नाग के द्वारा मैं यहाँ पाताल लोक में ले आया गया हूँ और यहाँ पर मैंने आपका दर्शन भी प्राप्त करने का सौभाग्य यहीं पर प्राप्त कर लिया है ॥३४॥ उस दितीश्वर प्रह्लाद ने च्यवन ऋषि के इस वचन का श्रवण करके धर्म से समन्वित यह वाक्य कहा था। प्रह्लाद वचनों के बोलने में बहुत ही अधिक प्रवीण पण्डित थे ॥३५॥

भगवन्कानि तीर्थानि पृथिव्यां कानि चाम्बरे।
रसातले च कानि स्युरेतद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥३६
पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम्।
चक्रतीर्थं महाबाहो रसातलगतं विदुः ॥३७
श्रुत्वा तद्भार्गववचो दैत्यराजो महामुने।
नैमिषं गन्तुकामोऽभूद्दानवानिदमब्रवीत् ॥३८
उत्तिष्ठध्वं गमिष्यामः स्नातुं तीर्थं हि नैमिषम्।
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम् ॥३९
इत्युक्ता दानवेन्द्रेण सर्वेतेदैत्यदानवाः।
चक्रुरुद्योगमतुलं निर्जग्मुश्च रसातलात् ॥४०
ते समभ्येत्य दैतेया दानवाश्च महाबलाः।
नैमिषारण्यमागम्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः ॥४१
ततो दितीश्वरः श्रीमान्मृगया स चचार ह।
सरन्सरस्वती पुण्या ददर्श विमलोदकाम् ॥४२

दैत्येन्द्र प्रह्लाद ने कहा—हे भगवन् ! आप जब यहाँ पदार्पण कर विराजमान हैं तो कृपाकर मुझे यह बतलाइये कि पृथिवी में कौन-कौन से तीर्थ हैं और अन्तरिक्ष में कौन से तीर्थ हैं तथा इस रसातल में कौन तीर्थ स्थल है—यह सभी कुछ जानते हैं और आप इसके बता देने के योग्य भी हैं ॥३६॥ महर्षि च्यवन ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! पृथ्वी मण्डल

मे तो नैमिष एक तीर्थ है और अन्तरिक्ष मे पुष्कर तीर्थ है। हे महा-बाहुओं वाले ! चक्रतीर्थ इस रसातल मे मृत है ॥३७॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे महामुने ! भृगु के पुत्र च्यवन ऋषि के इस वचन का श्रवण कर उस दैत्यराज प्रह्लाद ने उसी समय मे नैमिष नामक तीर्थ को जाने की इच्छा की थी और उसने समस्त दानवों से यह वचन कहा था—प्रह्लाद ने कहा—हे दानवो ! आप सब लोग खड़े हो जाओ अब नैमिष तीर्थ मे स्नान करने के लिये जायेंगे। वहाँ पर पीताम्बर धारी अच्युत भगवान् पुण्डरीकाक्ष का दर्शन करेंगे ॥३९॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—दानवेन्द्र के द्वारा इस भाँति कह जाने पर उन सभी दैत्य दानवों ने अनुपम उद्योग किया था और रसातल से निकल गये थे ॥४०॥ वे सब महान् बल वाले दैत्य और दानवगण अपनी यात्रा पूर्ण करके नैमिषारण्य मे आ पहुँचे थे और बहुत ही आनन्द के साथ सब ने वहाँ पर स्नान किया था ॥४१॥ इसके अनन्तर श्री से सम्पन्न उस दितीश्वर ने वहाँ पर मृगया (शिकार) की थी और मृगया करते हुए विचरण कर उसने परम पुण्य मयी विमल जल वाली सरस्वती नदी का दर्शन किया था ॥४२॥

तस्यादूरे महाशाखं सालवृक्षं शरैश्चितम् ।
ददर्श बाणानपराम्मुखे लग्नान्परस्परम् ॥४३

ततस्तानद्भुताकाराम्बाणान्नागोपवीतकान् ।
दृष्ट्वाऽतुलं तदा चक्रे क्रोधं दैत्येश्वरः किल ॥४४

स ददर्श ततोऽदूरात्कृष्णाजिनधरौ मुनी ।
समुन्नतजटाभारौ तपस्यासक्तमानसौ ॥४५

तयोश्च पार्श्वयोर्दिव्ये धनुषी लक्षणान्विते ।
शार्ङ्गमाजगवं चैव अक्षय्यौ च महेषुधी ॥४६

तौ दृष्ट्वाऽमन्यत तदा दाम्भिकाविति दानवः ।
ततः प्रोवाच वचनं तावुभौ पुरुषोत्तमौ ॥४७

किं भवद्भ्यां समारब्धो दम्भो धर्मविनाशनः ।
क्व तपः क्व जटाभारः क्व चेमौप्रवरायुधौ ॥४८

दैत्येश्वरस्ततः क्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोह च ।
यथाकथंचिज्जेष्यामि नरनारायणौ रणे ॥५२
इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा दितीश्वरः स्थाप्य बलं वनान्ते ।
वितत्य चापं गुणमाविकृष्य तलध्वनिं घोरतरं चकार ॥५३
ततो नरस्त्वाजगवं हि चापमानम्य बाणान्सुबहूञ्छिताग्रान् ।
मुमोच तानप्रतिमैः पृषत्कैश्चिच्छेद दैत्यस्तपनीयपुङ्खैः ॥५४
छिन्नान्समीक्ष्याथ नरः पृषत्कान्दैत्येश्वरेणाप्रतिमेन सङ्ख्ये ।
क्रुद्धःसमानम्यमहाधनुस्ततोमुमोचचान्यान्विविधान्पृषत्कान् ॥
एकं नरो द्वौ दितिजेश्वरश्च सोऽन्धर्मसूनुश्चतुरो दितीशः ।
नरस्तुबाणान्प्रमुमोचपञ्चपड्दैत्यनाथोनिशितान्पृषत्कान् ॥५६

इस प्रकार से उस नर के द्वारा उत्तर प्राप्त होने पर उस दितीश ने उन दोनो से कहा—यहाँ पर तुम दोनों में क्या शक्ति है ? क्या तुम दोनो नहीं जानते हो मैं धर्म सेतु का प्रवर्तक दैत्यराज प्रह्लाद हूँ मेरे रहते हुए तुम दोनो की कुछ भी शक्ति नही हो सकती है ॥५०॥ नर ने पुनः उस दैत्येन्द्र से कहा था कि क्या आपके अन्दर हम दोनो से भी अधिक अजित शक्ति विद्यमान है ? आपको भली भाँति समझ लेना चाहिए कि युद्ध स्थल मे नर-नारायण इन दोनों के जीत लेने की शक्ति वाला कोई भी ससार मे नहीं है ॥५१॥ इसके अनन्तर ऐसा वचन श्रवण कर वह दैत्येश्वर अत्यन्त क्रुद्ध होगया था और उसने उसी समय में प्रतिज्ञा की थी कि जिस किसी तरह भी रण में इन दोनो नर नारायणों को जीत लूँगा ॥५२॥ इतना वचन कह कर ही उस महान् आत्मा वाले दितीश्वर ने उस वनान्त मे बल को स्थापित कर अपने धनुष को चढ़ाकर और धनुष की डोरी को खींच कर, परम घोर तल ध्वनि की थी ॥५३॥ इसके उपरान्त नर ने अजगव चाप को आनमित करके बहुत से पैनी नोंक वाले बाणो को उस पर चढ़ा कर छोड़ दिया था किन्तु उस दैत्य ने अपने तपनीय पुङ्ख वाले अप्रतिम बाणों से छेदन कर दिया था ॥५४॥ जिस समय मे नर ने उस युद्ध स्थल मे अनुपम दैत्येश्वर के द्वारा अपने छोड़े हुए बाणों को छिन्न हुए देखा था नर को बड़ा भारी

क्रोध आया था और फिर उन्होंने अपने महा धनुष को समानमित करके अन्य अनेक बाणों को छोड़ा था ॥५५॥ नर ने एक बाण छोड़ा तो दितिजेश्वर ने दो छोड़े थे। धर्म पुत्र नर ने तीन छोड़े तो दितीश ने चार बाण छोड़े थे। नर ने पाँच बाण छोड़े तो दैत्यनाथ ने बड़े ही निशित (पैने-सीधे) छै बाण छोड़ दिये थे ॥५६॥

स चर्षिमुख्यो द्विचतुश्च दैत्ये नरस्तु षट त्रीणि च दैत्यमुख्यः।
षट सप्त चाष्टौ नव षण्नरेश द्विसप्तति दैत्यपतिः ससर्ज ॥५७
शत नरस्त्रीणि शतानि दैत्यः षड् धर्मपुत्रो दश दैत्यराजः।
ततोऽप्यसख्येयतरान्हिवाणान्मुमोचतुस्तौसुभृशहिकोपात् ॥५८
ततो नरो बाणगणैरसख्यैरवास्तरद्भूमिमथो दिशः खम्।
स चापि दैत्यप्रवरः पृषत्कैश्चिच्छेद वेगात्तपनीयपुङ्खैः ॥५९
ततः पतत्रिभिर्वीरो सुभृश नरदानवौ।
तदा वरास्त्रैर्युध्येता घोररूपैः परस्परम् ॥६०
ततस्तु दैत्येनवरास्त्रपाणिनाचापेनियुक्त तु पितामहास्त्रम्।
नरस्तु चापे परमायुधे पुनर्युयोज नारायणमस्त्रमुग्रम् ॥६१
दैत्याधिपेनाथ पुनर्महास्त्रमाग्नेयमाजौ युगपत्प्रयुक्तम्।
महेश्वरास्त्रं पुरुषोत्तमेन सम समाहृत्य निपेततुस्तौ ॥६२
ब्रह्मास्त्रे तु प्रशमिते प्रह्लादः क्रोधमूर्छितः।
गदा प्रगृह्य तरसा प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥६३
गदापाणि समायान्त दैत्यं नारायणस्तदा।
दृष्ट्वा तत्पृष्ठतश्चक्रे नर योद्धु मनाः स्वयम् ॥६४
ततो दितीशः सगदः समाद्रवत्सशार्ङ्गबाण तपसा निधानम्।
ख्यात पुराणर्षिमुदारविक्रमं नारायण नारद लोकपालम् ॥६५

उस ऋषियों में प्रमुख नर ने दैत्य पर दो और चार छोड़े तो दैत्यों के प्रधान ने छै और तीन अर्थात् नौ बाण छोड़ दिये थे। नर ने छै-सात-आठ—नौ और छै बाण छोड़े तो दैत्यपति ने बहत्तर बाणों को छोड़ दिया था ॥५७॥ नर ने सौ तो दैत्य ने तीन सौ, धर्मपुत्र ने छै नौ दैत्य राज ने दश छोड़े थे। इसके भी अनन्तर कोप से उन दोनों ने ही

असख्य बाणों को निरन्तर छोड दिया था ॥५८॥ इसके अनन्तर नर ने बाणों के समूह से भूमि मण्डल को—आकाश को और दिशाओं को ढक दिया था। उस दैत्यो मे श्रेष्ठ ने भी अपने छोडे हुए बाणों से जिनमें तप-नीय के पुख थे बडे वेग से छिन्न कर दिया था ॥५६॥ इसके उपरान्त उन दोनो नर और दानव ने जो कि दोनों ही महान् वीर थे अपने पत-त्रियो के द्वारा और घोर स्वरूप वाले वरास्त्रों के द्वारा उस समय में परस्पर मे अत्यन्त भीषण युद्ध किया था ॥६०॥ इसके अनन्तर उन दैत्यराज ने जिसके हाथ में परम श्रेष्ठ अस्त्र था, अपने चाप पर पिता-महास्त्र को नियोजित किया था। इधर नर ने भी अपने परमायुध चाप पर अत्यन्त उग्र नारायणास्त्र को पुन. योजित किया था ॥६१॥ फिर दैत्यों के स्वामी ने आग्नेय महास्त्र को एक ही साथ युद्ध मे प्रयुक्त किया था। उधर पुरुषोत्तम ने महेश्वरास्त्र को एक ही साथ समाहृत करके वे दोनों छोड दिये थे ॥६२॥ ब्रह्मास्त्र जब प्रशामित हो गया तो प्रह्लाद क्रोध से मूर्च्छित हो गया था। उस समय बडे वेग से गदा लेकर रथोत्तम से दैत्य समक्ष मे आ गया था। उस क्षण में हाथ मे गदा ग्रहण करके आते हुए दैत्य को नारायण ने देखा था उस समय मे नर को पीछे की ओर करके स्वय ही उससे युद्ध करने का मन में विचार किया था ॥६४॥ इसके अनन्तर गदा को हाथ में लेकर दैत्य तप के निधान शाङ्‌र्ग बाण पर एकदम टूट पडा था। हे नारद ! पुराण ऋषि ख्यात और उदार विक्रम वाले तथा लोकों के पालक नारायण थे उन पर दैत्यराज ने प्रहार किया था ॥६५॥

८—प्रहलाद को वर प्रदान वर्णन

शाङ्‌र्गपाणिनमायान्तं दृष्ट्वाग्रे दानवेश्वरः।
परिभ्राम्य गदा वेगान्मूर्ध्नि साध्यमताडयत् ॥१
ताडितस्याथ गदया धर्मपुत्रस्य नारद।
नेत्राभ्यामपतद्वारि वह्निवर्णनिभं भुवि ॥२

मूर्ध्नि नारायणस्यापि सा गदा दानवार्पिता ।
जगाम शतधा ब्रह्मञ्छैलशृङ्गे यथाऽशनिः ॥३
ततो निवृत्य दैत्येन्द्रः समास्थाय रथं द्रुतम् ।
आदाय कार्मुकं वीरस्तूणाद्बाणं समाददे ॥४
आनम्य चापं वेगेन गार्द्धपत्राञ्छिलीमुखान् ।
मुमोच साध्याय तदा क्रोधान्धीकृतमानसः ॥५
तानापतत एवाशु बाणांश्चन्द्रार्द्धसन्निभान् ।
चिच्छेद बाणैरपरैर्निर्बिभेद च दानवम् ॥६
ततो नारायणं दैत्यो दैत्यं नारायणः शरैः ।
आविध्येतां तदाऽन्योऽन्यं मर्मभिद्भिरजिह्मगैः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—उस समय में शार्ङ्गपाणि को आते हुए देखकर दानवेश्वर ने बड़े ही वेग से अपनी गदा को घुमाकर सामने मस्तक में जो साध्य हो इस तरह से उस गदा से प्रहार किया था ॥१॥ हे नारद ! गदा से ताड़ित धर्म्मपुत्र के दोनों नेत्रों से भूमि पर अग्नि की वृष्टि के तुल्य जल गिरने लगा था ॥२॥ दानव के द्वारा छोड़ी हुई वह गदा जो कि नारायण के मस्तक पर प्रयुक्त की गई थी । हे ब्रह्मन् ! शैल के शिखर पर वज्र की भाँति सैकड़ों टुकड़े वाली होकर गिर गई ॥३॥ इसके पश्चात् वह दैत्येन्द्र वहाँ से लौटकर शीघ्र अपने रथ पर स्थित हो गया था और फिर उस वीर ने अपना धनुष उठाकर तूणीर से उसने बाण ग्रहण किया था ॥४॥ फिर उसने बड़े ही वेग से चाप को आनमित करके उस समय में क्रोध के आवेश से अन्धीभूत मन वाले दैत्यराज ने गार्घपात्र वाले शिलीमुखों को अपने लक्ष्य पर छोड़ दिया था ॥५॥ आधे चन्द्रमा के समान उन बाणों को आते हुए देखकर नारायण ने अपने दूसरे बाणों के द्वारा छिन्न कर दिया था और उस दानव को भी विद्ध कर दिया था ॥६॥ इसके अनन्तर ऐसा उन दोनों में महान् भीषण युद्ध हुआ था कि दैत्य तो नारायण को और नारायण दैत्येन्द्र को परस्पर में अजिह्मग मर्मभेदी शरों के द्वारा विद्ध कर रहे थे ॥७॥

ततोऽम्बरे सन्निपातो देवानामभवन्मुने ।
दिदृक्षूणा तदा युद्धं लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥८
तत. सुराणा दुन्दुभ्य. खेऽवाद्यन्त महास्वनाः ।
पुष्पवर्षमनौपम्य मुमुचुः साध्यदैत्ययो. ॥९
तत पश्यत्सु दैत्येषु गगनस्थेषु तावुभौ ।
अयुध्येता महेष्वासौ प्रेक्षकप्रीतिवर्द्धनम् ॥१०
बबन्धतुस्तदाऽऽकाश तावुभौशरवृष्टिभिः ।
दिशश्च विदिशश्चैव छादयेता शरोत्करैः ॥११
ततो नारायणश्चापसमाकृष्य महामुने ।
बिभेद मार्गणैस्तीक्ष्णैः प्रह्लाद सर्वमर्मसु ॥१२
तदा दैत्येश्वरः क्रुद्धश्चापयानम्य वेगवान् ।
बिभेद हृदये बाह्वोर्वदने च नरोत्तमम् ॥१३
ततोऽस्यतो दैत्यपते. कार्मुक मुष्टिबन्धनात् ।
चिच्छेदैकेन बाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चसा ॥१४

हे मुने ! इसके अनन्तर अन्तरिक्ष मे देवगण का समुदाय एकत्रित हो गया था जो कि उस समय मे लघु-चित्र तथा सुष्ठु युद्ध के देखने की इच्छा वाले थे ॥८॥ इसके उपरान्त आकाश में महान् ध्वनि वाली देवगण की दुन्दुभियाँ बजने लगी थीं और साध्य (नारायण) तथा दैत्य दोनों के ऊपर आकाश से पुष्पो की वृष्टि होने लगी थी ॥९॥ आकाश मे स्थित दैत्यो के देखने पर वे दोनों महा धनुषधारी परस्पर में युद्ध कर रहे थे जो कि देखने वाले लोगों की प्रीति का बढाने वाला युद्ध हो रहा था ॥१०॥ शरो की वर्षा से उन दोनों ने उस समय मे आकाश को बाँध दिया था और शरो के उत्करों से दिशा तथा विदिशाओं को भी समाच्छादित कर दिया था ॥११॥ हे महा मुनिवर ! इसके अनन्तर

पश्चात् दैत्यपति के कार्मुक को जो कि मुष्टि बन्धन में था नारायण ने चन्द्र के अर्ध आकार वाले वर्वस युक्त एक ही बाण के द्वारा छिन्न करा दिया था ॥१४॥

अपश्यत धनुश्छिन्नं तापमादाय चापरम् ।
अधिज्य लाघवात्कृत्वा ववर्ष निशितान्छरान् ॥१५
तानप्यस्य शरान्साध्यश्छित्त्वा बाणैरवाकिरत् ।
कार्मुकं च क्षुरप्रेण चिच्छेद पुरुषोत्तमः ॥१६
छिन्नं छिन्नं धनुर्दैत्यस्त्वन्यदन्यत्समाददे ।
समादत्तं तदा साध्यो मुने चिच्छेद लाघवात् ॥१७
संछिन्नेष्वथ चापेषु जग्राह दितिजेश्वरः ।
परिघं दारुणम् दीर्घं सर्वलोहमयं दृढम् ॥१८
परिगृह्याथ परिघं भ्रामयामास दानवः ।
भ्राम्यमाण स चिच्छेद नाराचेन महामुने ॥१९
छिन्ने तु परिघे श्रीमान्प्रह्लादो दानवेश्वरः ।
मुद्गरं भ्राम्य वेगेन प्रचिक्षेप नरोत्तमे ॥२०
तमापतन्तं बलवान्मार्गणैर्दशभिर्मुने ।
चिच्छेद दशधा साध्यः सच्छिन्नो न्यपतद् भुवि ॥२१

जब उस दैत्यराज ने देखा कि मेरा धनुष छिन्न हो गया है तो फिर उसने दूसरा धनुष ग्रहण किया था और बहुत ही शीघ्रता से उसे अधिज्य करके फिर उसने बहुत तीखे बाणों की वर्षा की थी ॥१५॥ साध्य (नारायण) ने उसके उन शरों को भी छिन्न करके अपने छोड़े हुए शरों से ढक दिया था। उसके कार्मुक को भी पुरुषोत्तम ने क्षुरप्र के द्वारा छिन्न कर दिया था ॥१६॥ दैत्यराज जिस धनुष को भी बाण-वृष्टि करने के लिए ग्रहण करता था उसी धनुष को नारायण अपने शरों से छिन्न कर देते थे। इस तरह से उसने जितने भी धनुष ग्रहण किये थे और वे सभी एक-एक करके काट डाले गये थे। हे मुने! दैत्येन्द्र ने जो भी ग्रहण किया उसी को बहुत ही शीघ्रता से साध्यदेव ने काट डाला था ॥१७॥ इस प्रकार से जब दैत्यराज ने देखा कि मेरे सभी

धनुष काट कर फेंक दिये जाते हैं तो उसने फिर महान् दारुण एवं दीर्घ सम्पूर्ण लोहमय तथा अत्यन्त सुदृढ परिघ को दितिजेश्वर ने ग्रहण किया था ॥१८॥ उस महादानव ने परिघ को ग्रहण करके चारों ओर घुमाया था। हे महामुने ! भ्राम्यमाण उस परिघ को नारायण ने अपने नाराच से छिन्न कर दिया था ॥१९॥ जब वह परिघ भी छिन्न भिन्न हो गया था, दानवों के स्वामी श्रीमान् प्रह्लाद ने मुद्गर उठाया था और बड़े वेग से परिभ्रामित करके नरोत्तम के ऊपर प्रक्षिप्त कर दिया था ॥२०॥ उस मुद्गर को अपनी ओर आता हुआ देखकर हे मुने ! बलवान् नारायण ने अपने दश बाणों से उसका छेदन कर दिया था जो कि दश टुकड़ों में टूट कर वह मुद्गर भूमि में गिर गया था ॥२१॥

मुद्गरे वितथे जाते पाशमादाय वेगवान् ।
प्रचिक्षेप नराग्र्याय तं च चिच्छेद धर्मजः ॥२२
पाशे छिन्ने ततो दैत्यः शक्तिमादाय चिक्षिपे ।
तां च चिच्छेद बलवान्क्षुरप्रेण महातपाः ॥२३
छिन्नेषु तेषु शस्त्रेषु दानवोऽन्यन्महद्धनुः ।
समादाय ततो बाणैरवतस्तार नारद ॥२४
ततो नारायणो देवो दैत्यनाथं जगद्गुरुः ।
नाराचेनाजघानाथ हृदयेऽसुरनायकम् ॥२५
स भिन्नहृदयो ब्रह्मन्देवेनाद्भुतकर्मणा ।
निपपात रथोपस्थे तमपोवाह सारथिः ॥२६
स संज्ञां रथोपरेणैव प्रतिलभ्य दितीश्वरः ।
सुदृढं चापमादाय भूयो योद्धुमुपागतः ॥२७
तमागतं स निरीक्ष्य प्रत्युवाच नराग्रजः ।
गच्छ दैत्येन्द्र योत्स्यामः प्रातस्त्वाह्निकमाचर ॥२८

जब मुद्गर भी व्यर्थ हो गया तो उसने पाश का ग्रहण किया था और बड़े ही वेग से युक्त होकर उस नरशिरोमणि के ऊपर उसका प्रक्षेप किया था उसको भी धर्मपुत्र ने छिन्न कर दिया था ॥२२॥ पाश के छिन्न हो जाने पर उस दैत्यराज ने शक्ति को ग्रहण करके

उसका प्रक्षेप किया था उसको भी महान् तपस्वी ने अपनी बल-शालिता से क्षुरप्र के द्वारा छेदन कर दिया था ॥२३॥ इन समस्त शस्त्रों के छिन्न-भिन्न हो जाने पर दानवराज प्रह्लाद ने एक दूसरे महान् धनुष को लेकर हे नारद ! फिर बाणों के द्वारा एकदम समाच्छादित कर दिया था ॥२४॥ इसके अनन्तर नारायण देव ने जो कि इस सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं और असुरों को ताप पहुँचाने वाले प्रभु हैं उस दैत्यों के नाथ को हृदय में नाराच से हनन किया था ॥२५॥ हे ब्रह्मन् ! अद्‌भुत कर्मों के करने वाले देव के द्वारा भिन्न हृदय वाला वह दैत्यराज रथ के समीप में ही निपतित हो गया था। तब रथ के वाहक उसके सारथि ने उसको उठाया था ॥२६॥ वह दितीश्वर थोड़े ही काल में होश-हवास ठीक करके फिर उसने एक अत्यन्त दृढ़ चाप ग्रहण किया था और पुनः वह युद्ध करने के लिये वहाँ पर उपस्थित हो गया था उस दैत्यनाथ को वहाँ पर आया हुआ देखकर नरों में प्रमुख प्रभु ने उससे कहा था—हे दैत्येन्द्र ! अब तो तुम चले जाओ। अपना आह्निक कर्म करो। प्रातःकाल के समय में पुनः युद्ध करेंगे ॥२७-२८॥

एवमुक्तो दितीशस्तु साध्येनाद्‌भुत कर्मणा ।
जगाम नैमिषारण्यं क्रियां चक्रे तदाऽऽह्निकीम् ॥२९

एवं युध्यति देवे च प्रह्लादोऽप्यास्मरन्मुने ।
रात्रौ चिन्तयते युद्धे कथं जेष्यामिदाम्भिकम् ॥३०

एवं नारायणेनासौ सहायुध्यत नारद ।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दैत्यो देवं न चाजयत् ॥३१

ततो वर्षसहस्रान्ते ह्यजिते पुरुषोत्तमे ।
पीतवाससमभ्येत्य दानवो वाक्यमब्रवीत् ॥३२

किमर्थं देवदेवेश साध्यं नारायणं हरिम् ।
विजेतुं नाद्य शक्नोमि एतन्मे कारणं वद ॥३३

दुर्जयोऽसौ महाबाहुस्त्वया प्रह्लाद धर्मजः ।
साध्यो विप्रवरो धीमान्मृधे देवासुरैरपि ॥३४

यद्यसौ दुर्जयो देव मया साध्यो रणाजिरे ।
तत्कथ यत्प्रतिज्ञात तदसत्य भविष्यति ॥३५

इस प्रकार से साध्यदेव अद्भुत कर्मकारी प्रभु नारायण के द्वारा कहे जाने पर वह दितीश फिर नैमिषारण्य मे चला गया था और वहाँ उस समय मे उसने अपनी आह्निक क्रिया सम्पन्न की थी ॥२६॥ हे मुने ! इस प्रकार से देव के युद्ध करने पर प्रह्लाद ने स्मरण किया था कि किस प्रकार से अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ था । उस युद्ध के विषय मे वह रात्रि के समय मे चिन्ता करता था कि इस दाम्भिक को मैं किस प्रकार से जीत सकूँगा ॥३०॥ हे नारद ! इस प्रकार से इस दैत्यराज ने भगवान् नारायण के साथ युद्ध किया । वह महान् भीषण घोर युद्ध एक सहस्र दिव्य वर्ष पर्यन्त निरन्तर चलता रहा था किन्तु फिर भी वह दैत्याधिप देव को जीत नही सका था ॥३१॥ इसके अनन्तर जब कि एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये थे और वह दैत्यराज देव को न जीत सका था तो उन पीत वस्त्रो के धारण करने वाले प्रभु के समीप मे उपस्थित होकर वह दानव यह वाक्य बोला—॥३२॥ दानवराज ने प्रार्थना की थी—हे देवों के देवेश्वर ! इसका क्या अभिप्राय है कि मै साध्य नारायण हरि को आज विजित नही कर सकता हूँ ? इसका जो भी कुछ कारण हो वह आप मुझे बतलाइये ॥३३॥ पीताम्बरधारी प्रभु ने कहा—हे प्रह्लाद ! यह धर्म का पुत्र महान् बाहुओं वाले तुम्हारे द्वारा दुर्जय ही है । यह साध्य विप्रो मे परम वरिष्ठ और श्रीमान् हैं । इनको युद्ध स्थल मे कोई भी देव तथा असुर विजित नही कर सकता है ॥३४॥ प्रह्लाद ने कहा—यद्यपि यह देव दुर्जय है तो भी मेरे द्वारा तो रणाङ्गण मे साध्य होने ही चाहिए क्योंकि मैंने तो यह प्रतिज्ञा की है । वह मेरा प्रतिज्ञात वचन कैसे पूर्ण होगा ? वह तो अब असत्य ही हो जायगा ॥३५॥

हीनप्रतिज्ञो देवेश कथं जीवेत मादृशः ।
तस्मात्तवाग्रतो विष्णो करिष्ये कायशोषणम् ॥३६
इत्येवमुक्त्वा वचनं देवाग्रे दानवेश्वरः ।
शिरःस्नातस्तदा तस्थौ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥३७

ततो दैत्यपतिं विष्णुः पीतवासाऽब्रवीद्वचः ।
गच्छ जेष्यसि भक्त्या त न युद्धेन कदाचन ॥३८
असौ यद्य जयो देव त्रैलोक्येप्वपि सुव्रत ।
न स्यातु त्वत्प्रसादेन शक्यं किमुत रोषतः ॥३९
मया जित देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत ।
जितोऽय त्वत्प्रसादेन शक्रः किमुत धर्मजः ॥४०
सोऽह दानवशार्दूल लोकानामनुकम्पया ।
धर्मप्रवर्त्तनार्थाय तपश्चर्या समास्थितः ॥४१
तस्माद्यदीच्छसि जय तमाराधय दानव ।
त पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूप धर्मजम् ॥४२

हे देवेश ! हीन प्रतिज्ञा वाला मैं और मुझ जैसा व्यक्ति जो कभी असत्य प्रतिज्ञा नहीं किया करता है अब लोक मे कैसे जीवित रहेगा । हे भगवन् विष्णो ! यदि ऐसा ही होगा तो मैं आपके ही समक्ष में अपनी काया का शोषण कर डालूँगा। किन्तु असत्य प्रतिज्ञा वाला होकर इस लोक में जीवित नही रह सकूँगा ॥३६॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस प्रकार के वचन कह कर ही वह दानवेश्वर उन भगवान् पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु के आगे ही शिर से स्नान किया हुआ उस समय मे सनातन ब्रह्म का ग्रहण करते हुए स्थित हो गया था ॥३७॥ इसके अनन्तर पीत वस्त्रों के धारण करने वाले भगवान् विष्णु उस दैत्यों के स्वामी से यह वचन बोले—जाओ, तुम केवल मेरी भक्ति करने के ही प्रभाव से उसको जीत लोगे किन्तु युद्ध के द्वारा तुम किसी भी प्रकार से उसको न जीत सकोगे ॥३८॥ प्रह्लाद ने कहा—हे देव ! आप तो सुन्दर व्रत वाले प्रभु हैं । यदि यह त्रैलोक्य मे भी अजेय हैं तो भी आपके प्रसाद से स्थित नही हो सकते हैं फिर रोष करने से क्या लाभ है ॥३९॥ हे देव-देव ! हे सुव्रत ! मैंने तो इन तीनो लोकों को भी जीत लिया है । आपके ही परम प्रसाद के बल से मैंने देवराज इन्द्र को भी जीत लिया था । यह धर्मपुत्र बिचारा क्या है ॥४०॥ पीताम्बरधारी प्रभु ने कहा—हे दानवों मे शार्दूल ! लोकों पर अनुकम्पा करने के लिये ही यह मैं हो ·

तो हूँ। धर्म को लोकों में प्रवृत्ति कराने के लिये ही मैं इस स्वरूप में संस्थित होकर तपश्चर्या करने के कर्म में समास्थित हो गया हूँ ॥४१॥ हे दानव ! यदि तुम उन पर अपना विजय करना ही चाहते हो तो तुम्हारा इसलिए अब यही वर्त्तव्य है कि उनकी ही आराधना करो। आप उनको उनकी भक्ति करके उस भक्ति के ही बल से उनको जीत सकोगे। अतएव अब उन धर्मपुत्र की सेवा करो ॥४२॥

इत्युक्तः पीतवस्त्रेण दानवेन्द्रो महात्मना।
अब्रवीद्वचन हृष्टः समाहूयान्धक मुने ॥४३
दैत्याश्च दानवाश्चैव परिपाल्यास्त्वयान्धक।
मयोत्सृष्टमिद राज्य प्रतीच्छ त्व महीभुज ॥४४
इत्येवमुक्तो जग्राह राज्य हैरण्यलोचनः।
प्रह्लादोऽपि तदाऽगच्छत्पुण्य बदरिकाश्रमम् ॥४५
दृष्ट्वा नारायण देव नर च दितिजेश्वरः।
कृताञ्जलि पुटो भूत्वा ववन्दे चरणौ तयोः ॥४६
तमुवाच महातेजा वाक्य नारायणोऽव्ययः।
किमर्थं प्रणतोऽसीह मामजित्वा महासुर ॥४७
कस्त्वा जेतु प्रभो शक्त कस्त्वत्तः पुरुषोऽधिकः।
त्व हि नारायणोऽनन्तः पीतवासा जनार्दनः ॥४८
त्वं देवः पुण्डरीकाक्षस्त्वं विष्णुः शार्ङ्गचापधृक्।
त्वमव्ययो महेशान शाश्वतः पुरुषोत्तम ॥४९

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—महान् आत्मा वाले पीताम्बरधारी प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वह दानवेन्द्र परम प्रसन्न होकर हे मुने! अन्धक को बुलाकर यह वचन बोला—॥४३॥ प्रह्लाद ने कहा—हे अन्धक ! ये समस्त दैत्यगण और दानव लोग अब तुम्हारे द्वारा ही परिपालन करने के योग्य है। मैंने तो अब यह राज्य शासन का त्याग कर दिया है। हे महीभुज ! अब तुम ही इसे ग्रहण करो ॥४४॥ इस तरह से प्रह्लाद के द्वारा कहे [illegible] उस हैरण्य लोचन ने उस राज्य के सम्पूर्ण भार को ग्रहण कर लिया था और वह प्रह्लाद भी फिर पुनः

परम पुण्यमय उस बदरिकाश्रम मे चला गया था ॥४५॥ फिर उस दितिजेश्वर ने देव नारायण और नर का दर्शन किया था और कृताञ्जलि पुट होकर उन दोनो नर नारायण के चरणो की उसने वन्दना की थी ॥४६॥ महान् तेज से युक्त अविनाशी भगवान् नारायण उससे यह वचन कहने लगे—हे महासुर ! युद्ध भूमि मे मुझको पराजित न करके इस समय मे यहाँ पर यह प्रणत भाव से युक्त क्यो हो रहे हो—इसका क्या प्रयोजन है ? ॥४७॥ प्रह्लाद ने कहा—हे प्रभो ! मैं अभी तक आपको पहिचान ही नही सका था। आपको मैंने अब जान लिया है। हे स्वामिन् ! आपको युद्ध भूमि मे कौन जीत सके की शक्ति रखता है अर्थात् ऐसा कोई भी शक्तिशाली है ही नही ? आप से अधिक बलवान् कोई भी पुरुष नही है। आप तो पीताम्बरधारी-अनन्त एवं जनों की पीड़ा हरण करने वाले साक्षात् नारायण हैं ॥४८॥ आप ही पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले विष्णु हैं जो शार्ङ्ग चाप को धारण किया करते हैं। आप ही अव्यय स्वरूप वाले महेश्वर हैं, हे पुरुषोत्तम ! आप तो शाश्वत हैं आपके ऊपर कोई भी विजय प्राप्त नहीं कर सकता है ॥४९॥

त्वा योगिनश्चिन्तयन्ति चार्चयन्ति मनीषिणः ।
जपन्ति स्नातकास्त्वा च यजन्ति त्वा च याज्ञिकाः ॥५०

त्वमच्युतो हृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः ।
महामीनो हयशिरास्त्वमेव वरकच्छपः ॥५१

परितुष्टोऽस्मि ते दैत्य स्तवेनानेन सुव्रत।
भक्त्या त्वनन्यया चाहं त्वया दैत्य पराजितः ॥५६
पराजितश्च पुरुषो दैत्य दण्डं प्रयच्छति।
दण्डार्थं ते प्रदास्यामि वरं वृणु यमिच्छसि ॥५७

हे प्रभो ! आपका ही योगी लोग समाधि में सस्थित होकर ध्यान किया करते हैं और महामनीषी लोग आपकी ही अर्चना करते हैं। स्नातक लोग भी आपका ही जाप करते हैं तथा याज्ञिक गण यज्ञादि में आपका ही यजन करते हैं ॥५०॥ आप तो अच्युत हैं और आप हृषीकेश-चक्रपाणि तथा धरा के धारण करने वाले हैं। महामीन—हय के शिर वाले और वरिष्ठ कच्छप भी आप ही हैं अर्थात् मत्स्यादि के समस्त जो अवतार धारण किये हैं वे सब आप ही ने किये हैं ॥५१॥ हिरण्याक्ष के सहार करने वाले कारणवश सूकर अवतारधारी श्रीमान् भगवान् आप ही हैं। मेरे पिता हिरण्यकशिपु का संहार करने के लिये आप ने ही नृसिंह स्वरूप धारण किया था और मेरे पिता का उदर विदीर्ण किया था ॥५२॥ ब्रह्मा–त्रिनेत्र अमरों का राजा–अग्नि–प्रेतों का अधिप–जल का स्वामी वरुण–वायु–सूर्य्य–चन्द्रमा–स्थावर पर्वत आदि तथा जङ्गम जीवमात्र जो भी कुछ है वे सब आप ही हैं। आप विभु हैं–सबके स्वामी हैं और गरुड़ध्वज हैं ॥५३॥ आप ही पृथ्वी हैं—ज्योति—आकाश और जल आप ही बनकर सहस्रों स्वरूपों में आप इस समस्त जगत् में व्याप्त हो रहे हैं। हे माधव ! आपको जीतने की किसी की भी सामर्थ्य नहीं है। ऐसा कौन है जो आपको जीत लेगा ? अर्थात् कोई भी नहीं है ॥५४॥ हे हृषीकेश ! भक्तिभाव से यदि आप सन्तुष्ट होते हैं तो हे जगद्गुरो ! आप जीते जाने को प्रसक्त हो सकते हैं क्योंकि आप तो सब में व्याप्त रहने वाले और अविनाशी हैं अन्यथा आपके जीतने का अन्य कोई भी उपाय एवं साधन नहीं है ॥५५॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे सुव्रत ! हे दैत्यवर ! मैं इस समय आपके इस स्तवन से परम प्रसन्न आप पर हो गया हूँ। हे दैत्य ! तुमने अपनी अनन्य भक्ति की भावना से मुझे अब पराजित कर दिया है ॥५६॥ हे दैत्यराज ! ऐसा सार्वदिक

नियम चला आ रहा है कि जो भी पुरुष पराजित हो जाया करता है वह विजेता पुरुष को कुछ दण्ड दिया करता है। क्योंकि अब आपकी अनन्य भक्ति से मैं पराजित हो गया हूँ तो मैं दण्ड देने के लिये अर्थात् उसी दण्ड के स्वरूप में वरदान देता हूँ। अब जो भी कुछ आप चाहते हों मुझसे वरदान माँग लीजिए ॥५७॥

नारायण वरं याचे यस्त्वं मे दातुमर्हसि ।
तन्मे पापं लयं यातु शारीरं मानसं तथा ॥५८
वाचिकं च जगन्नाथ यत्त्वया सह युध्यतः ।
नरेण यद्वाऽप्यभवद्वरमेनं प्रयच्छ मे ॥५९
एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम् ।
द्वितीयं प्रार्थय वरं तं ददामि तवासुर ॥६०
या या जायेत मे बुद्धिः सा सा विष्णो त्वदाश्रिता ।
देवार्चने च निरता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ॥६१
एवं भविष्यत्यसुर वरमन्यं यमिच्छसि ।
तं वृणीष्व महाबाहो प्रदास्याम्यविचारयन् ॥६२
सर्वमेव मया लब्धं त्वत्प्रसादादधोक्षज ।
त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि रतिरस्तु सदा मम ॥६३

भगवान् नारायण के प्रसन्न होकर वरदान माँगने के वचन का श्रवण कर प्रह्लादजी ने कहा—हे नारायण ! अब मैं आप से वरदान की याचना करता हूँ जो कि आप मुझे प्रदान करने के योग्य हैं। हे भगवन् ! मैंने तो अत्यधिक दुष्टतापूर्ण कर्म किया है कि मैंने आपके साथ युद्ध करते हुए आप पर अनेकानेक शस्त्राघात किये थे और न मालूम नर के साथ युद्ध करने में भी मुझसे कितने पाप हुए हैं सो हे जगन्नाथ ! जो भी मेरा वाचिक—शारीरिक और मानसिक पाप हुआ है वह सब लय को प्राप्त हो जावे—मुझे आप यही वरदान इस समय में प्रदान कीजिए ॥५८-५९॥ भगवान् नारायण ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! ऐसा ही होगा और तुम्हारे सम्पूर्ण पाप संक्षय को प्राप्त हो जायेंगे। अब कोई दूसरा वरदान भी माँग लो। हे असुर ! उसे भी मैं तुमको दे दूँगा

॥६०॥ प्रह्लाद ने कहा—हे भगवन् ! दूसरा वरदान तो मैं यही चाहता हूँ कि मेरी जो-जो भी बुद्धि हो वही-वही हे विष्णो ! आप के ही आश्रय वाली उत्पन्न होनी चाहिए। मेरी बुद्धि सर्वदा देवगणों के अर्चन करने में संलग्न रहे और मेरा चित्त सदा आपके ही चरणों में समासक्त होवे तथा आपकी भक्ति ही में मेरी बुद्धि परायण रहा करे और अन्य सांसारिक प्रपञ्चों में न लगे ॥६१॥ भगवान् नारायण ने कहा—हे असुर वर ! इसी प्रकार से होगा। अब कोई अन्य वरदान भी जो कुछ आप चाहते हों उसे भी माँगलो। हे महान् बाहुओं वाले ! मैं इस समय आपकी भक्तिभाव से इतना अधिक प्रसन्न हूँ कि जो भी कुछ तुम माँगोगे उसे बिना ही कुछ आगा-पीछा सोचे तथा विचार किये हुए तुमको दे दूँगा ॥६२॥ प्रह्लाद ने कहा—हे अधोक्षज ! अब तो मैंने आपके प्रसाद से सभी कुछ प्राप्त कर लिया है। हे भगवन् ! आपके चरण कमलों में मेरी रति सदा रहे—यही मेरी इच्छा है ॥६३॥

एवमस्त्वपर चास्तु नित्यमेवाक्षयोऽव्ययः ।
अजरश्चामरश्चापि मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥६४
गच्छ त्वं दैत्यशार्दूल स्वमावासं क्रियारतः ।
न कर्म बन्धो भवतो मच्चित्तस्य भविष्यति ॥६५
प्रशासयन्नमून्दैत्यान्राज्यं पालय शाश्वतम् ।
स्वजातिसदृश दैत्य कुरु धर्ममनुत्तमम् ॥६६
इत्युक्तो लोकनाथेन प्रह्लादो देवमब्रवीत् ।
कथं राज्य समावास्ये परित्यक्ते जगद्गुरो ॥६७
तमुवाच जगत्स्वामी गच्छ त्व निजमाश्रमम् ।
हितोपदेष्टा दैत्यानां दानवानां तथा भव ॥६८
नारायणेनैवमुक्तः स तदा दैत्य नायकः ।
प्रणिपत्य विभुं तुष्टो जगाम नगरं निजम् ॥६९
दृष्टः सभाजितश्चापि दानवैरन्धकेन च ।
निमन्त्रितश्च राज्याय न प्रत्यैच्छत्स नारद ॥७०

राज्यं परित्यज्य महासुरेन्द्रो न्ययोजयत्सत्पथि दानवेन्द्रान् ।
ध्यायन्स्मरकेशवमप्रमेयं तस्थौ तदा योगविशुद्धदेहः ॥७१
एवं पुरा नारद दानवेन्द्रो नारायणेनोत्तमपूरुषेण ।
पराजितश्चापिविमुच्यराज्यतस्थौमनोधार्तरसन्निवेश्य ॥७२

श्री भगवान् नारायण ने कहा—इसी प्रकार ही होगा । दूसरा जो तुम्हारा वरदान है वह भी इसी प्रकार से होगा जैसा तुम चाहते हो । आप नित्य ही अक्षय और अव्यय होगे । आप जरा से रहित तथा मेरे प्रसाद से अमर भी हो जावेंगे ॥६४॥ हे दैत्यों में शार्दूल के समान शिरोमणि ! अब आप जाइये । अपने निवास स्थान में जाकर अपने कर्म में निरत हो जाइये । आपका चित्त सदा मेरे चरणों में ही रत रहेगा अतएव आपको कर्मों का बन्धन नहीं होगा ॥६५॥ इन समस्त दैत्यों के वर्ग पर प्रशासन करते हुए आप अपने शाश्वत राज्य का पालन-पोषण करो । हे दैत्यवर ! अपनी जाति के सदृश जो परम श्रेष्ठ धर्म हो उसको करो क्योंकि जाति धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म माना गया है ॥६६॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—लोकों के नाथ के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर पुनः प्रह्लाद ने देववर नारायण से कहा—हे जगद्गुरो ! मेरे द्वारा परित्यक्त किया हुआ राज्य मैं पुनः इसे कैसे प्राप्त करूँगा क्योंकि मैंने अपनी इच्छा से ही इसका त्याग कर दिया था ॥६७॥ जगत् के स्वामी भगवान् नारायण ने उस दैत्यराज से कहा था कि तुम अपने आश्रम में चले जाओ और दैत्यों तथा दानवों के हित के उपदेश करने वाले उसी प्रकार से पूर्व की भांति होकर रहो ॥६८॥ इस तरह से जब भगवान् नारायण के द्वारा कहा गया तो उसी समय में वह दैत्यराज जाने को प्रस्तुत हो गया था । उसने नारायण प्रभु के चरणों में प्रणिपात किया और परम तुष्ट होकर अपने नगर को चला गया था ॥६९॥ वहाँ पर सबने उसके दर्शन किये तथा फिर समस्त दानवों के द्वारा और अन्धक के द्वारा भी उसका बड़ा भारी स्वागत सत्कार किया गया था । पुनः राज्य का प्रशासन संभालने के लिये सभी ने उनको बुलाया था किन्तु हे नारद ! उस प्रह्लाद ने उस राज्य के प्राप्त करने की इच्छा ही नहीं

की थी ।।७०।। उस महान् असुरेन्द्र ने राज्य का परित्याग करके दानवेन्द्रों को सन्मार्ग मे नियोजित किया था। जो कभी प्रमा का विषय नहीं होते ऐसे अप्रमेय भगवान् केशव का ध्यान तथा सतत स्मरण करते हुए उस समय में योग से विशुद्ध देह वाले होकर संस्थित हो गये थे ।।७१।। हे देवर्षि नारद ! इस प्रकार से पहले वह दानवों का राजा प्रह्लाद उत्तम पुरुष नारायण के द्वारा पराजित होकर भी अपने समस्त विशाल वैभव सम्पन्न राज्य का त्याग करके भगवान् धाता मे अपना मन लगाते हुए वहीं पर संस्थित हो गया था ।।७२।।

—०*०—

६--देव-दानव युद्ध वर्णन

नेत्रहीनः कथं राज्ये प्रह्लादेनान्धको मुने ।
अभिषिक्तो जानताऽपि राजधर्मं सनातनम् ।।१
लब्धचक्षुरसौ भूयो हिरण्याक्षेऽपि जीवति ।
ततोऽभिषिक्तो दैत्येन प्रह्लादेन निजे पदे ।।२
स च राज्येऽभिषिक्तस्तु किमाचरतसुव्रत ।
देवादिभिः सह कथं समास्ते तद्वदाऽऽशु मे ।।३
राज्येभिषिक्तो दैत्येन्द्रो हैरण्याक्षस्तदाऽन्धकः ।
तपसाऽऽराध्य देवेशं शूलपाणिंत्रिलोचनम् ।।४
अजेयत्वमवध्यत्व सुरसिद्धर्षिपन्नगैः ।
अदाह्यत्वं हुताशेन अक्लेद्यत्व जलेन च ।।५
एवं स वरलब्धस्तु दैत्यो राज्यमपालयत् ।
शुक्रं पुरोहितं कृत्वा समध्यास्ते ततोऽन्धकः ।।६
ततश्चक्रं समुद्योगे देवानामन्धकोऽसुरः ।
आक्रम्य वसुधां सर्वान्मनुजेन्द्रान्पराजयत् ।।७

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—हे मुने ! अन्धक तो नेत्रों से हीन था। ऐसे अन्धे पुरुष को जिसका कि राज्यासन पर बैठने का शास्त्रों मे बड़ा भारी दोष बतलाकर निषेध किया है प्रह्लाद ने अपने राज्यासन पर

अभिषिक्त कर दिया था क्योंकि प्रह्लाद तो महा मनीषी राजा था तथा परम आस्तिक भी था जोकि राजधर्मों को भली भाँति जानता भी था कि सनातन पद्धति क्या होती है ?॥१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—राजा हिरण्याक्ष के जीवित रहने पर भी यह पुनः अपने चक्षु प्राप्त कर लेने वाला हो गया था। इसी लिये जबकि इसे दृष्टि प्राप्त हो गई थी तो दैत्यराज प्रह्लाद ने अपने पद पर इसका अभिषेक कर दिया था ॥२॥ नारद मुनि ने कहा—हे सुव्रत ! जब वह राज्यासन पर अभिषिक्त हो गया था तो उसने उस समय में क्या आचरण किया था ? वह देवगण आदि सब के साथ कैसे रहता था ? हे भगवन् ! यह सब समाचार जो भी उस समय में घटित हुए थे कृपा करके शीघ्र ही मुझे बतलाइये ॥३॥ पुलस्त्य ऋषि ने कहा—राज्यासन पर दैत्येन्द्र हिरण्याक्ष का अभिषेक किया गया था। उस समय में यह अन्धक देवों के स्वामी—तीन लोचनों वाले भगवान् शूल पाणि की तपश्चर्या के द्वारा आराधना करने में संलग्न हो गया था। भगवान् शम्भु के उनके प्रसन्न हो जाने पर इसने सुर—सिद्ध—ऋषि तथा पन्नगों के द्वारा अजेय होना एवं अवध्य हो जाना—अग्नि के द्वारा अदाह्य होना तथा जल के द्वारा अक्लेद्य होना—इस प्रकार के वरदान प्राप्त करके उस दैत्य ने राज्य का पालन किया था। शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाकर यह अन्धक राज्य पर अध्यासित हो गया था ॥४-६॥ इसके अनन्तर उस असुर अन्धक ने देवों के साथ समुद्योग होने पर सम्पूर्ण वसुधा पर आक्रमण कर दिया था और सभी राजाओं को पराजित कर दिया था ॥७॥

पराजित्य महीपालान्सहायार्थं नियोज्य च।
तैस्तु मेरुगिरिं जगामाद्रेस्तदर्शनम् ॥८
शक्रोऽपि सुरसैन्यानि समुद्योज्य महागजम्।
समारुह्यामरावत्यां गुप्तिं कृत्वा पुनर्ययौ ॥९
शक्रस्यानु तथैवान्ये लोकपाला महौजसः।
आरुह्य वाहनं स्वं स्वं स्वायुधानि ययुर्वहिः ॥१०

देवसेनाऽपि च समं शक्रेणाद्भुतकर्मणा ।
निजगामातिवेगेन गजवाजिरथादिभिः ॥११
अग्रतो द्वादशादित्या पृष्ठतश्च त्रिलोचन ।
मध्येऽष्टौ वसवो विश्वे साध्याश्विमरुतां गणाः ।
यक्षविद्याधराद्याश्च स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥१२
रुद्रादीनां वदस्वेह वाहनानि च सर्वशः ।
एकैकस्यापि धर्मज्ञ परं कौतूहलं मम ॥१३
शृणुष्व कथयिष्यामि सर्वेषामपि नारद ।
वाहनानि समासेन एकैकस्यानुपूर्वशः ॥१४

भूमि पर स्थित सभी नृपों को पराजित करके फिर उन्हें सहायता के लिये नियोजित कर दिया था । फिर वह अन्धक मेरु पर्वत के शिखर पर गया था जिसका परम अद्भुत दर्शन है ॥८॥ इन्द्रदेव भी सुरों की सेनाओं को भली भाँति उद्युक्त करके स्वयं अपने महागज पर समारूढ हो गया था तथा अपनी अमरावती पुरी की रक्षा करके फिर चले गये थे ॥९॥ इन्द्र के पीछे उसी प्रकार से सुसज्जित एवं सुरक्षित होकर अन्य लोकपाल भी जोकि महान् ओज वाले तथा महान् बलशाली थे, अपने-अपने वाहनों पर समारोहण करके अपने २ आयुधों के सहित बाहर चले गये थे ॥१०॥ देवों की सेना भी अद्भुत कर्मों वाले इन्द्रदेव के साथ ही हाथी–अश्व और रथ आदि के सहित अत्यन्त वेग के साथ चल दी थी ॥११॥ सब के आगे द्वादश आदित्य देवगणों में थे । उनके पीछे भगवान् त्रिलोचन शङ्कर थे । मध्य भाग में आठों वसुगण थे तथा विश्वेदेवा–साध्य–अश्विनीकुमार और मरुद्गण थे । इन्हीं के साथ यक्ष–विद्याधर आदि सब थे जो कि अपने २ वाहनों पर समास्थित थे ॥१२॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—हे भगवन् ! रुद्र आदि जो समस्त देवगण थे इन सबके वाहन भी पृथक्-पृथक् ही होंगे । उन वाहनों के विषय में यहाँ पर सबका वर्णन कर बतलाइए । हे धर्मज्ञ ! एक-एक का पृथक् वर्णन करिए । मेरे हृदय में इनका पूरा २ हाल जानने की कौतूहल पूर्वक उत्कट इच्छा है ॥१३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे नारद ! आपको जब

नेत्रों वाला—शैल के तुल्य विशाल आकार से युक्त जिसका जन्म भगवती अम्बिका के चरण से हुआ नरोत्तम यक्षराज कुबेर का वाहन था ॥१८॥ हे महामुने ! एकादश रुद्रों के वाहन महान् वीर्य वाले गन्धर्व तथा अत्यन्त दारुण स्वरूप वाले भुजगेन्द्र थे जिनके वर्ण श्वेत थे। ये सौरभेय वृ र और अतीव उग्र वेग वाले थे ॥१९॥ हे मुनियो मे परम वरिष्ठ ! चन्द्रमा का रथ है जिसमें अर्ध सहस्र हंस वाहन हैं। अश्व—उष्ट्र—रथ ये सब वाहन आदित्यों के हैं ॥२०॥ वसुगणों के वाहन कुञ्जर हैं जिन पर ये स्थित होकर गमन किया करते हैं और यक्षों के वर्ग नरों को ही अपना वाहन रखते हैं। किन्नर गण भुजगों पर समधि रूढ होकर चला करते हैं तथा अश्विनीकुमार दोनों अश्वों पर समारोहण किया करते हैं ॥२१॥

सारङ्गाधिष्ठिता ब्रह्मन्मरुतो घोरदर्शनाः ।
शुकारूढाश्च कवयो गन्धर्वाश्च पदातिनः ॥२२
आरुह्य वाहनान्येव स्वानि स्वान्यमरोत्तमाः ।
सनह्य निर्ययुर्हृष्टा युद्धाय सुमहोजसः ॥२३
गदितानि सुरादीना वाहनानि त्वया मुने ।
दैत्यानां वाहनान्येव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२४
शृणुष्व दानवादीना वाहनानि द्विजोत्तम ।
कथयिष्यामि तत्त्वेन यथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥२५
अन्धकस्य रथो दिव्यो युक्तः परमवाजिभिः ।
कृष्णवर्णः सहस्रारस्त्रिनल्वपरिमाणवान् ॥२६
प्रह्लादस्य रथो दिव्यश्चन्द्रवर्णहयोत्तमैः ।
उह्यमानस्तथाऽष्टाभिः श्वेतरुक्ममयः शुभः ॥२७
विरोचनस्य च गजः कुजम्भस्य तुरङ्गमः ।
जम्भस्य तु रथो दिव्यो हयैः काञ्चनसन्निभैः ॥२८

हे ब्रह्मन् ! घोर दर्शन वाले मरुद्गण सारङ्गों पर अधिष्ठित होकर प्रयाण किया करते हैं। कवि वृन्द शुकों पर समारूढ होकर चला करते हैं और गन्धर्वगण पदाति (पैदल) ही गमन करते हैं ॥२२॥ इस प्रकार

से अमरों में परम श्रेष्ठ लोग अपने-अपने वाहनों पर समारूढ होकर तथा संनद्ध होकर सुन्दर एवं महान् ओज से सुसम्पन्न तथा परम प्रसन्न होते हुए सभी देवगण प्रभृति युद्ध करने के लिये निकल दिये ॥२३॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने सुरादि के सभी वाहन बतला दिये हैं किन्तु दैत्यों के कौन-कौन से वाहन थे यह आपने अभी तक नहीं बतलाये हैं सो अब कृपा करके उन्हें भी बतलाने का श्रम लेवें ॥२४॥ महर्षि पुलस्त्यजी ने कहा—हे द्विजों में अतीव वरिष्ठ ! अब आप दानव प्रभृतियों के वाहनों के विषय में भी श्रवण कीजिए। मैं तत्वपूर्वक यह सभी वर्णन करूँगा और आप उसको यथावत् श्रवण करने के योग्य हैं ॥२५॥ अन्धक का रथ वाहन है जो अतीव दिव्य है तथा उसमें बहुत ही श्रेष्ठ अश्व जुते हुए हैं। उस रथ का वर्ण काला है। एक सहस्र अरा हैं और तीन नल्व परिमाण वाला है ॥२६॥ प्रह्लाद का रथ भी परम दिव्य है और चन्द्रमा के तुल्य वर्णों वाले अत्युत्तम अश्वों से यह संयुत है। आठ अश्वों के द्वारा वह उह्यमान हुआ करता है अर्थात् आठ अश्व लगे हैं जो उसे लेकर चला करते हैं। वह रथ श्वेत रुक्म से परिपूर्ण अत्यन्त ही शुभ होता है ॥२७॥ विरोचन का वाहन गज होता है जिस पर वह समारोहण किया करता है। कुम्भज का वाहन तुरङ्गम है। जम्भ का वाहन एक अत्यन्त दिव्य रथ है जिसमें सुवर्ण के तुल्य अति भास्वर वर्ण वाले अश्व संलग्न रहा करते हैं ॥२८॥

शङ्कुकर्णस्य तुरगो हयग्रीवस्य कुञ्जरः ।
रथो मयस्य विख्यातो दुन्दुभेश्च महोरगः ॥२६

शम्बरस्य विमानोऽभूदयः शङ्कोर्मृगाधिपः ।
बलिवृत्रौ च बलिनौ गदामुसलधारिणौ ॥३०

पद्भ्यां दैवतसैन्यानि अभिद्रवितुमुद्यतौ ।
ततो रणोऽभूत्तुमुलः संकुलोऽतिभयंकरः ॥३१

रजसा संवृतो लोकः पिङ्गवर्णेन नारद ।
नाज्ञासीच्च पिता पुत्रं न पुत्रः पितरं तथा ॥३२

स्वानेवान्ये निजघ्नुर्वै परानन्ये च सुव्रत ।
अभिद्रुतो महावेगो रथोपरि रथस्तदा ॥३३
गजो मत्तगजेन्द्रं च सादी सादिनमन्वगात् ।
पदातिरपि सक्रुद्ध- पदातिनमथोल्वणम् ॥३४
परस्पर च प्रत्यघ्नन्नन्योन्यजयकाङ्क्षिणः ।
ततस्तु सकुले तस्मिन्युद्धे देवासुरे मुने ॥३५
प्रावत्तत नदी घोरा शमयन्ती रणे रजः ।
असृक्तोया रथावर्त्ता योधसंघट्टवाहिनी ॥३६

शकु कर्ण का वाहन तुरग है और हयग्रीव का वाहन कुञ्जर है। मय दैत्य का रथ तो अत्यन्त विख्यात है तथा दुन्दुभि का वाहन महोरग है ॥२६॥ शम्बर का वाहन एक विमान है और अय शकु का वाहन मृगाधिप (सिंह) है। बलि और वृत्र महान् बलशाली थे। ये दोनों गदा तथा मुसल आयुधो को धारण किया करते थे ॥३०॥ ये दोनो ही महान् वीर देवगण की सेनाओं को खदेड देने के लिये पदो से ही उद्यत रहा करते थे। इसके पश्चात् उन देवो और दैत्यो मे बडा ही तुमुल-सकुल और अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ था ॥३१॥ हे नारद ! वह ऐसा भीषण देव दैत्यों का युद्ध हुआ था कि भूमि से उठे हुए रज कणो से समस्त लोक समाच्छादित हो गया था और उससे सर्वत्र पिङ्गवर्ण छा गया था। उस समय रज से सर्वत्र समावृत लोक मे मनुष्य परस्पर मे एक दूसरे को पहिचान नहीं पा रहे थे। पिता अपने पुत्र को नही पहिचानता था तो पुत्र अपने पिता को पहिचान नही कर पा रहा था ॥३२॥ हे सुव्रत ! दूसरे लोग उस रज से होने वाले घोर अन्धकार मे अपने ही लोगो का पहिचान न होने के कारण निहनन कर रहे थे और अन्य दूसरो को मारकर गिरा रहे थे। वह ऐसा अद्भुत अन्धकारमय समय बन गया था कि एक रथ दौडकर महान् वेग से युक्त दूसरे रथ के ही ऊपर चढ जाया करता था। इस तरह टकराव उत्पन्न हो गया था ॥३३॥ गज भी दूसरे मत्त गजेन्द्र के ऊपर तथा उसका सादी सादी के पीछे चला जा रहा था। जो पदाति (पैदल) सैनिक था वह भी सक्रुद्ध होकर दूसरे

अतीव दुस्सह पद्धति पर वार करता था ॥३४॥ परस्पर में जय की आकांक्षा करते हुए अन्योन्य का निग्रहन कर रहे थे। इसके अनन्तर हे मुने ! देवासुर उस महान् संकुल संग्राम में एक अतीव घोर स्वरूप वाली नदी बह निकली थी जोकि युद्ध स्थल में उस छाई हुई रज का शमन करने वाली थी । उस भीषण नदी में रुधिर ही जल के स्थान में था रथों के भौंर उसमें पड़ रहे थे और वह योद्धाओं के समूह को वहन करके ले जाने वाली थी ॥३५-३६॥

गजकुम्भ महाकूर्मा शरमीना दुरत्यया ।
तीक्ष्णाग्रप्रासमकरा महासिग्राहवाहिनी ॥३७
अन्त्रशैवालसङ्कीर्णा पताकाफेनमालिनी ।
गृध्रकङ्कमहाहंसा श्येनचक्राह्वमण्डिता ॥३८
वनवायसकादम्बा गोमायुश्वापदाकुला ।
पिशाचमुनिसंकीर्णा दुस्तरा प्राकृतैर्जनैः ॥३९
रथप्लवैः सन्तरन्तः शूरास्तां प्रजगाहिरे ।
आगुल्फादवमज्जन्तः सूदयन्तः परस्परम् ।
समुत्तरन्तो वेगेन योधा जयधनेप्सवः ॥४०
ततस्तु रौद्रे सुरदैत्यसादने महाहवे भीरुभयंकरेऽद्य ।
रक्षांसि यक्षाश्च सुसम्प्रहृष्टाः पिशाचयूथास्त्वभिरेमिरे च ॥४१
पिबन्त्यसृग्गाढतरं भटानामालिङ्ग्य मांसानि च भक्षयन्ति ।
वसांविलुम्पन्तिचविस्फुरन्तिगर्जन्त्यथान्योन्यमथोवदन्ति ॥४२

बहती हुई मालूम होती थीं। गिद्ध—कंक और महा हंसों वाली तथा श्येन और चक्रवाकों से वह मण्डित थी ॥३८॥ श्रेष्ठ कौए झुण्डों में युक्त होकर एकत्रित थे और गीदड़ एवं श्वापदों से भी वह नदी समाकुल थी। पिशाच-मुनियों से सकीर्ण होने वाली वह नदी प्राकृतजनों के द्वारा अत्यन्त ही दुस्तर हो गई थी अर्थात् साधारण मनुष्य उसे पार नहीं कर सकते थे ॥३९॥ शूर वीर लोग अपने रथों के प्लवों के द्वारा उसका सन्तरण करते हुए उसे पार करते थे। गुल्फपर्यन्त असर युद्ध में मज्जन करते हुए और परस्पर में एक दूसरे का सूदन करते हुए बड़े ही वेग के साथ योधा लोग जय रूपी धन की अभिलाषा वाले उसका समुत्तरण कर रहे थे ॥४०॥ इसके अनन्तर सुरों और दैत्यों का शादन (संहार) करने वाले—अत्यन्त भीषण स्वरूप संयुक्त तथा भीरु लोगों के लिये अतीव भयङ्कर उस महायुद्ध में राक्षस और यक्षगण अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे तथा पिशाचों के झुण्ड के झुण्ड आनन्द की क्रीडा कर रहे थे ॥४१॥ वे राक्षस और पिशाच आदि सब लोग भटगण का जो अत्यन्त गाढ़ा रक्त था उसका पान कर रहे थे और भटों के शवों का आलिङ्गन करके उनका मांस नोंचकर खा रहे थे। मृत योधाओं की जो चर्बी थी उसका विलेपन कर रहे थे। वे सब आपस में गर्जना करते थे और उछाल लगा रहे थे ॥४२॥

मुञ्चन्ति फेत्काररवाञ्शिवाश्च क्रन्दन्तियोधाभुविवेदनार्त्ताः।
शस्त्रप्रतप्ता निपतन्ति चान्ये युद्धं श्मशानप्रतिमं बभूव ॥४३
तस्मिञ्छिवा घोरतरे प्रवृत्ते सुरासुराणा सुभयंकरे हि।
युद्धं बभौ प्राणपणोपविद्ध द्वद्वेऽतिशास्त्रग्लहं दुरोदरम् ॥४४
हिरण्यचक्षोस्तनयो रणेऽन्धको रथेस्थितोवाजिसहस्रयोजिते।
मत्तेभपृष्ठस्थितमुग्रतेजसं समेयिवान्देवपतिं शतक्रतुम् ॥४५
समापतन्तं महिषाधिरूढं यमं प्रतीच्छन्व्यलवान्दितीशः।
प्रह्लादनामा तुरगाष्टयुक्तं रथं समास्थाय समुद्यतास्त्रः ॥४६
विरोचनश्चापिजलेश्वरंत्वगाज्जम्भस्त्वथायाद्धनदंबलाढ्यम्।
वायुं समभ्यद्रवत्तत्त्वधरोथ मयो हुताशं युयुधे मुनीन्द्र ॥४७

अन्ये हयग्रीवमुखा महाबला दितेस्तनूजा दनुपुंगवाश्च ।
सुरान्हुताशार्कवसूरगेश्वरान्द्वन्द्व समासाद्यमहाबलान्विताः॥४८

सोमडियों फेत्कार ध्वनियाँ सुना रहीं थी और गीदड़ क्रन्दन कर रहे थे। वह ऐसा दारुण समय था कि जो चोट खाकर क्षत-विक्षत होते हुए योधा उस युद्ध स्थल में पड़े थे वे वहाँ भूमि पर पड़े हुए अपनी शारीरिक वेदना से अत्यन्त उत्पीड़ित हो रहे थे। जो शस्त्रों से प्रनष्ट थे वे तो आर्त्त दशा में थे और दूसरे भीषण जीव उनका रक्त पान कर रहे थे। वह युद्ध पूर्णतया श्मशान के समान ही उस समय में हो गया था ॥४३॥ उन सभी सुर और असुरों को अतीव भयानक घोर युद्ध के प्रवृत्त होने पर—शृगालों की चीत्कार शोभा दे रही थी जिस प्रकार प्राणों के पण से उपविद्ध अति शास्त्रों के ज्ञाता का द्वन्द्व में—दुरोदर होता है ॥४४॥ एक सहस्र अश्वों से योजित रथ में उस युद्ध में हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक स्थित था। मदमस्त हाथी की पीठ पर विराजमान अत्यन्त उग्र तेज से युक्त देवों के स्वामी इन्द्रदेव के पास वह आकर समुपस्थित हो गया था ॥४५॥ अत्यन्त बल से सुसम्पन्न दितीश प्रह्लाद नामधारी आठ अश्वों से योजित रथ में समारूढ़ होकर अस्त्रों से सुसज्जित होते हुए समापनन करने वाले महिष पर आरूढ़ यमराज की प्रतीक्षा कर रहा था ॥४६॥ विरोचन जन के ईश्वर वरुण पर पहुंच गया था और जम्भ दैत्य बल से युक्त कुवेर पर चढ़कर युद्ध करने को गया था। हे मुनीन्द्र ! वायु से लड़ने को सबर गया था तथा मय दैत्य ने अग्निदेव से युद्ध किया था ॥४७॥ अन्य जो दैत्य थे हयग्रीव प्रधान जिनमें था और महान् बलशाली दिति के पुत्र एवं दनु श्रेष्ठ थे वे सभी हुताश—सूर्य-वसु और उरगेश्वर देवों के साथ युद्ध करने को समुद्यत हो गये थे क्योंकि वे सभी महान् बलवान् थे ॥४८॥

गजास्त्वथान्योन्यमुपेत्य युद्धे चापानि कर्षन्त्यतिवेगिताश्च ।
मुश्चन्तिनाराचगणान्सहस्रशआगच्छहेतिप्रसिकिविभेपि ॥४९
शरैस्तु तीव्रैरभितापयन्तो मन्दाकिनीवेगनिभा वहन्तीम् ।
प्रावर्त्तयन्तो भयदां नदी च ह्यस्त्रं रमोर्धैरभिताडयन्तः ॥५०

त्रैलोक्यमाकाङ्क्षिभिरुग्रवेगैः सुरासुरैर्नारद सम्प्रवृद्धैः।
पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनीमुत्सृष्टुमिच्छद्भिरसृङ्नदीसमी ॥५१
वाद्यन्ति तूर्याणि सुरासुराणां पश्यन्तिमन्तस्थमुनिसिद्धसंघाः।
नयन्ति तानप्सरसोऽरणाग्राद्धतारणेयेऽभिमुखास्तु शूराः ॥५२

ये सभी परस्पर में एक दूसरे के समक्ष मे प्राप्त होकर गर्जना करते थे और युद्ध मे धनुषो को अत्यन्त तेजी के साथ खींचते थे। महर्षी नाराचो को छोड़ रहे थे। सभी लोग "मेरे सामने आ जा, यहीं समक्ष मे क्यों नहीं खड़ा होता है—डरता क्यों है" इस प्रकार के बहुत से वचनो को मुँह से कहते जाते थे ॥४६॥ अत्यन्त तीव्र शरों से अभिनाग करते हुए मन्दाकिनी नदी के समान वेग वाली रुधिर की सरिता को बहाते हुए जोकि अत्यन्त ही भय देने वाली थी एक दूसरे को अपने २ अमोघ अस्त्रो से अभिताडित कर रहे थे ॥५०॥ हे नारद! अतीव उग्र वेग वाले सुर तथा असुर त्रैलोक्य की आकांक्षा करने वाले थे और भली भाँति प्रवृद्ध अर्थात् सजग होकर युद्ध करने वाले थे। पिशाच तथा राक्षसो की पुष्टि को बढ़ाने वाली रुधिर की नदी को उत्सरण करने की इच्छा कर रहे थे। उस समय मे उस रुधिर की नदी विशेष प्रकार की शोभा से युक्त हो रही थी ॥५१॥ सुर और असुरो के तूर्य वाद्य बज रहे थे और अन्तरिक्ष मे स्थित होकर मुनि एवं सिद्ध गणो के समूह उस युद्ध के अद्भुत दृश्य को देख रहे थे। जो शूर वीर रण स्थल मे लड़ते हुए समक्ष मे हत हो जाते थे उनको अप्सरायें स्वर्ग मे ले जाती थी क्योंकि शत्रु के समक्ष युद्ध करते हुए मरने वाले शूर को धर्मयुद्ध के प्रभाव से स्वर्ग लोक मिलता है ॥५२॥

१०—अन्धक-विजय वर्णन

ततः प्रवृत्ते संग्रामे भीरूणां भयवर्धने।
सहस्राक्षो महाचापमादाय व्यसृजच्छरान् ॥१

अन्धकोऽपि महावेग धनुराकृष्य भास्वरम् ।
पुरन्दराय चिक्षेप शरान्बर्हिणवाससः ॥२
तावन्योन्य सुतीक्ष्णाग्रैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
रुक्मपुङ्खैर्महावेगैराजघ्नतुरुभावपि ॥३
ततः क्रुद्धः शतमखः कुलिश भ्राम्य पाणिना ।
चिक्षेप दैत्यराजाय ददर्श तथाऽन्धकः ॥४
आजघान च बाणौघैरस्त्रैः शस्त्रैः स नारद ।
तानभस्मसात्तदा चक्रे नागानिव हुताशनः ॥५
ततोऽतिवेगित वज्र दृष्ट्वा बलवतां वरः ।
समाप्लुत्य रथात्तस्थौ भुवि बाहुमहायवान् ॥६
रथं सारथिना सार्धं साश्वध्वजसकूबरम् ।
भस्म कृत्वाऽथ कुलिशमन्धक समुपाययौ ॥७

पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उस संग्राम के प्रवृत्त होने पर जो कि भीरु लोगों को अत्यन्त भय के बढ़ा देने वाला था, इन्द्र देव ने चाप ग्रहण कर शरों को छोड़ा था ॥१॥ उधर अन्धक ने भी अपने महान् वेग वाले एवं भास्वर धनुष को चढ़ाकर पुरन्दर के ऊपर बर्हिण वास वाले शरों को प्रक्षिप्त किया था ॥२॥ उन दोनों ही ने परस्पर में सन्नत पर्वों वाले—सुतीक्ष्ण-रुक्म पुंख वाले महान् वेग से संयुत शरों के द्वारा एक दूसरे को हनन करना आरम्भ कर दिया था ॥३॥ फिर इन्द्र को बहुत क्रोध आ गया और उसने हाथ से वज्र को घुमाकर उस दैत्यराज पर फैंका था। अन्धक उसको देख रहा था ॥४॥ हे नारद ! वह बाणों के समूहों से—अस्त्रों से और शस्त्रों से हनन कर रहा था। उनको जैसे अग्नि नागों को फूंक कर भस्म कर देता है उसी तरह उस समय से भस्म कर दिया था ॥५॥ इसके उपरान्त बलवानों में परम श्रेष्ठ ने अति वेग वाले वज्र को देखकर तुरन्त रथ से उछल कर बाहुओं की महान् आयाम बनकर भूमि में स्थित हो गया था ॥६॥ वह इन्द्र देव के छोड़ा हुआ वज्र सारथि-अश्व-ध्वजा और कूबर के

सहित उस अन्धक के रथ को भस्मसात् करके फिर उस अन्धक के समीप में आगया था ॥७॥

तमापतन्त वेगेन मुष्टिनाऽऽहृत्य भूतले ।
पातयामास बलवाङ्गजं च तदाऽन्धकः ॥८
स गर्जमानं वीक्ष्याथ वासवः सायकैर्दृढम् ।
व वर्ष तान्वारयितुमभ्ययात्स शतक्रतुम् ॥९
आजघान तलेनेभं कुम्भमध्ये तदा करम् ।
जानुना च समाहृत्य विषाण प्रबभञ्ज च ॥१०
वाममन्य तथा पार्श्वं समाहृत्यान्धकस्त्वरन् ।
गजेन्द्र पातयामास प्रहारैर्जर्जरीकृतम् ॥११
गजेन्द्रात्पतमानाच्च अवप्लुत्य शतक्रतुः ।
पाणिना वज्रमादाय प्रविवेशामरावतीम् ॥१२
पराङ्मुखेसहस्राक्षे तद् बतबलं महत् ।
पातयामास दैत्येन्द्रः पादमुष्टितलादिभिः ॥१३
ततो वैवस्वतो दण्डं परिभ्राम्य द्विजोत्तम ।
समभ्यधावत्प्रह्लादं हन्तुकामः सुरोत्तमः ॥१४

उस आते हुए कुलिश को जो बहुत ही अधिक वेग के साथ चला आ रहा था उस समय में अन्धक दैत्य ने अपनी मुष्टि के प्रहार से ही उसे आहत करके भूतल पर गिरा दिया था और बलशाली अन्धक गर्जना करने लगा था ॥८॥ इन्द्र ने उस अन्धक को गर्जते हुई देख कर बाणों के द्वारा दृढता से उस पर वर्षा की थी। उन शरों का वारण करने के लिए वह अन्धक भी इन्द्र के सामने आगया था ॥९॥ उसने तल से उस इन्द्र के वाहन गज के ऊपर प्रहार किया था। उसी समय में गज के कुम्भ स्थल में हाथ के प्रहार से उसके दांत का भञ्जन कर दिया था ॥१०॥ इसके वाम पार्श्व को समाहृत करके अन्धक ने त्वरा करते हुए लगातार प्रहारों के द्वारा जर्जरी भूत किये हुए उस गजेन्द्र को गिरा दिया था ॥११॥ ज्योंही इन्द्र का प्रमुख वाहन गजेन्द्र गिरा था वैसे ही उस गिरते हुए गजेन्द्र से इन्द्र उछाल मार कर हाथ में वज्र को

ग्रहण कर अमरावती मे प्रवेश कर गये थे ॥१२॥ इन्द्रदेव के पराङ्मुख हो जाने पर उस देवों के विशाल बल अर्थात् सेना को दैत्येन्द्र अन्धक ने पाद तल और मुष्टि प्रहारों के द्वारा मार गिराया था ॥१३॥ हे द्विजोत्तम ! इसके अनन्तर वैवस्वत सुरोत्तम ने दण्ड को परिभ्रमित करके प्रह्लाद के मारने की इच्छा वाला होकर धावा बोल दिया था ॥१४॥

तमापतन्तं बाणौघैर्ववर्ष विनदन्मुहुः ।
हिरण्यकशिपोः पुत्रश्चापमानम्य वेगवान् ॥१५
तां बाणवृष्टिमतुलां दण्डेनाहत्य भास्करिः ।
शातयित्वा प्रचिक्षेप दण्डं लोकभयङ्करम् ॥१६
स वायुपथमास्थाय धर्मराजकरे स्थितः ।
जज्वाल कालाग्निनिभो यद्वद्दग्धुं जगत्त्रयम् ॥१७
जाज्वल्यमानमायान्तं दण्डं दृष्ट्वा दितेः सुताः ।
प्राक्रोशन्ति हतः कष्टं प्रह्लादोऽयं यमेन हि ॥१८
समाक्रन्दितमाकर्ण्य हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
प्रोवाच मा भैष्ट मयि स्थिते कोऽयमसुराधमः ॥१९
इत्येवमुक्त्वा वचनं वेगेनाभिससार च ।
जग्राह पाणिना दण्डं सव्यहस्तेन नारद ॥२०
समादाय ततो वेगाद्भ्रामयामास चान्धकः ।
जगर्ज च महानादं यथा प्रावृषि तोयदः ॥२१

इसके पश्चात् आक्रमण करते हुए उस पर हिरण्यकशिपु के पुत्र ने वेग से युक्त होकर अपना धनुष आनमित किया था और गर्जते हुए बारम्बार बाणों की वर्षा कर दी थी ॥१५॥ उस अनुपम बाणों की वर्षा को दण्ड के द्वारा समाहत करके भास्करि ने शातन करते हुए लोक में अतीव भयकर जो दण्ड था उसका प्रक्षेप किया था ॥१६॥ वह वायु के मार्ग मे समास्थित होकर धर्मराज के कर मे स्थित दण्ड कालाग्नि के तुल्य तीनों भुवनों को दग्ध करने के लिये जलने लगा था ॥१७॥ अदिति के पुत्रों ने एकदम जलते हुए आने वाले दण्ड को देखकर क्रन्दन

करने लगे थे कि बडे ही कष्ट का विषय है कि यम के द्वारा यह प्रह्लाद मारा जा रहा है ॥१८॥ उस आक्रन्दन को सुनकर हिरण्याक्ष का पुत्र अन्धक बोला—'इसे मत मेरे रहते हुए यह बिचारा अधम सुर क्या चीज है अर्थात् तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता है ॥१९॥ इस प्रकार से यह वचन कहकर हे नारद ! फिर उसने दाहिने हाथ में दण्ड ग्रहण कर लिया था और अत्यन्त अधिक वेग से अभिसरण किया था ॥२०॥ उसको ग्रहण करके फिर बड़े ही वेग से अन्धक ने उसे घुमाया था और महान् ध्वनि से परम घोर गर्जना की थी जिस तरह वर्षा-काल में मेघ गर्जा करता हो ॥२१॥

प्रह्लाद रक्षित दृष्ट्वा दण्डाद्दैत्येश्वरेण हि ।
साधु वाद तदा चक्रु दैत्यदानवयूथपाः ॥२२
भ्रामयन्त महादण्ड दृष्ट्वा भानुसुतो मुने ।
दुःसह दुर्धर मत्वा अन्तर्धानमगाद्यमः ॥२३
अन्तर्हिते धर्मराजे प्रह्लादोऽपि महामुने ।
दारयामास बलवान्देवसैन्य समन्ततः ॥२४
वरुणः शिशुमारस्थो बद्धा पाशैर्महासुरान् ।
गदया दारयामास तमभ्यागाद्विरोचनः ॥२५
तोमरैर्वज्रसस्पर्शैः शक्तिभिर्मार्गणैरपि ।
जलेश ताडयामास मुद्गरैर्वज्रसन्निभैः ॥२६
ततस्तं गदयाऽभ्येत्य पातयित्वा धरातले ।
अभिद्रुत्य बबन्धाशु पाशैर्मत्तगजं बली ॥२७
तान्पाशाञ्छतधा चक्रे वेगाच्च दनुजेश्वरः ।
वरुणं च समभ्येत्य मध्ये जग्राह नारद ॥२८

दैत्येश्वर के द्वारा दण्ड से प्रह्लाद को सुरक्षित अवलोकन कर उस समय में समस्त दैत्य-दानवों के यूथपति लोग साधुवाद करने लगे थे ॥२२॥ हे मुने ! भानुसुत ने उस महादण्ड को भ्रमित करते हुए देखकर उसे अत्यन्त दुस्सह एवं दुर्धर समझ कर यम उसी समय वहाँ पर अन्तर्धान हो गया था ॥२३॥ हे महामुने ! धर्मराज के अन्तर्हित हो जाने पर

प्रह्लाद ने भी सभी ओर में अपने बल के प्रभाव से देवताओं की सेना का विदारण कर दिया था ॥२४॥ शिशुमार में स्थित वरुण पाशों से महान् असुरों को बाँध करके गदा से विदीर्ण कर दिया था। उसके ऊपर आक्रमण करके विरोचन चढ़ आया था ॥२५॥ वज्र के समान स्पर्श करने वाले तोमरों से—शक्तियों से और बाणों से भी उस जल के स्वामी वरुण को वज्र के सदृश मुद्गरों से अत्यन्त ताड़ित किया था ॥२६॥ इसके अनन्तर उस पर गदा से प्रहार करके उसे धरातल में गिरा दिया था और शीघ्र दौड़कर बलशाली ने उस मत्त गज को पाशों से बाँध लिया था। दनुजेश्वर ने वेग के साथ उन पाशों के सैकड़ों टुकड़े काटकर कर दिये थे। हे नारद ! फिर वरुण के समीप में पहुँच-कर मध्य में पकड़ लिया था ॥२८॥

ततो दन्ती च दन्ताभ्यां प्रचिक्षेप तथाऽव्ययः।
ममर्द च तथा पद्भ्यां सगदं सलिलेश्वरम् ॥२९
तं वध्यमानं वीक्ष्याथ शशाङ्कः शिशिरांशुमान्।
अभ्येत्य ताडयामास मार्गणैः कायदारणैः ॥३०
संमर्द्यमानः शिशिरांशुबाणैवाप पीडां परमां गजेन्द्रः।
विलष्टश्च वेगात्पयसामधीशं मुहुर्मुहुः पादतलैर्ममर्द ॥३१
संमर्द्यमानो वरुणो गजेन्द्रं पद्भ्यां सुगाढं जगृहे महर्षे।
पादेषु भूमिं करयोःस्पृशंश्च मूर्द्धानमुल्लास्य बलान्महात्मा ॥३२
गृह्याङ्गुलीभिश्च गजस्य पुच्छे कृत्वेह बन्धं भुजगेश्वरेण।
उत्पाट्य विक्षेप विरोचनं हि स कुञ्जरं खे सनियन्तृवाहम् ॥३३
क्षिप्तो जलेशेन विरोचनस्तु स कुञ्जरो भूमितले पपात।
स्वर्गात्स्वयन्त्रार्गलहर्म्यभूमिपुर सुकेशेरिव भास्करेण ॥३४
ततो जलेशः सगदः सपाशः समभ्यधावद्दितिजं निहन्तुम्।
ततः समाक्रन्दमनुत्तमं तैर्मुक्तं हि दैत्यैर्घनरावतुल्यम् ॥३५

इसके अनन्तर उस दन्ती ने दाँतों से प्रक्षेप किया था। उस अव्यय ने गदा के सहित सलिलेश्वर को पदों से मर्दन कर दिया था ॥२९॥ इस प्रकार से उसको वध्यमान देखकर शिशिर किरणों के धारण करने

वाले शशांक (चन्द्र देव) ने वहाँ आकर शरीर को विदीर्ण करने वाले मार्गणों के द्वारा उसे प्रताडित किया था ॥३०॥ चन्द्रमा के तीक्ष्ण बाणों से भली भाँति मर्दमान वह गजेन्द्र अत्यन्त अधिक पीडित हो गया था और अत्यधिक क्लेशित होकर जल के अधीश उस वरुण को बारम्बार पाद तलों से मर्दन करने लगा था ॥३१॥ हे महर्षे ! इस भाँति समर्द्यमान होते हुए उस वरुण ने उस गजेन्द्र को पैरों से बहुत जोर से ग्रहण कर लिया था। उस महान् आत्मा वाले ने पादों मे भूमि को और बल से हाथों से स्पर्श करते हुए मस्तक को उल्लसित करके अंगुलियों से गज की पुच्छ को ग्रहण करके भुजगेश्वर ने उसका बन्धन कर लिया था। फिर उसको उत्पाटित करके वाहानयन्ता के सहित कुञ्जर के साथ आकाश मे विरोचन को प्रक्षिप्त कर दिया था ॥३२-३३॥ इस तरह जलेश्वर वरुण के द्वारा प्रक्षिप्त किया हुआ वह कुञ्जर के सहित विरोचन भूमितल मे गिर गया था जिस तरह स्वर्ग से भास्कर के द्वारा सुकेशी स्वयन्तार्गत हर्म्यभूमिपुर मे पतित हुआ था ॥३४॥ इसके अनन्तर जलेश्वर वरुण गदा के सहित पाश को ग्रहण करके उस दिति के पुत्र का निहनन करने के लिये आक्रामक हुआ था। फिर उन सब दैत्यों ने घन के घोर गर्जन की भाँति बुरी तरह क्रन्दन किया था ॥३५॥

हाहाहतोऽसौवरुणेनवीरोविरोचनोदानवसैन्यपालः ।
प्रह्लाद हे जम्भकुजम्भबाद्या रक्षध्वमभ्येत्य सहान्धकेन ॥३६
अहो महात्मा बलवाञ्जलेशः सचूर्णयन्दैत्यभटान्सवाहान् ।
पाशेन बद्धा गदया निहन्ति यथा पशून्वाजिमखे महेन्द्रः ॥३७
श्रुत्वाऽथशब्ददितिजैःसमीरितजम्भप्रधानादितिजेश्वरास्ततः ।
समभ्यधावस्त्वरिताजलेश्वरयथापतङ्गाज्ज्वलितहुताशनम् ॥३८
तानागतान्वै प्रसमीक्ष्य देव.प्राह्लादि मुत्सृज्य वितत्यपाशम् ।
गदां समुद्भ्राम्यजलेश्वरस्तु दुद्राव ताञ्जम्भमुखानरातीन् ॥३९
जम्भं च पाशेन तथा विहत्य तारं तलेनाशनिसन्निभेन ।
पादेन वृत्रं तरसा कुजम्भं निपातयामास बल च मुष्टया ॥४०

तेनार्दिता देववरेण दैत्याः संप्राद्रवन्दिक्षु विमुक्तशस्त्राः ।
ततोऽन्धकः सुत्वरितोऽभ्युपेयाद्रणाय योद्धु जलनायकेन ॥४१
तमापतन्तं गदया जघान पाशेन बद्ध्वा वरुणोऽसुरेशम् ।
स पाशमाविद्ध्य गदां प्रगृह्य चिक्षेप दैत्यः स जलेश्वराय ॥४२

समस्त दैत्यगण क्रन्दन करते हुए कहने लगे थे कि दानवों की सेना का परिपालन करने वाला वीर विरोचन इस वरुण के द्वारा हत कर दिया गया है। इस प्रकार से हाहाकार करते हुए सब पुकार रहे थे—हे प्रह्लाद ! हे जम्भ और कुजम्भक प्रमुखो ! अन्धक के सहित यहाँ पर आकर आप सब लोग विरोचन की रक्षा करिये ॥३६॥ इस समय में सभी दैत्य बड़े ही विस्मयान्वित होकर कह रहे थे कि यह महात्मा जलेश्वर बहुत अधिक बलशाली है। यह सभी दैत्य भटों को उनके वाहनों के सहित भली भाँति से चूर्ण कर रहा है। यह सबको पाशों से बाँध कर फिर गदा से निहत करता है जैसे महेन्द्र वाजिमख में पशुओं का निहनन किया करता है ॥३७॥ इस तरह से दैत्यों के द्वारा पुकार कर कहे हुए शब्दों का श्रवण करके समस्त दितिजेश्वर जिनमें जम्भ आदि प्रधान थे, बड़ी ही शीघ्रता से दौड़ कर पहुँचे और जलेश्वर के पास आ गये थे। जिस तरह जलती हुई अग्नि के समीप में पतङ्ग दौड़ कर पहुँचा करते हैं ॥३८॥ वरुण देव ने उन सब को वहाँ पर आये हुए देख कर प्रह्लाद के पुत्र को छोड़कर अपना पाश फेंक दिया था और अपनी गदा को घुमा कर फिर जलेश्वर वरुण देव ने उन जम्भ प्रमुख शत्रुओं की ओर धावा बोल दिया था ॥३९॥ वरुण देव ने पाश के द्वारा जम्भ को विद्ध करके वज्र के सदृश तल के द्वारा तार दैत्य को—पाद से वृत्र को—कुजम्भ को तर से तथा मुष्टि से बल को निपातित कर दिया था ॥४०॥ उस वरुण के द्वारा जो कि देवों में परम वरिष्ठ देव थे, पीड़ित एवं सन्ताड़ित होकर दैत्यगण अपने अस्त्रों को छोड़कर दिशाओं में भाग खड़े हुए थे। इसके अनन्तर अन्धक शीघ्रगामी होकर जल नायक के साथ युद्ध करने के लिये उस रण-स्थल में आ गया था ॥४१॥ वरुण देव ने आक्रमणकारी उस अन्धक को देखकर उसे भी पाश से

बाँधकर असुदेश को गदा से ताडित किया था। उस पाश को समाविद्ध करके तथा गदा का ग्रहण करके उस दैत्यवर ने जलेश्वर पर प्रक्षिप्त किया था ॥४२॥

तमापतन्त प्रसमीक्ष्य पाश गदा च दाक्षायणिनन्दनस्तु ।
विवेश वेगात्पयसा निधान ततोऽन्धको देवबल ममर्द ॥४३
ततो हुताश सुरशत्रुसैन्य ददाह रोषात्पवनावधूत. ।
समभ्ययाद्दानवविश्वकर्मा मयो महाबाहुरुदग्रवीर्य ॥४४
तमापतन्त सह शम्बरेण समीक्ष्य वह्निः पवनेन सार्द्धम् ।
शक्त्या मय शम्बरमेत्य कण्ठेसत्ताड्यजग्राहबलान्महर्षे ॥४५
शक्त्या सकोप वरणे विदारि
ते स भिन्नदेहो न्यपतत्पृथिव्याम् ।
मय प्रजज्वाल च शम्बरोऽपि
कण्ठे विलग्ने ज्वलने प्रदीप्ते ॥४६
स दह्यमानो दितिजोऽग्निनाऽथ सुविस्तर घोररव रुराव ।
सिंहाभिपन्नो विपिने यथैव मतङ्गजः क्रन्दति वेदनार्त्तः ॥४७
त शब्दमाकर्ण्य च शम्ब रस्य दैत्येश्वरः क्रोधविरक्तदृष्टि ।
आ किं किमेतन्ननु केन युद्धे जितो मयः शम्बरदानवश्च ॥४८
ततोऽब्रुवन्दैत्यभटा दितीश प्रदह्यतेऽनेन हुताशनेन ।
रक्षस्व चाभ्येत्य न शक्यते भो हुताशनोवारयितु रणाग्रे ॥४९

दाक्षायणि नन्दन ने अपनी ओर आते हुए पाश और गदा को देख कर बडे ही वेग से जल की खान सागर मे प्रवेश कर दिया था। फिर उस अन्धक ने देवों की सेना का भली भाँति मर्दन कर डाला था ॥४३॥ इसके अनन्तर अग्नि देव को बड़ा रोष उत्पन्न हो गया था और वह पवन स अवधूत होकर असुरों की सेना को जलाने लगे थे। उस अग्नि पर दानवों के विश्वकर्मा महान् बाहुओं वाले सम्पन्न उदग्र वीर्य पराक्रम से युक्त मय दैत्य ने आक्रमण किया था ॥४४॥ शम्बर के साथ उसको अपने ऊपर आक्रमण देखकर अग्निदेव ने पवन के सहित हे महर्षे!

शक्तिपूर्वक मय तथा शम्बर के समीप मे जाकर कण्ठ मे सनाहित करके बलपूर्वक उसको ग्रहण कर लिया था ॥४५॥ शक्ति के साथ कोप सहित वरण के विदारित होने पर वह भिन्न देह वाला होकर पृथिवी मे गिर गया था ।। मय और वह शम्बर भी प्रदीप्त अग्नि के कण्ठ मे लग जाने पर प्रज्वलित होगये थ ॥४६॥ अग्निदेव के द्वारा जब दितिज दग्ध होने लगा तो उस समय में उसने बड़ा भारी घोर शब्द किया था जिस तरह जगल मे सिंह के द्वारा अभिपन्न होकर वेदना से अत्यन्त उत्पीड़ित होने वाला हाथी क्रन्दन किया करता है उसी भाँति ये दैत्य भी अतीव भीषण चीत्कार कर रहे थे ॥४७॥ उस महान् भयानक करुण क्रन्दन की ध्वनि का श्रवण कर शम्बर का दैत्येश्वर क्रोध से विरक्त दृष्टिवाला होकर यह कहने लगा—हैं यह क्या है ? युद्ध में किसने शम्बर और मय दानव को पराजित कर दिया है ? ॥४८॥ इसके पश्चात् जबकि दैत्यराज ने ऐसा प्रश्न किया था तो अन्य दैत्यभटगण दितीश्वर से कहने लगे थे—इस अग्नि देव के द्वारा यह मय दानव और शम्बर दैत्य दोनो जलाये जा रहे हैं । आप वहाँ पहुँचकर रक्षा कीजिए । क्या रणस्थल म इस हुताशन को वारित नहीं किया जा सकता है ? ॥४९॥

इत्थ स दैत्यैरभिनोदितस्तु हिरण्य चक्षोस्तनयो महर्षे ।
उद्यम्य वेगात्परिघ हुताश समाद्रवत्तिष्ठ इति ब्रुवन्हि ॥५०
श्रुत्वाऽन्धकस्यापिवचोऽव्ययात्मासक्तद्धचित्तस्त्वरितोहिदैत्यम्
उत्पाट्यभूम्याचविनिष्पिपेषततोऽन्धक पावकमाससाद ॥५१
समाजघानाथ हुताशन हिवरायुधेनाथ वराङ्गमध्ये ।
समाहतोऽग्नि परिमुच्यशम्बरतथाऽन्धकसत्वरितोऽभ्यधावत् ॥
तमापतन्त परिघेण भूय समाहनन्मूर्ध्नि तदाऽन्धकोऽपि ।
सताडितोऽग्निर्दितिजेश्वरेणभयात्प्रदुद्रावरणाजिराद्वहि ॥५३
ततोन्धकोमारुतचन्द्रभास्करान्साध्यान्वसूनश्विमरु महोग्रान् ।
यान्याञ्छरेण स्पृशते पराक्रमी
पराङ्मुखास्तान्कृतवाश्वरणाजिरात् ॥५४

ततो विजित्यामरसैन्यमुग्रं सेन्द्रं सरुद्रं सयमं ससोमम् ।
सपूज्यमानो दनुपुंगवैस्तु तदाऽन्धको भूमिमुपाजगाम ॥५५
आ साध्य भूमिं करदान्नरेन्द्रान्कृत्वावशेस्थाप्यचराचरं च ।
जगत्समस्तं प्रविवेश धीमान्पातालमग्र्यं पुरमश्मकाह्वम् ॥५६
तत्र स्थितस्यापि महासुरस्य गन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।
सहाप्सरोभिः परिचारणाय पातालमभ्येत्य समावसन्त ॥५७

हे महर्षे ! इस प्रकार से दैत्यगणों के द्वारा वह हिरण्याक्ष का पुत्र प्रेरित भली भाँति किया गया था । तब वह बड़े वेग से परिघ उठाकर अग्नि देव के ऊपर आक्रमण करने को उद्यत हुआ था और उसने अग्नि से कहा था कि मेरे सामने खड़ा रह—मैं आता हूँ तुझे इस दग्ध करने का फल दे रहा हूँ ॥५०॥ वह अव्यय स्वरूप वाला अग्निदेव अन्धक के इस वचन का श्रवण कर अत्यन्त चित्त में क्रोध करके बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर उसने उस दैत्य को समासादित कर भूमि में निविष्ट कर दिया था और फिर वह अन्धक भी पावक के समीप में प्राप्त हो गया था ॥५१॥ उस वरायुध ने हुताशन को वराङ्ग के मध्य में अच्छी तरह से हनन किया था । इस तरह समाहत होने वाले अग्निदेव ने फिर शम्बर को छोड़कर बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर अन्धक पर आक्रमण किया था ॥५२॥ उसको अपने ऊपर आक्रमण करके आते हुए अग्निदेव को देखकर उस समय में उस अन्धक दैत्य ने भी अपने परिघ से उस अग्नि के मस्तक में बड़े जोर का प्रहार किया था । इस तरह दितिजेश्वर के द्वारा सन्ताड़ित अग्निदेव भय से अत्यन्त भीत होकर उस युद्धस्थल से बाहिर भाग कर चला गया था ॥५३॥ इसके अनन्तर तो फिर उस अन्धक दैत्यराज ने मारुत—चन्द्र—सूर्य—साध्य—वसुगण—अश्विनीकुमार—मरुद्गण इन समस्त महोग्रदेवों को जिन-जिन को भी अपने शर के द्वारा स्पर्श करता था उन सभी को अपने प्रबल पराक्रम से उस महान् पराक्रमी दैत्य ने उस रण स्थल से सभी को पराङ्मुख कर दिया था अर्थात् उन सब देवगणों में कोई भी उस अन्धक के सामने न ठहर सका था ॥५४॥ इसके अनन्तर उस देवों की सेना को जिसमें इन्द्र—रुद्र—यम—

सोम सभी देव थे उस अन्धक दैत्यराज ने पराजित कर दिया था और समस्त दानवों के द्वारा भली भाँति सम्मानित होकर फिर वह अन्धक भूमि पर आ गया था ।।५५।। फिर यहाँ भूमण्डल पर भी आकर उसने भूमि पर संस्थित सभी नृपों को अपने कर देने वाला बना दिया था और सभी चराचर को अपने वश में कर लिया था। सबको वशीभूत भूमण्डल में बनाकर फिर उस महा बुद्धिमान् दैत्यराज अन्धक ने अतीव उत्तम अश्मक नाम वाले पुर में पाताल में प्रवेश किया था ।।५६।। वहाँ पर स्थित रहने वाले भी उस महान् असुर की परिचर्या करने के लिये गन्धर्व-विद्याधर और सिद्धों के समूह अप्सराओं को साथ में लेकर पाताल में पहुँचकर वहीं पर वास करने लगे थे। इस प्रकार से उस हिरण्याक्ष के पुत्र अन्धक दैत्यराज का प्रबल आतङ्क सर्वत्र छा गया था ।।५७।।

११—पुष्कर द्वीप वर्णन

यदेतद्भवता प्रोक्तं सुकेशिपुरमम्बरात् ।।
पातितं भुवि सूर्येण तदाचक्ष्व द्विजोत्तम ।।१।।
सुकेशीति च कश्चासौ केन दत्तवरश्च सः ।।
किमर्थं पातितो भूम्यामाकाशाद्भास्करेण हि ।।२।।
शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
यथा श्रुता मया पूर्वं कथ्यमाना महामुने ।।३।।
आसीन्निशाचरपतिर्विद्युत्केशीति विश्रुतः ।
तस्य पुत्रो गुणज्येष्ठः सुकेशिरभवन्मुने ।।४।।
तस्य तुष्टस्त्वीशानः पुरमाकाशचारियत् ।
प्रादादजेयत्वमपि शत्रुभिश्चाप्यवध्यताम् ।।५।।
स चापि शंकरात्प्राप्य वरं गगनगं पुरम् ।
रेमे निशाचरैः सार्द्धं सदा धर्मपथे स्थितः ।।६।।

स कदाचिद्गतोऽरण्य मागध दानवेश्वर ।
तत्राश्रमास्तु ददृशे ऋषीणा भावितात्मनाम् ॥७॥

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! आपने यह वर्णन करते हुए बतलाया था कि सूर्य देव ने अम्बर से सुकेशिपुर को भूमि में गिरा दिया था। हे भगवन् ! अब आप इस को बतलाइये ॥१॥ यह सुकेशी कौन था और इसको किसने वरदान दिया था ? इसका इस भूमण्डल पर क्यो पातन किया गया था जोकि सूर्य देव ने यह सब कार्य किया था—इसका कारण क्या था ? ॥२॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—हे महामुने ! यह तो बहुत ही पुरानी कथा है जिस प्रकार से मैंने इसका श्रवण किया है वही मैं आपको बतलाता हूँ। आप समाहित होकर इसे सुनिए ॥३॥ प्राचीन काल मे एक निशाचरो का स्वामी विद्युत्केशी इस नाम से लोक मे प्रसिद्ध था। उसका एक पुत्र था जो गुण गण मे बहुत ही बढा—चढा था और हे मुने ! उसका नाम सुकेशी था ॥४॥ उसके ऊपर भगवान् शकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। जो आकाशचारी पुर था वह उसको प्रदान किया था इसके अतिरिक्त उसको अजेयत्व और शत्रुओ के द्वारा अवध्यत्व भी भगवान् शकर ने उसे दिया था ॥५॥ वह भी भगवान् शकर से अन्तरिक्ष मे रहने वाला श्रेष्ठ पुर प्राप्त करके फिर वह सभा धर्म पथ मे स्थित होता हुआ निशाचरो के साथ रमण किया करता था ॥६॥ वह किसी समय मे दानवेश्वर मागध अरण्य में गया था। वहा पर उसने परम भावित आत्माओ वाले ऋषि-गणों के आश्रमो को देखा था ॥७॥

महर्षीन्स तदा दृष्ट्वा प्रणिपात्याभिवाद्य च ।
प्रत्युवाच ऋषीन्सर्वान्कृतासनपरिग्रह. ॥८॥
प्रष्टुमिच्छामि भवत. सशयोऽय हृदिस्थित: ।
कथयन्तुभवन्तो मे न चेच्च ज्ञापयाम्यहम् ॥९॥
किंस्विच्छ्रय परे लोके किमुचेह द्विजोत्तमा: ।
केन पूज्यस्तथा सत्सु केनासौ सुखमेधते ॥१०॥

इत्थ सुकेशिवचन निशम्य परमर्षय: ।
प्रोचुर्विमृश्य श्रयोऽर्थमिह लोके परत्र च ॥११॥
श्रूयता कथयिष्यामस्तव राक्षसपु गव ।
यद्धि श्रगो भवेद्वीर इह चामुत्र चाव्ययम् ॥१२॥
श्रेयो धर्मं परे लोके इह च क्षगदाचर ।
तस्मिन्समाश्रिते सत्सु पूज्यस्तन सुखी भवेत् ॥१३॥
किलक्षणो भवेद्धर्म्मं : किमाचरणसत्क्रिय: ।
यमाश्रित्य न सीदन्ति देवाद्यास्तु तदुच्यताम् ॥१४॥

उस समय मे उसने वहा पर बडे २ महर्षियों का दर्शन प्राप्त किया था उसने बडे समादर पूर्वक उन सब को अभिवादन करके प्रणिपात किया था । फिर जब ऋषियों के द्वारा प्रदत्त आसन पर वह सस्थित हो गया तो उसने उन समस्त ऋषियों से कहा—॥८॥ सुकेशी ने कहा—मेरे हृदय मे एक मह न् सशय बैठा हुआ है । मैं उसी के विषय मे आप लोगों से कुछ पूछना चाहता हूँ । मैं आपसे ठीक २ यह जानना चाहता हूँ सो आप लोग मुझे कृपा करके बतलावें ॥९॥ हे द्विजो मैं परम श्रेष्ठ महोदयो ! अब आप मुझे यह बतलाइये कि परलोक मे कल्याण करने वाला क्या है और इस लोक मे श्रेय किसके करने से होता है ? कौनसा कर्म या विधान है जिसके द्वारा सत्पुरुषो मे भी पूज्य पद की प्राप्ति होती है और वह कौनसा कर्म है जिससे प्राणी सुख को प्राप्ति किया करता है ॥१०॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—उन सब परमोच्च महर्षि गण ने इस प्रकार के सुकेशी के वचनों का श्रवण करके भली-भाँति परामर्श करके इस लोक मे और परलोक मे जो श्रेय का सम्पादक कर्म है उसके विषय मे वे कहने लगे थे ॥११॥ ऋषिगण ने कहा—हे राक्षसों मे परम श्रेष्ठ ! आप अब श्रवण करें । हम आपसे वर्णन करके कहते हैं कि जो हे वीर ! यहाँ पर भी श्रेय हो और परलोक मे भी अक्षय श्रेय होना है ॥१२॥ हे क्षणदा चर ! परलोक मे और इस लोक मे जो श्रेय होता है वह एक धर्म ही है । उस धर्म का समाश्रय ग्रहण कर लेने पर प्राणी सत्पुरुषों मे भी पूज्य होता है और उससे

सुख भी प्राप्त किया करता है ।।१३।। सुकेशी ने कहा—धर्म का क्या लक्षण होता है और उसकी सत्क्रिया करने का क्या आचरण हुआ करता है ? उसका पूर्ण लक्षण—आचरण एवं स्वरूप बतलाइये जिसका समाश्रय करके देवादि सभी कभी पीड़ित नहीं हुआ करते हैं ।।१४।।

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः ।
स्वाध्यायतत्त्ववेदित्वं विष्णुपूजा इति श्रुतिः ।।१५।।
दैत्यानां बाहुशालित्वं मात्सर्यं युद्धसत्क्रियाः ।
वन्दनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता ।।१६।।
सिद्धानामुदितो धर्मो योगसिद्धिरनुत्तमा ।
स्वाध्यायो ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्विष्णौ हरे तथा ।।१७।।
उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृत्यवाद्येषु वेदिता ।
सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गान्धर्वो धर्म उच्यते ।।१८।।
विद्याधारित्वमतुलं विज्ञानं पौरुषे मतिः ।
विद्याधराणां धर्मोऽयं भवान्यां भक्तिरेव च ।।१९
गान्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा ।
कौशल्यं सर्वशिल्पानां धर्मः कैपुरुषः स्मृतः ।।२०
ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढा ।
सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृतः ।।२१

ऋषियों ने कहा—देवगण का सबसे परम धर्म सदा यज्ञ आदि क्रियाओं का करना होता है । वेदों का नित्य स्वाध्याय करना तथा तत्त्व ज्ञान का प्राप्त करना और भगवान् विष्णु की पूजा करना—यही श्रुति प्रतिपादन किया करती है ।।१५।। दैत्यों का धर्म यही है कि वे बाहु शालिता रक्खें—मत्सरता करें और युद्ध की सत्क्रिया करते रहें । नीति शास्त्रों की वन्दना तथा श्री हरि की भक्ति बतलाई गई है ।।१६।। सिद्धों का धर्म कहा गया है कि परम श्रेय योग सिद्धि करें । स्वाध्याय—ब्रह्म का विज्ञान तथा विष्णु या हर में भक्ति भाव करना । उत्कृष्ट कोटि की उपासना करना तथा नृत्य एवं वाद्यों में ज्ञान प्राप्त करना । सरस्वती में स्थिर भक्ति गन्धर्व धर्म कहा जाता है ।।१७-१८।। अनु-

यम विद्याओं का धारण करना—विज्ञान और पौरुष करनेमे मति रखना—भवानी मे भक्ति करना—यह ही विद्याधरों का धर्म्म होता है ॥१६॥ गन्धर्व विद्या का ज्ञान रखना तथा भानुदेव मे स्थिर भक्ति रखना—समस्त प्रकार के शिल्पों का कौशल रखना ही धर्म किम्पुरुषो का कहा गया है ॥२०॥ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना—विशेष मान वाला न होना—योग के अभ्यास करने में दृढ रति का रखना—सभी जगह इच्छा पूर्वक चरण करना—यह पैतृक धर्म बताया गया है ॥२१॥

ब्रह्मचर्य सदा सत्यं जप्य ज्ञान च राक्षस ।
नियमो धमवेदित्वमार्षो धर्म. प्रचक्षते ॥२२
स्वाध्याया ब्रह्मचर्य च दान यजन मेव च ।
अकार्पण्यमनायासो दयाऽहिसाक्षमादय. ॥२३
जितेन्द्रियत्व शौच च माङ्गल्य भक्तिरच्युते ।
शकरे भास्करे देव्या धर्मोऽय मानवः स्मृत. ॥२४
धनाधिपत्य भोगाश्च स्वाध्यायः शकरार्चनम् ।
अहकारमशौण्डीर्य धर्मोऽय गुह्यकेष्वति ॥२५
परदारावमर्शित्व पारक्यार्थे च लोलुपा ।
स्वाध्यायस्त्र्यक्षके भक्तिर्धर्मोऽय राक्षस· स्मृतः ॥२६
अविवेकस्तथाऽज्ञान शौचहा निरसत्यता ।
पिशाचानामय धर्मः सदा चामिषगृध्नुता ॥२७
योनयो द्वादशैवैतास्तासु धर्माश्च राक्षस ।
ब्रह्मणा कथिताः पुण्या द्वादशैव गतिप्रदा· ॥२८

हे राक्षस ! ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण परिपालन—सदा सत्य—जाप—ज्ञान—नियमो का रक्षण और धर्म्म का ज्ञान रखना यह आर्ष धर्म कहा जाया करता है ॥२२॥ स्वाध्याय—ब्रह्मचर्य—दान—जन—कृपणता का अभाव—आयाम न करना—दया—अहिंसा—क्षमा आदि—इन्द्रियो का जय—शौच और मागल्य यह भक्ति कही जाया करती है जो भगवान् शकर मे—भुवनभास्कर मे और देवी मे की जाती है—यही मानव का धर्म्म कहा जाता है जो कि सामान्यतया मानवो म होना ही चाहिए ॥२३-

२४।। धन का स्वामी होकर रहना–भोगों का उपभोग करना—स्वाध्याय–भगवान् शंकर की अर्चना–अहंभाव रखना–अशौण्डीर्य–यह धर्म गुह्यकों में होता है ।।२५।। पराई स्त्रियों में अवमर्शन करना तथा पराये धन के लिये लोलुप रहना–स्वाध्याय और भगवान् त्र्यम्बक में भक्ति भाव रखना यह राक्षसों का धर्म बतलाया गया है ।।२६।। विवेक का अभाव–अज्ञान–शौच (पवित्रता) की हानि असत्यता–यह पिशाचों का धर्म होता है कि उन्हें सदा ही आमिष भोजन का लालच रहा करता है ।।२७।। हे राक्षस ! ये बारह ही योनियाँ होती हैं। उनमें येही धर्म हुआ करते हैं। ब्राह्मण परम तुष्यमय होते हैं। ये बारहों गतिप्रद होते हैं ।।२८।।

भवद्भिरुक्ता ये धर्माः शाश्वता द्वादशाव्ययाः ।
तत्र ये मानवा धर्मास्तान्भूयो वक्तुमर्हथ ।।२९
शृणुष्व मनुजादीना धर्मास्तु क्षणदाचर ।
ये वसन्ति महीपृष्ठे नरा द्वीपेषु सप्तसु ।।३०
योजनाना प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिरायता ।
जलोपरि महीयं हि नौरिवास्ते सरिज्जले ।
तस्योपरि च देवेशो ब्रह्मा शैलेन्द्रमुत्तमम् ।।३१
कर्णिकाकारमत्युच्च स्थापयामास सत्तमः ।
स चेमा निर्ममे पुण्या प्रजा देवश्चतुर्दिशम् ।।३२
स्थानानि द्वीपसंज्ञानि कृतवांश्च प्रजापतिः ।
तत्र मध्ये च कृतवाञ्जम्बूद्वीपमिति श्रुतम् ।।३३
तल्लक्ष योजनाना च प्रमाणेन निगद्यते ।
ततो जलनिधिः क्षारो बाह्यतो द्विगुणः स्थितः ।।३४
तस्यापि द्विगुणः प्लक्षो बाह्यतः सप्रतिष्ठितः ।
ततस्त्विक्षुरसोदश्च बाह्यतो वलयाकृतिः ।।३५

सुकेशी ने कहा—आपने जो ये धर्म बतलाये हैं। ये शाश्वत तथा बारहों अव्यय धर्म हैं। उनमें जो मानव धर्म हैं कृपा करके उन्हें पुनः बतलाने का कष्ट करें। ऋषियों ने कहा—हे क्षणदाचर ! अब आप

मनुज आदिकों का जो धर्म्म है उसका श्रवण करें जोकि नर इन सातों द्वीपों में इस भूमि के पृष्ठ पर निवास किया करते हैं ।।२६-३०।। यह भूमि सरिता के जल में एक नौका की भाँति ही स्थित है जोकि जल के ऊपर ही रहती है। योजनों के प्रमाण से (एक योजन चार कोश का होता है) यह भूमि का पचास करोड़ योजन आयत है। इसके ऊपर देवों के स्वामी ब्रह्माजी ने एक कर्णिका के आकार वाला अत्यन्त ऊँचा परम श्रेष्ठ तथा अत्युत्तम शैलेन्द्र स्थापित किया था। उस देव ने चारों दिशाओं में इस पुण्यमयी प्रजा का निर्माण किया था ।।३१-३२।। प्रजापति ने द्वीप संज्ञा वाले स्थानों का भी निर्माण किया था। उन सातों द्वीपों के मध्य में उसने एक जम्बूद्वीप का भी निर्माण किया था जो अतीव विस्तृत है। उसका प्रमाण एक लाख योजनों का कहा जाता है। इसके अनन्तर क्षार समुद्र उसके बाहिर द्विगुण स्थित है। इससे भी दुगुना प्लक्ष द्वीप है जो बाहिर की ओर सम्प्रतिष्ठित है। इसके पश्चात् इक्षु सागर बाहिर की ओर वलय के आकार वाला है ।।३३-३५।।

द्विगुणः शाल्मलिद्वीपो द्विगुणोऽस्य महोदधिः ।
सुरोदो द्विगुणस्तस्य तस्माच्च द्विगुणः कुशः ।।३६
घृतोदो द्विगुणश्चैव कुशद्वीपात्प्रकीर्तितः ।
घृतोदाद् द्विगुणः क्रौञ्चो दध्योदो द्विगुणस्ततः ।।३७
समुद्राद्द्विगुणः शाकः शाकाद्दुग्धाब्धिरुत्तमः ।
द्विगुणः संस्थितो यत्र शेषपर्यङ्कगो हरिः ।।३८
तस्माच्च पुष्करद्वीपः स्वादूदस्तदनन्तरम् ।
एते च द्विगुणाः सर्वे परस्परमवस्थिताः ।।३९
चत्वारिंशदिमाः कोट्यो लक्षाश्च नवतिः स्मृताः ।
योजनानां राक्षसेन्द्र पञ्च चातिसुविस्तृताः ।।४०
जम्बूद्वीपात्समारभ्य यावत्क्षीराब्धिरन्ततः ।
कोट्यश्चतस्रो लक्षाणां द्वौ पञ्चाशच्च राक्षस ।।४१

पुष्करद्वीपमानोऽयं तावानन्ते महोदधिः ।
लक्षमण्डकटाहेन समन्तादभिपूरितम् ॥४२

प्लक्षद्वीप से दुगुना शाल्मलि द्वीप है और इस द्वीप से दुगुना इसका समुद्र है । उससे दुगुना सुरोद है और उससे भी दुगुना कुश है ॥३६॥ कुश द्वीप से दुगुना घृतोद अर्थात् घृत का समुद्र बताया गया है । घृतोद से दुगुना क्रौञ्चद्वीप है और उस क्रौञ्च से दुगुना दध्योद(दधि का सागर) है ॥३७॥ उस दधि सागर से द्विगुणित विस्तार वाला शाक द्वीप है और शाक से दुगुना अतीव उत्तम दुग्धाब्धि है जहाँ पर शेष के पर्यंक पर श्रीहरि विराजमान हैं अर्थात् शेषनाग की शय्या पर शयन किया करते हैं ॥३८॥ उससे भी आगे पुष्कर द्वीप है जिसके चारों ओर स्वादूद (स्वादिष्ट जल वाला सागर) है । ये सभी परस्पर में द्विगुणित होकर अवस्थित रहते हैं । प्रत्येक द्वीप से उसके चारों ओर द्विगुणित सागर है और उस प्रत्येक सागर से दुगुना आगे वाला द्वीप है । यही सब सातों द्वीपों का क्रम है ॥३६॥ हे राक्षसेन्द्र ! ये सब इतने विस्तृत हैं कि चालीस करोड़ नब्बे लाख योजनों का विस्तार है । इनमें पाँच तो अति सुविस्तृत हैं ॥४०॥ जम्बूद्वीप से आरम्भ करके जब तक क्षीर सागर का अन्त होता है हे राक्षस ! चार करोड़ ढाई लाख का विस्तार है ॥४१॥ यह पुष्कर द्वीप का मान है ये दोनों अन्त में महोदधि है । एक लक्ष चारों ओर अण्ड कटाह से अभिपूरित है ॥४२॥

एव द्वीपास्त्विमे सप्त पृथग्धर्माः पृथक् क्रियाः ।
गदिष्यामस्तव वय शृणुष्व त्व निशाचर ॥४३
प्लक्षादिषु नरा वीर ये वसन्ति सनातनाः ।
शाकान्तेषु न तेष्वस्ति युगावस्था कथचन ॥४४
मोदन्त देववत्तेषा धर्मो दिव्य उदाहृतः ।
कल्पान्ते प्रलयस्तेषा निगद्येत महाभुज ॥४५
ये जनाः पुष्करद्वीपे वसन्ते रौद्रदर्शने ।
पैशाचमाश्रिता धर्मं कर्मान्ते ते विनाशिनः ॥४६

किमर्थं पुष्करद्वीपो भवद्भिः समुदाहृतः ।
दुर्दर्शः शौचरहितो घोरः कर्मार्थनाशकृत् ॥४७
तस्मिन्निशाचर द्वीपे नरकाः सन्ति दारुणाः ।
रौरवाद्यास्ततो रौद्रः पुष्करो घोरदर्शनः ॥४८
कियन्त्येतानि रौद्राणि नरकाणि तपोधनाः ।
कियन्मात्राणि मार्गेण का च तेषु स्वरूपता ॥४९

इस प्रकार से ये सात द्वीप हैं जिनके पृथक् धर्म्म हैं और पृथक् ही क्रियाऐं हैं। हे निशाचर ! हम अब आपको सभी बतलायेंगे ! आप समाहित चित्त होकर श्रवण कीजिए ॥४३॥ प्लक्षादि द्वीपों में हे वीर ! जो नर निवास किया करते हैं वे सनातन हैं। शाकान्त द्वीपों में जो रहते हैं उनमें किसी प्रकार भी युवावस्था नहीं है ॥४४॥ वे देवों की भाँति आनन्द किया करते हैं। उनका दिव्य धर्म्म बताया गया है। हे महाभुज ! कल्प के अन्त में उनका प्रलय कहा जाता है ॥४५॥ जो जन पुष्कर द्वीप में निवास करते हैं जिसका कि दर्शन ही बड़ा रौद्र है। वे पैशाच धर्म का आश्रय वाले हैं और कर्मान्त में विनाश शील हुआ करते हैं ॥४६॥ सुकेशी ने कहा—आपने पुष्कर द्वीप का वर्णन किस लिए किया था ? यह तो देखने में भी बहुत बुरा है तथा शुचिता से रहित अत्यन्त घोर और कर्मार्थ के नाश करने वाला है ॥४७॥ ऋषियों ने कहा—हे निशाचर ! उस द्वीप में अत्यन्त दारुण नरक हैं जिनके रौरव आदि नाम हैं इसी कारण से पुष्कर द्वीप परम घोर एवं रौद्र दर्शन वाला बतलाया गया है ॥४८॥ सुकेशी ने कहा—हे तप के धन वाले ऋषिगण ! ये अतीव रौद्र नरक कितने हैं ? इनका कितना विस्तार है ? किस मार्ग से इनमें गमन किया जाता है तथा इनका स्वरूप कैसा है ? ॥४९॥

शृणुष्व राक्षसश्रेष्ठ प्रमाणं लक्षणं तथा ।
सर्वेषां रौरवादीनां संख्या या त्वेकविंशतिः ॥५०
द्वे सहस्रे योजनानां ज्वलिताङ्गारविस्तृतः ।
रौरवो नाम नरकः प्रथमः परिकीर्तितः ॥५१

तप्तताम्रमयी भूमिरधस्ताद्वह्नितापिता ।
द्वितीयो द्विगुणस्तस्मान्महारौरव उच्यते ॥५२
ततोऽपि विस्तृतश्चान्यस्तामिस्रो नरकः स्मृतः ।
अन्धतामिस्रको नाम चतुर्थो द्विगुणः परः ॥५३
ततस्तु कालसूत्रेति पञ्चमः परिगीयते ।
अप्रतिष्ठं तथा षष्ठं घटीयन्त्रं च सप्तमम् ॥५४
असि पत्रवन चान्यत्सहस्राणि द्विसप्ततिः ।
योजनानां परिख्यातमष्टमं नरकोत्तमम् ॥५५
नवमं तप्तकुम्भं च दशमं कूटशाल्मलिः ।
करपत्रस्तथैवोक्तस्तथाऽन्यः श्वानभोजनः ॥५६
सदंशो लोहपिण्डश्च करम्भसिकता तथा ।
घोरा क्षारनदी चान्या तथाऽन्या कृमिभोजना ।
तथाऽष्टादशमी प्रोक्ता घोरा वैतरणी नदी ॥५७
तथाऽपरः शोणितपूयभोजनः क्षुराग्रधारो निशितश्च चक्रकः ।
संशोषणो नाम तथाऽपि चान्ते प्रोक्तास्तवैते नरकाः सुकेशिन् ॥५८

ऋषिगण ने कहा—हे राक्षसों मे परम श्रेष्ठ ! अब आप इनका प्रमाण और लक्षण सुनो । रौरव आदि जो सब नरक हैं उनकी जो कुल संख्या है वह इक्कीस होती है ॥५०॥ इसका विस्तार दो सहस्र योजन है और यह जलते हुए अ गार के समान स्वरूप वाला एवं विस्तार युक्त है । यह रौरव नाम वाला नरक है जो सब नरकों मे प्रथम कहा गया है ॥५१॥ तपे हुए ताम्र से परिपूर्ण भूमि है और इसके नीचे से भी वह अग्नि से तापित रहती है । ऐसे स्वरूप वाला रौरव से दुगने विस्तार से युक्त यह नरक है जो महारौरव नाम से कहा जाया करता है॥५२॥ इस महारौरव से भी अधिक विस्तार वाला अन्य तीसरा नरक है जिसका नाम तामिस्र नरक कहा जाता है। इस तामिस्र से भी द्विगुणित चौथा नरक है जो अन्धतामिस्र इस नाम से पुकारा जाता है ॥५३॥ इसके पश्चात् पाँचवाँ नरक होता है जिसका नाम काल सूत्र-मय कहा जाता है । इसके पश्चात् अप्रतिष्ठ नरक है जो छटवाँ है तथा छटो

यन्त्र सातवाँ नरक है ॥५४॥ फिर असिपत्र वन नामक एक आठवाँ नरक है। इसका विस्तार बहत्तर सहस्र योजनों का होता है। यह नरकों में एक उच्च श्रेणी का नरक कहा जाता है ॥५५॥ नवम नरक तप्त कुम्भ नाम वाला है तथा दशम नरक का नाम कूटशाल्मलि है। फिर करपत्र उसी प्रकार का बताया गया है और इसके अनन्तर अन्य एक नरक श्वान भोजन है ॥५६॥ संदंश–लोहपिण्ड–करम्भ सिकता–अतीव घोर स्वरूप वाली क्षार नदी–अन्य कृमि भोजन नदी तथा अठा-रहवीं नदी वैतरणी है जो अत्यन्त ही घोर स्वरूप वाली बतलाई गई है ॥५७॥ इसके पश्चात् अपर नरक है जिसका नाम शोणित पूय भोजन है—क्षुराग्रधार–निशित–चक्रक और संशोषण नामों वाले नरक हैं। हे सुकेशिन्! आपको ये सब नरक अन्त में बतलाये गये हैं ॥५८॥

—०●०—

१२—कर्म विपाक वर्णन

कर्मणा नरकानेतान्केन गच्छन्ति वै कथम्।
एतद्वदत विप्रेन्द्राः परं कौतूहलं मम ॥१
कर्मणा येन येनेह यान्ति शालकटंकट।
स्वकर्म फलभोगार्थं नरकान्मे शृणुष्व तान् ॥२
देववेदद्विजातीनां यैर्निन्दा सततं कृता।
ये पुराणेतिहासार्थांश्चाभिनन्दन्ति पापिनः ॥३
गुरुनिन्दाकरा ये च मखविघ्नकराश्च ये।
दातुर्निवारका ये च तेषु ते निपतन्ति हि ॥४
सुहृद्दम्पतिसोदर्यस्वामिभृत्यपितासुतैः।
याज्याध्यापकयोश्चैव कृतो भेदोऽधमर्मिथः ॥५
कन्यामेकस्य दत्त्वा च ददत्यन्यस्य येऽधमाः।
करपत्रेण पाट्यन्ते ते द्विधा यमकिंकरैः ॥६
परोपतापजनकाश्चन्दनोशीरहारिणः।
वालव्यजनहर्त्तारः करम्भसिकताश्रिताः ॥७

सुकेशी ने कहा—आपने नरकों का वर्णन तो किया किन्तु अब यह भी बतलाइये कि किस-किस कर्म करने से इन नरकों को किस प्रकार से जीव जाया करते हैं ? हे विप्रेन्द्रवृन्द ! यह सब मुझे बतलाइये क्योंकि मेरे हृदय में यह सब ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१॥ ऋषि वृन्द ने कहा—हे शाल कटंकट ! जिस-जिस कर्म के करने से यहाँ इन नरकों में प्राणी जाया करते हैं और अपने किये हुए दुष्कर्मों के कुफल भोगने के लिए ही इन नरकों में गमन करते हैं। उनको भी तुम अब मुझसे श्रवण करो ॥२॥ जिन्होंने सदा निरन्तर देवों की, वेदों की और द्विजातियों की निन्दा की है। जो पापी लोग पुराणों और इतिहासों के अर्थों का कभी अभिनन्दन नहीं किया करते हैं। जो अपने गुरु वर्ग की निन्दा किया करते हैं और जो मखों में विघ्न-बाधा डाला करते हैं। जो दान देने के कार्य में निवारण किया करते हैं ऐसे ही लोग उन नरकों में जाकर गिरा करते हैं ॥३-४॥ जिन्होंने मित्र-दम्पति सगे भाई-स्वामी-भृत्य-पिता-पुत्र-याजक-अध्यापक इनके साथ परस्पर में भेद भाव का व्यवहार किया है वे महान् अधम हैं। जो अधम एक पुरुष को अपनी कन्या को देकर फिर उसी कन्या को दूसरे पुरुष को दिया करते हैं उनका विदारण करपत्र के द्वारा यमराज के दूत किया करते हैं और वे दो भागों में कर दिये जाते हैं ॥५-६॥ जो मनुष्य दूसरों को सन्ताप उत्पन्न किया करते हैं तथा चन्दन एवं उशीर के हरण करने वाले हैं एवं वाल व्यजन का अपहरण करते हैं वे पापी करम्भसिकता नाम वाले नरक में जाकर गिरा करते हैं ॥७॥

निमन्त्रितोऽन्यतो भुङ्क्ते श्राद्धे दैवेऽथ पैतृके ।
स द्विधाऽऽकृष्यते मत्यस्तीक्ष्णतुण्डैः खगोत्तमैः ॥८

मर्माणि यस्तु साधूनां तुदन्वाग्भिर्निकृन्तति ।
तस्योपरि तुदन्तस्तु तुण्डैस्तिष्ठन्ति पत्रिणः ॥९

यः करोति च पैशुन्यं साधूनामन्यथामतिः ।
वज्रतुण्डनिभा जिह्वामाकर्षन्तेऽस्य वायसाः ॥१०

पितृमातृगुरूणा च येऽवज्ञा चक्रु रुद्धता: ।
मज्जन्ति पूयविण्मूत्रे त्वव्रप्रतिष्ठे ह्यधोमुखा- ॥११
देवतातिथिभृत्येषु भूतेष्वभ्या गतेषु च ।
अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति बालपित्रग्निमातृषु ॥१२
दुष्टासृक्पूयनिर्यास भुञ्जत स्वधमा इम ।
सूचीमुखाश्च जायन्ते क्षुधार्त्ता गिरिविग्रहाः ॥१३
एकपङ्क्त्युपविष्टाना विषम भोजयन्ति ये ।
विड्भोजन राक्षसेन्द्र नरक ते व्रजन्ति च ॥१४

जो दैव अथवा पैतृक श्राद्ध में निमंत्रित हो और अन्य स्थान पर जाकर भोजन कर लेता है वह तीक्ष्ण चोंचों वाले खगों द्वारा नोंच २ कर दो भागों में आकृष्ट किया जाता है ॥८॥ जो मनुष्य अपनी वाणियों के द्वारा साधु पुरुषों के मर्म स्थलों को पीड़ा देता हुआ उनका निकृन्तन किया करता है उस मनुष्य के ऊपर पक्षी बैठकर अपनी तीखी चोंचों से उसको वेदना पहुँचाते हुए स्थित होते हैं ॥९॥ जो पुरुष अन्यथा मति वाला होकर सत्पुरुषों की चुगली खाया करता है अर्थात् बुराई किया करता है उसकी वज्रतुण्ड के समान जिह्वा को कौए बर-बस खींच लिया करते हैं ॥१०॥ जो अतीव उद्धत पुरुष अपने माता-पिता और गुरुओं की अवज्ञा किया करते हैं वे दुष्ट मनुष्य मल और मूत्र से भरे हुए स्वव्रप्रतिष्ठ नामक नरक में नीचे की ओर मुखों वाले होकर निमग्न हुआ करते हैं ॥११॥ देवता–अतिथि-भृत्य और अन्य भी कोई अभ्यागत पुरुषों के भोजन न कराये जाने पर भी अर्थात् इनके खाने के पूर्व एवं बालक-पितृ-अग्नि और माता इनके खाने के पहिले जो स्वयं भोजन कर लिया करते हैं वे अधम पुरुष दूषित रुधिर-पूय(मवाद) और निर्यास को वहाँ नरक में खाया करते हैं। ऐसे अधम मनुष्य क्षुधा पीड़ित होते हुए गिरि के समान विग्रहों वाले सूची मुख अर्थात् बहुत ही छोटे मुखों वाले होकर नरक में उत्पीडन सहन किया करते हैं ॥१२-१३॥ एक ही पंक्ति में बैठे हुए लोगों में जो लोग भेदभाव से विषम भोजन दिया करते हैं अर्थात् किसी को कुछ अन्य भोजन में दिया

करते हैं हे राक्षसेन्द्र ! वे नरक मे जाकर गिरते हैं और मलका भोजन किया करते हैं ॥१४॥

एकसार्थप्रयाताश्च पश्यन्तश्चार्थिन नराः ।
असविभज्य भुञ्जन्ति ते यान्ति श्लेष्मभोजनम् ॥१५
गोब्राह्मणाग्नय. स्पृष्टायैरुच्छिष्टैश्च कामतः ।
क्षिप्यन्ते हि करास्तेषा तप्तकुम्भे सुदारुणे ॥१६
सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैश्च कामतः ।
तथा नेत्रगतो वह्निर्धम्यते यमकिंकरैः ॥१७
मित्रजायाऽथ जननी ज्येष्ठो भ्राता पिता स्वसा ।
जामयो गुरवो वृद्धायैः सस्पृष्टाः पदा नृभिः ॥१८
बद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लोहैर्वह्निप्रतापितैः ।
क्षिप्यन्ते रौरवे घोरे ह्याजानुपरिदाहिन. ॥१६
पायस कृशरामास वृथा भुक्तानि यैर्नरैः ।
तेषामयोगुडास्तप्ताः क्षिप्यन्ते वदनेऽद्भुता. ॥२०
गुरुदेवद्विजातीना वेदाना च नराधमैः ।
निन्दाऽनिश श्रुता यैस्तु पापानामभिकुर्वताम् ॥२१

एक ही साथ (सग) मे प्रयाण करने वाले मनुष्य किसी याचक को देखते हुए सविभाग न करके ही भोजन कर लिया करते है वे नरक मे जाकर श्लेष्म (कफ) का भोजन किया करते हैं ॥ १५ ॥ जो स्वेच्छा से ही उच्छिष्ट होते हुए गौ ब्राह्मण और अग्नि का स्पर्श करते हैं उनके कर सुदारुण तप्त कुम्भ मे क्षिप्त किये जाते हैं ॥१६॥ जो स्वय उच्छिष्ट होते हुए स्वेच्छा से ही सूर्य-चन्द्र तथा तारागो को देखा करते हैं उनके नत्रो मे स्थित वह्नि यम के दूतो के द्वारा धमन की जाया करती है ॥१७॥ मित्र की पत्नी-माता-ज्येष्ठ भाई-पिता-भगिनी-जामि-गुरु वर्ग और वृद्ध पुरुष इनको पैर से जो मनुष्य स्पर्श करते हैं उनके चरण निगडों से बाँधकर जो निगड सब लोहे के होते हैं और अग्नि से सतप्त किए हुए होते हैं, फिर उनको जानु पर्यन्त परि-दाह वाले नरके घोर रौरव नरक में डाल दिये जाया करते हैं ।१८-१६।

जो पायसक्रयर और मास को वृथा ही खाया करते हैं उनके मुख में लोहा-गुड तप्त करके वरवश डाल दिया जाता है ॥२०॥ जो अधम नर अपने गुरु-देव और द्विजातियो की तथा वेदो की निन्दा किया करते हैं और निरन्तर इनकी बुराई करने में कभी चूक नही करते हैं अथवा इन की निन्दा का श्रवण करते हैं वे बराबर महापाप किया करते हैं ॥२१॥

तेषा लोहमयाः कला वह्निवर्णा पुन. पुनः ।
श्रवणेषु निखन्यन्ते घर्म राजस्यकिंकरैः ॥२२
प्रपादेवकुलारामविप्रवेश्मसभामठान् ।
वापीकूपतडागाश्च भङ्क्त्वा विध्वंसयन्ति ये ॥२३
तेषा विलपता चर्म देहतः क्रियते पृथकः ।
कर्त्तरीभिः सुतीक्ष्णाभिः सुरौद्रैर्यमकिंकरैः ॥२४
गोब्राह्मणार्कमग्नि च ये हिमेहन्ति मानवा. ।
तेषा गुदेभ्यश्चान्त्राणि विनिष्कृन्तन्ति वायसा ॥२५
स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः ।
पुत्रभृत्यकलत्रादिवन्धे वर्गमकिंचनम् ।
दुर्भिक्षे सम्भ्रमे चापि स श्वयोनौ निपात्यते ॥२६
शरणागत ये त्यजन्ति ये च बन्धनपालकाः ।
पतन्ति यन्त्रपीठे ते ताड्यमानास्तु किंकरै. ॥२७
क्लेशयन्ति हि विप्रादीन्याज्यकर्मसु पापिनः ।
ते पेष्यन्ते शिलायावै शोष्यन्तेऽपि च शोषकैः ॥२८

ऐसे निन्दा करने वाले महापापी मनुष्यों के सुखों एवं कानों में अग्नि के समान सतप्त किये हुए लोहे के कीले बारम्बार घर्मराज के द्वारा डाले जाते हैं ॥२२॥ जो पुरुष प्याऊ—देव कुल—बाग—विप्रों का गृह—सभास्थल—मठ—बावडी-कूआ और तालावों को भग्न करके विध्वस्त कर देते हैं। उनके शरीर के चमडे को उतार कर देह से पृथक् वहा नरक में कर दिया जाता है उसकी वेदना से वे विलाप किया करते हैं। महान् भयानक स्वरूप वाले यमराज के किंकर वहाँ बडी २ कैंचियों

से ही शरीर के चर्म को काटकर अलग किया करते हैं ये इनकी कैंचिया भी बड़ी तीक्ष्ण होती हैं ॥२३-२४॥ जो मानव गो-ब्राह्मण-सूर्य और अग्नि पर मल मूत्र का त्याग किया करते हैं उन महापापियो की गुदाओ से वायस (कौए) उनकी आँतो को खीच लिया करते हैं तथा विशेष रूप से निष्कृन्तन किया करते हैं ॥२५॥ जो मनुष्य अपने ही शरीर के पोषण करने मे परायण रहता हुआ अपने पुत्र-भृत्य-कलत्र-बन्धु वर्ग को अकिञ्चनावस्था मे होने पर परित्याग कर देता है। अकाल के समय मे तथा सग्राम मे जो त्याग करता है वह मनुष्य कुत्ते की योनि मे अर्थात् श्वयोनि नामक नरक मे डाल दिया जाता है ॥२६॥ जो शरण में आये हुए का त्याग कर देते हैं और जो बन्धन पालक होते हैं वे मनुष्य यमदूतों के द्वारा ताडित होते हुए यन्त्रपीठ नरक मे गिरा दिये जाते हैं। जो पापी याज्य कर्मों मे विप्रादिक को क्लेश दिया करते हैं ॥२७॥ वे वहा नरक मे शिला पर पीसे जाया करते हैं और शोषकों के द्वारा शोषित भी किये जाते हैं ॥२८॥

न्यासापहारिणः पापा बध्यन्ते निगडैरपि ।
क्षुत्क्षामाः शुष्कताल्वोष्ठाः पात्यन्ते वृश्चिकाशने ॥२९
पर्वमैथुनिनः पापाः परदाररताश्च य ।
ते वह्नितप्तां कूटाग्रामालिङ्गन्ते च शाल्मलीम् ॥३०
उपाध्यायमधःकृत्य यैरधीतं द्विजाधमैः ।
तेषामध्यापको यश्च स शिलां शिरसा वहेत् ॥३१
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि ।
ते पात्यन्ते च विण्मूत्रे दुर्गन्धे पूयपूरिते ॥३२
श्राद्धे तिथेयमन्योन्यं यैर्भुक्तं भुवि मानवैः ।
परस्पर भक्षयन्ति ते स्वमांसानि बालिशाः ॥३३
वेदवह्निगुरुत्यागी मातापित्रोस्तथैव च ।
गिरिशृङ्गादध पात पात्यन्ते यमकिङ्करैः ॥३४
पुनर्भूपतयो ये च कन्याविध्वंसकाश्च ये ।
तद्गर्भश्राद्धभुग्यश्च कृमीन्भक्षेत्पिपीलिकाः ॥३५

जो पापी पुरुष न्यास (धरोहर) के अपहरण करने वाले होते हैं वे वहां नरकों में लोह के निगडों द्वारा वध्य होते हैं। ऐसे महापापी पुरुष मुख से अत्यन्त क्षाम-सूखे हुए तालु और ओष्ठ वाले वृश्चिकाशन नाम वाले नरक में डाल दिये जाते हैं ॥२६॥ जो पर्वों के दिनों में मैथुन करने वाले होते हैं और जो पापी पराई स्त्रियों में रमण करने वाले होते हैं वे अग्नि से सतप्त कूटाग्र शाल्मली का वहां पर आलिंगन किया करते हैं अर्थात् सतप्त लोहमयी नारी का समालिंगन नरक में कराया जाता है ॥३०॥ जो अपने उपाध्याय को अधः करके अर्थात् अपमानित करके अधम द्विज अध्ययन किया करते हैं उनका जो अध्यापक होता है वह शिर पर शिला का वहन किया करता है ॥३१॥ जो पुरुष जल में विष्ठा-कफ और मूत्र का उत्सर्जन किया करते हैं वे पापी पुरुष विष्ठा-मूत्र में जो अत्यन्त दुर्गन्ध से युक्त और पूय से परिपूर्ण स्थल नरक में होता है उसमें डाल दिये जाते हैं ॥३२॥ श्राद्ध की तिथि में जो परस्पर में एक दूसरे को मनुष्य भोजन कराते तथा करते हैं वे मूर्ख लोग नरक में पहुच कर एक दूसरे के मास का भक्षण किया करते हैं ॥३३॥ जो मनुष्य वेद-अग्नि-गुरु तथा माता-पिता का त्याग करने वाला होता है वह महापापी प्राणी यम के दूतों के द्वारा पर्वत की चोटी से नरक में नीचे गिराया जाता है ॥३४॥ जो भूके स्वामी हैं और जो कन्या के कन्यात्व के विध्वंस करने वाले हैं तथा उसके गर्भ के स्राव करा देने वाले हैं वे नरक में कृमियों और पिपीलिकाओं के भक्षण किया करते हैं ॥३५॥

चण्डालादन्त्यजाद्वाऽपि प्रतिगृह्णाति दक्षिणाम् ।
याजको यजमानश्च स स्यादश्म नि कीटकः ॥३६

पृष्ठमासाशिनो मूढास्तथैवोत्कोपजीविनः ।
क्षिप्यन्ते वृकभक्ष ते नरके रजनीचर ॥३७

स्वर्णस्तेयी च ब्रह्मघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
तथा गोभूमिहर्तारो गोस्त्रीबालहताश्च ये ॥३८

एते नरा द्विजा ये च गोषु विक्रयिणस्तथा ।
सोमविक्रयिणो ये च वेदविक्रयिणस्तथा ॥३९
कूटसत्यास्त्वशौचाश्च नित्यनैमित्तनाशकाः ।
कूटसाक्षिप्रदा ये च ते महारौरवे स्थिताः ॥४०
दशवर्षसहस्राणि तावत्तामिस्रके स्थिताः ।
तावच्चैवान्धतामिस्रे असिपत्रवने ततः ॥४१
तावच्चैव घटीयन्त्रे तप्तकुम्भे ततः परम् ।
प्रपातो हि भवेत्तषां यैरिदं दुष्कृतं कृतम् ॥४२

जो किसी चाण्डाल से अथवा अन्त्यज से दक्षिणा का प्रतिग्रहण किया करते हैं वह याजक और यजमान दोनो ही पत्थर मे कीट होकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥३६॥ हे रजनीचर ! जो मूढ शूद्र के याम-का अयाम करने वाले हैं तथा उक्त प्रकार से ही उपजीवी रहा करते हैं वे नरक मे वृक्षो के भक्ष नाम वाले मे क्षिप्तकर दिये जाते हैं ॥३७॥ जो स्वर्ण की चोरी करने वाला है—ब्राह्मण की हत्या करने वाला है—सुरा का पान किया करता है गुरुपत्नी के साथ शय्यागत होता है—गौ एवं भूमि का अपहरण करने वाला है तथा गौ-स्त्री और बच्चो की हत्या किया करता है—ये द्विज नर और जो गौओ का विक्रय करने वाले एवं सोम की बिक्री करने वाले तथा वेदो को परोक्त करने वाले मनुष्य होते हैं । जो कूट सत्य भाषी है अर्थात् ऐसा सत्य बोलने वाले जिसका अर्थ ही किसी के समझ मे न आवे-अपवित्र रहन वाले तथा नित्य कर्म और नैमित्तिक कर्मों के नाश करने वाले मनुष्य होते हैं । जो मनुष्य झूठी गवाही देने वाले हैं वे सभी पापी हैं और महारौरव नाम वाले नरक मे जाकर स्थित होते हुए वहाँ पर नारकीय यातनाऐं भोगते हैं ॥३८-४०॥ ये लोग दश हजार वर्ष पर्यन्त तो तामिस्र नरक मे स्थित होते हैं और इतने ही समय तक अन्ध तामिस्र मे और फिर असिपत्र बन नामक नरक मे स्थित रहा करते हैं । घटीयन्त्र—तप्त कुम्भ मे इनका इसी क्रम से प्रपात होता है जिन्होंने उपर्युक्त दुष्कर्म महापाप जीवन मे किये हैं ॥४१-४२॥

ये त्वते नरका रौद्रा रौरवाद्यास्तवोदिताः ।
ते सर्वे क्रमशः प्रोक्ताः कृतघ्ने लोकनिन्दिते ॥४३
यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनो यथा गिरीणामपि शैशिराद्रिः ।
यथाऽम्बु धानां प्रवरं सुदर्शनं यथा खगानां विनतातनूजः ।
महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो यथा च भूतेषु मही प्रधाना ॥४४
नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्मं सुरारिमुख्येषु हराङ्घ्रिभक्तः ।
क्षेत्रेषु यद्वत्कुरुजाङ्गलं वरं तीर्थेषु यद्वत्प्रवरं पृथूदकम् ॥४५
सरस्सु चैवोत्तरमानसं यथा वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा ।
लोकेषु यद्वत्सदनं विरञ्चेः सत्यं यथा धर्मविधिक्रियासु ॥४६
यथाऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः ।
तपोधनानामपि कुम्भयोनिः श्रुतिर्वरा यद्वदिहागमेषु ॥४७
मुख्यं पुराणेषु यथैव मात्स्यं स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु ।
मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैवतिथीषु दर्शोविबुधेषु वासवः ॥४८
तेजस्विनां च प्रवरोऽर्क उक्त ऋक्षेषु चन्द्रो जलधिर्हदेषु ।
भवान्यथा राक्षससत्तमेषु पाशेषु नागस्तिमितेषु बन्धः ॥४९

हे भगवन् ! आपने जो ये अत्यन्त भीषण रौरव आदि नरक बतलाये हैं वे सभी कृतघ्न लोकनिन्दित मे क्रम से कहे गये हैं ॥४३॥ जिस प्रकार से देवगण मे भगवान् जनार्दन परम श्रेष्ठ हैं और जिस रीति से पर्वतों में शैशिराद्रि अतीव वरिष्ठ है । जिस तरह समस्त आयुधों मे सुदर्शन चक्र सर्वोत्तम आयुध है और पक्षियो मे विनिता का पुत्र गरुण सर्वश्रेष्ठ होता है । महोरगो मे अनन्त नाग श्रेष्ठतम है और भूतो मे यह पृथवी सब में प्रमुख मानी जाती है ॥४३-४४॥ नदियों मे सर्व शिरोमणि गङ्गा है, जलजो मे पद्म श्रेष्ठ होता है तथा सुरों के शत्रुओ मे जो हर के चरणों का भक्त होता है वही प्रमुख माना जाता है । क्षेत्रो मे जिस प्रकार से कुरुजाङ्गल वरिष्ठ है और तीर्थों मे जिस तरह से पृथूदक प्रवर होता है ॥४५॥ सरोवरो मे उत्तर दिशा मे स्थित मानस सरोवर श्रेष्ठ है एवं पुण्यवनों में नन्दन वन परम श्रेष्ठ है । जिस रीति से लोको मे भगवान् ब्रह्मा का लोक अर्थात् निवास स्थल श्रेष्ठ है और धर्मविधि की

क्रियाओं में सत्य सर्वोपरि होता है ।।४६।। समस्त ऋतुओं में अश्वमेध प्रवर है। स्पर्श वालों में पुत्र सर्वाधिक प्रिय एवं वरिष्ठ होता है। तपस्वियों में कुम्भयोनि परम वरिष्ठ हैं तथा समस्त आगमों में श्रुति सर्वोत्तम प्रामाणिक एवं वरिष्ठ है ।।४७।। इस भाँति पुराणों में मात्स्य पुराण सब श्रेष्ठ है और संहिताओं में स्वायम्भुवोक्ति श्रेष्ठतम होती है। स्मृतियों में मनु द्वारा उक्त मनुस्मृति मुख्य है। तिथियों में दशअमावस्या और देवों में प्रमुख इन्द्र देव हैं ।।४८।। तेज के धारण करने वालों में सूर्य सब प्रधान होते हैं ऋक्षों में सबका शिरोभूषण चन्द्रमा है तथा ह्रदों में अर्थात् जलाशयों में सागर सर्वाधिक श्रेष्ठ होता है। राक्षस श्रेष्ठों में आप जिस प्रकार से सर्ववरिष्ठ है और इसी तरह पाशों में नाग और स्तिमितों में बन्ध वरिष्ठ है ।।४९।।

धान्येषु शालिर्द्विपदेषु विप्रश्चतुष्पदे गौश्च यथा मृगेन्द्र ।
पुष्पेषु जातीनगरेषु काञ्चीनारीषु रम्भाऽऽश्रमिणां गृहस्थ ।।५०
कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु देशेषु सर्वेषु च मध्यदेश ।
फलेषु चूतो मुकुलेष्वशोक सर्वौषधीनां प्रवरा च पथ्या ।।५१
मूलेषु कन्द प्रवरो यथोक्तो व्याधिष्वजीर्ण क्षणदाचरेन्द्र ।
श्वेतेषु दुग्ध प्रवर यथैव कार्पासिक प्रावरणे हि यद्वत् ।।५२
कलासु मुख्या गणितज्ञता च विज्ञान मुख्य तु यथेन्द्रजालम् ।
शाकेषु मुख्या त्वपि काकमाची रसेषु मुख्य लवणयथैव ।।५३
फलेषु तालो नलिनीषु पम्पावनौकसेष्वेव च ऋक्षराज ।
महीरुहेष्वेव यथा वटश्चयथा हरो ज्ञानवता वरिष्ठ ।।५४
यथा सतीना हिमवत्सुता हि यथाऽर्जुनीना कपिला वरिष्ठा।
यथा वृषाणामपि नीलवर्णस्तथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु ।।५५
दुर्गेषु रौद्रेषु निशाचरेश यथा नदी वैतरणी प्रधाना।
पापीयसां यद्वदिह कृतघ्न स्तथैव पापेषु निशाचरेन्द्र ।।५६
ब्रह्मघ्नगोघ्नादिषु निष्कृतिर्हि विद्येत नैवास्य तु दुष्टचारिण
ननिष्कृतिश्चापिकृतघ्नवृत्ते सुहृत्कृत नाशयतोऽब्दकोटिभि

समस्त प्रकार के धान्यों मे शाली—द्विपदों में विप्र—चतुष्पदों मे गौ और सिंह श्रेष्ठ होते हैं। पुष्पों में जाती का पुष्प-नगरी मे काञ्चीपुरी—नारियों में रम्भा—तथा समस्त आश्रम धारियो मे गृहस्थ ही सर्वशिरोमणि होता है ॥५०॥ पुरों मे कुशस्थली श्रेष्ठतम है और सब देशों मे मध्यदेश सर्व श्रेष्ठ देश है। सब प्रकार के फलों मे आम्र का फल सर्वोत्तम है। अङ्कुरों मे अशोक और सर्वोषधियों मे पथ्या ही सबसे प्रवर है ॥५१॥ मूलों मे कन्द प्रवर कहा गया है तथा सब व्याधियों मे हे क्षणदाचरेन्द्र ! अजीर्ण का रोग ही सर्व प्रमुख व्याधि है। श्वेत वर्ण के पदार्थों में दुग्ध श्रेष्ठ है तथा प्रावरण की वस्तुओं मे कपास से निर्मित वस्त्र ही श्रेष्ठ होता है ॥५२॥ कलाओं मे गणितकला प्रमुख है और विज्ञानों मे मुख्य इन्द्रजाल है। शाकों मे प्रधान काकमाची है और रसों में प्रमुख लवणरस है ॥५३॥ फलों मे ताल का फल प्रधान है,—नलिनियों में पम्पा तथा वनौकसों मे ऋक्षराज प्रधान होता है। महीरुहों मे वट का वृक्ष श्रेष्ठ है और ज्ञान वालों मे भगवान् हर सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं ॥५४॥ सती नारियों में हिमवान् की पुत्री पार्वती और अर्जुनीयों मे कपिला सबसे वरिष्ठा होती है। जिस तरह से वृषों में भी नील वर्ण वाला श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार से समस्त दुःसह दुर्ग तथा रौद्रों में हे निशाचरेश ! वैतरणी नदी जो यमपुर के मार्ग में आती है सबसे प्रधान है। हे निशाचरेन्द्र ! इस संसार में पापी लोगों में जो कृतघ्न होता है वही सब पापों मे महान् पापी होता है ॥५६॥ जो ब्रह्म हत्या तथा गौ हत्या जैसे महा पाप किया करते हैं उन सबकी तो कोई न कोई निष्कृति (प्रायश्चित्त) अवश्य ही होता है किन्तु जो इस प्रकार का दुष्टाचार किया करता है उसके निवारण का कोई उपाय एवं प्रायश्चित्त ही नहीं होता है। जो किये हुए उपकार को नहीं मानता है ऐसे कृतघ्न वृत्ति वाले पुरुष का कोई प्रायश्चित्त ही कहीं पर नहीं है ऐसे कृतघ्न लोग होते हैं जो अपने हित चिन्तक सुहृत् के द्वारा किये हुए उपकार का अब्द कोटियों से नाश कर दिया करते हैं। उन पापियों की कोई निष्कृति है ही नहीं ॥५७॥

१३–भुवन कोश वर्णन

भवद्भिरुदिता घोरा पुष्करद्वीपसंस्थितिः ।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथयन्तु महर्षयः ॥१

जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथ्यमानं निशामय ।
नवभेदं सुविस्तीर्णं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥२

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतोऽद्भुतः ।
पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्मान्राक्षसेश्वर ॥३

भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ।
पश्चिमे केतुमालश्च चम्पकः पश्चिमोत्तरे ॥४

उत्तरेण कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः ।
पूर्वमुत्तरतो रम्यो वर्षः किंपुरुषः स्मृतः ॥५

पुण्या रम्या नवैवैते वर्षाः शालकटङ्कट ।
इलावृताद्याश्चाष्टौ वर्ष मुक्त्वैव भारतम् ॥६

न तेष्वस्ति युगावस्था जरा मृत्युभयं न च ।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥७

सुकेशी ने कहा—हे भगवन् ! आपने पुष्कर द्वीप की संस्थिति तो महान् घोर एवं परम दारुण वर्णित की है। अब आप जम्बू द्वीप का संस्थान किस प्रकार से है उसका वर्णन करके मुझे बतलाइये। आप तो महर्षि वृन्द है सभी का हाल भली-भाँति जानते होंगे ॥१॥ ऋषियों ने कहा—जम्बू द्वीप का संस्थान को अभी बताया जाता है आप उसका श्रवण करिये। इसके नौ भेद होते हैं और यह अति अधिक विस्तार से संयुत है तथा स्वर्ग और मोक्ष दोनों का प्रदान करने वाला भी है ॥२॥ इसके मध्य में इलावृत वर्ष है और इसके पूर्व में अतीव अद्भुत भद्राश्व है। पूर्वदक्षिण में हे राक्षसेश्वर ! इसके हिरण्मान् वर्ष है। यह भारत वर्ष इसके दक्षिण भाग में स्थित है। दक्षिण पश्चिम में हरि वर्ष है। पश्चिम दिशा में केतुमाल है और पश्चिमोत्तर में चम्पक स्थित

है ॥३-४॥ उत्तर में कुरु वर्ष है जो कल्प वृक्ष के समावृत होता है। पूर्व उत्तर में अत्यन्त रम्य वर्ष किम्पुरुष नाम वाला है ॥५॥ इस तरह से ये नौ परमरम्य वर्ष हैं शालकटंकर! इनमें विद्यमान हैं। केवल भारत वर्ष को छोड़कर अन्य जो आठ वर्ष इस जम्बू द्वीप में हैं जिनके इलावृत आदि नाम ऊपर बताये गये हैं वे तो ऐसे सभी वर्ष हैं कि उनमें न तो युवावस्था होती है और जरा (वृद्धावस्था) तथा मृत्यु और भय ही कुछ होता है। उनकी तो यह एक उनके स्वभाव में ही होने वाली सिद्धि होती है जो बिना ही किसी प्रकार के यत्न के सुख प्राप्त हुआ करती है ॥६-७॥

विपर्ययो न तेष्वस्ति नोत्तमाधममध्यमाः ।
यदेतद्भारतं वर्षं नवद्वीप निशाचर ॥८
सागरान्तरिताः सर्वे अगम्याश्च परस्परम् ।
इन्द्रद्वीपः कशेरुणास्ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥९
नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा ।
अय तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥१०
कुमाराख्यः परिख्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ।
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥११
आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्त्वन्तरवासिनः ॥१२
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैःकर्मभिः कृतपावनाः ।
तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ॥१३
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं तथैव च ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः ॥१४
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ।
तथाऽन्ये शतसाहस्रा भूधरा मध्यवासिनः ॥१५

इन आठ द्वीप के वर्षों में कोई भी विपर्यय होता ही नहीं है और इनमें कोई उत्तम-मध्यम एवं अधम होने का श्रेणी विभाजन ही होता है। सभी समस्वरूप होते हैं। यह तो भारत वर्ष है वह तो हे निशा-

धर ! एक नवीन ही द्वीप समझिये ॥८॥ सभी वर्ष सागर से अन्तरित होते हैं और परस्पर मे गमन के योग्य नही हैं। इन्द्र द्वीप कशेरुण-ताम्र पर्ण गभस्तिमान् है ॥६॥ नाग द्वीप और वराह-सिंहल तथा वारुण है। यह तो उनमे नवम द्वीप है जो कि सागर से चारों ओर में मवृत रहता है ॥१०॥ कुमार नाम वाला द्वीप जो परिख्यात है यह द्वीप दक्षिणोत्तर मे स्थित है। इसके पूर्व में तो किरात हैं और जिसके अन्त मे पश्चिम दिग्भाग मे यवन बताये गये हैं ॥११॥ हे वीर ! दक्षिण भाग मे आन्ध्र लोग निवास किया करते हैं तथा उत्तर मे तुरुष्क लोग रहते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्र इन वर्णों वाले लोग तो अन्तर वासी हैं ॥१२॥ यजन युद्ध-वाणिज्य आदि कर्मों के द्वारा ये लोग अपने आपको पावन बनाये हुए रहा करते हैं। उनका भली भाँति व्यवहार भी इन्हीं उपर्युक्त कर्मों के द्वारा अभीष्ट होता है॥१३॥इन को स्वर्ग के प्राप्त करने का लाभ—मोक्षपद की प्राप्ति-पुण्य और पाप यह सभी होता है। महेन्द्र-मलय-सह्य-शक्तिमान्-ऋक्षपर्वत-विन्ध्य पारियात्र ये यहां पर सात कुल पर्वत कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों सहस्रों ही मध्य में रहने वाले भूधर यहीं पर हैं ॥१४-१५॥

विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुला शुभसानवः ।
कोलाहलश्च वैभ्राजो मन्दरो दुर्धराचलः ॥१६
वातधूमो वैद्युतश्च मैनाकः सरसस्तथा ।
तुङ्गप्रस्थो नागगिरिस्तथा गोवर्धनाचलः ॥१७
उज्जयन्तः पुष्पगिरिरर्बुदो रैवतस्तथा ।
ऋष्यमूकः सगोमन्तश्चित्रकूट कृतस्मर ॥१८
श्रीपर्वतः कोकणकः शतशोऽन्येऽपि पर्वताः ।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्याश्च भागशः ॥१६
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा याः सम्यक्ता निशामय ।
सरस्वती पञ्चरूपा कालिन्दी च हिरण्वती ॥२०
शतद्रुश्चन्द्रिका नीला वितस्तेरावती कुहूः ।
मधुरा हाररावी च उशीरा धातकी रसा ॥२१

गोमती धूतपापा च वहुदा स दृषद्वती ।
निःस्वरा गण्डकी चित्रा कौशिकी च वधूसरा ॥२२
सरयूश्च सलोहित्या हिमवत्पादनिःसृताः ।
वेदस्मृतिर्वेदसिनी वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ॥२३

ये पर्वत अतीव विस्तार तथा ऊँचाई वाले हैं । अत्यन्त रम्य-विपुल और परम शुभ शिखरों से भी सम्पन्न हैं. कोलाहल-वैभ्राज-मन्दर-दुर्धराचल-वातधूम-वैद्युत-मैनाक -सरस- तुङ्गप्रस्थ- नागगिरि-तथा गोवर्द्धन पर्वत ये सभी गिरिवर यहाँ पर हैं ॥१६-१७॥ उज्जयन्त-पुष्पगिरि-अर्बुद-रैवत-ऋष्यमूक-गोमन्त-चित्रकूट और कृतस्मर पर्वत हैं ॥१८॥ श्री पर्वत-कोकणक इस प्रकार से अन्य सैकड़ों ही पर्वत भारत वर्ष में विद्यमान हैं । उन पर्वतों से विमिश्रित रहने वाले जन वह भी हैं जिनमें भाग पूर्वक कहीं म्लेच्छ तो कहीं पर आर्य्य लोग निवास किया करते हैं ॥१६॥ वे लोग जिन श्रेष्ठ सरिताओं का पान किया करते हैं और भली भाँति उनका उपयोग करते हैं उनके नाम भी श्रवण करलो । वे नदियाँ ये हैं—सरस्वती-पात्र रूपा—कालिन्दी-हिरण्वती-शतन्द्रु-चन्द्रिका-नीला वितस्ता-इरावती-कुहू-मधुरा-हाररावी-उशीरा-धातकी-रसा-गोमती धूतपापा- बाहुदा-दृषद्वती—निःस्वरा-गण्डकी-चित्रा- कौशिकी- वधूसरा ये सभी नदियाँ यहाँ भारत वर्ष में बहती हैं ॥२०-२२॥ सरयू-सलोहित्या-जो हिमालय पर्वत के पाद से निःसृत हुई हैं । वेदस्मृति-वेदसिनी-वृत्रघ्नी सिन्धु ये सभी नदियाँ यहां भारत में हैं ॥२३॥ '

पर्णासा नन्दिनी चैव पावनी च मही तथा ।
शरा चर्मण्वती लूपी विदिशा वेणुमत्यपि ॥२४
चित्रा ह्योघवती रम्या पारियात्रोद्भवाः स्मृताः ।
शोणो महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया ॥२५
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा हि देवका ।
चित्रोत्पला वै तमसा करतोया पिशाचिका ॥२६
तथाऽन्या पिप्पलश्रेणी विपाशा वञ्जुलावती ।
सरसन्तजा शुक्तिमती चक्रिणी त्रिदिवा वसुः ॥२७

ऋक्षपादप्रसूता च तथाऽन्या वल्गुवाहिनी ।
शिवा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी सनिषधावती ॥२८
वेणा वैतरणी चैव सिनीबाहुः कुमुद्वती ।
तोया रेवा महागौरी दुर्गन्धा वाशिला तथा ॥२९

इनके अतिरिक्त अन्य भी नदियाँ हैं जिनके नाम पर्णामा-नन्दिनी-पावनी-मही-शरा- चर्मण्वती-लूपी-विदिशा-वेगुमती-चित्रा-ओघवती-रम्या और पारियात्र पर्वत से उद्‌भव प्राप्त करने वाली बताई गई हैं। शोण-महानदी-नर्मदा-सुरमा-क्रिया-मन्दाकिनी-दशार्ण चित्र कूप-रेविका-चित्रो-त्पला-तमसा-करतोया-पिशाचिका तथा अन्य नदी विप्पल श्रे णी-विपाशा और रञ्जुलावती है। सरसन्तजा-शुक्तिमती-चक्रिणी-त्रिदिवा-वसु- जोकि ऋक्ष पर्वत के पाद से प्रसूत होने वाली नदियाँ हैं। तथा अन्य नदियाँ भी हैं जिनके नाम वल्गु वाहिनी-शिवा पयोष्णी-निर्विन्ध्या-तापी-सनिष-धावती-वेणा-वैतरणी -सिनीबाहु- कुमुद्वती-तोया-देवा-महागौरी-दुर्गन्धा-वाशिला ये सभी नदियाँ हैं ॥२४-२९॥

विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ।
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्या सरिद्वती ॥३०
विशमद्री सुप्रयोगा वाह्या कावेरिरेव च ।
दुग्धोदा नलिनी चैव वारिसेना कलस्वना ॥३१
एताश्चापि महानद्यः सह्यपादविनिर्गताः ।
कृतमाला ताम्रपर्णी वञ्जुला चोत्पलावती ॥३२
शुनी चैव सुदामा च शक्तिमत्प्रभवास्त्विमाः ।
सर्वा पुण्याः सरस्वत्यः पापप्रश मनास्तथा ॥३३
जगतो मातरः सर्वाः सर्वाः सागरयोषितः ।
अन्याः सहस्रशश्चात्र क्षुद्रनद्यो हि राक्षस ॥३४
सदाकाल वहाश्चान्याः प्रावृट्कालवहास्तथा ।
मध्यदेशोद्भवा एताः पिवन्ति स्वेच्छया शुभाः ॥३५

विन्ध्याचल के पाद से समुत्पन्न होने वाली सभी नदियाँ परम पुण्य जल वाली तथा अतीव शुभ हैं। गोदावरी-भीमरथी-कृष्णा-वेण्या-

सरिद्वनी-विशमद्रो-मुप्रयोगा-वाह्या, कावेरी, दुग्धोदा-नलिनी-वारिसेना कलस्वना-ये सभी सरिताएँ बहुत बड़ी महानदी कहलाती हैं और सह्य पर्वत के पाद से इन सबका समुद्भव होता है। कृतमाला, ताम्रपर्णी वञ्जुला, उत्पलावती, शुती, सुदामा, ये सब शक्तिमान् पर्वत से उद्भव प्राप्त करने वाली हैं। ये सब सभी पुण्य एवं सरस्वती और पापों के के प्रशमन करने वाली सरिताएँ हैं ॥३०-३३॥ ये सभी सरिताएँ इस जगत् की माताएँ हैं और ये सभी सागर की पत्नियाँ हैं। हे राजन! इनके अतिरिक्त यहाँ भारतवर्ष में अन्य भी सहस्रों सरिताएँ विद्यमान हैं जो शुद्र नदियाँ कही जाती हैं। इनमें कुछ नदियाँ तो सदा-सर्वदा हर मौसम में बहती रहा करती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जो केवल वर्षा ऋतु में ही बहती हैं। मध्यदेश में उद्भव होने वाली ये नदियाँ परम शुभ होती हैं और स्वेच्छा से इनका पान किया करते हैं ॥३३-३५॥

यरस्थाः कुशूद्राः केलकुण्डलाश्चपश्चालकाश्च वसहकोशिकश्च ।
वृकाः शका बर्बरकौरवाश्च कलिङ्गवङ्गाङ्गजनास्तथैते ॥३६
मर्मका मध्यदेशीया आभीराः शाढ्यधानकाः ।
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयदाः ॥३७
अपरान्तास्तथा शूद्राः पल्ल वाश्च सखेटकाः ।
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः ॥३८
शातद्रवा ललित्थाश्च पारावतसमूपकाः ।
माठरोद काधराश्च कैकेया दशनास्तथा ॥३९
क्षत्रियाः प्रति वैश्याश्च तथा शूद्रकुलानि च ।
काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराश्चाङ्गलौकिकाः ॥४०
वेणाश्चैव तुषाराश्च बहुधा बाह्यतोदराः ।
आत्रेयाः समरद्वाजाः प्रस्थलाश्च दशेरकाः ॥४१
लम्पकास्तावकारामाश्चूडिकास्तङ्गणैः सह ।
अलसाश्चालिभद्राश्च किराताना च जातयः ॥४२

इन सरिताओं के तट के समीप मे रहने वाले लोग कुसित्त शूद्र-किलकुण्डल-पश्चालक-कौशिका-वृक, शक, बर्बर कौरव, कलिङ्ग, वङ्ग

तथा मज्जन होते हैं ॥३६॥ उन समस्त जातियों के नाम बतलाये जाते हैं जो उक्त सरिताओं के समीप में भारत मे रहते हैं—मर्भव, मध्य-देशीय-आभीर-शाव्य धानक, वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयद, अपरान्त, शूद्र पल्लव, सखेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु सौवीर मद्रक शातद्रव, ललित्थ, पारावत, मधूपक, माठरोदक धार, कैकेय, दशन ये क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी हैं। काम्बोज, दरद, बर्बर, अगलौकिक, वेण, तुषार बहुधा वाह्यतोदर, आत्रेय, सभरद्वाज, प्रस्थल, दशेरक, लम्पक, तावकाराम, चूडिक, तगण, अलस, अलिभद्र ये सब किरात लोगों की जातियाँ हैं जो निवास किया करती हैं ॥-४२॥

तामसाः कर्ममार्गाश्च सुपार्श्वा गणकास्तथा ।
कुलूताः कुहिकाश्चूर्णास्तूर्णपादाः सकुक्कुटाः ॥४३
माण्डव्याः पाणवीयाश्च उत्तरापथवासिनः ।
अङ्गावङ्गा मद्गुरवा स्वन्तर्गिरिर्वहिर्गिराः ॥४४
तथा प्रवङ्गा वाङ्गेया मांसादा बलदन्तिकाः ।
ब्रह्मोत्तरा प्राविजया भार्गवङ्गियमर्पकाः ॥४५
प्राग्ज्योतिषाः पृषघ्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
मालाभगधमानन्दाः प्राच्या जनपदास्त्विमे ॥४६
पुण्ड्राश्च केरलाश्चैव चौडाः कुल्याश्च राक्षस ।
जानुका मूषिकादाश्च कुमारादा महाशकाः ॥४७
महाराष्ट्रा माहिषिकाः कालिङ्गाश्चैव सर्वशः ।
आभीराः सहवैसक्या आरण्याः शबराश्च ये ॥४८
पुलिन्दा विन्ध्यशैलेया वैदर्भा दण्डकैः सह ।
पौरिकाः सौरिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः ॥४९

तामस, कर्ममार्ग, सुपार्श्व, गणक कुलूत, कुहिक, चूर्ण, तूर्णपाद, कुक्कुट, मागुल्य, पाणवीय, उत्तरापथवासी, अंग, वंग, मद्गुरव, अन्त-र्गिरि, बहर्गिरि, प्रवंग, वांगेय, मांसाद, बलदन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजय, भार्गवाक, यमर्पक, प्राग्ज्योतिष, पृषघ्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, माला,

मगध, मानन्द ये सब प्राच्य जनपद कहे जाते है ॥४३-४६॥ हे राक्षस ! पुण्ड्र, केरल, चोड, कुल्य, जानुक, मूषिकाद, कुमाराद, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कालिग, आभीर, वैसका, आरण्य, शवर, प्रविन्द, विन्ध्यशैलेय, वैदर्भ, दण्डक पौमूक, सारिक, अश्मक, भोगवर्द्धन ये दक्षिण के जन पद हैं ॥४३-४६॥

नैमिकाः कुन्दला आन्ध्राः उलिदा नलकारकाः ।
दाक्षिणात्या जनपदास्त्विमे शालकटंकट ॥५०
शूर्पारका वारिधाना दुर्गाश्चालीकटैः सह ।
पुलीयाश्चासिनीलाश्चतापसास्तामसास्तथा ॥५१
कारस्करास्तुभमिनो नासिकान्ताः सुनर्मदाः ।
दारुकच्छाः सुमाहेयाः सह सारस्वतैरपि ॥५२
वात्सीयाश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह ।
इत्येते पश्चिमामाशा स्थिता जानपदा जनाः ॥५३
कारुपाश्च कलव्याश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमर्णा दशार्णाश्च गोप्ताः किंकरवैः सह ॥५४
तोशलाः कोशलाश्चैव त्रैपुराः सैल्लिशास्तथा ।
तुरगास्तुम्बराश्चैव वहेला नैषधैः सह ॥५५
अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतहोत्रास्त्ववन्तयः ।
सुकेशे विन्ध्यमूलस्यास्त्विमे जनपदाः स्मृताः ॥५६

नैमिक, कुन्दल, आन्ध्र, उलिद, नल कारक, हे शालकटंकट ! ये सभी दाक्षिणात्य जन पद कहे जाते हैं ॥५०॥ शूर्पारिक, वारिधान, दुर्ग, अलीकट, पुलीय, असिनील, तापस, तामस, कारस्कर, तुभमी, नासिकान्त, सुनर्मद, दारु कच्छ, सुमाहेय, सारस्वत, वात्सीय, सुराष्ट्र, आवंन्त्य, अर्बुद, ये सब पश्चिम दिशा में स्थित रहने वाले जनपदों के मनुष्य हैं ॥५१-५३॥ कारूप, एक लव्य, मे कल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, गोप्त, किंकरव, तोशल, कोशल, त्रैपुर, सैल्लिश तुरग, तुम्बर, वहेल, नैषध, अनूप, तुण्डिकेर, वीतहोत्र, अवन्ति ये जनपद विन्ध्य के मूल में स्थित होने वाले हे सुकेशो ! बतलाये गये हैं ॥५४-५६॥

आद्यान्देशान्प्रवक्ष्यामः पर्वताश्रयिणस्तु ये ।
निराहारा हंसमार्गाः कुपथास्तङ्गणाः खशाः ॥५७
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णाप्लुष्टाः सुहूहुकाः ।
त्रिगर्त्ताश्च किराताश्च तोमराः शशिखाद्रिकाः ॥५८
इमे तवोक्ता विषयाः सुविस्तराद्द्वीपे कुमारे रजनीचरेश ।
एतेषुदेशेषुच्चदेशधर्मान् सकीर्त्यमानाञ्छृणु तत्त्वतो हि ॥५८

अब जो देश पर्वतों का समाश्रय करके रहने वाले हैं उन आद्य देशों के विषय में बतलायेंगे । उनके नाम ये हैं—निराहार, हंसमार्ग, कुपथ, तङ्गण, खश, कुथ प्रावरण, ऊर्णाप्लुष्ट, सुहूहुक, त्रिगर्त, किरात, तोमर, शशिखाद्रिक—ये देश हे रजनीचरेश ! आपके सामने कुमार द्वीप में भली भाँति विस्तार के सहित बतलाये हैं । अब इन देशों में जो देशों के धर्म हैं उनका मैं संकीर्तन करता हूँ उनका श्रवण आप करिये जोकि तात्त्विक रूप से बताया जा रहा है ॥५७-५८॥

१४--धर्मानुशासन वर्णन

अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शमः ।
अकार्पण्यं च शौच च तपश्च रजनीचर ॥१
दशाङ्गो राक्षसश्रेष्ठ धर्मोऽसौ सार्ववर्णिकः ।
ब्राह्मणस्यापि विहिता चातुराश्रम्य कल्पना ॥२
विप्राणां चातुराश्रम्य विस्तरान्मे तपोधनाः ।
आचक्षध्व न मे तृप्तिः शृण्वतः प्रतिपद्यते ॥३
कृतोपनयनः सम्यग्ब्रह्मचारी गुरौ वसेत् ।
तत्रधर्मोऽस्य यस्तं त्वं कथ्यमानं निशामय ॥४
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नान भिक्षाटन तथा ।
गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वथा ॥५
गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक्प्री त्युपपादनम् ।
तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः ॥६

एक द्वौ सकलान्वाऽपि वेदा-प्राप्यगुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातो वर दत्त्वा गुरवे दक्षिणा ततः ॥७

ऋषि गण ने कहा—हे रजनीचर ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, दान, क्षान्ति, दम, शम, अकार्पण्य और शौच तथा तप हे राक्षस श्रेष्ठ ! यह धर्म का स्वरूप ऐसा है जो सभी वर्णों में रहने वाला है। ब्राह्मण को भी चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्यास) की कल्पना विहित होती है ॥१-२॥ सुकेशी ने कहा—हे तप के ब्राह्मन मानने वालो ! विप्रों को जो चार आश्रमों का परिपालन है उसको अब आप मुझे विस्तार पूर्वक श्रवण कराइये ? मुझे आपके मुख से सुनते हुए भी पूर्णतया तृप्ति नहीं हो रही है ॥३॥ ऋषिगण ने कहा—जब उपनयन संस्कार सम्पन्न हो जावे तो भली भाँति ब्रह्मचर्य के व्रत का परिपालन करते हुए गुरु के समीप मे ही निवास करना चाहिए। यहाँ पर रहकर उस ब्रह्मचारी का जो भी धर्म होता है उसको हम बतलाते हैं वह आप इस समय में श्रवण करिये ॥४॥ वहाँ गुरुकुल में सबसे प्रथम उस ब्रह्मचारी का धर्म वेदो का स्वाध्याय करना ही होता है। अग्निहोत्र, स्नान, भिक्षाटन करके सर्व प्रथम उसे गुरु की सेवा में समर्पित करना तथा उनकी आज्ञा प्राप्त करके ही उसे अपने उपयोग में लायें ॥५॥ गुरु का जो भी कर्म हो उस पूर्ण करने मे सर्वदा उद्योग वाला रहे और गुरु के चरणों में अच्छी तरह से प्रीति की नीति रखन का प्रतिपालन करे। जिस समय में अध्ययन करने को गुरु का आह्वान हो तभी उपस्थित होकर पढ़े और अनन्य मन वाला एव तत्परता पूर्ण रहे ॥६॥ एक दो अथवा समस्त वेदों का ज्ञान गुरु के मुख से प्राप्त करके जब गुरु की अनुज्ञा हो तभी उनका वरदान प्राप्त कर उनको अपनी दक्षिणा देकर वहाँ से विदाई प्राप्त करे ॥७॥

गृहस्थाश्रमकामस्तु गार्हस्थ्याश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रम वार्ऽपि चतुर्थं स्वेच्छयाऽऽत्मन ॥८
तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुना विना ॥६

शुश्रूषन्निरभीमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत् ।
एवं जयति मृत्युं स द्विजः सालकटंकट ॥१०
उपावृत्तस्तु तस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ।
असमानार्षकुलजा कन्योद्वाह्या निशाचर ॥११
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथीनपि ।
सम्यक्सप्रीणयेद्भक्त्या सदाचाररतो द्विजः ॥१२
सदाचारेति गदितं युष्माभिमम सुव्रताः ।
लक्षणं श्रोतुमिच्छामि कथयध्वं तदद्य मे ॥१३
सदाचारो निगदितस्तव योऽस्माभिरादरात् ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामस्तच्छृणुष्व निशाचर ॥१४

गृहस्थाश्रम में रहने की इच्छा वाला पुरुष घर पर आकर गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करे । अथवा वानप्रस्थ आश्रम में अथवा अपनी इच्छा से चौथे आश्रम सन्यास में प्रवेश करे ॥८॥ वहीं पर ही अथवा गुरु के गृह में द्विज निष्ठा को प्राप्त करे । यदि गुरु न रहें तो उनके पुत्र के या उनके शिष्य के समीप में रहे । गुरु की पुत्री के पास नहीं रहना चाहिए ॥९॥ सेवा करता हुआ अभिमान से रहित होकर ब्रह्मचर्य आश्रम में रहे । हे सालकटंकट ! इस प्रकार से मनुष्य अर्थात् द्विज मृत्यु को भी जीत लिया करता है ॥१०॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य के कर्मों से निवृत्त होकर जब गृहस्थाश्रम में प्रवेश की कामना हो तो अपने गोत्र से भिन्न आर्ष गोत्र वाली तथा कुल में जन्म लेने वाली कन्या के साथ विवाह करना चाहिए ॥११॥ फिर अपना समुचित जो कर्म हो उसे करते हुए धन का अर्जन करे और अपने पितृगण तथा देववृन्द और अतिथियों का भक्ति की भावना से सदाचार में रत रहकर अच्छी तरह से प्रीणन करना चाहिए । यही गार्हस्थ्य में एक द्विज का परम कर्त्तव्य है ॥१२॥ सुकेशी ने कहा—हे सुव्रतो ! आपने 'सदाचार' इस शब्द का प्रयोग तो मेरे सामने कर दिया है किन्तु वह सदाचार किस प्रकार का होता है उसका क्या लक्षण है—यह मैं सुनना चाहता हूँ । अब आप कृपया उसे बतलाइये ॥१३॥ ऋषियों ने कहा—हमने सदाचार तो हमने

बता दिया है किन्तु अब हम उसका लक्षण भी आपको आदर पूर्वक बतलाते हैं, उसका श्रवण करो ॥१४॥

गृहस्थेन सदा कार्यमा चारपरिपालनम् ।
न ह्याचारविहीनस्य भद्रमत्र परत्र च ॥१५
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये ।
भवन्ति यः समुल्लङ्घ्य सदाचार प्रवर्त्तते ॥१६
दुराचारो हि पुरुषो नेह नामुत्र नन्दते ।
कार्यो यत्नः सदाचार आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥१७
तस्य स्वरूप वक्ष्यामः सदाचारस्य राक्षस ।
शृणुष्वैकमनास्त्वं च यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि ॥१८
धर्मोऽस्य मूल धनमस्य शाखाः पुष्पचकाम. फलमस्यमोक्षः ।
असौ सदाचारतरुः सुकेशिन्संसेवितो येन सपुण्यभोक्ता ॥१९
ब्राह्मे मुहूर्ते प्रथम विबुध्येदनुस्मरे द्देववरान्महर्षीन् ।
प्राभातिक मङ्गलमेव वाच्य यदुक्तवान्देवपतिस्त्रिनेनः ॥२०
किं तदुक्तं सुप्रभात शंकरेण महात्मना ।
प्रभाते यत्पठन्मर्त्यो मुच्यते पापबन्धनात् ॥२१

एक गृहस्थाश्रमी पुरुष को सदा ही आचार का परिपालन करना चाहिए। जो आचार से रहित होता है उसका इस लोक में कहीं भी कल्याण नहीं हुआ करता है ॥१५॥ जो सदाचार का समुल्लङ्घन करके यज्ञ-दान और तपश्चर्या किया करता है उससे कल्याण के लिये ये कभी नहीं हुआ करते हैं ॥१६॥ दूषित आचरण वाला पुरुष न तो कभी यहाँ आनन्द प्राप्त कर सकता है और न उसे परलोक में ही सुख एवं कल्याण की प्राप्ति होती है। अतएव सदाचार में पूर्ण यत्न करना चाहिए यह सदाचार बुरे लक्षणों का भी हनन कर देता है ॥१७॥ हे राक्षस ! अब हम उसी सदाचार का लक्षण आपके सामने बतलाते हैं। आपको एक मन होकर ही उसका श्रवण करना चाहिए यदि आप अपना कुछ कल्याण चाहते हैं ॥१८॥ हे सुकेशिन् ! यह सदाचार के स्वरूप वाला एक वृक्ष है जिसने इसका भली भाँति सेवन किया है वह पुण्य बहुत ही

अधिक पुण्यों का भोगने वाला ही होता है। इस सदाचार रूपी वृक्ष का मूल तो धर्म है। धन इसकी शाखाऐं हैं। पुण्य इसकी कामनाऐं हैं और मोक्ष इसका फल है ॥१६॥ सबसे प्रथम ब्राह्म मुहूर्त में (सूर्योदय से बहुत पूर्व) निद्रात्याग कर जाग जाना चाहिए। सबसे पूर्व देववरों और पूर्वज महर्षियों का स्मरण करना चाहिए। जिसको तीन नेत्रधारी देवों के स्वामी ने कहा है उस प्रातःकालीन मङ्गल स्तोत्र का पाठ करे ॥२०॥ सुकेशी ने कहा—वह प्राभातिक मङ्गल कौनसा है जिसे महान् आत्मा वाले प्रभु शंकर ने कहा है जिसका कि प्रातःकाल में पाठ करता हुआ मनुष्य सम्पूर्ण पापों के बन्धन से मुक्त हो जाया करता है? ॥२१॥

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं हरोदितम्।
श्रुत्वा स्मृत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२
ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२३
भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मुनिः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनोऽथ ऋभुश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२४
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२५
पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथाऽपः सस्पर्शवायुर्ज्वलनः सुतेजाः।
नभः सशब्दं महता सहैव यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२६
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादयः सप्त तथैव लोका यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२७
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥२८

ऋषिगण ने कहा—हे राक्षस श्रेष्ठ! भगवान् श्री हर के द्वारा कल्पित जो प्रभातमङ्गल पाठ है उसको अब सुनो। इसका श्रवण करके—पाठ करके और केवल स्मरण करके भी मनुष्य समस्त प्रकार के भी घोरातिघोर पापों से भी मुक्त हो जाया करता है ॥२२॥ पाठ यह है—'ब्रह्मा, मुरारि, त्रिपुर दैत्य के हनन करने वाले—भानु—चन्द्र—भूमिसुत

मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और भानुज (शनि) ये सब मेरा सुन्दर प्रभात करें ॥२३॥ भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरामुनि, पुलस्त्य, पुलह, गौतम रैभ्य, मरीचि, च्यवन और रिभु ये सब महर्षि वृन्द मेरा सुन्दर प्रभात करें ॥२४॥ सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिंगल, सात षडजादि स्वर-मान मधुरादि रस और सात तल ये सभी सम्मिलित होकर मेरा परम सुन्दर प्रभात करने की कृपा करें ॥२५॥ गन्ध से युक्त पृथ्वी, रस से सयुत जल, स्पर्श से समन्वित वायु, सुष्ठु तेज से युक्त अग्नि, शब्द से परिपूर्ण अन्तरिक्ष ये सब महान् के सहित मेरा सुप्रभात करें ॥२६॥ सात समुद्र, सात कुल पर्वत, सात जमदग्नि आदि ऋषि-वृन्द, सात जम्बूद्वीपादि द्वीप तथा भूलोक प्रभृति सात लोक ये सब मुझको सुन्दर प्रभात प्रदान करें" ॥२७॥ यह प्राभातिक मङ्गल पाठ है, इसी प्रकार से इस परम पवित्र पाठ का जो प्रभात में पढ़ता है, स्मरण करता है या भक्तिभाव से श्रवण किया करता है। हे अनघ ! उस पुरुष के दुःस्वप्नों का नाश हो जाता है और फिर निश्चय ही सुन्दर प्रभात ही होता है। यह सर्वथा सत्य है। भगवान् के प्रसाद से यह परम सुन्दर अवश्य होता है ॥२८॥

ततः समुत्थाय विचिन्तयेन धर्मं तथार्थं च विहाय शय्याम् ।
ऊत्थाय पश्चाद्धरिरित्युदीर्य गच्छेत्तदोत्सर्गविधिहिकर्त्तुम् ॥
न देवगोब्राह्मणवह्निमार्गे न राजमार्गे न चतुष्पथे च ।
कुर्यादथोत्सर्गमपीह गोष्ठे पूर्वापरांनैव समाश्रितो गाम् ॥३०
ततस्तु शौचार्थमुपाहरेन्मृद गुदे त्रयं पाणितले दशैव ।
तथोभयोः सप्त तथैव पादयोर्लिङ्गे तथैकां मृदमा हरेत ॥३१
नान्तर्जलाद्राक्षस मूषकस्य विलाच्च शौचाचरणागतान्यैः ।
वाल्मीकमृच्चैव हि शुद्धये सदाग्राह्यासदाचारविदा नरेण ॥३२
उदङ्मुखः प्राग्वदनोऽपि विद्वान्प्रक्षाल्य पादौभुविसंनिविष्टः ।
समाचमेदद्भिरफेनिलाभिर्मुखत्रिरादौ परिमृज्य च द्विः ॥३३
ततः स्पृशेत्खानि शिरः करेण संध्यामुपासीत ततः क्रमेण ।
केशांश्च संशोध्य च दन्तधावनकृत्वा तथादर्पणदर्शनं च ॥३४

कृत्वा शिरःस्नानमथाह्निक वा संपूज्य तोयेन पितृन्सदेवान्।
होमंचकृत्वाऽऽलभनंशुभाना कृत्वावहिर्निर्गमनप्रशस्तम् ॥३५

इस मगल पाठ के करने के पश्चात् उठकर अर्थात् शय्या का त्याग करके धर्म और अर्थ का विशेष रूप से चिन्तन करना चाहिए। इसके अनन्तर उठकर श्रीहरि'—इस भगवन्नाम का मुख से उच्चारण करके मल-मूत्रादि के उत्सर्ग करने के लिये जाना चाहिए ॥२६॥ देवता, गौ, ब्राह्मण और अग्नि के मार्ग मे, राजमार्ग मे, चतुष्पथ मे, गोष्ठ मे तथा आगे-पीछे गौ को समाश्रित करके कभी मल-मूत्र का उत्सर्ग नही करना चाहिए ॥३०॥ इसके अनन्तर शुद्धि के मृत्तिका का ग्रहण करे। गुदा मे तीन बार, पाणितल मे दस बार तथा दोनो हाथो को मिलाकर सात बार, इसी प्रकार से पैरो मे और लिंग मे एक बार मिट्टी लगाकर शुद्धि करे ॥३१॥ हे राक्षस ! मिट्टी के लेने के भी स्थान का पूर्ण ध्यान रक्खे, जल के भीतर से मिट्टी कभी ग्रहण न करे, मूषक के बिल से, ऐसे स्थल से भी मृत्तिका ग्रहण न करे जहाँ पर शौचाचरण को गये हो। वाल्मीक की मिट्टी शौचविधि के लिये सदा ग्रहण करने के योग्य होती है और ऐसा सदाचार के ज्ञाता पुरुष को करना भी चाहिए ॥३२॥ उत्तर दिशा की ओर मुख को करके या पूर्व की ओर मुख करके विद्वान् पुरुष को अपने पैरो को धोकर भूमि मे बैठकर जल से आचमन, कुल्ली करना चाहिए किन्तु वह जल फेनो से युक्त नही होना चाहिए। आदि में तीन बार अथवा दो बार मुख का परिमार्जन करना चाहिए ॥३३॥ इसके उपरान्त कर से शिर का स्पर्श करे और फिर क्रम मे सन्ध्या समय की उपासना करे। इसके पूर्व अपने केशो का सशोधन करे, दन्त धावन करे और दर्पण मे मुखावलोकन भी करना चाहिए ॥३४॥ शिर से तथा समस्त अंगो से इसके अनन्तर स्नान करके फिर पितृगण एव देवगण को जल से तृप्त करे अर्थात् तर्पण करे। फिर होम करे और शुभो का समालभन करके पुन. घर से बाहिर गमन करना ही प्रशस्त कहा जाता है ॥३५॥

दूर्वां दधि सर्पिरथोदकुम्भवेनुं सवत्सांवृषभं सुवर्णम् ।
मृद्गोमयस्वस्तिकमक्षतानि लाजामधुब्राह्मणकन्यकाश्च ॥३६
श्वेतानि पुष्पाणि च शोभनानि हुताशनं चन्दनमर्कबिम्बम् ।
अश्वत्थवृक्ष च समालभेत ततस्तु कार्यो निजजातिधर्मः ॥३७
देशानुशिष्ट कुलधर्ममग्र्य स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेत ।
तेनार्थसिद्धि समुपाचरेत नासत्प्रलाप न च सत्यहीनम् ॥३८
न निष्ठुर नागमशास्त्रहीन वाक्य वदेत्साधुजनेन येन ।
निन्द्यो भवेत्त्व च धर्मभेदी सङ्ग नचासत्सुनरेषुकुर्यात् ।३६
सन्ध्यासु वर्ज्यं सुरत दिवा च सर्वासु योनीषु पराबलासु ।
सर्वास्वयोनिष्वपराबलासु रजस्वलास्वत्र जलेषु वीर ॥४०
वृथाटन वृथा दान वृथा च पशुमारणम् ।
न कर्तव्य गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहः ॥४१
वृथाटनान्नित्यहानिर्वृथा दानाद्धनक्षयः ।
वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति पातकं नरकार्थि यत् ॥४२

दूर्वा-दधि, घृत, जलकुम्भ, धेनु जो बछड़े से संयुत हो, वृषभ, सुवर्ण, मृत्तिका, गोमय, स्वस्तिक, अक्षत लाजा (खील) मधु, ब्राह्मण कन्या, श्वेत पुष्प जोकि शोभन हों, हुताशन, चन्दन, सूर्यबिम्ब, अश्वत्थ (पीपल) इनका समालभन करे। इनके अनन्तर अपनी जाति का जो भी धर्म कृत्य हो उसे करना चाहिए ॥३६-३७॥ देश के अनुसार होने वाला जो कुल का धर्म होता है। अपने गोत्र का जो धर्म है उसे कभी नहीं त्यागना चाहिए। उसी के द्वारा अर्थ की सिद्धि का उपाचरण करे। न तो कभी असत्प्रलाप करे और न सत्य से रहित ही बात कहे ॥३८॥ कभी मुख से निष्ठुर वचन न कहे तथा ऐसा वाक्य भी न कहे जो आगम एवं शास्त्र से हीन हो। ऐसा वचन भी नहीं कहना चाहिए जिसके कहने पर साधुजनों के द्वारा निन्दा के योग्य हो जावे। असत्पुरुषों के मध्य में धर्म का भेदन वाला सग नहीं करना चाहिए ॥३६॥ दोनों सन्धिकालों में रति क्रीडा न करे और दिन में भी सुरत न करे। सभी योनियों में तथा पराई नारियों में भी रति न करे। हे वीर !

चाहिए। तथा जो तस्कर वृत्ति वाले मनुष्य हैं उनके साथ कभी भाषण न करे। जो रजस्वला (रजस्वैनी) हो उसको देखना, उसका स्पर्श करना और उसके साथ भाषण करना नहीं चाहिए ॥४५॥ जो अपनी सगी भगिनी हो अथवा पराई स्त्री हो उसके साथ कभी भी एक आसन या शय्या पर नहीं बैठना चाहिए। इसी तरह सौतेली माता और अपनी पुत्री के साथ भी एक आसन पर न बैठे॥४६॥कभी नग्न होकर स्नान न करे और न शयन ही करे। बिल्कुल दिगम्बर होकर कभी इधर-उधर परिभ्रमण भी अभीष्ट नहीं माना जाता है ॥४७॥ शुद्धि के लिए शय्या आसन और भाजन आदि का शनि के पश्चात् परिवर्तन कर देना चाहिए और उन्हें भिन्न ही रखना चाहिए। नन्दा तिथियों में अभ्यंग नहीं करे। रिक्ता तिथियों में क्षौर कर्म न करे और जया तिथियों में आमिष का त्याग करे ॥४८॥ पूर्णा तिथियों में नारी का सहवास न करे, भद्रा तिथियों में सब कुछ करे। रविवार में अभ्यंग न करे, मंगल वार में क्षौर कर्म न कराये तथा शुक्र और शनि में आमिष न ग्रहण करे। बुधवार में नारी सहवास न करे। शेष दिनों में सब कार्य करे। प्रतिपदा से पंचमी तक और षष्ठी से दशमी तक तथा एकादशी से पूर्णिमा तक क्रम से नन्दा,भद्रा, जया,रिक्ता और पूर्णातिथियां होती हैं,चित्रा नक्षत्र, हस्त और श्रवण में तैल मर्दन न करे। विशाखा और अभिजित नक्षत्र में क्षौर न करे ॥४६-५०॥

मूले मृगे भाद्रपदासु मास योषिन्मघाकृत्तिकमोत्तरासु ।
सदैव वर्ज्यंशयनेऽदविच्छरस्तथाप्रतीच्यारजनीचरेश ॥५१

भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो नचप्रतीचीमसि भोजनीयम् ।
देवालयचैत्यतरु चतुष्पथविद्याधिकचापिगुरु प्रदक्षिणम् ॥५२

माल्यान्नपानवमनानियत्नतोघृतानिचान्यैर्नहिधारयेद् बुधः ।
स्नायाच्छिर स्नानतयाचनि यनिष्वारपतनैवमहानिशासु ॥५३

ग्रहोपरागे स्वजनापयान मुक्त्वा च जन्मरागते शशाङ्के ।
नाम्यङ्गितवायमुपस्पृशेच्चरस्नातोननैशा-अपुनीतचापि ॥५४

सभी अन्य योनियो में तथा दूसरों की नारियों मे एव रजस्वलाओ मे और जल मे रति क्रीडा न करे ॥ ४० ॥ वृथा अटन करना, वृथा दान, वृथा पशुओ का मारण तथा दाराओ का परिग्रह एक गृहस्थ को नही करना चाहिए। वृथा अटन से नित्य हानि होती है और वृथा दान से धन का क्षय होता है। वृथा पशु घातक घातकी होता है और नरक गामी भी हो जाता है ॥४१-४२॥

सततया हानिरदलाघ्या वर्णसंकरतो भयम् ।
भेतव्य च भवेल्लोके वृथादारपरिग्रहात् ॥४३
परस्वे परदारेषु न कार्या बुद्धिरुत्तमैः।
परस्व नरकायैव परदाश्च मृत्यवे ॥४४
नेक्षेत्परस्त्रिय नग्ना न सभाषेत तस्करान् ।
उदक्या दर्शनस्पर्श सभाषा च विवर्जयेत् ॥४५
नैकासने तथा स्थेय सोदर्या परजायया ।
तथा सापत्नमातुश्च तथा स्वदुहितुर्व्वापि ॥४६
न च स्नायीत वै नग्नो न शयीत कदाचन ।
दिग्वाससोऽपि न तथा परिभ्रमण मिष्यते ॥४७
भिन्नाश्च शय्यासनभाजनादीन्दुष्टदर्षं रतः सपरिवर्जयेत्तान् ।
नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेतक्षौरञ्चरिक्तासु जयासु मासम् ॥४८
पूर्णासु योषित्परिवर्जनीया भद्रासु सर्वाणि समाचरेच्च ।
नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे क्षौर च शुक्रे रविजेचमासम् ॥४९
बुधेषु योषिन्न समाचरेत शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात् ।
चित्रासु हस्तेश्रवणेनतैलक्षौरविशाखास्वभिजित्सुवर्ज्यंम् ॥५०

सन्तति से असाध्य हानि होती है और वर्णसकर से भय होता है। अतएव इस लोक मे वृथा दाराओं के परिग्रह करने से भयभीत ही रहना चाहिए ॥४३॥ जो उत्तम कोटि के मनुष्य होते है उनको पराये धन मे और पराई नारियों मे कभी भी अपनी बुद्धि नही करनी चाहिए। पराया धन तो नरक देने वाला ही होता है और पराई नारी तो मृत्यु ही देने वाली होती है ॥४४॥ पराई स्त्री को कभी नग्न नही देखना

चाहिए। तथा जो तस्कर वृत्ति वाले मनुष्य हैं उनके साथ कभी भाषण न करे। जो उदक्या (रजस्वला) हो उसको देखना, उसका स्पर्श करना और उसके साथ भाषण करना नहीं चाहिए ॥४५॥ जो अपनी सगी भगिनी हो अथवा पराई स्त्री हो उसके साथ कभी भी एक आसन या शय्या पर नहीं बैठना चाहिए। इसी तरह सौतेली माता और अपनी पुत्री के साथ भी एक आसन पर न बैठे।४६॥कभी नग्न होकर स्नान न करे और न शयन ही करे। बिलकुल दिगम्बर होकर कभी इधर-उधर परिभ्रमण भी अभीष्ट नहीं माना जाता है ॥४७॥ शुद्धि के लिए शय्या आसन और भाजन आदि का रति के पश्चात् परिमजन कर देना चाहिए और उन्हें भिन्न ही रखना चाहिए। नन्दा तिथियों में अभ्यग नहीं करे। रिक्ता तिथियों में क्षौर कर्म न करे और जया तिथियों में आमिष का त्याग करे ॥४८॥ पूर्णा तिथियों में नारी का सहवास न करे, भद्रा तिथियों में सब कुछ करे। रविवार में अभ्यग न करे, मगल वार में क्षौर कर्म न करावे तथा शुक्र और शनि में आमिष न ग्रहण करे। बुध-वार में नारी सहवास न करे। शेष दिनों में सब कार्य करे। प्रतिपदा से पचमी तक और षष्ठी मे दशमी तक तथा एकादशी से पूर्णिमा तक क्रम से नन्दा,भद्रा, जया,रिक्ता और पूर्णातिथियां होती हैं,चित्रा नक्षत्र, हस्त और श्रवण में तेल मर्दन न करे। विशाखा और अभिजित नक्षत्र में क्षौर न करे ॥४६-५०॥

मूले मृगे भाद्रपदासु मास योपिन्मघाकृत्तिकभोतरासु ।
सदैव वर्ज्यंशयनेउदविछरस्तथाप्रतीच्यारजनीचरेश ॥५१

भुञ्जीत नैवेह च दक्षिणामुखो नचप्रतीचीमभि भोजनीयम् ।
देवालयचैत्यसतरु चतुष्पथविद्याधिकचापिगुरु प्रदक्षिणम् ॥५२

मात्यान्नपानंवसनानियत्नतोधृतानिचान्यैर्नहिधारयेद् बुधः ।
स्नायाच्छिरःस्नानतयाचनित्यनिष्कारणनैवमहानिशासु ॥५३

ग्रहोपरागे स्वजनापघात भुक्त्वा च जन्मर्क्षगते शशाङ्के ।
नाम्यङ्गितंवायमुपस्पृशेच्चस्नातोनकेशान्विधुनीतचापि ॥५४

गात्राणि नैवाम्वरपाणिना च स्नातो विमृज्याद्रजनीचरेश ।
वसेत्सुदेशेषु सुराजकेषुसुसंहितेष्वेव जनेषु नित्यम् ।।५५

मूल, मृगशिरा, भाद्रपदा में मांस, मघा, कृत्तिका उत्तरा में नारी-संग वर्जित होता है। उत्तर की ओर शिर करके शयन करना तथा पश्चिम में शिर करके शयन करना सदा ही वर्जित माना गया है ।।५१।। दक्षिण की ओर मुख करके तथा पश्चिम की ओर मुख करके कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए। देवालय, चैत्यतरु, चतुष्पथ विद्या में अधिक और गुरु को प्रदक्षिण करके भोजन करे ।।५२।। माल्य, अन्न, पान, वस्त्र ये जो किसी अन्य के द्वारा धारण किए हुए हों तो बुध पुरुष को स्वयं कभी धारण नहीं करना चाहिए। नित्य ही शिर में ही शुद्धि के लिये स्नान करना चाहिए किन्तु बिना ही किसी कारण के तथा महानिशा में शिर से स्नान नहीं करना चाहिए ।।५३।। ग्रह के उपराग में अर्थात् ग्रहण में तथा किसी अपने जन के अपघात हो जाने पर स्नान महानिशा में भी करने पर कोई दोष नहीं है। अपने जन्म नक्षत्र पर चन्द्रमा हो तो अभ्यंग न करे और काया का उपस्पर्शन मात्र कर लेवे। स्नान करके अपने केशों को कभी विधूनित नहीं करे ।।५४।। हे रजनी चरेश! स्नान करके अम्बर पाणि से कभी गात्रों का विमार्जन न करे। ऐसे ही देशों में निवास करे जो अच्छे हो, जिनका राजा भी अच्छा हो तथा जो नित्य ही जनों के द्वारा सुसंहित हो ।।५५।।

अक्रोधना न्यायपरा विमत्सराः कृषीवला ह्यौषधिजातयश्च ।
स्वापस्तु वैद्यो धनिकश्च यत्रसच्छ्रोत्रियस्तत्रवसेतनित्यम्।।५६
न तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान्सदा नृपो दण्डरुचिस्त्वशक्तः ।
जनोऽपि नित्योत्सव बद्धवैर.सदा जिगीषुश्चनिशाचरेन्द्र ।।५७
यच्च वर्ज्यं महाबाहो सदा धर्मस्थितैर्नरैः ।
यद्भोज्य च समुद्दिष्टं कथयिष्यामहे वयम् । ५८
भोज्यमन्नं पर्युषित स्नेहाक्त चिरसम्भृतम् ।
अस्नेहा व्रीहयः श्लक्ष्णा विकाराः पयसस्तथा ।।५९

शशकः शल्यको गोधा समेधा मत्स्यकच्छपौ ।
तद्वद्द्विदलकादीनि भोज्यानि मनुरब्रवीत् ॥६०
मणिवस्त्रप्रवालाना तद्वन्मुक्ताफलस्य च ।
शैल दारुमयाना च तृणमूलौषधान्यपि ॥६१
शूर्पधान्यतृणाना च सहताना च वाससाम् ।
वल्कलानामशेषाणामम्बुना शुद्धिरिष्यते ॥६२
सस्नेहानामथोष्णेन तिलकल्केन चाविकम् ।
कार्पासिकाना वस्त्राणा शुद्धि. स्याद्बहिरम्बुना ॥६३

ऐसे ही देशो मे निवास करे जहा पर मनुष्य क्रोधी स्वभाव वाले न हों, न्याय मे तत्पर और मत्सरता से रहित हो, अच्छे कृषि करने वाले हो और सभी प्रकार की ओषधियो की किस्म उत्पन्न होती हो, जहा सुन्दर जल हो—वैद्य तथा धनिक पुरुष भी हो एव अच्छे वेद के ज्ञाता पुरुष निवास करते हों। वही पर जाकर नित्यनिवास करना चाहिए ॥५६॥ उस प्रकार के देशों मे बुद्धिमान् को कभी नही रहना चाहिए जहां पर राजा सर्वदा ही दण्ड करने की रुचि वाला हो और शक्तिहीन हो। जहा के मनुष्य भी नित्य ही उत्सवो पर वैर बाधकर रहने वाले हो और अपनी जय प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले हो ॥५७॥ हे महाबाहो ! धर्म मे स्थित रहने वाले मनुष्यों को जिस का सदा त्याग कर देना चाहिए और जो उनको भोजन करना चाहिए वही हम आपको बतलावेंगे ॥५८॥ पर्युषित अन्न भी वह भोजन के योग्य होता है जो स्नेह (घृतादि)अक्त हो और चिर सभृत हो। स्नेह से रहित व्रीहि श्लक्ष्ण विकार युक्त हैं तथा पय भी विकृत होता है ॥५९॥ शशक, शल्यक गोधा, समेधा, मत्स्य, कच्छप तथा उसी भाति द्विदलक प्रभृति भोज्य हैं, ऐसा मनु ने कहा है ॥६०॥ मणि, वस्त्र,प्रवाल,मुक्ताफल, शैल तथा दारुमय (पत्थर और काष्ठ निर्मित) वस्तु, तृण, मूल और ओषध शूप, धान्य, तृण एवं महत वस्त्र तथा सम्पूर्ण वल्कल इन सबकी शुद्धि केवल जल से हो जाया करती है ॥६१-६२॥ जो स्नेह (चिकनाई) से युक्त हों,उनकी शुद्धि गर्म जल से होती है और जो आविक पदार्थ हों

फिरने से शुद्ध हो जाया करती है। भूमि की शुद्धि लेपन, उल्लेखन, सेक से तथा वेश्म समार्जन और अर्चन से शुद्ध होते हैं ॥६७-६८॥ केश तथा कीटों से अवपन्न अन्न मे गोघ्रात तथा मक्षिकाओं से समन्वित मे मिट्टी, अम्बु, भस्म क्षार शुद्धि के लिये डाल देने चाहिए ॥६९॥ औदुम्बर पदार्थों का अम्ल से (खटाई से) त्रपु और शीशे के पदार्थो का क्षार से तथा कांसे के पात्रो का भस्म और जल से शुद्धि होनी है। जो द्रव हो उसका प्लाव कर देना चाहिए इससे शुद्धि होती है ॥७०॥

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ।
अन्येषामपि तद्द्रव्यैः शुद्धिगन्धापहारतः ॥७१
मातुः प्रस्रवणे वत्सः शकुनिः फलपातने ।
गर्दभो भारवाहित्वे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥७२
रथ्याकर्दमतोयानि गावः पथि तृणानि च ।
मारुतेनैव शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥७३
पक्वं द्रोणाधिकं चान्नममेध्याभिप्लुतं भवेत् ।
अग्रमुद्धृत्य सन्त्याज्यं शेषस्य प्रोक्षणं स्मृतम् ॥७४
उपावसेत्त्रिरात्रं वा दूषितान्नस्य भोजने ।
अज्ञातशास्त्रपूर्वे वा नैव शुद्धिर्विधीयते ॥७५
उदक्यास्नातनग्नांश्च सूतिकान्त्यावसायिनः ।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥७६
सस्नेहमस्थि संस्पृश्य सवासा जलमाविशेत् ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य च ॥७७

जो पदार्थ किसी अपवित्र वस्तु से व्यक्त हो गया हो उसकी शुद्धि मिट्टी और जल से हुआ करती है तथा उसकी जब गन्ध का अपहरण हो जावे तो उसकी शुद्धता हो जाया करती है। अन्य पदार्थों की भी शुद्धि उन्हीं द्रव्यों से तथा गन्ध के अपहरण से होती है ॥७१॥ माता के प्रस्रवण मे वत्स तथा फलों के पातन करने के अवसर पर पक्षी, जब किसी भार का वहन कर रहा हो तो उस समय मे गधा, पशु के पकड़ने के समय मे कुत्ता शुद्ध माना जाता है ॥७२॥ रथ्या के कर्दम (कीच) का

उनकी शुद्धि तिलों के कल्क से हुआ करती है। जो कपास से बने हुए सूती वस्त्र होते हैं उनकी बाहिर के जल से शुद्धि होती है ॥६३॥

नागदन्तास्थि शृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।
पुनः पाकेन भाण्डानां मृन्मयानां च मेध्यता ॥६४
शुचि भैक्षं कारुहस्तः पण्ययोषिन्मुखं तथा ।
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गेण यत्कृतम् ॥६५
वाक्यपूतं चिरानीतमनेकान्तरितं लघु ।
चेष्टितं बालवृद्धानां बालस्य तु मुखं शुचि ॥६६
कर्मान्ताङ्गारशालास्तु स्तनंधयसुताः स्त्रियः ।
वाग्विप्रुषो द्विजेन्द्राणां सन्तप्ताश्चाम्बुबिन्दवः ॥६७
भूमिर्विशुद्ध्यते खातदाहमार्जनगोक्रमैः ।
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसमार्जनार्चनात् ॥६८
केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते ।
मृदम्बुभस्मक्षाराणि प्रक्षेप्तव्यानि शुद्धये ॥६९
औदुम्बराणां चाम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ।
भस्माद्भिः कांस्यानां शुद्धिः प्लावो द्रवस्य च ॥७०

नागदन्त (हाथी दाँत)—अस्थि और शृङ्गों के निर्मित पदार्थों की शुद्धि उसी क्षण में हो जाया करती है। जो भाण्ड हैं उनकी पुनः पाक कर देने से शुद्धि होती है। जो मृन्मय (मिट्टी के बने हुए) पात्र हैं उनकी मेध्यता भी पुनः पाक से हो जाती है ॥६४॥ भिक्षा और शिल्पी का हाथ तथा पण्ययोषित् का मुख और रथ्या में रहने वाला पदार्थ तथा जो विज्ञात न हो ऐसा पदार्थ एवं दास वर्ग के द्वारा जो कुछ किया गया हो, वाक्यपूत, चिरकाल से लाया हुआ पदार्थ—एक से जो अन्तरित हो वह पदार्थ लघु पदार्थ, बालक एवं वृद्ध के द्वारा जो चेष्टित एवं बालक का मुख ये सभी शुचि माने गये हैं अर्थात् शुद्ध होते हैं ॥६५-६६॥ कर्मान्ताङ्गार शाला, स्तन पान वाले सुत, स्त्रियाँ, वाणी से मुख न निकलने वाले कण के कण जो द्विजेन्द्रों के हों और गरम जल के कण शुद्ध होते हैं। भूमि खोदने से, दाह से, मार्जन से और गौओं के पैरों से या चलने-

फिरने से शुद्ध हो जाया करती है। भूमि की शुद्धि लेपन, उल्लेखन, सेक से तथा वेश्म समार्जन और अर्चन से शुद्ध होते हैं ॥६७-६८॥ केश तथा कीटों से अवपन्न अन्न में गोघ्रात तथा मक्षिकाओं से समन्वित में मिट्टी, अम्बु, भस्म क्षार शुद्धि के लिये डाल देने चाहिए ॥६९॥ औदुम्बर पदार्थों का अम्ल से (खटाई से) त्रपु और शीशे के पदार्थों का क्षार से तथा काँसे के पात्रों का भस्म और जल से शुद्धि होती है। जो द्रव हो उसका प्लाव कर देना चाहिए इससे शुद्धि होती है ॥७०॥

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्ग घापहरणेन च ।
अन्येषामपि तद्द्रव्यैः शुद्धिर्गन्धापहारतः ॥७१
मातुः प्रस्रवणे वत्सः शकुनिः फलपातने ।
गर्दभो भारवाहित्वे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥७२
रथ्याकर्दमतोयानि गावः पथि तृणानि च ।
मारुतेनैव शुद्धयन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥७३
पक्व द्रोणाधिकं चान्नममेध्याभिप्लुत भवे ।
अग्रमुद्धृत्य सत्याज्यं शेषस्य प्रोक्षणं स्मृतम् ॥७४
उपावसस्त्रिरात्रं वा दूषितान्नस्य भोजने ।
अज्ञातज्ञातपूर्वे वा नैव शुद्धिर्विधीयते ॥७५
उदक्यास्त्रातनग्नांश्च सूतिकान्त्यावसायिनः ।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥७६
सस्नेहमस्थि संस्पृश्य सवासा जलमाविशेत् ।
आचम्यैव तु निःस्नेह गामालभ्यार्कमीक्ष्य च ॥७७

जो पदार्थ किसी अपवित्र वस्तु से अक्त हो गया हो उसकी शुद्धि मिट्टी और जल से हुआ करती है तथा उसकी जब गन्ध का अपहरण हो जावे तो उसकी शुद्धता हो जाया करती है। अन्य पदार्थों की भी शुद्धि उन्हीं द्रव्यों से तथा गन्ध के अपहरण से होती है ॥७१॥ माता के प्रस्रवण में वत्स तथा फलों के पातन करने के अवसर पर पक्षी, जब किसी भार का वहन कर रहा हो तो उस समय में गधा, पशु के पकड़ने के समय में कुत्ता शुद्ध माना जाता है ॥७२॥ रथ्या के कर्दम (कीच) का

जल, गौ और मार्ग में तृण ये सब केवल वायु के द्वारा ही शुद्ध हो जाया करते हैं। इष्ट कचित पक्व होने पर शुद्ध होते हैं ॥७३॥ एक द्रोण से अधिक परिमाण वाला जो अन्न होता है वह यदि किसी अमेध्य पदार्थ में अभिप्लुत हो जावे तो उसका अगला भाग लेकर त्याग देना चाहिए। शेष जो रहे उसका प्रोक्षण कर डाले तो वह शुद्ध होता है ॥७४॥ यदि कभी कोई दूषित अन्न का भोजन कर लिया जावे तो तीन रात्रि का उपवास कर लेवे। जो अज्ञान अथवा ज्ञान पूर्व हो उसकी कोई भी शुद्धि का विधान नहीं है ॥७५॥ उदक्या स्नात नग्न तथा सूतिका के समीप रहने वालों का स्पर्श करके एवं मृतक के ले जाने वाले को छूकर शुद्धि के लिये स्नान करना चाहिए ॥७६॥ स्नेह के सहित अस्थि का संस्पर्श करके वस्त्रों के सहित जल में प्रवेश करे। यदि स्नेह रहित हो तो केवल आचमन ही करके तथा गौ का स्पर्श करके और सूर्य का दर्शन करके ही शुद्धि प्राप्त कर ली जाती है ॥७७॥

न लङ्घयेद्धरं नासृक्शरीरोद्वर्तनानि च।
गृहादुच्छिष्ट विण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ॥७८
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणि।
स्नायीत देवखातेषु सरःसु च सरित्सु च ॥७९
नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन।
नालपेज्जनविद्विष्टं वीरहीना तथा स्त्रियम् ॥८०
देवतापितृसच्छास्त्र यज्ञसत्रादिनिन्दकैः।
कृत्वा तु स्पर्शमालाप शुद्धयतेऽर्कविलोकनात् ॥८१
अभोज्याः सूतिकाः षण्डो मार्जाराखू च कुक्कुटाः।
पतितापविद्धनग्नाश्चण्डालाद्यधमाश्च ये ॥८२
भवद्भिः कीर्तिता भोज्या य एते सूतिनादयः।
असीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि हि ॥८३
ब्राह्मणी ब्राह्मणश्चैव यावच्छेषत्वमागतौ।
तावुभौ सूतिकं स्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् ॥८४

किसी भी मनुष्य का लंघन नहीं करे तथा रक्त और उद्वर्तनों को भी लांघना नहीं चाहिए। गृह से उच्छिष्ट पदार्थ, मल-मूत्र और पदों का प्रक्षालित जल बाहिर प्रक्षिप्त कर देवे ॥७८॥ पाँच पिण्डों का उद्धरण न करके पराये जल में स्नान नहीं करना चाहिए। देव खात-सरोवर और नदियों में स्नान करे ॥७९॥ प्राज्ञ पुरुष को विकाल के अवसरों पर उद्यान आदि में कभी भी नहीं ठहरना चाहिए। जो विद्वेष रखने वाला मनुष्य हो उसमें तथा विरह से विधुर स्त्री से कभी भी आलाप नहीं करे ॥८०॥ देवता-पितृगण और सत् शास्त्र-यज्ञ तथा सत्र आदि की निन्दा करने वालों के साथ स्पर्श एवं आलाप करके सूर्य देव के दर्शन करने पर ही शुद्धि होती है ॥८१॥ जो सूतिक हों, षण्ड, मार्जार, आखु और कुक्कुट हों, पतित, अपविद्ध, नग्न, चाण्डाल आदि और अधम हों वे सब अभोज्य होते हैं ॥८२॥ सुकेशी ने कहा—हे भगवन्! आपने जो ये सूतिका प्रभृति सब भोज्य बतलाये हैं। अब मैं इन सबके लक्षण तात्त्विक रूप से श्रवण करने की इच्छा वाला हूँ ॥८३॥ ऋषियों ने कहा—ब्राह्मणी और ब्राह्मण जब तक शैयत्व को प्राप्त हो गये हों वे दोनों ही सूतिक कहे गये हैं उन दोनों का ही अन्न विशेष रूप से गर्हित होता है ॥८४॥

न जुहोत्युचितेकाले न स्नाति न ददाति च।
पितृदेवार्चनाद्धीनः स षण्डः परिगीयते ॥८५
दम्भार्थं जपते यच्च तप्यते पठते तथा।
न परनार्थमुद्युक्तो मार्जारः परिकीर्तितः ॥८६
विभवे सति नैवाश्ति न ददाति जुहोति न।
तमाहुराखुं तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥८७
सभागतानां यः सभ्यः पक्षपातं समाश्रयेत्।
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् ॥८८
स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाचरेत्।
अनापदि ■ विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्यते ॥८९

नित्यस्य कर्मणो हानिः केवल मृतजन्मसु ।
न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्त्तव्यो हि कथचन ॥८५
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ।
मृते च सर्वबन्धूनामित्याह भगवान्भृगुः ॥८६
प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रजैः ।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थिसचयम् । ८७
ऊर्ध्वं सचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
सोदकैस्तु क्रिया कार्या अशुद्धैस्तु सपिण्डकैः ॥८८

आशा रखने वाले आर्त पुरुषों को न देने वाला और जो कोई धन करने वाला हो उसका भी प्रतिषेध करने वाला जो है और शरण में आये हुए का जो त्याग कर देता है वह अधम जन चाण्डाल कहा जाता है ॥८२॥ जो बान्धवों द्वारा परित्यक्त हो तथा जिसको साधु और ब्राह्मणों ने भी त्याग दिया हो वह कुण्डाशी कहा जाता है। उसके अन्न को खाकर शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥८३॥ जो नित्य कर्म की तथा नैमित्तिक कर्म की हानि किया करता है ऐसे पुरुष का अन्न भी खाकर तीन रात्रि का उपवास करने पर मनुष्य शुद्ध होता है ॥८४॥ नित्य कर्म की हानि तो केवल मृतक और जातक अशौच में ही की जाया करती है किन्तु नैमित्तिक कर्म का तो कभी भी उच्छेद करना ही नहीं चाहिए ॥८५॥ पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए और मृतक होने पर तो सभी बन्धुओं को सचैल स्नान करने का विधान है-ऐसा भगवान् भृगु ने कहा है ॥८६॥ जो गोत्र में जन्म लेने वाले हैं उन सबको प्रेत के लिए जल देना चाहिए जब कि दाह कर दिया जावे तो बाहिर ही वहाँ पर तर्पण करें। प्रथम, चौथे, सातवें दिन में अस्थियों का सचय करे ॥८७॥ सचय से पूर्व उनका अंग स्पर्श किया जाता है। जो सपिण्डक हो वे अशुद्ध होते हैं उनके द्वारा मोदक होते हुए क्रिया करनी चाहिए ॥८८॥

नृपोद्बन्धन शस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च ।
बाले प्रव्राजि संन्यासे देशान्तरमृते तथा ॥८९

देवत्यागी पितृत्यागी गुरुवक्षुगनकस्तथा ।
गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः प्रकीर्त्यंते ॥९०
येषा कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्र नैव च व्रतम् ।
ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्न विगर्हितम् ॥९१

जो समुचित समय पर न तो हवन ही करता है और न स्नान तथा दान ही करता है, इस प्रकार से जो पितृगण और देवगण से हीन होता है वह षण्ड कहा जाया करता है ॥८५॥ जो केवल लोगों के दिखाने मात्र के लिये ही जाप करता है तपश्चर्या किया करता है और पढ़ता है और परलोक के कल्याण के लिये उसका कोई भी उद्योग नहीं होता है उसे ही मार्जार कहा गया है ॥८६॥ वैभव के होने पर भी जो नस्वय खाता है, न दान करता है और न हवन ही किया करता है उसको आखु कहा जाता है । ऐसे पुरुष का अन्न खाकर बहुत ही कठिनाई से शुद्धि हुआ करती है ॥८७॥ सभा मे समागत लोगों का जो किसी पार्टी का पक्षपात किया करते हैं उसको कुक्कुट कहते हैं । देव लोगों के ये सांकेतिक शब्द हैं । इसका भी अन्न बहुत गर्हित होता है ॥८८॥ जो अपने धर्म का त्याग कर पराये धर्म्म का आश्रय ले लिया करते है और कोई भी ऐसा आपत्ति काल भी उपस्थित नहीं होता है विद्वान लोगों के द्वारा ऐसा पुरुष पतित कहा जाता है ॥८९॥ देवत्यागी-पितृत्यागी, गुरुत्यागी तथा गो-ब्राह्मण और स्त्री का वध करने वाला जो होता उसे अपविद्ध कहते हैं ॥९०॥ जिनके कुल मे न तो वेद है, न कोई शास्त्र है और न कोई व्रत ही होता है वे नग्न सत्पुरुषों के द्वारा कहे जाते हैं । इनका भी अन्न गर्हित होता है ॥९१॥

आशार्तानामदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः ।
शरणागत यस्त्यजति स चण्डालोऽधमो जनः ॥९२
यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ।
कुण्डाशी यश्च तस्यान्न भुक्त्वा चान्द्रायण चरेत् ॥९३
यो नित्यकर्मणो हानि कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।
भुक्त्वाऽन्न तस्य शुध्येत त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥९४

नित्यस्य कर्मणो हानिः केवल मृतजन्मसु ।
न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्त्तव्यो हि कथञ्चन ।।९५
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ।
मृते च सर्वबन्धूनामित्याह भगवान्भृगुः ।।९६
प्रेताय सलिलं देयं बहिर्दग्ध्वा तु गोत्रजैः ।
प्रथमेऽह्नि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थिसंचयम् । ९७
ऊर्द्ध्वं संचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
सोदकैस्तु क्रिया कार्या अशुद्धैस्तु सपिण्डकैः ।।९८

आशा रखने वाले आर्त्त पुरुषों को न देने वाला और जो कोई धन करने वाला हो उसका भी प्रतिषेध करने वाला जो है और शरण में आये हुए का जो त्याग कर देता है वह अधम जन चाण्डाल कहा जाता है ।।९२।। जो बान्धवों द्वारा परित्यक्त हो तथा जिसको साधु और ब्राह्मणों ने भी त्याग दिया हो वह कुण्डाशी कहा जाता है । उसके अन्न को खाकर शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।।९३।। जो नित्य कर्म की तथा नैमित्तिक कर्म की हानि किया करता है ऐसे पुरुष का अन्न भी खाकर तीन रात्रि का उपवास करने पर मनुष्य शुद्ध होता है ।।९४।। नित्य कर्म की हानि तो केवल मृतक और जातक अशौच में ही की जाया करती है किन्तु नैमित्तिक कर्म का तो कभी भी उच्छेद करना ही नहीं चाहिए ।।९५।। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता को वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए और मृतक होने पर तो सभी बन्धुओं को सचैल स्नान करने का विधान है—ऐसा भगवान् भृगु ने कहा है ।।९६।। जो गोत्र में जन्म लेने वाले हैं उन सबको प्रेत के लिए जल देना चाहिए जब कि दाह कर दिया जावे तो बाहिर ही वहाँ पर तर्पण करें । प्रथम, चौथे, सातवें दिन में अस्थियों का संचय करे ।।९७।। सञ्चय से पूर्व उनका अंग स्पर्श किया जाता है । जो सपिण्डक हो वे अशुद्ध होते हैं उनके द्वारा सोदक होते हुए क्रिया करनी चाहिए ।।९८।।

नृपोद्बन्धन शस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च ।
बाले प्रव्राजि सन्यासे देशान्तरमृते तथा ।।९९

सद्य.शौच भवेद्वीर यच्चाप्युक्तं चतुर्विधम् ।
गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्वकाले न च चरेत् ॥१००
ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम् ।
षड्रात्रं चैव वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम् ॥१०१
दशद्वादशमासार्द्धं माससंख्यैर्दिनैर्गतैः ।
स्वाः स्वाः काले क्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाक्रमम् ॥१०२
प्रेतमुद्दिश्यकर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः ।
सपिण्डीकरणं कार्यं प्रेते आवत्सरान्नरैः ॥१०३
ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिर्दिनैः ।
प्रीणनं तस्य कर्त्तव्यं यथाश्रुतिनिदर्शनात् ॥१०४
पितुरर्थं समुद्दिश्य भूमिदानादिकं स्वयम् ।
कुर्याद्येनास्य सुप्रीताः पितरो यान्ति राक्षस ॥१०५

नृप के द्वारा उद्बन्धन में—शस्त्र, जल और अग्नि में गिरने आदि से जो मृत हो, बालक, प्रव्रजन करके सन्यास लेने वाला तथा अन्य देश मे जाकर मृत होने वाले का हे वीर सद्यः ही शौच होता है और वह भी चार प्रकार का कहा गया है। गर्भस्राव में उसी समय शौच होता है और इसमे भी पूर्व काल मे नही होता है ॥१००॥ ब्राह्मणो का एक अहोरात्र का अशौच होता है, क्षत्रियों का तीन दिन का, वैश्यो का छै रात्रि का और शूद्रो को बारह दिन का होता है ॥१०१॥ दश, द्वादश मासार्ध तथा मासो की संख्या से दिनो के जाने पर सभी वर्णों वाले पुरुषों को समय पर अपनी २ क्रिया यथाक्रम से करनी चाहिए ॥१०२॥ प्रेत का उद्देश लेकर विधान से एकोद्दिष्ट करना चाहिए। मनुष्यों को प्रेत के एक वर्ष के भीतर ही सपिण्डी कर्म कर देना चाहिए ॥३॥ इनके अनन्तर वह प्रेत मे पितृ कोटि मे प्राप्त हो जाता है फिर अमावस्या-पूर्णिमा आदि दिनो मे जैसा भी वेदो मे बतलाया है उसका प्रीणन करना ही चाहिए ॥४॥ पिता का उद्देश्य करके स्वयं भूमि आदि का दान आदि करे जिससे हे राक्षस ! पितर लोग परम प्रसन्न होते है ॥५॥

यद्यदिष्टतम किंचिद्यच्चास्य दयितं गृहे ।
तत्तद्गुणवते देय तदेवाक्षयमिच्छता ॥१०६
अध्येतव्यास्त्रयो नित्य वेदाश्च विदुषा सदा ।
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्य चापि शक्तितः ॥१०७
यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति राक्षस ।
तत्कर्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्य महाजने ॥१०८
एवमाचरतो लोके पुरुषस्य गृहे सतः ।
धर्मार्थकामसप्राप्तिः परत्रेह च शोभना ॥१०९
एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उत्तमः ।
वानप्रस्थाश्रम धर्मं प्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम् ॥११०
अपत्यसतति दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छे दात्मनः शुद्धिकारणम् ॥१११
तत्रारण्योपभोगैश्च तपोभिश्चात्मदर्शनम् ।
भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रियाः ॥११२

जो जो भी कुछ उसको प्रिय हो और जो भी उसको गृह में अधिक इष्टतम हो वही-वही वस्तु किसी गुणी पुरुष को उसकी प्रीति के लिये देना चाहिए और उसी के अक्षय होने की इच्छा भी करे॥१०६॥विद्वान् पुरुष को तीनों वेदों का सदा नित्य ही अध्ययन करना चाहिए। धर्म पूर्वक ही धन का आहरण करे और शक्ति के अनुसार ही यजन भी करना चाहिए॥१०७॥हे राक्षस ! जिस कर्म के करने से अपनी आत्मा मे कोई भी जुगुप्सा न हो उसी कर्म को बिना किसी शका के कर डालना चाहिए। जिसको कि भद्र पुरुषों में छिपावट नहीं है ॥१०८॥ इस तरह से लोक मे आचरण करते हुए उस सत्पुरुष के घर मे ही धर्म अर्थ और काम की प्राप्ति होती है और परलोक में भी उसकी अच्छी ही गति हुआ करती है ॥१०९॥ इसी उद्देश से यह गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों से उत्तम बताया गया है। अब वानप्रस्थाश्रम के धर्म बतलाता हूँ उसका अवधारण करो ॥११०॥ अपनी अपत्य सन्तति को देखकर प्राज्ञ पुरुष को अपने देह की आनति को देखना चाहिए और फिर उसे

वानप्रस्थ आश्रम में चले जाना चाहिए। यही उसकी आत्मा की शुद्धि का कारण है ॥१११॥ उस वानप्रस्थ में अरण्य के उपभोग—तप से आत्म दर्शन होता है। भूमि शयन—ब्रह्मचर्य—पितृ—देव तथा अतिथियों की क्रियाऐं भी करनी चाहिए ॥११२॥

होमस्त्रिषवणस्नानं जटावल्कलधारणम् ।
वन्यस्नेहनिषेवित्वं वानप्रस्थविधिस्त्वयम् ॥११३
सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यममानिता ।
जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसतं चिरम् ॥११४
अनारम्भस्तथाऽऽहारो भिक्षान्नं नातिकोपिता ।
आत्मज्ञानाव बोधेच्छा तथा चात्मावबोधनम् ॥११५
चतुर्थे चाश्रमे धर्मास्तेऽस्माभिः परिकीर्तिताः ।
वर्णधर्मास्तथा चान्याञ्छृणुष्व निशाचर ॥११६
गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयोऽश्रमाः ।
क्षत्रियस्यापि गदितो य आचारो द्विजस्य हि ॥११७
वैखानसत्वं गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः ।
गार्हस्थ्यमाश्रमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर ॥११८
स्वान्स्वान्वर्णाश्रमप्रोक्तान्स्वधर्मान्नैव हापयेत् ।
स्वधर्मक्षपणादन्यविधानाद्यो द्विजसत्तम ।
संतापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः ॥११९

नित्य होम—तीनों कालों में सन्ध्योपासना तथा स्नान—जटा और वल्कलों का धारण करना, वन में होने वाले स्नेह का सेवन करना यही वानप्रस्थ आश्रम का विधान है ॥११३॥ सभी के संग का परित्याग कर देना—ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण परिपालन, मानी न होना, इन्द्रियों को वश में रखना, चिरकाल तक एक ही आवास में न रहना, किसी भी कार्य का आरम्भ न करना, भिक्षान्न का आहार करना, कभी अति क्रोध न करना, आत्म ज्ञान के प्राप्त करने की सदा इच्छा रखना तथा आत्मा का अव बोध न प्राप्त करना ये ही चौथे आश्रम के धर्म हैं जो हमने बतला दिये हैं। हे निशाचर ! वर्णों के अन्य धर्म होते हैं उन का श्रवण

करो ॥११४-११६॥ गार्हस्थ्य-ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ ये तीन धर्माश्रम क्षत्रिय के भी बताये गये हैं । जो द्विज का आचार है वह वैखानसत्व (सन्यास) है । ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य ये दो आश्रम वैश्य के हैं । शूद्र का तो केवल एक ही गार्हस्थ्य आश्रम होता है ॥११७-११८॥ ये अपने २ वर्णाश्रम बताये गये हैं इनका कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए । अपने धर्म के नाश से अन्य धर्म का विधान जो द्विज करता है वह उसीको सन्ताप होता है और भास्कर उस पर कुपित होते हैं ॥११९॥

कुपितः कुलनाशाय देहरोगविवृद्धये ।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर ॥१२०
तस्मात्स्वधर्मं नहि सत्यजेद्व न हापये ह्यापि हि चात्मवंशम् ।
यः सत्यजेच्चापि निज हि धर्मंतस्मैप्रकुप्येतदिवाकरस्तु ॥१२१
इत्येवमुक्तो मुनिना सुकेशी प्रणम्य तान्ब्रह्मनिधीन्महर्षीन् ।
जगाम चोत्पत्य पुर स्वकीय मुहुर्मुहुर्धर्ममवेक्षमाणः ॥१२२

उनके कुपित होने पर कुल का नाश तथा देह रोगों की वृद्धि होती है । उसके लिये सूर्य देव स्वयं यत्न किया करते हैं ॥१२०॥ अतएव अपने धर्म का कभी त्याग न करे और अपने वंश का भी त्याग नहीं करना चाहिए । जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग कर देता है उस पर दिवाकर देव प्रकुपित हो जाते हैं ॥१२१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस प्रकार से कहे जाने पर वह सुकेशी उन ब्रह्मनिधि महर्षियों को प्रणाम करके बारम्बार अपने धर्म का निरीक्षण करता हुआ उत्पतन करके अपने पुर को चला गया था ॥१२२॥

—०००—

१५—सुकेशी चरित्र वर्णन

ततः सुकेशी देवर्षे गत्वा पुरमनुत्तमम् ।
समाहूयाब्रवीत्सर्वान्राक्षसान्धार्मिक वचः ॥१
अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रियसंयमः ।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता ॥२

शुभा सत्या च मधुरा वाङ्नित्यं सत्क्रियारतिः ।
सदाचारनिषेवित्वं परलोकप्रदायकाः ॥३

इत्यूचुर्मुनयो मह्यं धर्ममाद्यं पुरातनम् ।
सोऽहमाज्ञापये सर्वान्क्रियतामविकल्पतः ॥४

ततः सुकेशिवचनात्सर्व एव निशाचराः
त्रयोदशाङ्गतो धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः ॥५
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छंस्ते निशाचराः :
पुत्रपौत्रार्थं सयुक्ताः सदाचारसमन्विताः ॥६
ततस्तु तेजसा तेषां राक्षसानां महात्मनाम् ।
गन्तुं नाशक्नुवन्सूर्यो नक्षत्राणि न चन्द्रमाः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे देवर्षे ! इसके अनन्तर सुकेशी अपने उत्तमपुर में जाकर समस्त राक्षसों को बुलाकर उनसे उसने धर्म से युक्त वचन कहे थे ॥१॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियों का संयम, दान, दया, क्षान्ति, ब्रह्मचर्य, अमानिता, शुभ एवं सत्य तथा मधुर वाणी, सत्क्रिया में रति रखना, सत्पुरुषों के आचार का सेवन करना ये सब बातें परलोक में कल्याण प्रदान करने वाली हैं ॥२-३॥ मुनिगण ने मुझ को सबसे प्रथम और सनातन धर्म यही बतलाया है । इसलिये मैं आप सब लोगों को यह आज्ञा देता हूँ कि आप लोग बिना किसी विकल्प के इन सब का परिपालन करें ॥४॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके पश्चात् सुकेशी के वचन से सभी निशाचरों ने प्रसन्न मन वाले होकर त्रयोदशांग धर्म का पालन किया था ॥५॥ इसके अनन्तर वे निशाचर सुतरां प्रवृद्धि को प्राप्त हो गये थे । सभी पुत्र-पौत्रादि से समन्वित और सदाचार संयुक्त हो गये थे ॥६॥ इसके उपरान्त उस धर्म के पालन का ऐसा प्रभाव हुआ था कि उन महान् आत्मा वाले राक्षसों के तेज से सूर्य-चन्द्र और नक्षत्र भी गमन करने में असमर्थ हो गये थे ॥७॥

ततस्त्रिभुवने ब्रह्मन्निशाचरपुरं विभो ।
दिवा सूर्यस्य सदृशं क्षणदायां च चन्द्रवत् ॥८

न ज्ञायते गतिर्व्योम्नि भास्करस्य ततोऽम्बरे ।
शशाङ्कमिव तेजस्त्वादमन्यन्त पुरोत्तमम् ॥९
स्व विकास विमुञ्चन्ति निशामिति व्यचिन्तयन् ।
पमलाकरे चं कमला मित्रमित्यभिगम्य हि ।
रात्रौ विकसिता ब्रह्मन्विभूति दातुमीप्सिताम् ॥१०
कौशिका रात्रिसमय बुद्धा निर्गमन्किल ।
तान्वायसास्तदा ज्ञात्वा दिवा निघ्नन्ति कौशिकान् ॥११
स्नातकास्त्वापगास्वेव स्नानजप्यपरायणा ।
आकण्ठमग्नास्तिष्ठन्ति रात्रिं ज्ञात्वाऽथ वासरम् ॥१२
न व्ययुज्यन्त चक्राह्वास्तदा वै पुरदर्शनं ।
मन्यमानास्तु दिवसमिदमुच्चैर्वदन्ति च ॥१३
नून कान्ताविहीनेन केनचिच्चक्रपक्षिणा ।
उत्सृष्टं जीवित शून्ये पुम्भूत्य सरितस्तटे ॥१४

होती थी। वे सब दिन मानते हुए ऊँचे स्वर से यह बोला करते थे ॥१३॥ वे कहते थे कि निश्चय ही किसी कान्ता से हीन चक्र पत्री ने सरिता के तट पर फूत्कार करके शून्य में अपना जीवन उत्सृष्ट किया है ॥१४॥

ततोऽनु कृपयाऽऽविष्टो विवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः ।
सतापयज्जगत्सर्वं नास्तमेति कथचन ॥१५
अन्ये वदन्ति चक्राह्वा नून कश्चिन्मृतोऽभवत् ।
तत्कान्तया तपस्तप्तं भर्तृशोकार्त्तया तत ॥१६
आराधितस्तु भगवांस्तपसा वै दिवाकरः ।
तेनासौ शशिन जित्वा नास्तमेति रविध्रुवम् ॥१७
यज्वानो होमशालासु सहर्त्विग्भिरथाध्वरे ।
प्रावर्त्तयन्त कर्माणि रात्रावपि महामुने ॥१८
महाभागवताः पूजा विष्णोः कुर्वन्ति भक्तितः ।
रवौ शशिनि चैवान्ये ब्रह्मणोऽन्ये हरस्य च ॥१९
कामिन श्चाप्यमन्यन्त साधु चन्द्रमसा कृतम् ।
यदिय रजनी रम्या कृता सततकौमुदी ॥२०
अन्येऽब्रुवँल्लोकगुरुरस्माभिश्चक्रभृद्वशी ।
निर्व्याजेन महागन्धैरर्चितः कुसुमे शुभे. ॥२१
सह लक्ष्म्या महायोगी नभस्यादिचतुर्ष्वपि ।
अशून्यशयना नाम द्वितीया सर्वकामदा ॥२२

इसके अनन्तर दया से युक्त होकर सूर्य देव ने अपनी तीव्र किरणों से सम्पूर्ण जगत् को सन्तप्त कर दिया है और वह अब किसी भी प्रकार से अस्त नहीं हो रहा है ॥१५॥ अन्य चक्रवाक पक्षी कहते थे निश्चय ही कोई मर गया है उसकी कान्ता ने भर्त्ता के शोक से आर्त्त होकर फिर तपस्या की है और उसने दिवाकर भगवान् की आराधना की है। इसीलिये उसने शशी को जीतकर रवि निश्चय ही कभी अस्त नहीं हो रहा है ॥१६-१७॥ हे महामुने ! यज्वा लोग ऋत्विजों के साथ अध्वर में होमशालाओं में रात्रि में भी दिन समझकर यज्ञ कर्म का आरम्भ कर

रहे थे ॥१८॥ जो महान् भगवद्भक्तजन थे वे भक्तिभाव से भगवान् विष्णु की पूजा करने लगे थे। रवि मे तथा मही में अन्य लोग ब्रह्मा की तथा दूसरे लोग हरकी अर्चना करने लगे थे ॥१९॥ जो कामी लोग थे उन्होंने समझ लिया था कि चन्द्रमा ने यह बहुत ही अच्छा किया है कि यह परम सुन्दर रजनी ऐसी बना दी है कि इसमें सर्वदा चांदनी खिली रहती है ॥२०॥ अन्य लोग यह कह रहे थे कि निष्कपट भाव से महान् गन्ध वाले शुभ पुष्पों से समर्चित होकर चक्रधारी विष्णु जो सोरों का भी गुरु है हमारे बड़ी भूल होगया है ॥२१॥ नमस्य आदि चारों मासों में यह महा योगी लक्ष्मी के साथ विराजते हैं। मशून्य शयना द्वितीया समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है ॥२२॥

तेनासौ भगवान्प्रीतः प्राप्तश्चायनमुत्तमम् ।
अशून्यं च महाभोगैरनन्तमितशेखरम् ॥२३
अन्येऽत्र यत्प्रभं देव्या रोहिण्याः शशिनः क्षयम् ।
दृष्ट्वा तप्त तपो घोरं रुद्राराधनकाम्यया ॥२४
पुण्यायामक्षयाष्टम्यां वेदोक्तविधिना स्वयम् ।
तुष्टेन शम्भुना दत्तो वरश्चास्मै यदृच्छया ॥२५
अन्येऽत्र बाह्यन्द्रममा प्रभुवमाराधितो हरिः ।
अनेनेह त्वखण्डेन तेनाखण्डः शशी दिवि ॥२६
अन्येऽत्र यच्छ्ठसाङ्कुन धुवरता कृतात्मनः ।
पदद्वय समभ्यर्च्य विष्णोरमिततेजसः ॥२७
तेनासौ दीप्तिमाञ्चन्द्रः परिभूय दिवाकरम् ।
अस्माकमानन्दकरो दिवा तपति सूर्यवत् ॥२८

यदृच्छा से इनको वरदान प्रदान किया है ॥२४-२५॥ दूसरे लोग कहते थे कि निश्चय ही चन्द्रदेव ने हरि भगवान् की आराधना की है। उस समाराधना का व्रत अखण्ड था इसीलिए दिनमे भी यह अखण्ड चन्द्रमा विद्यमान है ॥२६॥ कुछ लोग यह कह रहे थे कि इस चन्द्र ने अपनी ध्रुव रक्षा की है और इसने भगवान् विष्णु के दोनों चरणों की अभ्यर्चना की है जिनका कि अमित तेज है। इसी से यह दीप्तिमान् चन्द्रमा है जिसने दिवाकर का भी पराभव कर दिया है। यह हम सब को बहुत ही आनन्द देने वाला है जोकि दिन मे भी सूर्य की ही भांति तप रहा है ॥२७-२८॥

लक्ष्यते कारणै रम्यैर्बहुभिः सत्यमेव हि।
शशाङ्कनिर्जितः सूर्यो न विभाति यथा पुरा ॥२९
यथा पद्माकरा. श्लक्ष्णा रणद्भृङ्गगणाकुलाः।
विकचाः प्रतिभासन्ते जातः सूर्योदयो ध्रुवम् ॥३०
यथा चान्ये विभाव्यन्ते विकचाः कुमुदाकराः।
अतो विज्ञायते चन्द्र उदितश्च प्रतापवान् ॥३१
एवं सभापता तत्र सूर्यो वाक्यानि नारद।
अमन्यत किमेतद्धि लोको वक्ति शुभाशुभम् ॥३२
एव संचिन्त्य भगवान्दध्यौ ध्यान दिवाकरः।
आसमन्ताज्जगद्ग्रस्तं त्रैलोक्यं रजनीचरैः ॥३३
ततस्तु भगवाञ्ज्ञात्वा तेजसोऽप्यसहिष्णुनाम्।
निशाचरस्य वृद्धि तामचिन्तयत योगवित् ॥३४
ततो ज्ञात्वा च तान्सर्वान्सदाचाररताञ्छुचीन्।
देवब्राह्मणपूजासु ससक्तान्धर्मसयुतान् ॥३५

ऐसे बहुत से रम्य कारणो से यह लक्षित होता है कि सचमुच ही कि चन्द्र के के द्वारा पराजित सूर्य्य पहिली भांति अब नहीं चमकता है ॥२९॥ ये श्लक्ष्ण पद्माकर (तड़ाग) गुञ्जार करने वाले भौरो से समाकीर्ण हो रहे हैं। सब विकसित होकर शोभित हो रहे हैं कि निश्चय ही सूर्योदय हो गया है ॥३०॥ इसी प्रकार से अन्य जो कुमुदाकर

विधान के विषय मे विचार किया था ॥३६॥ इसके अनन्तर दिवस्पति ने राक्षसो का एक छिद्र जान लिया था वह यह था कि अपने धर्म की जो विच्युति होती है वह सम्पूर्ण धर्मों के विधाने करने वाली होती है। इसके अनन्तर क्रोध से अभिभूत रियुकाभेदन करने वाले भानुदेव के द्वारा वह राक्षसो या पुर भयभीत हो गया था और वह फिर यथेच्छा से ही नष्ट भी होगया था ॥३७ ३८॥ उस समय मे क्रोध आध्मात नेत्र के द्वारा सूर्य ने उसको देखा था उसी क्षण मे क्षीण पुण्य वाला वह होकर अम्बर से भ्रष्ट होकर एक ग्रह की भांति गिर गया था ॥३६॥ उस मालकटकट ने इस पुर को देखकर शर्व तथा हर प्रभु के लिए नमस्कार है—इस तरह उच्चस्वर वह इसने मुख से कहा था॥४०॥इसके उस आक्रन्दन का श्रवण करके गगन मे विचरण करने वाले चारण हाहाकार करके चीख उठे थे कि यह कोई हर का भक्त गिर रहा है ॥४०॥ चरणों के उस वचन को,सुनकर सर्वव्यापी अविनाशी शिव ने सुना था और सुनकर उन्होने ध्यान किया था कि यह किसके द्वारा भूमि पर गिराया जा रहा है ॥४२॥

ज्ञातवान्देवपतिना सहस्रकिरणेन तत् ।
पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥४३
क्रुद्धस्तु भगवाञ्छम्भुर्भानुमन्तमपश्यत ।
दृष्टमात्रस्त्रिणेत्रेण निपपात ततोऽम्बरात् ॥४४
गगनात्स परिभ्रष्ट पथि वायुनिषेविते ।
यदृच्छया निपतितो यन्त्रमुक्तो यथोपलः ॥४५
ततो वायुपथान्मुक्तः किंशुकोज्ज्वलविग्रहः ।
निपपातान्तरिक्षात्स वृतः किन्नरचारणैः ॥४६
अंशुभिर्वेष्टितो भानुः प्रविभात्यम्बरात्पतन् ।
अर्द्धपक्व यथा तालात्फलं कपिभिरावृतम् ॥४७
निपतस्व हरिक्षेत्रे यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि ।
ततोऽब्रवीत्पतन्नेव विवस्वांस्तास्तपोधनान् ॥४८

किं तत्क्षेत्रं हरेः पुन्यं यदस्त्वंशीघ्रमेव मे।
तमचुर्मु नयः सूर्यं शृणु क्षेत्रं महाफलम् ॥४६

देवों के स्वामी ने यह जान लिया था कि वह राक्षसों का पुर सहस्र किरण के द्वारा गिराया गया है। इसके पश्चात् त्रिलोचन प्रभु को बड़ा भारी क्रोध हो गया था ॥४३॥ क्रुद्ध शंकर ने भानु के अन्त को देखा था और त्रिनेत्र के द्वारा देखते ही मात्र में वह सूर्य अम्बर से गिर गया था ॥४४॥ वायु से निपेवित मार्ग में गगन से भ्रष्ट-वह यदृच्छा से यन्त्र से युक्त उत्पल की भांति गिर गया था ॥४५॥ इसके अनन्तर वायु के मार्ग से मुक्त होकर किंशुक के समान उज्ज्वल विग्रह वाला किन्नर और चारणों से परिवृत वह आकाश से नीचे गिराया था ॥४६॥ किरणों से परिवेष्टित सूर्य अम्बर से गिरता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे आधा पका हुआ ताल का फल वानरों से चारों ओर समावृत हो रहा हो ॥४७॥ यदि श्रेय की इच्छा रखता है तो हरिक्षेत्र में पतन कर—ऐसा उन तपो धनों से गिरते हुए ही सूर्य ने कहा था ॥४८॥ वह हरिका परम पुण्यमय क्षेत्र कौन-सा है—यह मुझे शीघ्र ही बतलादो। ऐसा पूछने पर उन मुनियों ने कहा—महान् फल वाले उस क्षेत्र का श्रवण करो ॥४६॥

साम्प्रतं वासुदेवस्य भावितं शंकरस्य च।
योगशायिनमारभ्य यावत्केशवदर्शनम्।
एतत्क्षेत्रं हरेः पुन्यं नाम्ना वाराणसी पुरी ॥५०
तच्छ्रुत्वा भगवान्भानुर्भवणेक्षाग्नितापितः।
वरणायास्तथैवास्यास्त्वन्तरे निपपात ह ॥५१
भानो ततः प्रदहाति निमज्ज्यास्यां सुलद्रविः।
वरणायां समभ्येत्य निमज्जति यथेच्छया ॥५२
भूयोऽसी वरणा भूयो भूयोऽपि वरणामसीम्।
सुलाद्दिसणेनवह्निपाती भ्रमतेऽलातचक्रवत् ॥५३
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्नृषयो यक्ष राक्षसाः।
नागा विद्याधराश्चापि पक्षिणोऽप्सरसस्तथा ॥५४

एव पुरा नारद भास्करेण पुर सुकेशेर्भुवि सन्निपातितम् ।
दिवाकरो भूमितले भवेन क्षिप्तस्तु दृष्ट्वाऽनलरप्रदग्ध: ।।६१
आरोपितो भूमितलद्भवेन भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय ।
स्वयमुवाचापिनिशाचरेन्द्रस्त्वारोपित खे सपुरः सबन्धुः ।।६२

वहाँ जाकर और देवेश्वर का दर्शन प्राप्त करके एव शूल पाणि भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करके भास्कर के कल्याण के लिये ही उनको वाराणसी ले आये थे । इसके पश्चात् दिवाकर को शङ्कर ने हाथ मे लेकर उसका नाम "लोल"—यह रखकर फिर उसे रथ पर स्थापित कर दिया था ।।५७-५८।। दिनकर के रथ मे समारापित करने के पश्चात् ब्रह्माजी सुकेशी के समीप मे पहुँचे थे । उसको भी बान्धवो के तथा नगर के सहित पुन दिवलोक मे आरोपित कर दिया था ।।५६।। शङ्कर ने सुकेशी को समारोपित कर तथा उसका परिष्वजन करके केशव प्रभु को प्रणाम किया जो वैराज देव थे और फिर अपने निवास स्थल को चले गये थे ।।६०।। हे नारद ! इस रीति से पहिले समय मे भास्कर के द्वारा सुकेशी का पुर भूमि मे निपातित हुआ था और भगवान् भव के द्वारा दिवाकर भी भूमि तल मे प्रक्षिप्त होगया था । वह जब अनल से भली-भाँति दग्ध हुआ तो यह देखकर भव ने फिर इस भूमि तल से भानु को प्रतिभासन के लिये समारोपित कर दिया था । भगवान् स्वयम्भू ने उस निशाचरेन्द्रपुर के तथा बान्धवो के सहित अन्तरिक्ष मे समारोपित कर दिया था ।।६१-६२।।

१६— अशून्य शयन द्वितीया कालाष्टमी व्रत

याने तान्भगवानाद्द कामिभि. शशिन प्रति ।
आराधनाय देवाभ्या हरीशाभ्या वदस्व तान् ।।१
शृणुष्व कामिभिः प्रोक्तान्व्रतान्पुण्यान्कलिप्रिय ।
आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च धीमतः ।।२

यावन्तो भास्कररथे भूतप्रेतादयः स्थिताः ।
तावन्तो ब्रह्म सदन गता वेदयितुं मुने ॥५५
ततो ब्रह्मा सुरपतिः सुरैः सार्द्धं समभ्ययात् ।
रम्यं महेश्वरावास मन्दर रविकारणात् ॥५६

इस समय मे भगवान् वासुदेव और शंकर का परम भावित योगशायी मे आरम्भ करके जहा तक केशव का दर्शन होता है—यही क्षेत्र हरिका परम पुण्य है जो वाराणसी नाम से प्रथित है ॥५०॥ यह सुनकर भगवान् भानुदेव जो भगवान् सबके नेत्राग्नि मे अभिनायित थे वह वरुणा तथा असी के अन्तर मे नियतित होगये थे ॥५१॥ उसी के पश्चात् भानु के प्रदग्ध होने पर रवि इसमे निमज्जन करके लुढकने लगा फिर वरणा मे आकर अपनी इच्छा के अनुसार निमज्जन करने लगा था ॥५२॥ फिर इसी मे और पुनः वरणा मे इसी प्रकार पुनः पुनः त्रिनेत्र की अग्नि से आर्त्त होकर लुढ़कता हुआ अलात के चक्र की भाँति भ्रमित हो रहा था ॥५३॥ इसी बीच मे हे ब्रह्मन् ! ऋषिगण-यक्ष-राक्षस-नाग-विद्याधर-पक्षीगण-और अप्सरा वृन्द तथा जितने भी भगभास्कर के रथ में भूत-प्रेत प्रभृति स्थित थे वे सब के सभी हे मुने ! इस घटना का निवेदन करने के लिये ब्रह्म सदन मे पहुँचे थे ॥५४-५५॥ इसके अनन्तर सुरो के स्वामी ब्रह्माजी समस्त सुरगणों के साथ वहाँ आये थे और रवि के कारण से ही परम सुरम्य महेश्वर का आवास स्थल मन्दराचल था वहाँ उपस्थित हुए थे ॥५६॥

गत्वा दृष्ट्वा च देवेश शंकरं शूलपाणिनम् ।
प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत् ॥५७
ततो दिवाकरं भूयः पाणिनाऽऽदाय शंकरः ।
कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत्पुनः ॥५८
आरोपिते दिनकरे ब्रह्माऽभ्येत्य सुवेशिनम् ।
सखान्धव मनसरं पुनरारोपयद्दिवि ॥५९
समारोप्य सुरेशं च परिष्वज्य च शंकरः ।
प्रस्थाप्य केशव देव मेनाज स्वगृहं गतः ॥६०

एवं पुरा नारद भास्करेण पुरं सुकेशेर्भुवि सन्निपातितम् ।
दिवाकरो भूमितले भवेन क्षिप्तस्तु दृष्ट्वाऽम्बरंप्रदग्धः ॥६१
आरोपितो भूमितलञ्चेन भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय ।
स्वयंभुवाचापिनिशाचरेन्द्रस्त्वारोपितःसे सपुरः सबन्धुः ॥६२

वहाँ जाकर और देवेश्वर का दर्शन प्राप्त करके एवं शूल पाणि भगवान् शंकर को प्रसन्न करके भास्कर के कल्याण के लिये ही उनको वाराणसी ले आये थे । इसके पश्चात् दिवाकर को शंकर ने हाथ में लेकर उसका नाम "लोल"—यह रखकर फिर उसे रथ पर स्थापित कर दिया था ॥५७-५८॥ दिनकर के रथ में समारोपित करने के पश्चात् ब्रह्माजी सुकेशी के समीप में पहुँचे थे । उसको भी बान्धवों के तथा नगर के सहित पुनः दिवलोक में आरोपित कर दिया था ॥५९॥ शंकर ने सुकेशी को समारोपित कर तथा उसका परिष्वजन करके केशव प्रभु को प्रणाम किया जो कंराज देव थे और फिर अपने निवास स्थल को चले गये थे ॥६०॥ हे नारद ! इस रीति से पहिले समय में भास्कर के द्वारा सुकेशी का पुर भूमि में निपातित हुआ था और भगवान् भव के द्वारा दिवाकर भी भूमि तल में प्रक्षिप्त होगया था । वह जब अनल से सनी-पाति दग्ध हुआ तो यह देखकर भव ने फिर इस भूमि तल से भानु को प्रतिभासन के लिये समारोपित कर दिया था । भगवान् स्वायम्भू ने उस निशाचरेन्द्रपुर के तथा बान्धवों के सहित अन्तरिक्ष में समारोपित कर दिया था ॥६१-६२॥

१६— अशून्य शयन द्वितीया कालाष्टमी व्रत

याने तान्भगवानाह कामिभिः शशिनं प्रति ।
आराधनाय देवाभ्यां हरीशाभ्यां वदस्व तान् ॥१
शृणुष्व कामिभिः प्रोक्तान्व्रतान्पुण्यान्कलिप्रिय ।
आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च धीमतः ॥२

यदाऽषाढी रविः प्राप्य व्रजते चोत्त रायणात् ।
तदा स्वपिति देवेशो भोगिभोगे श्रियः पतिः ॥३
प्रतिसुप्ते विभौ तस्मिन्देवा गन्धर्वगुह्यकाः ।
देवाना मातरश्चापि प्रसुप्ताश्चाप्यनुक्रमात् ॥४
कथयस्व सुरादीना शयने विधिमुत्तमम् ।
सर्वाननुक्रमेणैव पुरस्कृत्य जनार्द्दनम् ॥५

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! आपने जो ये सब कामियो के द्वारा शम्भी के प्रति हरीश देवो के समारा धन के लिये बतलाया है उन सबको कृपया अब बतलाइये ॥१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे कलि प्रिय ! अब क्वामियो के द्वारा बताये हुए सबो का श्रवण करो जो श्रीमान् केशव प्रभु तथा शकर के समाराधन के लिये होते हैं ॥२॥ जिस समय मे रवि आषाढी को प्राप्त करके उत्तरायण से गमन किया करता है उस समय भगवान् देवेश्वर शयन किया करते हैं । श्री के स्वामी शेष की शय्या पर शयन कर जाते हैं ॥३॥ जब देव प्रति सुप्त हो जाते हैं तो विभु मे शयन करने पर समस्त देव—गन्धर्व, देव माताऐ भी अनुक्रम से शयन कर जाया करते हैं ॥४॥ नारद जी ने कहा—इन देव-गणो के शयन में जो उत्तम विधि है वह भगवान् जनार्दन के सहित सर्वानुक्रम से वर्णन करने की कृपा करें ॥५॥

मिथुनाभिमुखे सूर्ये शुक्लपक्षे तपोधन ।
एकादश्या जगत्स्वामी शयन परिकल्पते ॥६
शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा सपूज्य केशवम् ।
कृत्वा पवित्रक चैव सम्यक्सपूज्य वैद्विजान् ॥७
अनुज्ञा ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्या प्रयतः शुचिः ।
लब्ध्वा पीताम्बर धर, स्वस्थो निद्रा समानयन् ॥८
त्रयोदश्यां ततः कामः स्वपतेशयने शुभे ।
कदम्बाना सुगन्धानां कुसुमैः परिकल्पिते ॥९
चतुर्दश्या ततो यक्षाः स्वपन्ति सुखशीतले ।
सौवर्णपङ्कजकृते सुखास्तीर्णोपधानके ॥१०

पूर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्म सस्तरे ।
वैयाघ्रे च जटाभार समुद्ग्रन्थ्यान्यचर्मणा ॥११
ततो दिवाकरो राशि सप्रयाति च कर्कटम् ।
ततोऽमराणा रजनी भवते दक्षिणायनम् ॥१२
ब्रह्मा तथा प्रतिपदि नीलोत्पलमयेऽनघ ।
तल्पे स्वपिति लोकाना दर्शयन्मार्गमुत्तमम् ॥१३
विश्वकर्मा द्वितीयाया तृतीयाया गिरेः सुता ।
विनायकश्चतुर्थ्या तु पञ्चम्यामपि धर्मराट् ॥१४

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन ! जब सूर्य मिथुन राशि पर अभिमुख होता है तो शुक्ल पक्ष मे इस सम्पूर्ण जगत् स्वामी एकादशी तिथि मे शयन शयन की कल्पना किया करते हैं ॥६॥ शेष नाग के भोग (फणा) का पर्यङ्क बनाकर केशव प्रभु का भली भाँति पूजन करके तथा पवित्रक करके और भली प्रकार से द्विजो का अर्चन करके ब्राह्मणो से अनुज्ञा प्राप्त करे तथा द्वादशी मे प्रयत एवं शुचि होकर पीताम्बरधर स्वस्थ होकर निद्रा को प्राप्त करते हैं ॥७ ८॥ फिर त्रयोदशी तिथि मे शुभ शयन पर काम शयन करते हैं। सुगन्धयुक्त कदम्ब के कुसुमों के द्वारा शय्या परिकल्पित कर सस्तरण किया जाता है। वैयाघ्र मे जटाओ के भार को अन्य चर्म से समुद्ग्रन्थि वाला करके शयन करते हैं ॥८-१०॥ चतुर्दशी मे फिर उस सुख शोभन शय्या पर यक्ष शयन करते हैं जिनकी शय्या सौवर्ण पङ्कजों से निर्मित है और उस पर सुखद आस्तरण तथा उपधान भी होता है। पूर्णमासी तिथि मे उमानाथ प्रभु चर्म सस्तरण पर शयन करते हैं ॥११॥ इसके अनन्तर सूर्य कर्क राशि पर गमन करते हैं। इसके उपरान्त देवों की रात्रि हो जाती है और दक्षिणायन सूर्य होता है ॥१२॥ हे अनघ ! इसके पश्चात् ब्रह्माजी नीलोत्पल मय शय्या पर प्रतिपदा तिथि के दिन में लोको को उत्तम मार्ग का दर्शन कराते हुए शयन किया करते हैं ॥१३॥ विश्वकर्मा द्वितीया तिथि में और गिरिवर की सुता तृतीया तिथि मे शयन किया

शयन किया करते हैं। जिस तिथि विश्व कर्मा प्रजापति शयन किया करते हैं वह द्वितीया परम शुभ एवं पुण्यमयी तथा पवित्र शयन के लिये बतलाई गई है। उसी तिथि में श्रीवत्स के चिह्न वाले चतुर्भुज भगवान् का हे मुनिवर ! पर्यंक पर स्थित कराकर लक्ष्मी के साथ गन्धाक्षत पुष्प आदि उपचारों से अर्चन करे जोकि शय्या में प्रक्षिप्त किये जाते हैं फिर भगवान् मधुसूदन से हाथ जोड़कर विज्ञापन करना चाहिए ॥१६-२१॥

यथा हि लक्ष्म्या न वियुज्यसे त्वं त्रिविक्रमानन्तजगन्निवास ।
तथा त्वशून्यं शयनं सदैव त्वस्माकमेवेह तव प्रसादात् ॥१२२
यथा त्वशून्यं तव देव तल्पं समं हि लक्ष्म्या शयनं सुरेश ।
सत्येन तेनामितवीर्य्यविष्णोगार्हस्थ्यनाशोनममास्तुदेव ॥२३
इत्युच्चार्य च देवेशं प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
भक्तं भुञ्जीत देवेर्षे तैलं क्षारविवर्जितम् ॥२४
द्वितीयेऽह्नि द्विजाग्र्याय फलं दद्याद्विचक्षणः ।
लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे इत्युच्चार्य निवेदयेत् ॥२५
अनेन तु विधानेन चातुर्मास्यव्रतं चरेत् ।
यावद् वृश्चिकराशिस्थः प्रतिभाति दिवाकरः ॥२६
ततो विबुध्यन्ति सुराः क्रमशः क्रमशो मुने ।
तुलास्थे तु हरिः पूर्वं कामः पश्चाद्विबुध्यते ॥२७
तत्र दानं द्वितीयायां मूर्तिर्लक्ष्मीधरस्य च ।
शय्या भास्तरणोपेता यथा विभवमात्मनः ॥२८

भगवान् से प्रार्थना इस भाँति करनी चाहिए, हे अनन्त ! हे त्रिविक्रम ! आपके अन्दर ही समस्त जगत् का निवास है। जिस प्रकार से आपका अपनी प्रिया लक्ष्मी से कभी भी वियोग नहीं होता है उसी भाँति आपके परम प्रसाद से यहाँ पर हम लोगों का भी सदैव शयन अशून्य होना चाहिए ॥२२॥ हे सुरेश ! आपका शयन सदा लक्ष्मी के साथ ही अशून्य प्राप्त होता है हे देव ! उसी तरह से सत्य से मेरे गार्हस्थ्य का भी कभी नाश न होवे। हे विष्णो ! आपका वीर्य—पराक्रम तो अपरिमित है

आप सभी कुछ कर सकते हैं ॥२३॥ इस तरह से उच्चारण करके बारम्बार भगवान् देवेश्वर को प्रणाम करना चाहिए । उस दिन हे देवर्षे ! रात्रि के समय में तैल और क्षार से रहित ही भोजन करना चाहिए—ऐसा ही शास्त्रोक्त विधान बताया गया है॥२४॥ दूसरे दिन में किसी परम श्रेष्ट द्विजवर को विचक्षण पुरुष को फल समर्पित करने चाहिए । भगवान् लक्ष्मीधर मुझ पर प्रसन्न होवें—ऐसा उच्चारण करके ही निवेदन करना चाहिए ॥२५॥ इसी विधान चातुर्मास्य व्रत का परिपालन करे जब तक वृश्चिक राशि पर सूर्य देव स्थित होकर प्रतिभासित होते हैं तब तक इस तरह करे ॥२६॥ हे मुने ! इसके पश्चात् सुरगण क्रम से प्रबुद्ध हुआ करते हैं । जब तुलाराशि पर सूर्य स्थित होते हैं तो सबसे पूर्व तो भगवान् हरि और फिर काम प्रबुद्ध होते हैं ॥२७॥ उस समय में द्वितीया में दान का विधान है । भगवान् लक्ष्मीधरकी मूर्ति–आस्तरण से संयुत शय्या जैसा भी अपना वैभव हो उसी के अनुकूल प्रस्तुत कराकर दान करे ॥२८॥

एष व्रतस्तु प्रथमः प्रोक्तस्तव महामुने ।
यस्मिञ्चीर्णे वियोगस्तु न भवेदिह कस्यचित् ॥२९
नभस्ये मासि च तथा या सा कृष्णाष्टमी शुभा ।
युक्ता मृगशिरेणैव सा तु कालाष्टमी स्मृता ॥३०
तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु तिथौ स्वपिति शंकरः ।
वसते सन्निधाने तु तत्र पूजाऽक्षया स्मृता ॥३१
तत्र स्नायीत वै विद्वान्गोमूत्रेण जलेन च ।
स्नातः संपूजयेत्पुष्पैर्धत्तूरस्य त्रिलोचनम् ॥३२
धूपं केसरनिर्यासं नैवेद्यं मधुसर्पिषी ।
प्रीयतां मे विरूपाक्षस्त्वित्युच्चार्य च दक्षिणाम् ॥३३
विप्राय दद्यान्नैवेद्यं सहिरण्यं द्विजोत्तम ।
तद्वदाश्वयुजे मासि उपवासी जितेन्द्रियः ॥३४
नवम्यां गोमयस्नानं कुर्यात्पूजां तु पङ्कजैः ।
धूपयेत्सर्जनिर्यासैर्नैवेद्यं मधुमोदकैः ॥३५

हे महामुने ! यह सर्व प्रथम व्रत है जो तुम्हारे समक्ष में वर्णित किया गया है। इस व्रत के समाचीर्ण करने पर इसका ऐसा फल होता है कि फिर किसी का भी कभी वियोग नहीं होता है ॥२६॥ नभस्य मास में और जो कृष्णाष्टमी शुभ होती है तथा मृगशिरा नक्षत्र से युक्त हो वही कालाष्टमी बताई गई है ॥३०॥ उसी तिथि में सम्पूर्ण लिङ्गों में भगवान् शंकर शयन किया करते हैं। वह सन्निधान में ही निवास करते हैं। उसमें जो पूजा होती है वह अक्षय बताई गई है ॥३१॥ है ॥३१॥ उस दिन में विद्वान् पुरुष को गोमूत्र या जल से स्नान करना चाहिए। फिर स्नान करके धतूरे के पुष्पों से भगवान् त्रिलोचन का भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥३२॥ धूप, केसर निर्यास, नैवेद्य, मधु, घृत और दक्षिणा ये समस्त उपचार, हे भगवन् विरूपाक्ष देव ! मुझ पर प्रसन्न होइये, ऐसा उच्चारण करके समर्पित करें। हे द्विजोत्तम ! सुवर्ण के सहित किसी श्रेष्ठतम विप्र को नैवेद्य प्रदान करे। इसी तरह आश्वयुज मास में उपवास करके इन्द्रिय जीत रहे ॥३३-३४॥ नवमी तिथि में गोमय (गोबर) से स्नान करे और पङ्कजों से अर्घ्य करनी चाहिए। सर्ज के लिये निर्यास (गोंद) से धूप देवें तथा मधु और मोदकों का नैवेद्य समर्पित करे ॥३५॥

कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
प्रीयतां मे हिरण्याक्षो दक्षिणा सतिला स्मृता ॥३६
कार्त्तिके पयसा स्नानं करवीरेण चार्चनम्।
धूपं श्रीवासनिर्यासं नैवेद्य मधुपायसम् ३७
सनैवेद्यं च रजतं दातव्यं दानमग्रजे ।
प्रीयतां भगवान्स्थाणुरिति वाच्यमनिष्ठुरम् ॥३८
कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
मासि मार्गशिरे स्नानं रुद्रार्चा दधिजा स्मृता ॥३९
धूपं श्रीवृक्षनिर्यासं नैवेद्यं मधुरौदनम् ।
सन्निवेद्यारक्त शालिर्दक्षिणा परिकीर्तिता ॥४०

नमोऽस्तु प्रीयतां शर्व इति वाच्यं च पण्डितैः।
पौषे स्नानं च हविषा पूजा स्यात्तगरैः शुभैः ॥४१
धूपो मधुक निर्यासो नैवेद्य मधुसक्तु कैः ।
समुद्रा दक्षिणा प्रोक्ता प्रीणनाय जगद्गुरोः ॥४२

अष्टमी तिथि में उपवास करके नवमी दिन में स्नान करना चाहिए यह प्रार्थना करे, हिरण्याक्ष मुझ पर प्रसन्न हो, तिलों के सहित दक्षिणा बताई गई है ॥३६॥ कार्तिक मास में पय से स्नान करे और कवीर के पुष्पों से पूजा करे। श्रीवास के निर्यास से धूप दान करे तथा मधु और पायस का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ॥३७॥ किसी विद्वान् एवं सुयोग्य ब्राह्मण को नैवेद्य के सहित रजत (चाँदी) का दान देना चाहिए। फिर विनम्रता पूर्वक करबद्ध होकर प्रार्थना करे—भगवान् स्थाणु मुझ पर प्रसन्न होवें ॥३८॥ अष्टमी में उपवास करके नवमी तिथि में ही स्नान करना चाहिए। मार्ग शिर मास में स्नान और दधि से समुत रुद्रदेव की पूजा करे ॥३९॥ श्री वृक्ष के निर्यास की धूप देवे। मधुतथा ओदन नैवेद्य में भेंट करे। रक्त शाली निवेदन करे। यही दक्षिणा बताई गई है ॥४०॥ पण्डितों को चाहिए कि देव के समक्ष में, हे शर्व ! प्रसन्न होइये, आप की सेवा में प्रणाम समर्पित है। यह प्रार्थना करनी चाहिए ॥ पौष मास में हवि से स्नान करने का विधान है और तगर के शुभ पुष्पों से पूजा करनी चाहिए ॥४१॥ मधुक वृक्ष के निर्यास की धूप देवे और मधु एवं सतुआ नैवेद्य के स्वरूप में समर्पित करे। जगद्गुरु की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये मुद्रा के सहित दक्षिणा देवे ॥४२॥

वाच्यं नमस्ते देवेश त्र्यम्बकेति प्रकीर्त्तयेत् ।
माघे कुशोदकस्नानं कुमुदेन शिवार्चनम् ॥४३
धूपं कदम्बनिर्यासो नैवेद्यं सतिलौदनम् ।
पयोभक्तं तु नैवेद्यं सलम प्रतिपादयेत् ॥४४
प्रीयतां मे महादेव उमापतिरितीरयेत् ।

एवमेव समुद्दिष्ट षड्भिर्मासैस्तु पारणम् ।
पारणान्ते त्रिणेत्रस्य स्नपनं कारयेत्क्रमात् ॥४५
गोरोचनायुक्तगुडेन चैव देव समालभ्य च पूजयेत्तु ।
प्रीयस्वदीनोऽस्मिभवास्त्वमीशमच्छोकनाशप्रकुरुष्वयोग्यम्॥४६
ततस्तु फाल्गुने मासि कृष्णाष्टम्या यतव्रतैः ।
उपवास समुदित कर्त्तव्य द्विजसत्तम ॥४७
द्वितीयेऽह्नि तत. स्नानं पञ्चगव्येन कारयेत् ।
पूजयेत्कुन्दकुसुमैर्धूपयेच्चन्दनेन च ॥४८
नैवेद्य सघृत दद्यात्ताम्रपात्रे गुडौदनम् ।
दक्षिणा च द्विजातिभ्यो नैवेद्य . सहिता मुने ॥४९

इसके अनन्तर यह प्रार्थना करनी चाहिए—हे देवेश्वर ! आपकी ेवा मे नमस्कार है । फिर 'हे त्र्यम्बक'–ऐसा प्रकीर्तन करना चाहिए । ाघ मास मे कुशोदक से स्नान करने की विधि है और कुसुम के ष्पों से भगवान् शिव का अर्चन करना चाहिए ॥४३॥ कदम्ब वृक्ष के नर्यास से धूप देना चाहिए । नैवेद्य तिलों से सहित ओदन देवे । सुवर्ण : सहित पयोभक्त नैवेद्य प्रतिपादन करना चाहिए ॥४४॥ हे महादेव ! मा के स्वामी आप मुझे पर प्रसन्न होइये–ऐसा निवेदन करे । इसी कार से छैं मासों का पारण बता दिया गया है । पारण के अन्त मे गवान् त्रिनेत्र का क्रम से स्नपन कराना चाहिए ॥४५॥ गोरोचना से मन्वित गुड से देव का समालभन कर उनकी पूजा करे । अन्त मे ार्थना करे—आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए, मैं अत्यन्त दीन हूँ । आप रे शोक का नाश करिये । आप इसके योग्य हैं ॥४६॥ इसके अनन्तर ाल्गुन मास मे कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में यत व्रत वालों के ारा उपवास बताया गया है । हे द्विजश्रेष्ठ ! यह भी अवश्य ही करना ाहिए । दूसरे दिन मे पञ्चगव्य से स्नान करना चाहिए । तथा कुन्द पुष्पों से पूजा करे और चन्दन चूरे से धूप देवे । घृतसहित गुडोदन ा नैवेद्य ताम्रपात्र मे देवे तथा नैवेद्य के सहित ही द्विजातियों को क्षिणा भी देनी चाहिए ॥४७-४८॥

वासोयुगं प्रीणयेच्च रुद्रमुच्चार्य नामतः ।
चैत्रे चौदुम्बरजलैः स्नानं मन्दारकार्चनम् ॥५०
गुग्गुलुं महिषाख्यं च घृताक्तं धूपयेद् बुधः ।
समोदकं तथा सर्पिः प्रीणनं विनिवेदयेत् ॥५१
दक्षिणा च सनैवेद्या मृगाजिनमुदाहृतम् ।
नागेश्वर नमस्तेऽस्तु इदमुच्चाय नारद ॥५२
प्रीणनं देवनाथाय कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।
वैशाखे स्नानमुदितं सुगन्धकुसुमाम्भसा ॥५३
पूजनं शङ्करस्योक्तं चूतमञ्जरिभिर्विभोः ।
धूपः सर्जरस्य निर्यासो नैवेद्यं सफलं घृतम् ॥५४
नाम जप्यमपीशस्य कालघ्नेति विपश्चिता ।
जलकुम्भान्सनैवेद्यान्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥५५

दो वस्त्र समर्पित करे हर नाम का मुख से समुच्चारण करके उनका प्रीणन करना चाहिए । चैत्र मास मे उदुम्बर (गूलर) के जल से स्नान और मन्दारक के पुष्पो से अर्चना करनी चाहिए ॥५०॥ बुध पुरुष को महिषाख्य (भैंसा) गूगल से घृत में अक्त करके धूपदान करना चाहिए । मोदक के सहित घृत देव की प्रसन्नता सम्पादन करने के लिए विनिवेदित करे ॥५१॥ नैवेद्य के सहित दक्षिणा मृगाजिन बताया गया है । हे नारद ! फिर अन्त मे हे नागेश्वर ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है—ऐसा मुख से उच्चारण करे ॥५२॥ पूर्ण श्रद्धा से समन्वित होकर देवनाथ के लिये प्रीणन करे । वैशाख मास मे परम सुगन्धित पुष्पो से संयुत जल से स्नान बताया गया है ॥५३॥ विभु शङ्कर का पूजन आम्र की मञ्जरियों से करें । सर्ज का निर्यास लेकर उससे धूपित करे और फलों के सहित घृत का नैवेद्य सादर समर्पित करना चाहिए ॥५४॥ विद्वान भक्त को ईश्वर का कालघ्न इस नाम का जप करना चाहिए । नैवेद्य के सहित जो जल के कुम्भ है उनको ब्राह्मण के लिये समर्पित कर देवे ॥५५॥

सवस्त्राश्च व माल्याद्यास्त्वितं मत्परायणैः ।
ज्येष्ठे स्नानं चामलकैः पूजाऽर्ककुसुमैस्तथा ॥५६
पूजयेद्र द्रनेत्रं च वृषाङ्कं व्युष्टिकारकम् ।
सक्तूंश्च मधुनान्देवे दध्नाऽक्तान्विनिवेदयत् ॥५७
उपानद्युगलं छत्रं दानं दद्याच्च भक्तिमान् ।
नमस्ते भगनेत्रघ्न पूष्णो दशननाशन ॥५८
इदमुच्चारयेद्भक्त्या प्रीणनाय जगत्पतेः ।
आषाढे स्नानमुदितं श्रीफलैरर्चनं तथा ॥५६
धत्तूरकुसुमैः शुक्लैर्धूपयेन्मल्लिकं तथा ।
नैवेद्यं मधुना पूपाः दक्षिणा मधुना यवाः ॥६०
नमस्ते दक्षयज्ञघ्न इदमुच्चैरुदीरयेत् ।
श्रावणे भृङ्गराजेन स्नानं कृत्याऽर्चयेद्धरम् ॥६१
श्रीवृक्षपत्रैः सफलैर्धूपं दद्यात्तथाऽगुरुम् ।
नैवेद्यं सघृतं दद्याद्दधिपूर्वांश्च मोदकान् ॥६१

शंकर के चरणों में चित्त रखकर तथा तत्परायण होकर वस्त्रों तथा मत्स्यादि के सहित समर्पण करना चाहिए। ज्येष्ठ मास में स्नान आमलक (आँवला) के सहित करें से कराये तथा आक के पुष्पों से पूजा करे। इस तरह से रुद्र नेत्र वृषांक एवं व्युष्टि कारक का पूजन करे। घृत के सहित सक्तु समर्पित करे। उन्हें दधि से अक्त करके देवे ॥५६-५७॥ दो उपानत्(जूता) छत्र का दान देना चाहिए। तथा भक्ति की भावना पूर्वक दान करे। फिर—हे भग के नेत्रों का हनन करने वाले ! हे पूषा के दशनों को नष्ट करने वाले ! आपके चरणों की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है—इस तरह से जगत् के पति की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए भक्ति से उच्चारण करना चाहिए। आषाढ़ मास में श्री फलों के द्वारा स्नान कराने का विधान है तथा फिर अर्चन करे। शुक्ल धतूर के पुष्पों से तथा मल्लिक में धूप देवे। घृत के सहित पूपों (पूओं) का नैवेद्य देवे और घृत के सहित यवों की दक्षिणा बताई गई है। फिर—हे दक्ष प्रजापति के महायज्ञ के विध्वंस करने वाले

१७—महिषासुर उत्पत्ति वर्णन

मासि चाश्वयुजि ब्रह्मन्यदा पद्मं प्रजापतेः ।
नाभ्या निर्याति हि तदा देवोद्यानान्ययाऽभवन् ॥१
कन्दर्पस्य कराग्रे तु कदम्बश्चारुदर्शनः ।
तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते ॥२
यक्षाणामधिपस्यापि मणिभद्रस्य नारद ।
वटवृक्षः समभवत्तस्मिंस्तस्य रतिः सदा ॥३
महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः ।
सजातः स च शर्वस्य रतिकृत्तस्य नित्यशः ॥४
ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्जातो मरकतप्रभः ।
खदिरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः ॥५
गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्त्वजायत ।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः ॥६
यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे ।
कृष्णोदुम्बरको रौद्रो जातः क्षोभकरोऽव्ययः ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आश्व युज मास में जब कि प्रजापति की नाभि से पद्म निकलता है उसी समय में देवों के उद्यान होते हैं ॥१॥ कन्दर्प के कर करके अग्रभाग में सुन्दर दर्शन वाला कदम्ब होता है। उससे उसकी परम प्रीति बढ़ती है अर्थात् कदम्ब से वह अत्यधिक प्रसन्न होता है ॥२॥ हे नारद ! यक्षों के अधिपमणि भद्र के भी हाथ में वट वृक्ष समुत्पन्न हुआ था। उसमें सदा ही उसकी रति होती थी ॥३॥ भगवान् महेश्वर के हृदय में परम शुभ धत्तूर-का पौधा हुआ था। वह नित्य ही भगवान् शर्व की रति करने वाला हुआ था ॥४॥ ब्रह्मा के देह के मध्य भाग से मरकत की प्रभा वाला कण्ट की खदिर वृक्ष समुत्पन्न हुआ था जो विश्व कर्मा प्रभु का बहुत ही कल्याण करने वाला था ॥५॥ जगदम्बा गिरिजा के करतल में कुन्द का गुल्म समुत्पन्न हुआ था। गणाधिप प्रभु के कुम्भ स्थल में संस्थित सिन्धु वारक शोभा

देता है ॥६॥ यमराज के दक्षिण पार्श्व मे पलाश का वृक्ष और दक्षिणोत्तर मे रौद्र कृष्णो दुम्बर उत्पन्न हुआ जो अव्यय और अत्यन्त क्षोभ करने वाला था ॥७॥

स्कन्दस्य बन्धुजीवश्च रवेरश्वत्थ एव च ।
कात्यायन्याः शमी जाता बिल्वो लक्ष्म्याः करेऽभवत् ॥८
नागाना मुखतो ब्रह्मञ्छरस्तम्बो व्यजायत ।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे पृष्ठे दूर्वा सितासिना ॥६
साध्याना हृदये जातो वृक्षो हरितचन्दन ।
एव जातेपु सर्वेपु तेन तत्र रतिर्भवेत् ॥१०
तत्र रम्ये शुभे काले या शुक्लैकादशी भवेत् ।
तस्या सपूजयेद्विष्णुं तेनाखण्डोऽयमूर्ज्जते ॥११
पत्रैः पुष्पैः फलैर्वाऽपि गन्धवर्णरसान्वितैः ।
ओपधीभिश्च मुख्याभिर्यावत्स्याच्छरदागम ॥१२
घृत तिलाव्रीहियवा हिरण्य कनकादि यत् ।
मणिमुक्ताप्रवालानि वस्त्राणि विविधानि च ॥१३
रसानि स्वादुकटवम्लकपायलवणानि च ।
तिक्तानि च निवेद्यानि तान्यखण्डानि यानि च ॥१४

स्कन्द के कर मे बन्धुजीव, रवि के कर मे अश्वत्थ (पीपल) कात्यायनी के हाथ मे शमी तथा लक्ष्मी के कर मे बिल्व का वृक्ष उत्पन्न हुआ था ॥८॥ हे ब्रह्मन् ! नागों के मुख से शरस्तम्ब समुत्पन्न हुआ था। वासुकि नाग के पुच्छ तथा अति विस्तृत पृष्ठ मे सित एव असित दूर्वा समुत्पन्न हुई थी ॥६॥ साध्यो के हृदय मे हरित चन्दन का वृक्ष उत्पन्न हुआ था। इस प्रकार से सब के समुत्पन्न होने पर उनमे सबकी रति होती है ॥१०॥ उसमे परम रम्य एव शुभ काल मे जो शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि होती है। उसमे भगवान् विष्णु की भली भाँति पूजा करनी चाहिए। इसमें अखण्ड यह अर्जित होते हैं ॥११॥ गन्ध-वर्ण और रस से समन्वित पत्र–पुष्प तथा फलो से ओर ओपधियो से जो भी मुख्य हों जब तक शरद ऋतु का समागम हो पूजन करे ॥१२॥ घृत, तिल,

व्रीहि, यव, सुवर्ण, कनक प्रभृति, मणि, मुक्ता, प्रवाल, वस्त्र अनेक प्रकार के, रस जिनमें स्वादु, कटु, अम्ल, कषाय, लवण, तिक्त हैं इन सबको निवेदित करे जो भी अखण्ड हो ॥१३-१४॥

तत्पूजार्थं प्रदातव्य केशवाय महात्मने ।
यावत्स वत्सर पूर्णमखण्ड प्रभवेद्गृहे ॥१५
कृतोपवासो देवर्षे द्वितीयेऽह्नि सयतः ।
स्नानेन येन स्नायीत तेनाखण्ड हि वत्सरम् ॥१६
सिद्धार्थकैस्तिलैर्वाऽपि तेनैवोद्वर्त्तन स्मृतम् ः
हविषा पद्मनाभस्य स्नानमेव समाचरेत् ॥१७
होमस्तेनैवगदितो दाने शक्तिर्निजा द्विज ।
पूजयेद्वाऽथ कुसुमं पादादारभ्य केशवम् ॥१८
धूपयेद्विविध धूपं येन स्याद्वत्सर परम् ।
हिरण्यरत्नवासोभिः पूजयेच्च जगद्गुरुम् ॥१९
रागखण्डवचोप्याणि हविष्याणि निवेदयेत् ।
ततः सपूज्य देवेश पद्मनाभ जगद्गुरुम् ॥२०
विज्ञापयेन्मुनिश्रेष्ठ मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥
नमोऽस्तु ते पद्मनाभ पद्माधव महाद्युते ॥२१

महान् आत्मा वाले भगवान् केशव के लिये तथा उनकी अर्चना के लिये इन सबको प्रदान करना चाहिए । जब तक सम्वत्सर पूर्ण एवं अखण्ड हो घर मे समर्चना करे ॥१५॥ हे देवर्षे ! उपवास करके दूसरे दिन दिन मे परम सयत होकर जिस स्नान से स्नान करे अर्थात् जिस स्नानीय पदार्थ से स्नान करे वह उससे पूरा वर्ष अखण्ड होता है ॥१६॥ सिद्धार्थक अथवा तिलो से स्नान करे तो उन्ही का उद्वर्त्तन (उबटना) बताया गया है । भगवान् पद्मनाभ का हवि से स्नान इसी भाँति समाचरित करे ॥१७॥ हे द्विज ! उसी पदार्थ से होम बताया गया है । दान में अपनी शक्ति जैसी हो करे । अथवा चरणो से आरम्भ करके भगवान् केशव का कुसुमों से पूजन करे ॥१८॥ दो प्रकार की धूप देनी चाहिए जिससे वत्सर परम हो जाता है । सुवर्ण-रत्न और वस्त्रों के द्वारा

जगद्गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥१६॥ राग खण्ड व और चोष्य तथा हविष्य पदार्थों को निवेदित करना चाहिए। इसके अनन्तर देवों के स्वामी भगवान् पद्मनाभ जगत् के गुरु की भली भाँति अर्चना करके फिर हे मुनि श्रेष्ठ ! हे सुन्दर व्रतों वाले ! इस निम्न कथित मन्त्र के द्वारा विशेष ज्ञापन करना चाहिए। हे पद्मनाभ ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है। आप महान् द्युति सुसम्पन्न हैं और आप पद्मा के स्वामी हैं ॥२०-२१॥

धर्मार्थकाम मोक्षा मे ह्यखण्डा सन्तु केशव।
विकासिपद्मपत्राक्ष यथाऽखण्डोऽसि सर्वत ॥२२
तेन सत्येन धर्माद्यास्त्वखण्डा सन्तु केशव।
एवं संवत्सरं पूर्ण सोपवासो जितेन्द्रिय ॥२३
अखण्ड पारयद्ब्रह्म स्त व्रत सर्ववस्तुषु।
अस्मिश्चीर्णे हि व्यक्त तु परितुष्यन्ति देवता ॥२४
धर्मार्थकाममोक्षाद्यास्त्वक्षया सम्भवन्ति हि।
एतानि ते मयोक्तानि व्रतानि युक्तानि कामिभि ॥२५
प्रवक्ष्याम्यधुना त्वेतद्वैष्णव पञ्जर शुभम्।
नमो नमस्ते देवेश चक्र गृह्य सुदर्शनम् ॥२६
प्राच्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामह शरण गत।
गदा कौमोदकी गृह्य पद्मनाभामितद्युत ॥२७
याम्या रक्षस्व मा विष्णो त्वामह शरण गत.।
पद्ममादाय गगद नमस्ते पुरुषोत्तम ॥२८

हे केशव ! मेरे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ मेरे अखण्ड हो जावें। आप तो खिले हुए पद्म पत्रों के समान नेत्रों वाले हैं और आप जिस प्रकार से सभी ओर से सब भाँति अखण्ड हैं उसी भाँति मेरे पुरुषार्थ भी अखण्ड कर देवें ॥२२॥ हे केशव ! उस सत्य से मेरे धर्म आदि सब ही अखण्ड (पूर्ण) हो जावें।" इस प्रकार से पूरे वर्ष पर्यन्त उपवासों के सहित रहे और इन्द्रियों को जीत कर वश में रखे ॥२३॥ हे ब्रह्मन् ! उस व्रत को सभी वस्तुओं में अखण्ड पारित करे।

इस व्रत के साङ्ग समाप्त हो जाने पर यह परम सुस्पष्ट है कि देवगण परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करते हैं ।।२४।। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ अक्षय हो जाते हैं। मैंने इन व्रतों को आपको बतला दिया है जो कामियों के द्वारा कहे गये हैं ।।२५।। अब मैं यह परम शुभ वैष्णव पञ्जर बतलाता हूँ।—"हे देवेश ! आपके चरणों में मेरा बारबार नमस्कार है। हे भगवन् ! अब आप सुदर्शनचक्र का ग्रहण करिये। आप मेरी प्राची में हे विष्णो ! रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरणागति में आ गया हूँ। हे पद्मनाभ ! आपकी द्युति अपरिमित है। आप अपनी कौमोदकी को ग्रहण कर लीजिए ।।२६-२७।। आप मेरी याम्य दिशा में रक्षा करें। हे विष्णो ! मैं आपके शरण में आ गया हूँ। हे पुरुषोत्तम ! आपको मेरा प्रणाम है। आप गदा के साथ पद्म को भी ग्रहण कीजिए ।।२८।।

प्रतीच्या रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ।
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् ।।२९
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ।।
शार्ङ्गमादाय च धनुरस्त्रं नारायण हरे ।।३०
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ईशान्यां शरणं गतः ।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुबोध्य च पङ्कजम् ।।३१
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञसूकर ।
चर्मसूर्यशतं गृह्य खड्गं चर्मम तथा ।।३२
नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन् ।
वैजयन्तीं प्रगृह्य त्वं श्री वत्सेकण्ठभूषणम् ।।३३
वायव्यां रक्ष मां देवअश्वशीर्ष नमोऽस्तु ते ।
वैनतेयं समारुह्य अन्तरिक्षे जनार्दन ।।३४
मां त्वं रक्षाजित सदा नमस्ते त्वपराजित ।
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।।३५

हे विष्णो ! आप मेरी पश्चिम दिशा में रक्षा कीजिए। मैं आपकी शरण में उपस्थित हो गया हूँ। शातन मुसल को ग्रहण करके

हे पुण्डरीकाक्ष ! मेरी आप रक्षा करें ॥२६॥ हे जगन्नाथ ! उत्तर दिशा में आप मेरी रक्षा करें। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। हे हरे ! आप अपना शार्ङ्ग धनुष ग्रहण कर लेवें और अपने नारायण अस्त्र को भी ग्रहण कर लेवें ॥३०॥ हे राक्षसों के हनन करने वाले ! ईशानी दिशा में आप मेरी रक्षा करें। आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ। आपका जो महाशङ्ख पाञ्चजन्य है तथा पङ्कज है उनको अनुबोधित करके ग्रहण कीजिए और हे यज्ञसूकर विष्णो ! आग्नेयी दिशा में मेरी रक्षा कीजिएगा। सूर्य के तुल्य चर्म तथा चर्म सम खग ग्रहण कर और दिव्य मूर्त्ति वाले ! हे नृकेसरिन् ! नैर्ऋत्य दिशा में आप आप मेरी रक्षा करें। आप अपनी वैजयन्ती माला तथा कण्ठ का भूषण श्री वत्स ग्रहण करें। हे अश्व शीर्ष देव ! आप वायव्य दिशा में मेरी रक्षा करें। आपकी सेवा में मेरा प्रणाम है। हे जनार्दन ! आप अपने वाहन गरुड वैनतेय पर समारूढ होवें। अन्तरिक्ष में मेरी आप रक्षा करें। हे अजित ! आप तो अपराजित हैं। आपको सदा मेरा नमस्कार है। आप विशालाक्ष पर समारोहण करके रसातल में आप मेरी रक्षा करें ॥३१-३५॥

अकूपारनमस्तुभ्य महामीन नमोऽस्तु ते।
करशीर्षाद्यङ्घ्रिगतवपु तथाऽष्टबाहुवजरम् ॥३६
कृत्वा रक्षस्व मा देव नमस्ते पुरुषोत्तम।
एतदुक्त भगवता वैष्णवं पंजर महद् ॥३७
पुरा रक्षार्थमीशेन कात्यायन्यै द्विजोत्तम्।
नाशयामास सा यत्र दानव महिषासुरम्।
नमर रक्तबीज च तथाऽन्यान्सुरकण्टकान् ॥३८
कश्चासौ महिषो नाम रक्तबीजादयश्च के।
काऽसौ कात्यायनी नाम या जघ्ने महिषासुरम् ॥३९
नमर रक्तबीज च तथाऽन्यान्सुरकण्टकान्।
कश्चासौ महिषो नाम क्वास्ते जातश्च कस्य सः ॥४०

कश्चासौ रक्तबीजाख्यो नमर स्तस्य चात्मजः ।
एतद्विस्तरतस्तात यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४१

हे अकूपार ! आपको मेरा प्रणाम है। हे महामीन ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार है। कर-शीर्ष-चरण सब मे अष्टबाहु पञ्जर करके हे देव ! हे पुरुषोत्तम ! आप मेरी रक्षा करें। आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है। यह महान् वैष्णव पञ्जर भगवान् ने स्वयं कहा है ॥३६-३७। द्विजोत्तम ! प्राचीन समय मे ईशने कात्यायनी को रक्षा के लिये इस पञ्जर को कहा था। जहाँ पर उस देवी ने दानव महिषासुर का नाश किया था। एक महिषासुर को ही नही किन्तु नमर-रक्तबीज और अन्यान्य भी देवी के शत्रुओं का वध किया था ॥३८। श्री नारद जी ने कहा—यह महिषासुर कौन था और रक्तबीज प्रभृति असुर भी कौन थे ? यह कात्यायनी नाम वाली देवी कौन सी है जिसने महिषासुर का हनन किया था ? नमर-रक्तबीज तथा अन्य-अन्य सुर कण्टक कौन थे ? यह महिष नाम वाला कौन था—कहाँ उत्पन्न हुआ था और कहाँ पर रहता था तथा यह किस का पुत्र था ? यह रक्त बीज नामधारी भी कौन था तथा नमर किसका पुत्र था ? यह सभी बातें हे तात ! आप मुझे अति विस्तार के साथ बतलाइयेगा। आप पूर्ण ज्ञाता हैं और यह सब बताने के लिये आप परम सुयोग्य भी हैं ॥३९-४१॥

श्रूयतां सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशनीम् ।
सर्वदा वरदा दुर्गा येयं कात्यायनी मुने ॥४२
पुरा सुरवरौ रौद्रौ जगत्क्षोभकरावुभौ ।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां सुमहाबलौ ॥४३
तावपुत्रौ च देवर्षे पुत्रार्थं तेपतुस्तपः ।
बहून्वर्षगणान्दैत्यौ स्थितौ पञ्चनदे जले ॥४४
तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्निपञ्चमः ।
करम्भश्चैव रम्भश्च यक्षं मालवटं प्रति ॥४५
एकं निमग्नसलिले ग्राहरूपेण वासव ।
चरणाभ्यां समादाय विजघान यथेच्छया ॥४६

यद्व प्रार्थयसे वीर तद्ददामि यथेप्सितम् ।
मा म्रियस्व मृतस्येह नष्टा भवति वै कथा ॥५०
ततोऽब्रवीद्वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि ।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः ॥५१
अजेयो दैवतैः सर्वैर्युधि दैत्यैश्च पावक ।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित् ॥५२
त प्रोवाच कविर्ब्रह्मन्वाढमेव भविष्यति ।
यस्या चित्त समालम्ब्य मरिष्यति ततोऽसुरः ॥५३
इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो ययौ ।
द्रष्टुं मालवट यक्ष यक्षैश्च परिवारितम् ॥५४
तेषां पद्मनिधिस्तत्र वसते नान्यचेतनः ।
गजाश्च महिषाश्चाश्वा गावोऽजा विपरिप्लुताः ॥५५
तान्दृष्ट्वैव तदा चक्रे भाव दानवपार्थिवः ।
महिष्यां भावयुक्तायां त्रिहायण्या तपोधन ॥५६

अग्नि देव ने कहा—हे वीर ! जो तुम प्रार्थना करते हो उस यथेप्सित को मैं बतलाता हूँ । मरो मत, मृत होने पर यहाँ की पूरी कथा ही नष्ट हो जायगी ॥५०॥ इसके उपरान्त रम्भ ने यह वचन कहा—यदि आप मुझको यह वरदान प्रदान करें कि मेरा पुत्र तेज मे आप से भी अधिक और त्रैलोक्य का विजय करने वाला समुत्पन्न होवे ॥५१॥ हे पावक ! मेरा पुत्र ऐसा ही होवे कि युद्ध मे देवो के द्वारा भी अजेय हो चाहे सभी देवता उस दैत्य से आकर क्यों न भिड जावें । वायु की भाँति महान् बलवान् और कामरूपी तथा समस्त अस्त्रों की विद्या का ज्ञाता होना चाहिए ॥५२॥ हे ब्रह्मन् ! अग्नि ने उससे कहा—बहुत ठीक, ऐसा ही होगा । जिसमे चित्त को समानन्वित रफक रकेही वह असुर मरेगा ॥५३॥ इस प्रकार से अग्नि देव के द्वारा कहे जाने पर फिर वह दानव यक्षों से परिवारित मालवट यक्ष को देखने के लिये वहाँ से गया था ॥५४॥ उनकी पद्म निधि वहाँ पर वास करती थी । अन्य चिन्तन करने वाला वह था । वहाँ गज, महिष, अश्व, गौऐं और अब

ततो भ्रातरि नष्टे च रम्भः कोपपरिप्लुतः।
वह्नौ स्वशीर्षं संछिद्य होतुमैच्छन्महाबलः ॥४७
ततः प्रगृह्य केशेषु खड्गं च रविसप्रभम्।
छेत्तुकामो निजं शीर्षं वह्निना प्रतिषेधितः ॥४८
उक्तश्च मा दैत्यवर नाशयात्मानमात्मना।
दुस्तरा परवध्यापि स्ववध्याऽप्यतिदुस्तरा ॥४९

पुलस्त्य मुनि ने कहा—अब आप श्रवण कीजिए, मैं अब इस पापों के प्रणाशन करने वाली कथा को आपके समक्ष में वर्णन करता हूँ। हे मुने ! जो यह कात्यायनी है वह सर्वदा वरदान प्रदान करने वाली दुर्गा देवी है ॥४२॥ पहिले समय में असुरों में परम श्रेष्ठ महान् रौद्र रूप धारी और दोनों ही इस जगत् में महान् क्षोभ उत्पन्न करने वाले अत्यन्त बलशाली रम्भ तथा करम्भ इन नामों वाले दो हुए थे ॥४३॥ हे देवर्षे ! वे दोनों ही पुत्रहीन थे। अतएव उनने तप किया था कि पुत्र उत्पन्न हो जावे। बहुत वर्ष पर्यन्त वे पञ्चनद के जल में स्थित होकर तपश्चर्या करते रहे थे ॥४४॥ वहाँ पर एक जल के मध्य में रहने वाला द्वितीय पञ्चम अग्नि में स्थित था। इस प्रकार मालवट यक्ष के प्रति करम्भ और रम्भ तप में लीन थे। जो एक जल में मग्न था उसको इन्द्र ने ग्राह के रूप से चरणों को पकड़ कर वहाँ पर ही मार डाला था ॥४५-४६॥ इसके अनन्तर अपने भाई के नष्ट होने पर रम्भ का बड़ा क्रोध हुआ था और उस महान् बलवान् ने अपना मस्तक काट कर अग्नि में होम करने की इच्छा की थी ॥४७॥ इसके पश्चात् अग्नि देव ने प्रत्यक्ष होकर उसके केश पकड़ लिये और जो सूर्य के तुल्य प्रभा वाला खड्ग था उसे भी छीन कर जो अपना मस्तक काटने की इच्छा कर रहा था उसका प्रतिषेध कर दिया था ॥४८॥ और अग्नि ने कहा—हे दैत्यवर ! अपने आप ही अपना नाश मत करो। दूसरे का वध करना भी बहुत कठिन होता है किन्तु अपने आप अपना वध करना इससे भी अधिक कठिन है ॥४९॥

यच्च प्रार्थयसे वीर तद्ददानि यथेप्सितम् ।
मा म्रियस्व मृतस्येह नष्टा भवति वै क्रिया ॥५०
ततोऽब्रवीद्वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि ।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः ॥५१
अजेयो दैवतैः सर्वैयुधि दैत्यश्च पावक ।
महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रवित् ॥५२
त प्रोवाच कविर्ब्रह्मन्वाढमेव भविष्यति ।
यस्यां चित्तं समालम्ब्य मरिष्यति ततोऽसुरः ॥५३
इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो ययौ ।
द्रष्टुं मानवटं यक्ष यक्षैश्च परिवारितम् ॥५४
तेषां पद्मनिधिस्तत्र वसते नान्यचेतनः ।
गजाश्च महिषाश्चाश्वा गावोऽजा विपरिप्लुताः ॥५५
तान्दृष्ट्वैव तदा चक्रे भाव दानवपार्थिवः ।
महिष्यां भावयुक्तायां त्रिहायण्यां तपोधन ॥५६

सब विपरिप्लुत थे ॥५५॥ उनको देखकर ही उसी समय में उस दानव नृप ने हे तपोधन ! तीन वर्ष की महिषी में जो भाव युक्त थी, अपना भाव किया था ॥५६॥

सा समागाच्च दैत्येन्द्रं कामयन्ती तरस्विनी ।
स चापि गमनं चक्रे भवितव्यप्रचोदितः ॥५७
तस्या समभवद्गर्भस्ता प्रगृह्याथ दानवः ।
पातालं प्रविवेशाथ ततः स्वभवनं गतः ॥५८
पृष्टश्च दानवैः सर्वैः परित्यक्तश्च बन्धुभिः ।
अकार्यकारी चेत्येव भूयो मालवटं गतः ॥५९
साऽपि तेनैव पतिना महिषी चारुदर्शना ।
सम जगाम तत्पुण्यं यक्षमण्डलमुत्तमम् ॥६०
ततस्तु वसतस्तस्य श्यामा साधुवने मुने ।
अजीजनत्सुतं शुभ्रं महिषं कामरूपिणम् ॥६१
एतामृतुमतीं जाता महिषोऽन्यो ददर्श ताम् ।
सा चाभ्यगाद्दितिवरं रक्षन्ती शीलमात्मनः ॥६२
तमुन्नामितनासं च महिषं वीक्ष्य दानवः ।
खड्गं निष्कृष्य तरसा महिषं तमुपाद्रवत् ॥६३

फिर वया था वही तुरन्त कामना करती हुई उस दैत्येन्द्र के पास आगई थी । उसने भी भवितव्यता के कारण प्रेरित होकर उसी के साथ गमन करने लगा था ॥५७॥ उस में ही गर्भ स्थिर होगया था और फिर वह दानव उसे लेकर पाताल में प्रवेश कर गया था और अपने भवन को चला गया था ॥५८॥ सभी दानवों ने उससे पूछा था तथा समस्त बन्धुओं ने उसका त्याग कर दिया था कि यह तो अकार्य को करने करने वाला है । इस प्रकार से वह पुनः मालवट को चलागया था ॥५९॥ वह उसकी पत्नी चारुदर्शन वाली महिषी भी उसी अपने पति के साथ चली गई थी । वह परम पुण्यमय उत्तम यक्ष मण्डल था ॥६०॥ इसके अनन्तर हे मुने ! उसके बसते हुए यहाँ पर उस श्यामा ने यहाँ साधुवन में कामरूपी परम शुभ्र महिष पुत्र को जन्म दिया था ॥६१॥

वह जब ऋतुमती हुई तो उसको अन्य महिष ने देखा था किन्तु वह अपने शील की रक्षा करती हुई उस दैत्यवर के पास गई थी ॥६२॥ उस समय में कामी नाम लिये उस महिष को देखकर फिर दानव ने अपनी पत्नी के शील के बचाव के लिये अपना खड्ग वेग के साथ निकालकर उस महिष से युद्ध करने लगा था ॥६३॥

तेनापि दैत्यस्तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदि ताडितः ।
निर्भिन्नहृदयो भूमौ पपात च ममार च ॥६४
मृते भर्तरि सा श्यामा यक्षाणां शरणं गता ।
रक्षिता गुह्यकैः साध्वी निवार्य महिषं ततः ॥६५
ततो निवारितो यक्षैर्हयारिर्मदनातुरः ।
निपपात सरो दिव्यं ततो दैत्योऽभवन्मृतः ॥६६
नमरो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः ।
यक्षानाश्रित्य तस्थौ सा काल गमयती वने ॥६७
स च दैत्येश्वरो यक्षैर्मालिवटपुरस्सरैः ।
चितामारोपितः सा च श्यामा तं चारुहत्पतिम् ॥६८
ततोऽग्निमध्यादुत्तस्थौ पुरुषो रौद्रदर्शनः ।
व्यद्रावयत्स तान्यक्षान्खड्गपाणिर्भयंकरः ॥६९

उस महिष ने भी अपने तीखे सींगों से उस दैत्य के हृदय में प्रहार किया था । फिर मरा था उसके सींगों से हृदय फट जाने पर वह दैत्य भूमि पर गिरकर मर गया था ॥६४॥ अपने भर्ता के मर जाने पर वह श्यामा यक्षों की शरण में गई थी । तब गुह्यकों ने साथ में उस महिष को निवारित कर उसकी रक्षा की थी । इसके पश्चात् कामातुर हयारि का यक्षों ने निवारण किया था । वह दिव्य सर में गिर गया था और फिर दैत्य मृत हो गया था ॥६५-६६॥ वही नमर इस नाम से महान् बल-पराक्रम वाला लोक में विख्यात हुआ था । इसके पश्चात् वह श्यामा यक्षों का ही आश्रय ग्रहण करके अपना समय व्यतीत करती हुई उस वन में रहती थी ॥६७॥ इसके अनन्तर मालवट पुरस्सर समस्त यक्षों ने उस दैत्येश्वर को चिता पर रक्खा था और वह श्यामा भी उसी पर

अपने पति के साथ समारूढ होगई थी। इसके उपरान्त उसको अग्नि के मध्य से एक महान् रौद्र स्वरूप वाला पुरुष खड़ा होगया था। वह बहुत ही भयंकर था और उसने अपने हाथ मे खग लेकर उन सब यक्षों को वहाँ से भगा दिया था ॥६८-६९॥

ततो हतास्तु महिषाः सर्व एव महात्मना ।
विना संरक्षितारं हि महिषं रम्भनन्दनम् ॥ ७०

स नामतः स्मृतो दैत्यो रक्तबीजो महामुने ।
योऽजयत्सर्वतो देवान्सेन्द्ररुद्रार्क मारुतान् ॥७१

एवं प्रभावो दनुपुंगवोऽसौ तेजोऽधिकस्तत्र बभौ हयारिः
राज्येऽभिषिक्तश्चमहासुरेन्द्रै विनिर्जितैः शम्बरतारकाद्यैः ॥७२

अशक्नुवद्भिः सहितैश्च देवैः सलोकपालैः सहुताशभास्करैः ।
स्थानानिमुक्तानिशशीन्द्रभास्करैस्तमश्चदूरेप्रतियोजितञ्च॥७३

इसके अनन्तर उस महात्मा के द्वारा सभी महिष मार गिराये गये थे क्योंकि फिर वहाँ पर रक्षा करने वाला रम्भ का पुत्र महिष तो था ही नहीं ॥७०॥ हे महामुने ! फिर नाम से उस रक्तबीज दैत्य का का स्मरण किया था जिसने सभी ओर इन्द्र-रुद्र अर्क और मारुत देवों को जीत लिया था ॥७१॥ इस प्रकार के प्रभाव वाला वह दनुश्रेष्ठ तेज में समधिक होकर हयारि वहाँ पर शोभित हो गया था। शम्बर तारक आदि सभी जीते हुए महा सुरेन्द्रों ने उसको राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥७२॥ लोकपालों के सहित हुताश-भास्कर-चन्द्र आदि सब देवगण अशक्त होगये थे और सभी ने अपने स्थानों का त्याग कर दिया था। बहुत दूर तक अन्धकार छागया था ॥७३॥

१८—देवी माहात्म्य वर्णन [१]

गत्वा त्वपश्यंश्च मिथः सुरोत्तमौ स्थितौखगेन्द्रासनशंकरौहि ।
दृष्ट्वाप्रणम्यंवचसिद्धिमाधकौन्यवेदयंस्तम्महिषारिचेष्टितम् ।।२
प्रभोऽश्विभूयन्द्वानिलाग्निवेधसा जलेशशक्रादि सुराधिकारान् ।
आक्रम्य नाकात्तु निराकृता वय कृतावनिस्था महिषासुरेण।।६
एतद्भवन्तो शरणागताना श्रुत्वा वचो ब्रू त हित सुराणाम् ।
न चेद् व्रजामोऽद्य रसातल हि सकाल्यमाना युधिदानवेन।।४
इत्थं मुरारिः सह शकरेण श्रुत्वावचो विप्लुतचेतसा हि ।
दृष्ट्वाऽस्त्र चक्रे सहसव कोप कालाग्निकल्पोहरिरव्ययात्मा ।।५
ततोऽनु कोपा मधुसूदनस्य सशक रस्यापि पितामहस्य ।
तथैव शक्रादिषु दवतेषु महद्धि तेजो वदनाद्विनिःसृतम् ।।६
तच्चैकता पर्वतकूटसंनिभ जगाम तेजः प्रवराश्रमे मुने ।
कात्यायनस्याप्रतिमेन तेजसा महर्षिणा तेज उपाकृत च ।।७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके अनन्तर समस्त देवगण उस महिषासुर के द्वारा जीत लिये गये थे और वे सबके सब अपने २ स्थानों का त्याग कर वाहन और आयुधों के सहित पितामह ब्रह्माजी को अपना नायक बनाकर भगवान् सदा चक्रधारी लक्ष्मी के स्वामी नारायण के साथ दर्शन करने के लिये गये थे ।। १ ।। वहाँ पहुँच कर हम वाहन ब्रह्मा तथा शकर दोनों सुरोत्तमों ने परस्पर मे स्थित होकर उनका दर्शन किया था । इसके पश्चात् भगवान् को प्रणाम किया था फिर उन दोनो सिद्ध-साधकों ने महिषासुर शत्रु की जो सम्पूर्ण कुचेष्टाऐं थीं उनका निवेदन किया था ।।२।। देवों ने कहा–हे प्रभो ! सूर्य, चन्द्र अश्विनीकुमार-वायु-अग्नि-वेधा-जलेश-इन्द्र आदि सभी देवों के सब अधिकारों पर आक्रमण करके हम सब को स्वर्ग से एकदम बाहिर निकाल भगाया है और महिषा सुर ने भूमि पर स्थित कर दिया है ।।३।। यह शरण में आये हुए इन देवगणों की इस दुःख पूर्ण गाथा को आप दोनों भगवान् श्रवण करके जो भी कुछ हित प्रद हो उसे अब बतलाइये नहीं तो अब युद्ध मे दानव के द्वारा सकल्यमान होकर हम सब रसातल, को जा रहे हैं ।।४।। इस प्रकार से देवगण की प्रार्थना को शकर के साथ

भगवान् मुरारि ने सुनकर जोकि उन सब विप्लुत चित्त वालों ने कहे थे। यह देख कर कि मेरे आश्रित देव अत्यन्त ही प्रपीडित हैं सहसा ही कालाग्नि के सदृश अव्ययात्मा हरि ने बहुत भारी कोप किया था। ॥५॥ इसके अनन्तर ही ज्यों ही मधुसूदन को क्रोध हुआ था वैसे ही भगवान् शंकर तथा पितामह को भी क्रोध हो गया था। इसी भाँति इन्द्र आदि देव वृन्द से भी एक महान तेज मुख से निकला था ॥६॥ हे मुने ! वह सब ओर से निकला हुआ तेज एकता को प्राप्त होकर उस आश्रम में एक पर्वत के शिखर के सदृश हो गया था। भगवान् कात्यायन के अनुपम तेज से और महर्षि के द्वारा उपाकृत तेज वहाँ समुत्थित हुए थे ॥७॥

तेनर्षिसृष्टेन च तेजसा वृत ज्वलत्प्रकाशार्क सहस्रतुल्यम् ।
तस्माच्च जाता तरलायताक्षी कात्यायनी योगविशुद्धदेहा॥८
महेश्वराद्वक्त्रमथो बभूव नेत्रत्रय पावकतेजसा च ।
याम्येन केशा हरितेजसा च भुजास्तथाऽष्टादशसप्रजज्ञिरे ॥९
सौम्येन युग्म स्तनयोः सुसहित मध्यतथन्द्रेणचतेजसाऽभवत् ।
ऊरुजङ्घे च नितम्बसयुतौ जातौ जलेशस्यतुतेजसाहि॥ १०
पादौ च लोकप्रपितामहस्य पद्माभिकोशप्रतिमौ बभूवतु ।
दिवाकराणामपितेजसाऽङ्गुलीःकराङ्गुलीर्वासवतेजसाच॥११
प्रजापतीनादशनाश्चतेजसायक्षेणनासाश्रवणौ च मारुतात् ।
साध्येनचभ्रू युगलसुकान्तिमत्कन्दर्पबाणासनसन्निभवभौ॥१२
तच्चापि तेजोत्तममुत्तममहन्नाम्ना पृथिव्यामभवत्प्रसिद्धा ।
कात्यायनीत्येव तदा बभौ सानाम्नाचतेनैव जगत्प्रसिद्धा ॥१३
ददौ त्रिशूल वरदस्त्रिशूली चक्र मुरारिर्वरुणश्च शङ्खम् ।
शक्ति हुताशः श्वसनश्चचापतूणतथाऽक्षयसशरौविवस्वान् ॥१४

उस ऋषि के द्वारा सृष्ट तेज से समस्त स्थल जाज्वल्यमान सूर्यों के सहस्र के प्रकाश के सदृश था। उस तेज से तरल एवं आयत नेत्रोंवाली योग से विशुद्ध देह से युक्त कात्यायनी उत्पन्न हुई थी ॥८॥ माहेश्वर तेज से वक्त्र हुआ। पावक के तेज से तीन नेत्र हुए थे। याम्य (यम के)

तेज से उनके केश निर्मित हुए थे हरि के तेज से अष्टादश भुजाऐं उत्पन्न हो गई थीं ।।६।। लोक पितामह के तेज से पद्म के अभिकोश की प्रतिमा वाले दो चरण होगये थे। दिवाकरों के तेज से पैरों की अंगुलियां हुई थी। तथा इन्द्र के तेज से हाथों की अँगुलिया हुई ।।१०-११।। प्रजापतियों के तेज से दान, यक्ष के तेज से नासिका, मदन के तेज से दोनों कानों की रचना हुई थी साध्य के तेज से भ्रू युगल का निर्माण हुआ था जोकि सुन्दर कान्ति से युक्त और कामदेव के धनुष के तुल्य शोभा से युक्त भृकुटी का जोड़ा प्रतीत हो रहा था ।।१२।। वह तेज भी समस्त तेजों में परमात्तम था जो महत् नाम से पृथिवी से था उसी समय में कात्यायनी-इस नाम से इस जगत् में प्रसिद्ध हुई थी ।।१३।। वरद त्रिशूली ने उसे अपना त्रिशूल दिया था—भगवान् मुरारि ने चक्र देदिया था—वरुण देव ने शङ्ख-अग्नि ने शक्ति-वायु ने चाप और विवस्वान् देव ने अक्षय्य शर तथा तूणीर दिया था ।।१४।।

वज्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च यमोऽथ दण्ड धनदो गदां च ।
ब्रह्माऽक्षमाला सकमण्डलुं चकालोऽसिमुग्रं सहचर्मणाच ।।१५
हारं च सोमः सह चामरेण माला समुद्रो हिमवान्मृगेन्द्रम् ।
चूडामणि कुण्डलमर्द्धचन्द्रं प्रादात्कुठारसुरशिल्पकर्त्ता ।।१६
गन्धर्वराजो रजतानुलिप्तं पानस्य पूर्णं सदृश च भाजनम् ।
भुजङ्गहारं भुजगेश्वरोऽपि अम्लानपुष्पामृतवः स्रज च ।।१७
तदाऽतितुष्टा सुरसत्तमा सा अट्टाट्टहास मुमुचे त्रिनेत्रा ।
ता तुष्टुवुर्देववरा सहेन्द्राःसविष्णुरुद्रेन्द्वनिलाग्निभास्कराः ।।१८
नतोऽस्तु देव्यै पुरपूजितायै या सस्थिता योगविशुद्धदेहा ।
निद्रास्वरूपेणमहीवितत्यतृष्णात्रपाक्षुद्भयदा च कान्तिः ।।१९
श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरथो क्षमा चछायाच शक्तिः कमलालयाच ।
मेधास्मृति.क्षान्तिरथेहमाया नमोस्तु देव्यै भवितव्यतायै ।।२०
ततः स्तुता देववरैर्मृगेन्द्रमारुह्य देवी प्रगता वनाढ्यम् ।
विन्ध्य महापर्वतमुच्चशृङ्गं चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः ।।२१

इन्द्रदेव ने अपना वज्र-यमराज ने घण्टा के साथ ही दण्ड-धनद ने गदा समर्पित की थी। ब्रह्मा ने अक्षमाला प्रदान की थी और कमण्डलु भी देदिया था तथा कालदेव ने अपना महान् उग्र असि और चर्म समर्पित किया था ॥१५॥ सोम ने अपना हार जो चमर के साथ था दिया था समुद्र ने माला-हिमालय ने मृगेन्द्र का वाहन-चूडामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र और कुठार देवी के शिल्प कर्त्ताने प्रदान किये थे ॥१६॥ गन्धर्व राजने रजत से अनुलिप्त पान का पूर्ण भाजन दिया था। भुज-गेश्वर ने भुजगों का हार तथा समस्त ऋतुओं ने अम्लान पुष्पों वाली एक माला दी थी॥१७॥ उस समय में इस प्रकार से सम्पूर्ण आयुध एवं विविध भूषण आदि सब देववृन्दों से प्राप्त करके वह देवी जो सुरों में परम श्रेष्ठतमा थी अत्यन्त प्रसन्न हुई और उसने बड़े ही उच्चस्वर से त्रिनेत्रा ने अट्टहास किया था। उसी समय में इन्द्र के सहित सब देव-गण ने जिनमें विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, चन्द्र, सूय, वायु अग्नि प्रभृति थे उस देवी का स्तवन किया था ॥१८॥ सुरों के द्वारा पूजित भगवती को सेवा में हमारा सब का नमस्कार है जो योग द्वारा विशुद्ध देह वाली हमारे सबके समक्ष में संस्थित है। जो देवी निद्रा के स्वरूप से महो-मण्डल में फैलकर तृष्णा, त्रपा, क्षुधा और भय के प्रदान करने वाली कान्ति हैं ॥१९॥ श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया, शक्ति, कमलालया, मेधा, समृति, शान्ति और माया के स्वरूपों वाली हैं, ऐसी भवितव्यता भगवती देवी के लिए प्रणाम है ॥२०॥ इसके अनन्तर इस भाँति देव-वरों के द्वारा संस्तुत होकर वह देवी सिंह पर समारूढ होकर ऊँची शिखर से युक्त-महान् पर्वत, वनों से संयुत विन्ध्याचल पर चली गई थी जिसको अगस्त्य मुनि ने निम्नतर कर दिया था ॥२१॥

विमर्थमद्रि भगवानगस्त्यस्त निम्नशृङ्ग कृतवान्महर्षिः ।
तस्मै कृते केन च कारणेन एतद्वदस्वामलसत्त्ववृत्ते ॥२२

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य गतिर्निरुद्धा गगनेचरस्य ।
रविस्ततः कुम्भभयं समेत्यहोमावसाने वचन बभाषे ॥२३

समागतोऽहं किज दुरतस्त्वा कुरुष्व विश्वोद्धरणं मुनीन्द्र ।
ददस्व दान मम यन्मनोपित चरामियेन त्रिदिवेपुनिर्वृत ॥२४

इत्य दिवाकरवचो गुणसप्रयोगि श्रुत्वानदाङ्कलशजोवचनवभापे ।
दानंददामितवयन्मनसस्त्वभीष्टनार्थीप्रयातिविमुखोममकश्चिदेव ॥
श्रुत्वावचोऽमृतमयकलशोद्भवस्यप्राहप्रभु करतलविनिधायमूर्ध्नि ।
एषोऽद्यमेगिरवर प्ररुणद्धिमार्गविन्ध्यस्त्वनिम्नकेरणेभगवन्यतस्व ॥
इतिरविवचनादथाहकुम्भजन्माकृतमितिविद्धिमयाहिनीचशृङ्गम् ।
तवकिरणजिनोपविष्यतिमहीध्रोममचरणसमाश्रितस्यकाव्ययाने ॥
इत्येवमुक्त्वा कलशोद्भवस्तु सूर्यं हिसस्तूय विनम्रमवत्या ।
जगाम सत्यज्य हि दण्डका तु विन्ध्याचल वृद्धवपुमहर्षि ॥२८

देवर्षि नारद ने कहा—महर्षि अगस्त्य ने किस कारण से उस विन्ध्याचल को अधिक नीचा कर दिया था ? किसके लिये और किस हेतु के समुपस्थित हो जाने पर महर्षि ने उसे ऐसा बना दिया था—यह सब आप हमको बतलाइये । आप तो प्रसन्न सत्व वृत्ति वाले महान् पुरुष हैं ॥२२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—बहुत पुराने समय की बात है कि एक बार गगन में सञ्चरण करने वाले भगवान् भुवन भास्कर की गति को इसी विन्ध्य गिरि ने अत्युच्च होकर रोक दिया था । उस समय में रविदेव ने कुम्भ से समुत्पन्न अगस्त्य मुनि के पास में आकर जबकि इनके होम का समय समाप्त ही चुका था, यह वचन कहा था ॥२३॥ सूर्य ने कहा—हे द्विज मैं बहुत ही दूर से आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । हे मुनीन्द्र ! आप इस समय में इस विश्व का उद्धार कीजिएगा मुझे आप दान प्रदान कीजिएगा जोकि मेरे मन का अभीष्ट है जिससे मैं त्रिदिव में सानन्द विचरण कर सकूँ ॥२४॥ इस प्रकार के गुणों से समायुक्त रवि के वचन का श्रवण करके अगस्त्य मुनि ने यह वचन कहा था । मैं जो भी आपके मन में अभीष्ट होगा उसी का दान करने को प्रस्तुत हूँ क्योंकि याचना करने वाला मेरे समीप आकर कभी भी विमुख नहीं जाया करता है ॥२५॥ इस भाँति महर्षि अगस्त्य के अमृतमय वचन सूर्य ने सुन कर फिर रवि प्रभु ने अपने हाथों को मस्तक पर

रखकर निवेदन किया था कि यह गिरिवर विन्ध्य मेरे गमन करने के मार्ग को रोक देता है। हे भगवन्! आप समर्थ हैं इसको नीचा बना देने का यत्न कर दीजियेगा ॥२६॥ इस भाँति श्रीसूर्य्यदेव को सुनकर श्री अगस्त्य मुनि ने रवि से कहा था कि मेरे द्वारा उस विन्ध्य के शिखर को नीचा किया हुआ ही तुम समझलो अर्थात् यह हो ही जायेगा कोई सन्देह करने की अब आवश्यकता नहीं है। सूर्य से मुनि ने कहा कि यह महीध्र को तुम अपनी किरणों के द्वारा जीता हुआ ही होगा-ऐसा मान लो। जब तुमने यहाँ पर उपस्थित होकर मेरे चरणों का समाश्रय ग्रहण कर लिया है तो फिर आपको क्या कोई दुःख भय रह सकता है? ॥२७॥ बस, इतना भर कहकर कुम्भज ऋषि ने सूर्य देव से भक्ति पूर्वक विनम्र भाव से संस्तवन किया था और फिर उस दण्डकारण्य का त्याग कर वृद्धवपु महर्षि विन्ध्याचल के समीप में पहुँच गये थे ॥२८॥

गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीध्र याम्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम् ।
वृद्धोऽस्म्यशक्तश्चतवाधिरोढु तस्माद्भवान्नीतरोस्पु सद्यः ॥२६
इत्येवमुक्तो मुनिसत्तमेन स नीचश्रृङ्गस्त्वभवन्महीध्रः ।
समाक्रमच्चापिमहर्षिमुख्यःप्रोल्लङ्घ्यविन्ध्यस्त्विदमाहशैलम् ॥
यावन्न भूयो निजमाश्रमामि महाश्रमं धौतवपुः सुतीर्थात् ।
त्वया न तावत्त्विह वर्धितव्यनचेद्विशप्स्येऽहमवज्ञयाते ॥३१
इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम दिशं स याम्यां सहसाऽन्तरिक्षं ।
आक्रम्यतस्थौसहितातदाशाकालेयत्राम्यलयदामुनीन्द्रः ॥३२
तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा संशुद्धजाम्बूनदतोरणान्तम् ।
तत्राथ निक्षिप्य विदर्भपुत्रीं स्वमाश्रमं सौम्यमुपाजगाम ॥३३
ऋतावृतौ पर्वदिनेषु नित्यं तमम्बरे ह्याश्रममावसत्सः ।
शेषं हिकालं सहिदण्डकास्थस्तपश्चचारामितकान्तिमान्मुनिः ॥
विन्ध्योऽपि दृष्ट्वाऽऽगमने महाश्रमवृद्धिं न यात्येवमयान्महर्षेः ।
नासौनिवृत्तेतिमतिविधायस संस्थितो नीचतराग्रश्रृङ्गः ॥३५

वहाँ पहुँच कर मुनिवर ने पर्वत राज से कहा था—देखो, याम्य दिशा में एक परम पुण्यमय महान् तीर्थ श्रेष्ठ है मैं वृद्ध एवं शक्तिहीन हूँ।

आपके ऊपर चढाई नही कर सकता हूँ ! इसलिये आप तुरन्त ही निम्न हो जाइये ॥२९॥ इस प्रकार से श्रेष्ठ मुनि के द्वारा कहने पर वह पर्वत नीचे शिखर वाला हो गया था और महर्षि ने उसका समाक्रमण किया था फिर उसका प्रोल्लंघन करके महर्षि ने उस पर्वत से कहा था ॥३०॥ जब तक मैं पुनः नहीं लौटूँ अर्थात् उस महातीर्थ मे स्नान करके महान् श्रम पूरा कर वापिस आऊ तब तक तुमको अब ऊँचा बढना नहीं चाहिए अन्यथा मैं अपनी अवज्ञा समझ कर तुम को घोर शाप दे दूँगा ॥३१॥ इतना भर कह कर ऋषि याम्य दिशा मे चले गये थे और सहसा अन्तरिक्ष मे आक्रमण करके उसी दिशा मे रहकर कुछ समय मे यहाँ जब मुनीन्द्र ठहर गये थे ॥३२॥ वहाँ पर उन्होने एक परम सुन्दर आश्रम की रचना कर डाली थी जिसमे अति शुद्ध जाम्बू नद (सुवर्ण) के तोरण निर्मित कर दिये थे। वहाँ पर विदर्भ पुत्री को छोडकर वे पुनः अपने सौम्य आश्रम मे आ गये थे ॥३३॥ ऋतुकाल मे तथा पर्व दिनो मे नित्य ही वह अम्बर मे उस आश्रम मे आकर वास किया करते थे। शेष काल मे वह कान्तिमान् मुनि दण्डकारण्य मे रहकर तपश्चर्या मे सस्थित रह कर निवास किया करते थे ॥३४॥ विन्ध्य पर्वत भी उस महाश्रम मे मुनि का आगमन देखकर महर्षि के भय से कभी फिर वृद्धि को प्राप्त नही हो सका था। यह मुनि अभी तक निवृत्त नही हुए हैं— ऐसी बुद्धि रखते हुए वह विचारा फिर नीचे ही अपने शिखरो को रख कर सस्थित हो गया था ॥३५॥

एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे:।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसस्तुता सा दुर्गास्थितादानवनाशनार्थम् ॥
देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च विद्याधरा भूतगणाश्च सर्वे ।
सर्वाप्सरोभिः प्रतिराम यन्तःकात्यायनी तस्थुरपेतशोकाः॥३७

हे महर्षि ! इस प्रकार से वह महाचलेन्द्र अगस्त्य मुनि ने नीचे शिखरो वाला कर दिया था। उसके सब से ऊँचे शिखर पर मुनि के द्वारा सस्तुत दानवो के नाश करने वाली दुर्गा देवी स्थित हो गई थी ॥३६॥ फिर सभी देवगण, सिद्ध, महोरग, विद्याधर, समस्त भूतगण

सब अप्सराओं के साथ शोक रहित होकर कात्यायनी देवी का संस्तवन करते हुए वहाँ पर संस्थित हो गये थे ॥३७॥

१९—देवी माहात्म्य वर्णन (२)

ततस्तु ता तत्र तदा वसन्तीं कात्यायनीं शैलवरस्य शृङ्गे ।
अपश्यतां दानवसत्तमौ द्वौ चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं भृशम् ॥१
दृष्ट्वैव शैलादवतीर्य शीघ्रमाजग्मतुः स्व भवनं सुरारी ।
दृष्ट्वोचतुस्तौ महिषासुरस्य दूताविदं चण्डमुण्डौ दितीशम् ॥२
स्वस्थोभवान्किंत्वसुरेन्द्रसाम्प्रतमागच्छपश्यामचतत्रविन्ध्यम् ।
तत्रास्ति देवी सुमहानुभावा कन्या सुरूपा सुरसुन्दरीणाम् ॥३
जितस्तया तोयधरोऽलकैर्हि जितः शशाङ्को वदनेन तन्व्या ।
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणिहुताशनानि जितानिकण्ठेनजितस्तुशङ्खः ॥४
पीनाः सदाढ्याःपरिघोपमाश्चभुजास्तथाऽष्टादशभान्तितस्याः ॥५
पराक्रमं वै भवतो विदित्वा कामेन यन्त्रा इव ते कृतास्तु ॥६
मध्यं च तस्यास्त्रिवलीतरङ्गं विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि ।
भयात्तवारोहणकातरस्य कामेन सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥७

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—इसके अनन्तर उस शैल श्रेष्ठ के शिखर पर वहाँ उस समय में निवास करने वाली कात्यायनी देवी को जो परम तपस्विनी के स्वरूप में स्थित थी । उस दानवों के संहार करने वाली देवी को चण्ड और मुण्ड इन दो दानवों ने बारम्बार देखा था ॥१॥ उस देवी को देखकर ये दोनों शैल से नीचे उतर कर शीघ्र ही अपने भवन में आ गये और इन दोनों महिषासुर के दूतों ने चण्ड और मुण्ड ने महिषासुर से यह वचन कहा था ॥२॥ हे असुरेन्द्र ! आप किस तरह ऐसे स्वस्थ होकर स्थित हैं । इस समय आइये, विन्ध्य पर्वत को देखें । वहाँ पर एक सुर सुन्दरियों में कन्या के स्वरूप वाली परम रूपवती सुन्दर एवं महान् अनुभावों से युक्त देवी स्थित है ॥३॥ उसके अलक ऐसे सुन्दर हैं कि उनसे उसने मेघों को भी जीत लिया है

सुन्दरता क्या कहें उसकी सुन्दरता से चन्द्रमा भी पराजित है। तीन नेत्रों के सौन्दर्य से तीनों अग्नियों को भी नीचा दिखा दिया है। कण्ठ उसका इतना सुन्दर है जैसे कोई शंख हो ॥४॥ परम पीन अस्त्रों युक्त अठारह उसकी भुजाऐं हैं जो परिघ के समान ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आपके पराक्रम को जान कर ही कामदेव ने ये अस्त्र ही बना दिये हों ॥५-६॥ हे दैत्येन्द्र ! उस परम सुन्दरी देवी का मध्य भाग तो इतना सुन्दर है कि उसमें त्रिवलियों की तरङ्गें विद्यमान हैं और बहुत ही सुन्दर रोमों की राशि शोभित है ऐसा ज्ञात है कि आप ही भय से आरोहण में कातर कामदेव ने वह सोपानों की परम्परा रचित की हो ॥७॥

सा रोमराजी नितरां हि तस्या विराजते पीनकुचावलग्ना ।
आरोहणे त्वद्भयकातरस्य स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य ॥८
नाभिर्गभीरा नितरां विभाति प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना ।
तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा कन्दर्पराज्ञा स्वयमेव दत्ता ॥९
विभाति रम्यं जघनं मृगाक्ष्याः समन्ततो मेखलयाऽवगूढम् ।
मन्ये ह्यहं कामनराधिपस्य प्राकारगुह्यं नगरं सुदुर्गम् ॥१०
वृत्तावरोमौ च मृदू कुमार्याः शोभेन ऊरू समनुत्तमौ हि ।
आवासनार्थं मकरध्वजेन जनस्य देशाविव सन्निविष्टौ ॥११
तज्जानुयुग्मं महिषासुरेन्द्र ह्यर्धोन्नतं भाति तथैवतस्याः ।
सृष्टा विधाताहिनिरूपणायश्रान्तस्तथाहस्ततलौस्दौ हि ॥१२
जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने शुभे च दैत्येश्वर ते तदीये ।
आनम्य लोकानिव निर्मिते येऽमूप विजित्यैवकृतेवरे हि ॥१३
पादौ च तस्याः कमलौ दरायौ प्रयत्न तस्तौहिकृतौविधात्रा ।
अङ्गुलि तस्या नखरत्नमाला नक्षत्रमाला गगने यथैव ॥१४

यह सुन्दर रोमों की पंक्ति उसके पीन कुचों में अवलग्न होकर विराजमान है। हे असुर ! ऐसा प्रतीत होता है कि आपके भय से कातर कामदेव के आरोहण के समय में मानो पसीने का प्रवाह बहकर घन दिया हो ॥८॥ उसकी गम्भीर तरा नाभि तो बहुत ही सुन्दर

मालूम होती है जो प्रदक्षिण की ओर ही परिवर्त्त माना है ऐसा प्रतीत होता है कि वह नाभि क्या है मानो कामदेव रूपी नृप ने उस लावण्य के घर की मुद्रा (मोहर) स्वय ही लगा दी है ॥६॥ उस मृगाक्षी के सुन्दर जघन शोभा देते है जिनके चारो ओर मेदवला (कौंधनी) आवृत है ऐसा माना जाता है कि काम रूपी राजा के सुदुर्ग नगर का कोई प्राचीर (परकोटा) जैसा बना हो ॥१०॥ अत्यन्त कोमल, वृत्ताकार, बिना रोमो वाले समान तथा सत्युत्तम अरु हैं जो परम शोभा वाले हैं। ऐसा मालूम होता है कि कामदेव नृप ने जनो के आवास के लिये दो देश निविष्ट कर दिये हो ॥११॥ हे महिषा सुरेन्द्र ! उसके दोनो घुटने अतीव उन्नत बहुत शोभा-सम्पन्न हैं। ऐसा प्रतीयमान होता है सृजन कार्य मे श्रान्त होकर विधाता ने निरूपण के लिये दोनो हस्तो के तल दे दिये हो ॥१२॥ उसके जघन सुवृत्त होते हुए भी रोमों से हीन हैं अतएव हे दैत्येश्वर ! वे परम शुभ हैं। ऐसा मालूम होता है कि लोकों को आनमित करके ही असुय को विभ्वित कर उनका निर्माण किया गया है जो कि प्राप्त वरदानी हैं ॥१३॥ उस देवी के चरण तो कमल के उदर के समान हैं जिनकी रचना विधाता ने अत्यन्त ही प्रयत्नो के साथ की है। उसके नखरत्नो की माला ऐसी बनाई है जैसे गगन मे नक्षत्रो की माला हो ॥१४॥

> एव स्वरूपा दनुनाथ कन्या महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती ।
> दृष्ट्वा यथेष्टं [illegible] च वेद्मि कासासुतातथाकस्यचिदेवबाला ॥१५
> तद्भूतले रत्नमनुत्तम स्थित स्वर्गं परित्यज्य महासुरेन्द्र ।
> गत्वाऽथ विन्ध्ये स्वयमेव पश्यकुरुष्वयत्तेऽभिमत क्षम च ॥१६
> श्रुत्वैव ताभ्या महिषासुरस्तु देव्याः प्रवृत्ति कमनीयरूपाम् ।
> चक्रे मति नास्ति विचार्यमस्तिइत्येवमुक्त्वामहिषो महर्ष ॥१७
> प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि ।
> यस्मिन्यथायाति च सोऽयविग्रसनीयत्तेवाव्रजतिस्वय वा ॥१८
> ततोऽनु मुण्ड नमरं सचण्ड विडालनेत्रं कपिल सबाष्कलम् ।
> उग्रायुध चिक्षुररक्तबीजौ समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः ॥१९

आहत्य भेरी रणकर्कशास्ते स्वर्गं परित्यज्य महीधरं तु ।
आगम्य मूले शिविरं निवेश्यनस्युश्चसज्जा दनुनन्दनास्त ।।२०
ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण सम्प्रेषितो दानवयूथपालः ।
मयस्य पुत्रो रिपुसैन्यमर्दी स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनि.स्व स्तु ।।२१

हे दनुनाथ ! इस प्रकार के परम सुन्दर स्वरूप वाली वह कन्या है जिसने महान् उग्र अस्त्रों को धारण कर रक्खा है। उसको देख कर भी मैं यथार्थ रूप से नहीं जान पाया हूँ कि यह कौन है, किसकी पुत्री है और किस की वाली है ।।१५।। किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वह इस भूतल में सर्वोत्तम रत्न है जोकि इस समय में वहाँ स्थित है। हे महासुरेन्द्र ! ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वर्ग का त्याग करके ही यहाँ पर आगई है। आप विन्ध्याचल पर जाकर स्वयं ही उसको देखिये फिर जो भी, कुछ आपको अभिमत हो तथा जैसी भी क्षमता हो करियेगा ।।१६।। महिषासुर ने उन दोनों (चण्ड-मुण्ड) से देवी की प्रवृत्ति और अतिशय कमनीय सौन्दर्य को श्रवण करके हे महर्षे ! उसने इस विषय में कुछ भी विचार करने के योग्य बात है ही नहीं-यह कह कर फिर महिषासुर ने उस के प्राप्त करने की बुद्धिस्थिर करली थी ।।१७।। देखो, विधाता ने पुरुष के शुभ और अशुभ कर्मों के विषय में पहिले ही प्रतिपादित कर दिया है। जिसमें जिस प्रकार से से यह जाया करता है। हे विप्र ! वह उसी भांति जाता है-ले जाया करता है अथवा स्वयं ही वहाँ पहुँच जाता है ।।१८।। इसके अनन्तर उस महासुरेन्द्र ने चण्ड, मुण्ड, चमर, चिक्षुर, बाष्कल, उग्रायुध, बिडाल और रक्तबीज इन सबको आदेश दे दिये थे ।।१९।। भेरी बजाकर रण में महान् कठोर वे सब स्वर्ग का त्यागकर उस महीधर विन्ध्य पर आगये थे। उसके मूल में अपना पड़ाव डालकर वे सभी दानव सुसज्जित होकर स्थित हो गये थे ।।२०।। इसके पश्चात् महिषासुर ने दानवों के यूथ का स्वामी-मय दैत्य का पुत्र वहाँ पर भेजा था जो शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाला, दुन्दुभि की ध्वनि वाला था तथा जिसका नाम भी दुन्दुभि था ।।२१।।

अभ्येत्य देवी गगनस्थितोऽपि स दुन्दुभिर्वाक्यमुवाच विप्र ।
कुमारिदूतोऽस्मिमहासुरस्यरम्भात्मजस्याप्रतिमस्ययुद्धे ।।१२
कात्यायनी दुन्दुभिमित्युवाच एह्येहि दैत्येन्द्र भय विमुञ्च ।
वाक्य च यद्रम्भसुतो बभाषे वदस्व तत्सत्यपपेतमोह. ।।२३
ततस्तुवाक्याद्दितिजःशिवायास्त्यक्त्वाऽम्बरभूमितलेनिषण्णः ।
सुखोपविष्ट परमासने च रम्भात्मजनोक्तमुवाचवाक्यम् ।।२४
एव समाज्ञापयत सुरारिस्त्वा देवि दैत्यो महिषासुरस्तु ।
यथाऽमराहीनबला.पृथिव्याभ्रमन्तियुद्धे विजितामया तं ।।२५
स्वर्गो मही वायुपथाश्च वश्या पातालमन्ये च महीश्वराद्याः ।
इन्द्रोऽस्मिरुद्रोऽस्मिदिवाकरोऽस्मिसर्वेपुलोकेष्वधिपोऽस्मिबाले ।।२६
न सोऽस्ति नाके न महीतले वा स्वर्गेऽपिपातालतलेऽपियुद्धे ।
सर्वाणि मामद्य समागतानि वीर्यार्जितानीह विशालनेत्रे ।।२७
स्त्रीरत्नमग्र्य भवती च कन्या प्राप्तोऽस्मि शैलतवकारणेन ।
तस्माद्भजस्वैवजगत्पतिमापतिस्त्वार्होऽस्मिविभुःप्रभुश्च ।।२८

हे विप्र ! वह दुन्दुभि देवी के समीप में आकर आकाश मे ही स्थित होते हुए यह वाक्य बोला—हे कुमारि ! मैं युद्ध मे अप्रतिम-रम्भका पुत्र महासुर का दूत हूँ । जब उसका कात्यायनी ने दुन्दुभि से कहा-यहाँ आओ, आजाओ, भय का त्याग करदो । जो वचन रम्भ को पुत्र ने कहे हैं । सब मोह का त्याग करके सत्य २ कह डालो ।।२२-२३।। इसके उपरान्त जगदम्बा शिवा का वाक्य सुनकर वह दैत्य आकाश का त्याग करके भूतल मे खड़ा होगया था । वहाँ आसन पर सुख पूर्वक स्थित हो गया था और फिर [illegible] त्र द्वारा कहे [illegible] न कहने

हूँ । वाले ! समस्त लोकों में एक मात्र स्वामी हूँ ॥२६॥ इस समय मे ऐसा कोई भी कहीं नहीं है जो युद्ध में मेरा मुकाबिला कर सके । न तो कोई स्वर्ग में भूमि में तथा पाताल लोक में है । क्योंकि सभी तो हे विशाल नेत्रों वाली । मेरे अधीन हैं और सबको मैंने परास्तकर हीन वीर्या वाले कर दिया है ॥२७॥ आप एक स्त्रियों में रत्न के समान हैं और अभी कन्या ही हैं । मैं इस समय आपके ही कारण यहाँ इस शैल पर आया हूँ । इसलिये अब तुम मुझ जगत् के स्वामी की सेवा करो । मैं विभु और सर्व समर्थ प्रभु तुम्हारे पति होने के योग्य पात्र हूं ॥२८॥

इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा कात्यायनी प्राह मयस्य पुत्रम् ।
सत्यं प्रभुर्दानवराट् पृथिव्या सत्यं च युद्धे विजितामरश्च ॥२९
किन्त्वस्ति दैत्येश कुलेऽस्मदीये धर्मो हि शुल्काख्यइतिप्रसिद्धः ।
त चेत्प्रदद्यान्महिषो ममाद्य भजामि सत्येनपतिंहयारिम् ॥३०
श्रुत्वाऽथ वाक्यं मयजोऽब्रवीच्च शुल्कं वदस्वायतपद्मनेत्रे ।
दद्यांस्त्वमूर्धानमपि त्वदर्थे किन्नामशुल्कंचयदस्त्यलभ्यम् ॥३१
इत्येवमुक्ता दनुनायकेन कात्यायनी सस्वनमुन्नदित्वा ।
विहस्य चैतद्वचनं बभाषे हिताय सर्वस्य चराचरस्य ॥३२
कुलेऽस्मदीये शृणु दैत्य शुल्कं कृतं हि यत्पूर्वतरैः प्रसह्य ।
याजेष्यतेऽस्मत्कुलजांरणाग्रेतस्याःपतिःसोऽपिभवष्यतीति॥३३
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवेश्वरः ।
गत्वा निवेदयामास महिषाय यथातथम् ॥३४
स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरस्सरः ।
आगृत्य विन्ध्यशिखरं योद्धुकामः सरस्वतीम् ॥३५

पुलस्त्य महर्षि ने कहा—इस प्रकार से दानिज के द्वारा जब वह जगदम्बा दुर्गा से कहा गया तो उस समय में कात्यायनी ने मय के पुत्र से कहा—यह बिल्कुल सत्य है कि यह दानवों का राजा है और यह भी यथार्थ है कि पृथिवी में युद्ध स्थल में उसने सभी देवगण को को जीत लिया है॥२९॥ किन्तु हे दैत्येश ! हमारे कुल में शुल्कादय एक प्रसिद्ध धर्म है । यदि उस शुल्क को महिष आज मुझे देदेवे तो यह

सर्वथा सत्य है कि मैं हयारि को अपना पति के रूप में मानलूंगी ॥३०॥ यह श्रवणकर उस मयपुत्र ने कहा—हे आयत पत्र नेत्रे! वह शुल्क क्या है उसे बतलादो। वह तो आपके लिये अपना मस्तक भी देदेगा। ऐसा वह क्या शुल्क है जो अलभ्य है ॥३१॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—दनु नायक के द्वारा ऐसा कहने पर वह कात्यायनी देव ध्वनि पूर्वक उत्सदन करके तथा हंसकर समस्त चराचर के हित के लिये यह वचन बोली—श्रीदेवी ने कहा—हे दैत्य! हमारे कुल मे यह शुल्क है जो पूर्वजो ने कायम किया है उसे आप श्रवण करें। जो भी कोई बलपूर्वक हमारे कुल में उत्पन्न होने वाली को रणस्थल मे जीतलेगा वही उसका पति हो जायगा ॥३२-३३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—देवी के इस वचन को सुन कर उस दानवेश्वर दुन्दुभि ने वापिस जाकर यथातथ सब महिषासुर से निवेदन कर दिया था ॥३४॥ वह महान् तेजस्वी समस्त दैत्यों को आगे करके वहां पर आगया था और उसने विन्ध्य के शिखर घेर लिया था। उस सरस्वती से युद्ध करने की इच्छा से ही उसने सब तैयारी करके वहां आगमन किया था ॥३५॥

ततः सेनापतिर्दैत्यो चिक्षुरो नाम नारद।
सेनाग्रगामिनं चक्रे नमरं नाम दानवम् ॥३६

स चापि सेनाधिकृतश्चतुरङ्ग समूर्जितम्।
बलैकदेशमादाय दुर्गां दुद्राव वेगतः ॥३७

तमापतन्तं वीक्ष्याथ देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
ऊचुर्वाक्य महादेवी वर्मबन्धनमाश्रय ॥३८

अथोवाच सुरान्दुर्गा न बध्नामि च देवताः।
कवच कोऽत्र संतिष्ठेन्ममाग्रे दानवाधमः ॥३९

यदा न देव्या कवच कृतं शस्त्रनिवारणम्।
तदा रक्षार्थमस्यास्तु विष्णुपञ्जरमुक्तवान् ॥४०

सा तेन रक्षिता ब्रह्मन्दुर्गा दानवसत्तमम्।

एत्र पुरा देववरेण शम्भुना तद्वैष्णव पञ्जरमायताक्ष्याः ।
प्रोक्तं तयाचापिहिपादघातैर्निपूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः ॥४२
एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः सर्वासु रक्षास्वधिकोहिमीतः ।
कस्तस्य कुर्याद्धुविदर्पहानियस्यस्थितश्चेतसिचक्रपाणिः ॥४३

हे नारद ! इसके उपरान्त विक्षुर नाम धारी दैत्य सेनापति ने चमर नामक दानव को सेना का अग्रगामी किया था ॥३६॥ और वह भी उसने अधिकृत चतुरङ्ग से परिपूर्ण एवं भली भाँति अर्जित बल के एक देश को साथ लेकर बड़े वेग से दुर्गा देवी पर आक्रमण किया था ॥३७॥ इसके अनन्तर समस्त देवगण ने जिनमें ब्रह्माजी अग्रगामी थे उनको आक्रमण करते हुए देखकर यह देवी से प्रार्थना की थी कि वर्म का बन्धन कर लीजिये ॥३८॥ इसके पश्चात् दुर्गा ने उन देवगण से कहा—मैं कवच को नहीं बाँधती हूँ । यह अधम दानव मेरे आगे क्या ठहर सकता है अर्थात् इसकी शक्ति नहीं है जो मुझसे मुकाबिला कर सके ॥३६॥ जब देवी ने शस्त्रों के निवारणार्थ कवच धारण नहीं किया था तो उस समय में इनको रक्षा के लिए विष्णु पञ्जर को कहा था ॥४०॥ हे ब्रह्मन् ! उसके द्वारा रक्षित देवी दुर्गा थी । जो बड़े २ देवों से भी अवध्य यह दानवों में श्रेष्ठ था उस महिषा सुर के प्रति प्रेषित किया था ॥४१॥ इस प्रकार से देववर शम्भु ने वह वैष्णव पञ्जर आयताक्षी के लिए रक्षार्थ कहा था और फिर उस देवी ने भी अपने चरणों के घात से ही उस महिषा सुरेन्द्र का निपूदन कर डाला था ॥४२॥ इस प्रकार के प्रभाव वाला वह विष्णु पञ्जर है । हे द्विज ! इसकी सब प्रकार की रक्षाओं में अत्यधिक प्रशंसा की गई है । जिसके चित्त में भगवान् चक्रपाणि सस्थित हो उसके दर्प की हानि करने वाला इस भूमण्डल में कौन हो सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं है ॥४३॥

—०००—

२०—महिषासुर वध वर्णन

कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिषासुरम् ।
सवाहनं हतवती तथा विस्तरतो वद ॥१

अयं च संशयो ब्रह्मन्हृदि मे परिवर्त्तते ।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पद्भ्या तममर्दयत् ॥२
शृणुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
वृत्तां देवयुगस्यादौ पुण्यां पापभयापहाम् ॥३
स एवमसुरः क्रुद्धः समापतत वेगवान् ।
सगजाश्वरथो ब्रह्मन्दृष्टो देव्या यथेच्छया ॥४
ततो देवगणैर्दैत्यान्समानम्याथ कार्मुकम् ।
ववर्ष देवी बाणौघैर्घोरैर्धाम्बुदवृष्टिभिः ॥५
तद्धनुर्दानवे सैन्ये दुर्गया नमितं बलात् ।
सुवर्णपुष्पं विबभौ विद्युदम्बुधरेष्विव ॥६
बाणैः सुररिपूनत्यास्ताडयामास सुव्रत ।
गदया मुसलेनान्यान्स्वस्थानेभ्यो न्यपातयत् ॥७

देवर्षि श्रीनारद जी ने कहा—हे भगवन् ! अब आप कृपया यह बतलाइये कि उस देवी कात्यायनी जी ने किस प्रकार से असुर और वाहन भयंकर महिषासुर का वध किया था । विस्तार पूर्वक इस कथा का वर्णन कीजिए ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदय में यह बहुत अधिक संशय वर्त्तमान है कि सम्पूर्ण शस्त्रों के विद्यमान होते हुए भी उसका वध पदों के द्वारा ही किया गया था ॥२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—अब आप पूर्णतया सावधान होकर श्रवण करो । यह एक परमपुरातन कथा है । यह देव युग के आदि काल में घटित हुई थी और यह कथा परम पुण्यमयी तथा सब पापों के भयों का अपहरण करने वाली है ॥३॥ वह असुर अतीव क्रुद्ध हो कर वेग से युक्त हो आक्रमण करने वाला हुआ था । उसके साथ में हाथी-घोड़े रथ सभी थे । देवी ने यथेच्छा से उसे आते हुए देखा था ॥४॥ इसके अनन्तर देवगणों के सहित भगवती ने कार्मुक को वितत करके बाणों के समूहों की वर्षा की थी जिस प्रकार से मेघों के द्वारा जल की वर्षा किया करता है ॥५॥ उस धनुष को उस दानवों की सेना पर दुर्गा ने बल से नमित किया था । वह मेघों में विद्युत की भाँति सुवर्ण पुष्प पर शोभित हुआ था ॥६॥ हे सुव्रत !

बाणों के द्वारा असुरों का ताडन किया था जो अन्य बहुत से युद्ध करने को वहाँ आये थे। कुछ को मुसलास्त्र से अपने स्थान से नीचे गिरा दिया था ॥७॥

एकोऽप्यसौ वहून्दैत्यान्केसरी कालसन्निभः।
विधुन्वन्केसरसटा निषूदयति दानवान् ॥८
कुलिशाभिहता दैत्याः शक्त्या निर्भिन्नवक्षसः।
लाङ्गूलैर्दारितग्रीवा द्विधा कृताः परश्वधैः ॥९
दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चक्रविच्छिन्नबन्धनाः।
चेलुः पेतुश्च मत्ताश्च तत्यजुश्चापरे रणम् ॥१०
ते वध्यमाना रुद्रास्या दुर्गया दैत्यदानवाः।
कालरात्रिं मन्यामाना दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥११
सेनान्यं भग्नमालोक्य दुर्गाग्रे तथा स्थिताम्।
दृष्ट्वा जगाम चमरो मत्तद्विरद संस्थितः ॥१२
समागम्य च वेगेन देव्या शक्तिं मुमोच ह।
त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद्दानवो रणे ॥१३
तावायान्तौ ततो देव्या हुङ्कारेणाथ भस्मसात्।
कृतौ ततो गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः ॥१४

एक ही वह केसरी जो एक काल के समान था बहुत से दैत्यों का वध करने वाला था। अपनी केसरों की सटाओं को विधूनित करके ही दानवों को विधूदित कर रहा था ॥८॥ बहुत से दैत्य कुलिश से अभिहत हुए थे, कुछ शक्ति से निर्भिन्न वक्षः स्थल वाले थे। कुछ दैत्य सिंह के लाङ्गूल से ही कटी हुई गरदन वाले हो गये थे। और परश्वधों से काटकर दो टुकड़े कर दिये गये थे ॥९॥ कुछ दैत्य चक्र से कटे हुए सिरों वाले हुए थे तथा चक्र से विच्छिन्न बन्धनों वाले थे। कुछ वहाँ से चल भगे थे कुछ गिरकर होगये थे और कुछ मत्त होकर रण स्थल का ही त्यागकर चले गये थे ॥१०॥ वे सब वध्यमान रुद्र मुखों वाले दैत्य दानव उस भगवती दुर्गा को साक्षात् काल रात्रि मानते हुए महान् भय से पीड़ित होकर वहाँ से भाग ही गये थे ॥११॥ सम्पूर्ण सेना को भग्न

तथा भगवती दुर्गा को समक्ष में स्थित देखकर एक मत्तहाथी पर समारूढ़ समर युद्ध करने को गया था ॥१२॥ वहाँ आते ही उसने देवी पर बड़े ही वेग से शक्ति का मोचन किया था। उस दानव ने रण में सिंह पर त्रिशूल का भी प्रहार किया था ॥१३॥ उन दोनों अस्त्रों को आते हुए देखकर भगवती ने अपनी एक हुंकार से ही उनको भस्मसात् कर दिया था। इसके पश्चात् गजेन्द्र के द्वारा वह सिंह मध्य भाग से गृहीत किया गया था ॥१४॥

अथोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम् ।
गतासुं कुञ्जरस्कन्धात्क्षिप्य देव्य निवेदिनः ॥१५
गृहीत्वा दानवं युद्धे ब्रह्मन्कात्यायनी रुषा ।
सव्येन पाणिनाऽभ्राम्या वादयत्पटहं यथा ॥१६
ततोऽट्टहासं मुमुचे तादृशे वाद्यता गते ।
हास्यात्समुद्भवस्तस्या भूता नानाविधाः क्रमात् ॥१७
केचिद्व्याघ्रमुखा रौद्रा वृकाकारास्तथाऽपरे ।
हयास्या महिषास्याश्च वराहवदनाः परे ॥१८
आखुकुक्कुटवक्त्राश्च गोजाविक मुखास्तथा ।
नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा ॥१९
गायन्त्यन्ये हसन्त्यन्ये क्रीडन्त्यन्ये तु संहताः ।
वादयन्त्यपरे तत्र स्तुवन्त्यन्ये तथाम्बिकाम् ॥२०
सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्धं तद्दानवं बलम् ।
शातयामास चक्राम्य यथा तृष्णा महाशनिः ॥२१

इसके अनन्तर उस सिंह ने बड़े भारी वेग से उछल कर पृथा तले से दानव को आहत करके गतप्राण वाले उसको कुञ्जर के स्कन्ध से फेंककर देवी को निवेदित कर दिया था ॥१५॥ उस युद्ध मे हे ब्रह्मन्! कात्यायनी ने दानव को पकड कर क्रोध से अपने सव्य कर से घुमाकर पटह की भाँति वादन किया था ॥१६॥ उस प्रकार के वाद्य होने पर फिर उसने एक महान् अट्टहास किया था। उस के उस हास्य से अनेक भूतक्रम से समुत्पन्न होगये थे ॥१७॥ उनमे कुछ तो व्याघ्र के समान

मुखों वाले बहुत ही रौद्र रूप वाले थे। कुछ वृक के समान आकार वाले थे इनमें कुछ अश्व के समान मुख से युक्त तथा कुछ महिष के मुखों वाले और कुछ सूकर के तुल्य मुखों वाले थे ॥१८॥ मूषक, कुक्कर गो, अजाविक के समान, अनेक भाँति के मुख, नेत्र और चरणों वाले तथा नाना आयुधों के धारण करने वाले थे ॥१९॥ कुछ नादन करते थे, कुछ हँसते थे और कुछ सहृद होकर क्रीड़ा करते थे। दूसरे कुछ उनमें से शरण करते थे और कुछ वहीं पर अम्बिका देवी का स्तवन कर रहे थे ॥२०॥ उन समस्त भूतगणों के साथ उस भगवती जगदम्बा ने उस दानवों के बल को नष्ट कर दिया था जिस प्रकार से तृणों के समूह को अग्नि नष्ट भ्रष्ट कर दिया करता है ॥२१॥

सेनान्ये निहते तस्मिस्तथा सेनाग्रगामिभिः ।
चिक्षुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवताः ॥२२
कार्मुकं दृढमाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः ।
ववर्ष शरजालानि यथा मेघो वसुन्धराम् ॥२३
तान्दुर्गा स्वशरैश्छित्त्वा शरसंघान्सुपर्वभिः ।
सौवर्णपुङ्खानपरान्चिच्छेदाश्वाञ्जघान षोडश ॥२४
ततश्चतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी ।
हत्वा सारथिमेकेन ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥२५
ततस्तु सशरं चापं चिच्छेदैकेषुणाम्बिका ।
छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्म चाददतान्वली ॥२६
सं खड्गं चर्मणा सार्द्धं दैत्यस्याधुन्वतो बलात् ।
शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे ॥२७
समुद्भ्राम्य महाशूलं प्राद्रवत्स तथाऽम्बिकाम् ।
क्रोष्टुको मुदितोऽरण्ये मृगराजवधूं यथा ॥२८

उस सम्पूर्ण सेना के निहत हो जाने पर तथा सेना के अग्र गामियों के नष्ट होने पर फिर सैन्यपाल चिक्षुर ने उन देवगण के साथ युद्ध किया था ॥२२॥ उस रथियों में श्रेष्ठ ने धनुष को दृढ़ता के साथ कान तक खींच करके शरों के जाल की वर्षा की थी जैसे मेघ भूमि पर

वृष्टि किया करता है ॥२३॥ उन सब शरों को अपने सुवर्ण शरों के द्वारा देवी दुर्गा ने छेदन कर दिया था। फिर उस दानव ने दूसरे सुवर्ण के पुंख वाले शरों को ग्रहण किया था। इसके अनन्तर उस भामिनी ने चारों शरों से चारों अश्वों को-एक से सारथि को और एक से ध्वज को छिन्न कर दिया था ॥२४-२५॥ फिर अम्बिका ने एक बाण से शरों के सहित उसके चाप को छिन्न कर दिया था। धनुष के छेदन होने पर उस बली ने खग और चर्म ग्रहण किया था ॥२६॥ बड़े बल से उस खग और ढाल को घुमाते हुए उस दैत्य के उस आयुध को भी देवी ने शरों से छेदन कर दिया था फिर उसने शूल लिया था ॥२७॥ उस महा शूलको लेकर वह एक दम अम्बिका पर आक्रमण करने लगा था जिस तरह कोई शृगाल अरण्य मे सिंहनी पर प्रसन्न होकर धावा बोलता हो ॥२८॥

तस्याभिपतत पादौ कर शीर्षं च पञ्चभिः ।
शरैश्चिच्छेद सक्रुद्धा न्यपतत्स हतोऽसुर ॥२९
तस्मिन्सेनापतौ क्षुण्णे तदोग्रास्यो महासुरः ।
समाद्रवत वेगेन करालास्यास्तु दानवाः ॥३०
बाष्कलश्चोद्धतश्चैव उग्रास्योऽथोग्रकार्मुक- ।
दुर्धरो दुर्मुखश्चैव बिडालनयनोऽपरः ॥३१
एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिना वराः ।
कात्यायनीमाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणय. ॥३२
तान्दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणा जग्राह पाणिना ।
वादयामास हसती तथा डमरुकं वरम् ॥३३
यथा यथा वादयते देवी वाद्यानि तानि च ।
तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥३४
ततोऽसुरा. शस्त्रधराः समभ्येत्य सरस्वतीम् ।
अभ्यघ्नंस्ताश्च सा देवी जग्राह परमेश्वरी ॥३५

इस तरह आक्रमण करने वाले उस दानव के दोनो पैर और हाथों तथा मस्तक को पाँचशरो से अम्बिका ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर काट

डाला था और वह असुर गतप्राण होकर भूमि पर गिर गया था ॥२९॥ उस सेनापति के निपतित हो जाने पर फिर उस समय में उग्रास्य महान् असुर बड़े वेग से धावा करने लगा। उसके साथी दानव भी कराल मुखों वाले थे ॥३०॥ जिनके नाम ये हैं—वाष्कल, उद्धत, उग्रास्य, उग्रधामुंक, दुर्द्धर, दुर्मुख, विडाल नयन ॥३१॥ बलशालियों में परम श्रेष्ठ थे और अन्य भी बहुत से दानवगण कात्यायनी पर धावा करके चढ आये थे जिनके परम नाना भांति के शस्त्र—अस्त्र थे ॥३२॥ (दुर्गा देवी ने उन सबको देखकर लीला से अपने हाथ में वीणा ग्रहण करली थी और उसका वादन तथा डमरु का वादन हँस कर रही थीं ॥३३॥ देवी जैसे उनका वादन करती थी उन वाद्यों के वादन को सुनकर वैसे ही समस्त भूत गण भी नृत्य करने लगे थे तथा हँस रहे थे ॥३४॥) इसके पश्चात् शस्त्रों के धारण करने वाले असुर गण सरस्वती के समीप में आकर प्रहार करने लगे तथा उस परमेश्वरी में देवी ने उन सब को पकड़ लिया था ॥३५॥

प्रगृह्य केशेषु महासुरांस्तानुत्पत्य सिंहात्तु नगस्य सानुम् ।
ननर्त्त वीणा परिवादयन्ती पपौ च पानं जगतां जनित्री॥३६
ततस्तु देव्या बलिनो महासुरा दोर्दण्डनिर्धूतविशीर्णदर्पाः ।
विस्रस्तवस्त्राव्यसवश्च जातास्ततस्तुतान्वीक्ष्य महासुरेन्द्रान् ॥
देव्या महौजा महिषासुरस्तु व्यद्राव यद्भूतगणान्खुराग्रैः ।
तुण्डेन पुच्छेन तथोजसाऽन्यान्निःश्वासवातेनच भूतसङ्घान् ॥३८
विषाणकोट्या च परान्प्रमथ्य दुद्राव सिंहं प्रतिहन्तुकामः ।
ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम चिक्षेपदन्यसहसैवलीलया ॥३९
ततः स कोपादथ तीक्ष्णशृङ्गः क्षिप्रं गिरीन्भूमिमशीर्णयच्च ।
संक्षोभयंस्तोयनिधीन्घनांश्च विध्वंसयन्प्राद्रवताथ दुर्गाम् ॥४०
सा चाथ पाशेन बबन्ध दुष्टं स चाप्यभूच्छिन्नकटः करीन्द्रः ।
करं प्रचिच्छेद चहस्तिनोऽग्रसचापिभूयो महिषोऽभिजातः॥४१
ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मृडानी स शीर्णमूलो न्यपतत्पृथिव्याम् ।
शक्तिं प्रचिक्षेप हुताशदत्तां सा कुण्ठिताग्रा न्यपतन्महर्षे ॥४२

उनकी चोटी पकड़ कर उन सब महासुरों को उछाल कर पर्वत की चोटी पर सिंह के खाने के लिये फेंक दिया था। वह जगत् की जन्म देने वाली अम्बिका अपनी वीणा का परिवादन करती हुई मदिरा का पान कर रही थी ॥३६॥ इसके अनन्तर देवी के द्वारा वे सब महाबली महान् असुर दोर्दण्ड से निर्धूत एवं विशीर्ण दर्प वाले हो गये थे। शस्त्र तथा अस्त्र से हीन होकर वे सभी गत प्राण हो गये थे। ऐसी दशा उन महासुरों की देख कर वह महिषासुर देवी पर तथा उन भूतगणों पर खुरों के अग्र भागों से प्रहार करता हुआ चढ़कर आया था। वह तुण्ड, पुच्छ और ओज से एवं निःश्वास की वायु से समस्त भूत समुदाय को प्रमथित करने लगा था। विषाणों से वह सबको मारता हुआ देवी के वाहन सिंह को भी मारने की इच्छा करने लगा था। इसके पश्चात् देवी को बड़ा भारी क्रोध आया था और फिर उस भगवती ने उस दैत्य को लीला ही से सहसा फेंक दिया था ॥३७-३९॥ इसके अनन्तर कोप से तीक्ष्ण सींगों वाले ने शीघ्र ही पर्वत और भूमि को विशीर्ण कर दिया था। तथा मेघों एवं सागरों को भी विध्वस्त करते हुए दुर्गा पर उसने आक्रमण किया था ॥४०॥ उस देवी ने पाश से उस दुष्ट को बाँध दिया था तो वह निकलकर वाला करीन्द्र हो गया था। अब उस हस्ती का कर (सूँड) कार ही तो वह फिर महिष हो गया था ॥४१॥ इसके अनन्तर भवानी ने उस पर शूल से प्रहार किया था तब वह शीर्ण शूल वाला होकर भूमि पर गिर गया था। हे महर्षे! हुताश मुख वाली शक्ति का प्रक्षेप किया था, वह भी कुण्ठित अग्रभाग वाली होकर गिर गई थी ॥४२॥

चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तु क्षिप्रं च वक्रत्वमुपागतं हि।
गदा समाविध्य धनेश्वरस्य क्षिप्ताऽऽशु भग्नान्यपतत्पृथिव्याम् ॥४३
जलेशपाशोऽपि महासुरेण विषाणतुण्डाग्रखुरप्रणुन्नः।
निरस्यताकोपिनया च मुक्तो दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गतः ॥४४
वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य मुक्तं सुसूक्ष्मत्वमुपाजगाम।
सत्यज्य सिंहं महिषासुरस्य दुर्गाधिरूढा सहसैव पृष्ठम् ॥४५

पृष्ठस्थितायां महिषासुरोऽपि पोप्लूयते वीर्यमदान्मृडान्याम् ।
साचापिपद्भ्यांमृदुकोमलाभ्यांममर्द तं क्लिन्नमिवाजिनं हि॥४६
स मृद्यमानो धरणीधराभो देव्या बली हीनबलो बभूव ।
ततोऽस्यशूलेनबिभेदकण्ठंतस्मात्पुमान्खड्गधरोविनिर्गतः ॥४७
निष्क्रान्तमात्रं हृदये पदा तमाहत्य सगृह्य कचेषु कोपात् ।
शिरः प्रचिच्छेद वरासिनाऽस्यहाहाकृतंदैत्यबलंतदाऽभूत् ॥४८
सचण्डमुण्डाः समयाः सताराः सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः ।
संताड्यमानाःप्रमथैर्भवान्याःपातालमेवाविविशुर्भयार्ताः॥४९

दानवों के समुदाय के हनन करने वाले हरि भगवान् का चक्र भी तुरन्त वक्रता को प्राप्त हो गया था। धनेश्वर की गदा को समाविद्ध कर फेंका तो वह भी शीघ्र ही भग्न हो गई थी और भूमि पर गिर गई थी ॥४३॥ वरुण का पाश भी महासुर के द्वारा विषाण-तुण्ड के अग्रभाग और खुरों से प्रणुन्न हो गया था। अत्यन्त कोप से युक्त होकर यमराज के दण्ड को छोड़ा गया था तो वह भी बहुत से टुकड़ों में होकर गिर गया था। सुरेन्द्र का वज्र भी इस दानव के शरीर में छोड़ा गया था तो वह भी सूक्ष्मता को प्राप्त हो गया था। उसी समय में समस्त महान् प्रभावशाली आयुधों की ऐसी कुण्ठित दशा देखकर दुर्गा देवी ने सिंह का त्याग कर सहसा उस महिषासुर की पीठ पर समारूढ़ हो गई थी ॥४४-४५॥ जब महिषासुर ने देखा कि देवी मेरी पीठ पर ही समारूढ़ हो गई है तो वीर्य के मद से वह बहुत ही पोप्लूयमान हुआ था किन्तु उस भगवती ने भी अपने मृदु तथा कोमल चरणों से उसका क्लिन्न अजिन की भाँति मर्दन किया था ॥४६॥ इस प्रकार से जब बहुत अधिक मर्दित हुआ तो धरणी धर के समान आभा वाला बली वह भी देवी के द्वारा हीन बल वाला हो गया था। इसके अनन्तर इसका कण्ठ शूल से भेद न किया गया था तो उससे एक खड्ग धारी पुमान निकला था। जबकि वह निकला ही था कि उसके हृदय में आहत करके उसके केश क्रोध से पकड़ लिये और खड्ग से उसका सिर काट दिया था। उसी समय में दैत्य सेना में हाहाकार छा गया था ॥४७-४८॥ फिर तो सब

यथा हि पार्वती कोशात्समुद्भूता हि कौशिकी ।
यथा हतवती शुम्भ निशुम्भंच महासुरम् ॥६
कस्य चेमौ सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ ।
एतन्मेतत्त्वतः सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥७
भगवंस्त्वत्प्रसादेनदेव्याश्चरितमुत्तमम् ।
श्रुत विस्तरतो ब्रूहि पार्वत्याः संभव मुने ॥८

देवर्षि नारद ने कहा—हे मुनीन्द्र पुलस्त्य ! अब आप भगवती का फिर जो जन्म हुआ था उसका वर्णन कीजिए हे ब्रह्म वित्तम ! मेरे हृदय मे इस सम्बन्ध मे बडा भारी कौतूहल उत्पन्न हो रहा है । अतएव इसको विस्तार पूर्वक ही कहिए ॥१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे मुने ! आप सुनिए, मैं इस देवी का पुनः जो जन्म हुआ था उस वर्णन करता हूँ जो कि शुम्भासुर के बध करने के लिये और लोकों के हित की कामना से ही हुआ था ॥२॥ हे तपोधन ! जो हिमवान् की पुत्री थी और भगवान् भव ने जिसके साथ विवाह किया था उसका उमा यह नाम था क्योंकि वह कोश से समुत्पन्न हुई थी अतएव कौशिकी भी नाम है ॥३॥ इस प्रकार से जन्म ग्रहण करके और पुन समस्त मुन भूतादि गण से परिवृत होती हुई विन्ध्याचल मे जाकर अपने श्रेष्ठ आयुधों से दैत्य शुम्भ और निशुम्भ का बध करेगी । श्री देवर्षि नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप ने तो मुझे बतलाया था कि वह प्रजापति दक्ष की पुत्री सती मृत्युगत होगई थी । फिर वह हिमवान् की पुत्री होकर प्रसूत हुई थी, इसका पूर्ण वर्णन मुझे करके श्रवण कराने के आप योग्य हैं ॥४-५॥ जिस तरह से यह पार्वती कोश से समुत्पन्न होकर कौशिकी हुई और जिस भाँति शुम्भ तथा निशुम्भ जैसे महान् असुरो का हनन किया था ॥६॥ ये दोनों जो शुम्भ और निशुम्भ नामों से विख्यात हुए ये किसके वीर पुत्र थे—इस पूरी कथा को मेरे सामने अब आप तात्विक रूप से वर्णन करने के योग्य हैं ॥७॥ हे मुने ! हे भगवन् ! आपकी कृपा एवं परम प्रसन्नता से मैंने भगवती जगदम्बा का अत्युत्तम चरित सुना है किन्तु अब पार्वती का चरित विस्तार पूर्वक बताइये कि इसका जन्म कैसे हुआ था ॥८॥

को बड़ाभारी भय हो गया था चण्ड, मुण्ड, तार, असि लोम आदि समस्त गण में अत्यन्त कातर होकर तथा भवानी के प्रमथों के द्वारा सताड़ित होकर पाताल लोक में प्रवेश कर गये थे ॥४६॥

देव्या जयं देवगणा विलोक्य स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे ।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां कात्यायनीं घोरमुखीं सुरूपाम् ॥५०
संस्तूयमाना सुरसिद्धसंघैः कात्यायनी सा हरपादमूले ।
भूयो भविष्याम्यमरार्थमेवमुक्त्वासुरांस्तान्प्रविवेश दुर्गा ॥५१

उस समय में देवी का जय देखकर समस्त देवगण हे महर्षे ! देवी की स्तुति करने लगे थे जो भवानी नारायणी—सम्पूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा स्वरूपा, घोरमुख वाली, सुन्दर रूप वाली कात्यायनी थी ॥५०॥ इस प्रकार से सुर और सिद्धों के संघ द्वारा संस्तूयमान होती हुई वह कात्यायनी दुर्गा हरके पाद-मूल में यह कहकर प्रवेश कर गई थी कि मैं पुनः देवगण के कार्य के लिए होऊँगी और उसने सब सुरों को वहीं पर ही छोड़ दिया था ॥५१॥

२१—उमासंम्भव वर्णन

पुलस्त्य कथ्यतां तावद्भूयो देव्याः समुद्भवः ।
महत्कौतूहलं मेऽद्य विस्तराद्ब्रह्मवित्तम ॥१
श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्या. संभवं मुने ।
शुम्भासुरवधार्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥२
या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधन ।
उमा नाम्ना च तस्याः सा कोशाज्जाता तु कौशिकी ॥३
संभूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृता ।
शुम्भं चैव निशुम्भं च वधिष्यति वरायुधैः ॥४
ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता मृता दक्षात्मजा सती ।
सजाता हिमवत्पुत्रीत्येव मे वक्तुमर्हसि ॥५

मथा हि पार्वती कोशात्समुद्भूता हि कौशिकी ।
यथा हतवती शुम्भं निशुम्भंच महासुरम् ॥६
वस्य चेमौ सुतौ वीरौ ख्यातौ शुम्भनिशुम्भकौ ।
एतन्मेतत्त्वतः सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥७
भगवस्त्वत्प्रसादेनदेव्याश्चरितमुत्तमम् ।
श्रुत विस्तरतो ब्रूहि पार्वत्याः संभव मुने ॥८

देवर्षि नारद ने कहा—हे मुनीन्द्र पुलस्त्य ! अब आप भगवती का फिर जो जन्म हुआ था उसका वर्णन कीजिए हे श्रेष्ठ वित्तम ! मेरे हृदय मे इस सम्बन्ध मे बड़ा भारी कौतूहल उत्पन्न हो रहा है । अतएव इसको विस्तार पूर्वक ही कहिए ॥१॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे मुने ! आप सुनिए, मैं इस देवी का पुनः जो जन्म हुआ था उस वर्णन करता हूँ जो कि शुम्भासुर के वध करने के लिये और लोकों के हित की कामना से ही हुआ था ॥२॥ हे तपोधन ! जो हिमवान् की पुत्री थी और भगवान् भव ने जिसके साथ विवाह किया था उसका उमा यह नाम था क्योंकि वह कोश से समुत्पन्न हुई थी अतएव कौशिकी भी नाम है ॥३॥ इस प्रकार से जन्म ग्रहण करके और पुन समस्त भुत भूतादि गण से परिवृत होती हुई विन्ध्याचल मे जाकर अपने श्रेष्ठ आयुधो से दैत्य शुम्भ और निशुम्भ का वध करेगी । श्री देवर्षि नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप ने तो मुझे बतलाया था कि वह प्रजापति दक्ष की पुत्री सती मृत्युगत होगई थी । फिर वह हिमवान् की पुत्री होकर प्रसूत हुई थी, इसका पूर्ण वर्णन मुझे करके श्रवण कराने के आप योग्य हैं ॥४-५॥ जिस तरह से यह पार्वती कोश से समुत्पन्न होकर कौशिकी हुई और जिस भाँति शुम्भ तथा निशुम्भ जैसे महान् असुरों का हनन किया था ॥६॥ ये दोनो जो शुम्भ और निशुम्भ नामों से विख्यात हुए ये किसके वीर पुत्र थे–इस पूरी कथा को मेरे सामने अब आप तात्त्विक रूप से वर्णन करने के योग्य हैं ॥७॥ हे मुने ! हे भगवन् ! आपकी कृपा एवं परम प्रसन्नता से मैंने भगवती जगदम्बा का अत्युत्तम चरित सुना है किन्तु अब पार्वती का चरित विस्तार पूर्वक बताइये कि इसका जन्म कैसे हुआ था ॥८॥

दिष्ट्या सकथयिष्यामि पार्वत्याः संभवं मुने ।
शृणुष्वावहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्ति च शाश्वतीम् ॥९
रुद्रः सत्या प्रनष्टाया ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
निराश्रमत्वमापन्नस्तपस्तप्तु ं व्यवस्थितः ॥१०
स चासीद्देवसेनानीर्दैत्यदर्प्पविनाशनः ।
शिव रूपत्वमास्थाय सैनापत्य समुत्सृजत् ॥११
ततो विनाकृता देवाः सेनानाथेन शम्भुना ।
दानवेन्द्रेण विक्रम्य निशुम्भेन पराजिताः ॥१२
ततो जग्मुः सुरेशान द्रष्टु ं चक्रगदाधरम् ।
श्वेतद्वीपे महाहस प्रपन्नाः शरण हरिम् ॥१३
तानागतान्सुरान्दृष्ट्वा तत' शक्रपुरोगमान् ।
विहस्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥१४

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—हे मुने ! बहुत ही आनन्द का विषय है, अब मैं पार्वती का जन्म तुम्हें बतलाता हूँ । आप परम सावधान होकर सुनो । शाश्वती भगवान् स्कन्द की उत्पत्ति भी बतलाता हूँ ॥९॥ भगवान् रुद्र जब सती का शरीर नष्ट हो गया था तो वह ब्रह्मचर्य व्रत में संस्थित होकर रहने लगे थे तथा निराश्रयत्व को प्राप्त हो गये थे और उतने तपश्चर्या करने की व्यवस्था कर ली थी ॥१०॥ वह देवगण के सेनानी थे और दैत्यों के सर्वदा दर्पका नाश किया करते थे । फिर उनने शिव रूपता धारण कर वह सेनापति का जो पद सँभाल रखा था पूर्ण रूप से त्याग ही दिया क्योंकि मन में वैराग्य हो गया था ॥११॥ इसके अनन्तर ऐसा हुआ था कि समस्त देवगण सेना के स्वामी शम्भु ने विना सेनानी वाले बना दिये थे । उसी समय में दानवेन्द्र निशुम्भ ने आक्रमण करके समस्त देवता पराजित कर दिये थे ॥१२॥ इसके पश्चात् सब देवता सुरों के स्वामी चक्र गदा धारी प्रभु के समीप में पहुँचे थे । श्वेत द्वीप में महान् परम हंस भगवान् श्री हरि की शरणागति सब ने ग्रहण की थी ॥१३॥ उन समागत, देवगणों को देखकर जिनमें इन्द्र नायक थे

भगवान् पुरुषोत्तम हम कर कहने लगे थे। उस समय उनकी वाणी मेघ के समान गम्भीर थी ॥१४॥

किं जिता. स्य सुरेन्द्रेण निशुम्भेन दुरात्मना।
येन सर्वसमेत्यैव मम पार्श्वमुपागता ॥१५
तद्युष्माक हितार्थाय यद्वदामि सुरोत्तमाः।
तत्कुरुध्व जयो यद्वि समाश्रित्य भवेत्तन ॥१६
य एते पितरो देवास्त्वग्निष्वात्तेति विश्रुता.।
अमीषा मानसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवता ॥१७
तामाराध्य महा तिथ्या श्रद्धया परयाऽमराः।
प्रार्थयध्व सतीमेना प्रालेयाद्रिमहार्थतः ॥१८
तस्या सा रूपसयुक्ता भविष्यति तपस्विनी।
दक्ष कोपाद्यया मुक्त मलवज्जीवित प्रियम् ॥१९
सा शकराम्मतेजोऽश जनयिष्यति य सुतम्।
स हनिष्यति दैत्येन्द्र शुम्भ च सपदानुगम् ॥२०
तस्माद्गच्छत पुण्य तत्केत्क्षेत्र महाफलम्।
तत्र पृथूदके तीर्थे पुज्यन्ता पितरोऽव्ययाः ॥२१

भगवान् ने कहा—क्या असुरेन्द्र निशुम्भ ने आप सबको जीत लिया है। यह तो बहुत ही दुष्ट है? इसीलिये शायद आप लोग सब इकट्ठे होकर इस समय मेरे पास आये हैं ॥१५॥ हे सुरोत्तमो! अब मैं आपके हित के लिये जो भी कुछ बतलाता हूँ उसे आप करिये। उसी प्रकार से समाश्रय करने पर आपकी जीत हो जायगी ॥१६॥ जो ये पितर गण हैं हे देवगण! जो कि अग्निष्वात्ता—इस नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी एक मानसी कन्या मेना नाम से प्रसिद्ध है। वह देव स्वरूपिणी है ॥१७॥ उसका आप लोग महातिथि में परम श्रद्धा से समाराधन करो। इस सती से आप लोग प्रार्थना करो कि प्रालेयाद्रि के महान् अर्थ का वह सम्पादन करे ॥१८॥ उसी में वह परम रूप लावण्य से समन्वित होकर तपस्विनी समुत्पन्न होगी। दक्ष पर कोप से जिसने अपना प्रिय जीवन मल की भाँति त्याग दिया था ॥१९॥ वही देवी शङ्कर से सतेज अश उत्पन्न

पुत्र समुत्पन्न करेंगे । यही शम्भु पुत्र समदानुग उस शुम्भ दैत्य का हनन करेगा ॥२०॥ इसलिये अब आप सब महान् फल वाले परम पुण्यमय कुरुक्षेत्र में चले जाओ । उस पृथूदक तीर्थ में उन अविनाशी पितरों की समर्चा करो ॥२१॥

महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम् ।
भवनाथात्मजा सर्वे इच्छध्व क्रियतामिति ॥२२
इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पप्रच्छु परमेश्वरम् ॥२३
किं तत्कुरुक्षेत्रमिति यत्र पुण्यं पृथूदकम् ।
उद्भ व तस्य तीर्थस्य भगवान्प्रब्रवीतु नः ॥२४
केयं प्रोक्ता महापुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः ।
यस्या हि पितरो दिव्या अद्भिः पूज्याः प्रयत्नतः ॥२५
ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभार्दनः ।
कुरुक्षेत्रोद्भव पुण्यं प्रोक्तवास्तां तिथीमपि ॥२६
सोमवंशोद्भवो राजा ऋक्षो नाम महाबलः ।
कृतस्यादौ समभवद्दक्षात्संवरणोऽभवत् ॥२७
स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिषेचितः ।
बाल्येऽपि धर्मनिरतो मद्भक्तश्च सदाऽभवत् ॥२८

महातिथि में महापुण्य में यदि शत्रु का पराभव आप चाहते हैं तो भवनाथ के पुत्र के द्वारा ही पूर्ण होगा । ऐसा ही आप करें ॥२२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस प्रकार से वासुदेव के द्वारा कहने पर शक्र आदि समस्त देवगण हाथ जोड़कर पुनः प्रभु से पूछने लगे थे ॥२३॥ देवगण ने कहा—हे भगवन् ! वह कुरुक्षेत्र क्या है जहाँ पर परम पुण्यमय पृथूदक है ? आप उस तीर्थ की उत्पत्ति कृपाकर हम सबको बतला दीजिए ॥२४॥ यह कौन सी महापुण्य मयी तिथियों में परम उत्तम तिथि होती है ? जिसमें दिव्य पितर गण प्रयत्न पूर्वक पूजा के योग्य होते हैं ॥२५॥ इसके अनन्तर कैटभ के अर्दन करने वाले भगवान् मुरारि सुरों के इन वचनों को सुनकर कुरुक्षेत्र में उत्पन्न उस पुण्यमय तीर्थ तथा

उस महातिथि को कहने लगे थे ॥२६॥ श्रीभगवान् ने कहा—पहिले एक सोम वंश में समुत्पन्न ऋक्ष नाम वाला महान् बलशाली राजा हुआ था। यह कृतयुग के आदि में ही हुआ था और ऋक्ष से संवरण था ॥२७॥ उसके पिता के द्वारा वह बाल्य काल में ही अपने राज्यासन पर अभिषिक्त कर दिया गया था किन्तु उस बचपन की दशा में भी वह सदा धर्म में निरत रहता था तथा सदा मेरा परम भक्त हुआ था ॥२८॥

पुरोहितस्तु तस्यासीद्वसिष्ठो वरुणात्मजः ।
स तमध्यापयामास साङ्गान्वेदानुदारधीः ॥२६
ततो जगाम चारण्ये त्वनध्याये नृपात्मजः ।
सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठं तपसा निधिम् ॥३०
ततो मृगस्य व्याक्षेपादेकाकी वाजिना वनम् ।
वैभ्राज स जगामाथ मनोन्मादेन तन्मुने ॥३१
ततस्तु कौतुकाविष्टः सर्वर्तु कुसुमे वने ।
अवितृप्तः सुगन्धस्य समन्ताद्व्यचरद्वनम् ॥३२
सवनान्तं ददर्शाथ फुल्लकोकनदावृतम् ।
कह्लारपद्मकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि ॥
तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽमरकन्यकाः ।
तासां मध्ये ददर्शाथ कन्यां संवरणोऽधिकाम् ॥३४
दर्शनादेव स नृपः काममार्गणपीडितः ।
तथा सा तं समीक्ष्यैव कामबाणातुराऽभवत् ॥३५

उस राजा का पुरोहित वरुण का पुत्र वसिष्ठ था। वही उस बाल नृप को साङ्ग वेदों का अध्यापन कार्य किया करते थे और वह पुरोहित बहुत ही उदार बुद्धि वाले थे ॥२६॥ एक बार जब कि अनध्याय का दिन था वह नृपात्मज अरण्य में चला गया था अपने समस्त कार्यों का भार तपोनिष्ठ वसिष्ठ पर छोड़ गया था ॥३०॥ वहीं पर हे मुने ! मृग के व्याक्षेप से अश्व के द्वारा वैभ्राज वन में अकेला मनोन्माद से पहुँच गया था ॥३१॥ इसके अनन्तर वहाँ पर कौतुक में समाविष्ट हो गया था। वह वन-ऐसा अद्भुत था कि उसमें हर समय में सभी ऋतुएं विद्यमान

रहती थी। वहाँ की परमोत्तम सुगन्ध से वह तृप्त नहीं हुआ था और वहीं पर चारों ओर विचरण करने लगा था ॥३२॥ उसने उस वनान्त को भली भाँति देखा था जो विकसित कोकनदों से समावृत था। उसमें मन्दार-कुमुद-पद्म-कमल-इन्दीवर आदि विविध पुष्पों की गन्ध भरी हुई थी ॥३३॥ वहाँ पर सर्वदा अमर कन्याएँ अप्सरागण क्रीड़ा किया करती थी। उन्हीं के मध्य में एक सर्वगुणाधिक कन्या उसने देखी थी ॥३४॥ उसको देखते ही वह नृप कामदेव के बाणों से सम्मोहित हो गया था। इसी भाँति वह कन्या भी उस नृप को देखकर काम बाण से आतुर हो गई थी ॥३५॥

उभौ तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणैः ।
राजा चलासनो भूम्या निपपात तुरङ्गमात् ॥३६
तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः ।
सिषिचुर्वारिणा तेन लब्धसंज्ञोऽभवत्क्षणात् ॥३७
सा चाप्सरोभिरुत्पाट्य नीता पितृकुलं निजम् ।
ताभिराश्वासिता चापि मधुरैर्वचनाम्बुभिः ॥३८
सा चाप्यरुह्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ।
गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः ॥३९
यदा प्रभृति सा दृष्टा चक्षुषा तपती गिरौ ।
तदा प्रभृति नाश्नाति दिवा स्वपिति वा निशि ॥४०
ततः सर्वविदव्यग्रो विदित्वा वरुणात्मजः ।
तपतीतापितं वीरं पार्थिवं तपसां निधिः ॥४१
समुत्पत्य महायोगी गगनं रविमण्डलम् ।
विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम् ॥४२

वे दोनों ही परम पीड़ित हो गये थे और काम के बाणों से समाविद्ध होकर मोह को प्राप्त हो गये थे। राजा चलासन होकर, एकदम भूमि पर ही अश्व से गिर गया था ॥३६॥ महान् आत्मा वाले कामरूपी गन्धर्व उसके समीप से उसको संज्ञा प्राप्त हुई थी और उसी समय में वह होश में आगया था ॥३७॥ और वह जो अप्सरा थी उसको अप्सराओं

ने उठाकर अपने पिता के कुल के समीप मे प्राप्त कर दिया था और वहाँ पर वह श्रुति मधुर वचनों के द्वारा जो एक परम शीतल जल के समान थे भली भाँति आश्वासित की गई थी ॥३८॥ वह भी अपने अश्व पर समारूढ होकर पुरोत्तम प्रतिष्ठान को चला गया था जैसे देवगण काम से ही चरण करने वाले मेरुपर्वत के शिखर पर चले जाया करते हैं ॥३६॥ जब से लेकर वह गिरिवर मे तपश्चर्या करती हुई वह नेत्र से देखी थी तब तक दिन मे भोजन नहीं और रात मे शयन का अभाव होगया था ॥४०॥ इसके अनन्तर सर्ववेत्ता वरुणात्मज अभ्यग्र जानकर तपती तापित वीर पार्थिव का ज्ञान प्राप्त करके वह तपोनिधि महान् योगी ऊपर उडकर रवि मण्डल गयन मे प्रविष्ट होगया था और वहाँ रथ मे स्थित विभानु सूर्य का दर्शन किया था ॥४१-४२॥

तं दृष्ट्वा भास्करं देवं ननाम द्विजसत्तमः ।
प्रतिप्रणमितश्चासौ भास्करेणाप्यसावृषिः ॥४३
ज्वलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः ।
शोभते वारुणिः श्रीमान्द्वितीय इव भास्करः ॥४४
ततः सपूजितोऽर्घाद्यैर्भास्करेण तपोधनः ।
पृष्टश्चागमने हेतुं प्रत्युवाच दिवाकरम् ॥४५
समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वा महाद्युते ।
सुता सवरणस्यार्थे त्वं च तां दातुमर्हसि ॥४६
ततो वशिष्ठाय दिवाकरेण निवेदिता सा तपती तनूजा ।
गृहागताय द्विजपुंगवाय राज्ञोऽर्थतः सवरणस्य चैव ॥४७
सावित्रमासाद्य वचो वशिष्ठः स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम ।
सा चापि संस्मृत्य नृपात्मजं तं कृताञ्जलिर्वारुणिमाह देवी ॥४८
अहाऽम्मयागेऽहमुपेत्य यो हि सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः ।
दृष्टो ह्यरण्येऽमरगर्भतुल्यो नृपात्मजो लक्षणतोऽपि जाने ॥४६

वहाँ उस द्विजों मे परम श्रेष्ठ ने भुवन भास्कर सूर्य का दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया था और प्रणमित होकर उस रविदेव ने भी उस ऋषिवर को प्रणाम किया था ॥४३॥ जाज्वल्यमान जटाओं के कलाप

से समन्वित यह दिवाकर के समीप मे जाकर वारुणि दूसरे भास्कर के समान ही शोभा को प्राप्त हो रहे थे ॥४४॥ इसके अनन्तर सूर्य्य के द्वारा पूजन आदि से तपोनिधि का समुचित सत्कार किया गया था और फिर दिवाकर देव ने वहाँ आगमन का उनसे कारण पूछा था। इस पर वह सूर्य से बोले ॥४५॥ हे देवेश ! आप तो अतीव महान् द्युति से समन्वित हैं। मैं आप से एक याचना करने के लिये ही उपस्थित हुआ हूँ। आप उस सुता को सवरण के लिए देने मे समर्थ होते हैं।॥४६॥ इस के पश्चात् दिवाकर ने वह तपती तनूजा वसिष्ठ के लिए निवेदित की थी। गृह मे आये हुए उस द्विज श्रेष्ठ के लिये राजा सवरण के अर्थ से सविता के वचन को प्राप्त कर वसिष्ठ पुन अपने परम पुण्य आश्रय मे आगया था। और वह भी देवी उस नृप के के पुत्र का स्मरण करके हाथ जोड़ कर उस वारुणि से बोली ॥४८॥ तपती ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैंने खेद को प्राप्त करके अपनी परिचारिका अप्स-राओ के साथ जो देव के समान नृपात्मज अरण्य मे देखा था उसे मैं लक्षणो से भी भली भाति जानती हूँ ॥४६॥

पादौ शुभौ चक्रगदासिचिह्नौ जङ्घे तथोरू करिहस्ततुल्यौ।
कटिर्यथा केसरिणस्तथैव क्षाम च मध्यत्रिवलीनिवद्धम् ॥५०
ग्रीवास्यशङ्खाकृतिमादधाति भुजौ च पीनौकठिनौसुदीर्घौ।
हस्तौ यथा पद्मदलोद्भवश्चाब्जाकृतिस्तस्यशिरोविभाति॥५१
नीलाश्च केशाःकुटिलाश्चतस्य कर्णौसमासौ सुसमा च नासा।
दीर्घाश्चतस्याङ्गुलयःसुपर्वा पद्भ्याकराभ्यादशनाश्चशुभ्रा॥५२
समुन्नत. षड्भिरदारवीर्यस्त्रिभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्ब.।
रक्तस्तथा सप्तसु राजपुत्रः कृष्णश्चतुर्भिस्त्रिभिरानतोऽपि॥५३
द्वाभ्या च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः सन्दृश्येवपद्मानिदशैवचास्यः।
वृतः स भर्त्ता भगवन्हि पूर्वं त राजपुत्र परमं विचिन्त्य ॥५४
ददस्व मा नाथ तपस्विमुख्य गुणोप पन्नाय समीहिताय।
स्नेहारप्रकामप्रवदन्तिसन्तोदातु तथाऽन्यस्यविमोक्षमस्त्वम्॥५५

इत्येवमुक्तः सवि तुरच पुत्र्या ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव ।
जाने तमेवर्षमुतं सकामं मुदा युतो वाक्यमिदं जगाद ॥५६

उसके चरण परम शुभ थे जिनमें गदा और खंग के चिह्न उपस्थित थे । उसकी जाँघें और ऊरू भी हाथी की सूँड़ के समान सुन्दर थे । उसकी कटि तो बिल्कुल केसरी ही की कटि के ही समान थी । उसका मध्यभाग अतिक्षाम एवं त्रिवली से निबद्ध था । उसकी ग्रीवा तो शंख के आकार के समान ही परम सुन्दर थी । उसकी दोनों भुजाएँ पुष्ट तथा कठिन एवं अत्यन्त सुदृढ़ थीं । उसके दोनों हाथ पद्म दल से समुद्गत चिह्न वाले थे और उसका शिर छत्र के आकार के समान परम सुशोभित हो रहा था । उसके नीले वर्ण वाले कुटिल आकृति से युक्त केश थे एवं दोनों कान सम तथा सुन्दर नासिका थी । उसकी अँगुलियाँ दीर्घ तथा सुन्दर पर्वों वाली थीं । उसके हाथ और चरण सभी सुन्दर थे तथा दशन बहुत ही शुभ्र थे । वह उदार वीर्य्य वाला महापुरुष छैं अंगों से समुन्नत—तीन से गम्भीर और तीनों में प्रलम्ब था । सातों में रक्त वह राजपुत्र चारों से कृष्ण तथा तीन से समानत था । दो अंगों से शुक्ल-चारों से सुरभि और दश तो इसके पद्म ही थे ! हे भगवन् ! मैंने तो उस राजपुत्र को परम सुलक्षण एवं सुन्दर विचार कर अपना स्वामी वरण कर लिया है ॥५०-५४॥ हे नाथ ! आप उस गुणगण से समन्वित और समीहित के लिये ही मुझे प्रदान करें आप ही तपस्वियों में प्रमुख हैं । मन्य [पुरुष स्नेह से यही भली भाँति कहा करते हैं । आप अन्य को भी देने की क्षमता रखते हैं ॥५५॥ देवदेव ने कहा-इस प्रकार से सविता की पुत्री के द्वारा कहे जाने पर वह ऋषि ध्यान में तत्पर हो गये थे । मैं उस ऋषि पुत्र को भली भाँति जानता हूँ कि वह सकाम है—यह वचन ऋषि ने बड़ी प्रसन्नता के सहित उस समय में कहे थे ॥५६॥

स एष पुत्रि क्षिति पारमजस्त्वया दृष्टः पुरा कामयसे
स एष चायाति ममाश्रमं

अथाजगामैव नृपस्य पुत्रस्तदाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य ।
दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य मूर्ध्ना स्थिता त्वपश्यत्तपतीं नरेन्द्रः॥५८
दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां संदृष्टपूर्वेयमिति व्यचिन्तयत् ।
पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र स वारुणिःप्राहनराधिपेन्द्रम् ॥५९
इयं विवस्वद्दुहिता नरेन्द्र नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम् ।
मयात्तवार्थाय दिवाकरोऽर्थितःप्रादान्मयात्वाश्रममापितेयम्॥६०
तस्मात्समुत्तिष्ठ नरेन्द्र देव्याः पाणिं तपत्या विधिवद्गृहाण ।
इत्येवमुक्तो नृपतिः प्रहृष्टो जग्राह पाणिं विधिवत्तपत्याः ॥६१
सा च पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं सूर्यात्मजा शक्रसमप्रभावम् ।
रेमे च तेनैव गृहोत्तमेषु यथा महेन्द्रेण पुलोमजादिवि ॥६२

पहिले हे पुत्रि ! वही राजपुत्र तुमने देखा है जिसको आज तुम चाहती हो। वह ऋक्षात्मज से वरण नाम वाला अभी मेरे आश्रम में आरहा है ॥५७॥ इसके अनन्तर वह नृप का पुत्र उसी समय में ब्राह्मणों में श्रेष्ठ के उसी आश्रम में आगया था। वहाँ आकर उसने वसिष्ठ के दर्शन किये थे तथा मस्तक के बलपर उन्हें सादर प्रणाम किया था और उस नरेन्द्र ने वहीं पर स्थित उस तपती को भी देखा था ॥५८॥ वहाँ पर पद्म के समान विशाल एवं अतीव सुन्दर नेत्रों वाली को देखकर उसने मनमें विचार किया था कि यह वही है जिसको मैंने पहिले देखा था। फिर उसने पूछा था—हे द्विजेन्द्र ! यह ललना कौन है ? तब उस वारुणि ने नृपेन्द्र से कहा था ॥५९॥ हे नरेन्द्र ! यह विवस्वान् की पुत्री है और इसका नाम पृथिवी में तपती ऐसा प्रसिद्ध है। मैंने इसको इस समय में अपने आप आपके लिए भगवान् सूर्य देव से प्रार्थना की थी। उन्होंने मुझे प्रदान करदिया है और यह इस समय में आश्रम में आगई है ॥६०॥ इसलिये हे नरेन्द्र ! आप अब उठिए और इस तपती देवी का विधिपूर्वक पाणि ग्रहण कीजिए। इस प्रकार से जब उस राजा से कहा गया तो उस नृपेन्द्र ने परम प्रसन्न होकर उस तपती का विधान पूर्वक पाणिग्रहण कर लिया था ॥६१॥ उस सूर्य देव की पुत्री ने इन्द्र के समान रूप-लावण्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्न

ारम सुन्दर मनोभिराम अपना स्वामी प्राप्तकर फिर उस देवी ने उसी के साथ अपने उत्तम गृहों में दिवलोक में पुलोमजा जैसे महेन्द्र के साथ प्रेमानन्द का अनुभव लेती है । रमण किया था ॥६२॥

२२—सरोवर महात्म्य वर्णन

तस्यां तपस्यां नर सत्तमेन जातः सुतः पार्थिवलक्षणन्तु ।
॥ जात कर्मादिभिरेवसंस्कृतोह्यवर्धताज्येनहुतोयथाऽग्निः ॥१
कृतं च चूडाकरणं तु देवा विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन ।
नवाब्दिकस्य व्रतबन्धन चवेदे च शास्त्रेविधिपारगाऽभूत् ॥२
ततश्चतुः षड्भिरपीह वर्षैः सर्वज्ञतामभ्यगमत्ततोऽसौ ।
ख्यातः पृथिव्यापुरुषोत्तमोऽसौनाम्नाकुरुःसवरणस्यपुत्रः ॥३
ततो नरपतिर्दृष्ट्वा पुत्र तं षोडशाब्दिकम् ।
दारक्रियार्थमकरोद्यत्नं शुभकुले ततः ॥४
सौदाम्नी च सुदम्नस्तु सुता रूपाधिका नृपः ।
कुरोरर्थाय वृतवान्स प्रादात्कुरवेऽपि ताम् ॥५
स तां नृपसुतां लब्ध्वा स्वधर्मानविरोधयन् ।
रेमे तन्व्या सह तया पौलोम्या मघवानिव ॥६
ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारधरं बली ।
विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यषेचयत् ॥७

देवदेव ने कहा—उस तपती में उस नरश्रेष्ठ के द्वारा एक पार्थिव के लक्षणों से सुसम्पन्न पुत्र समुत्पन्न हुआ था उसका जात कर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किया गया था और फिर घृत की आहुतियों से अग्नि की भाँति बढ़कर बड़ा होगया था ॥१॥ हे देवगण ! फिर वरुणात्मज विप्र के द्वारा उसका चूड़ाकरण सस्कार किया गया था । जब वह नौ वर्ष का होगया तो उसका व्रत बन्धन किया गया था और फिर वह वेद में तथा शास्त्र में पारगामी विद्वान् हो गया था ॥२॥ फिर वह

चार छै वर्षों में ही सर्वज्ञता को प्राप्त होगया। इसके अनन्तर वह भूमण्डल में सवरण का कुरु इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था ॥३॥ इसके अनन्तर उस नरपति ने उस अपने पुत्र को सोलह वर्ष का देखकर किसी शुभ कुल में उसकी दारक्रिया अर्थात् पत्नी प्राप्त करने का कार्य करने में यत्न किया था ॥४॥ उस राजा ने सुदामा की सौदामनी नाम वाली कन्या को जो रूप लावण्य में परम सुन्दरी थी कुरु के लिये वरण किया था और उसके पिता ने उस अपनी पुत्री को कुरु को प्रदान भी कर दिया था ॥५॥ वह कुरु उस नृप की सुता को प्राप्त कर अपने धर्म का विरोध न करते हुए उसने उस तन्वी के साथ रमणानन्द प्राप्त किया था जिस प्रकार से इन्द्रदेव अपनी पौलोमी इन्द्राणी के साथ रमण किया करते हैं ॥६॥ इसके अनन्तर उस बलवान् नृप ने अपने पुत्र को राज्य शासन के भार को ग्रहण करने में समर्थ देखकर फिर विधान पूर्वक उसे यौवराज्य देकर अभिषिक्त कर दिया था अर्थात् अपने राज्य शासन का भार उसे सौंप दिया था ॥७॥

ततो राज्येऽभिषिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे ।
स पालयामास मही पुत्रवच्च प्रजाः स्वयम् ॥८
स एव क्षेत्रपालोऽभूत्पशुपाल स एव हि ।
स एव राजपालश्च अजापालो महाबलः ॥९
ततोऽस्य बुद्धिरुत्पन्ना ह्यस्मिँल्लोके गरीयसी ।
यावत्कीर्तिः सुसस्था हि तावद्वासस्तया सह ॥१०
अस्त्वेव नृपतिश्रेष्ठो याथातथ्यममन्यत ।
विचचार मही सर्वां कीर्त्यर्थं तु नराधिप ॥११
ततो द्वैतवन नाम पुण्य लोकचरो वशी ।
तदाऽसावतिसतुष्टो विवेशाभ्यन्तर ततः ॥१२
तत्र देवी ददर्शाथ पुण्या पापविमोचिनीम् ।
प्लक्षजा ब्रह्मणः पुत्री हरिजिह्वा सरस्वतीम् ॥१३
सुदर्शनस्य जननी ह्रदं कृत्वा सुविस्तृतम् ।
तस्यास्तज्जलमासाद्य स्नात्वाप्रीतोऽभवन्नृपः ॥१४

फिर पिता के द्वारा राज्यासन पर अभिषिक्त कुरु ने अपने पुत्र की भाँति प्रजा तथा मही का पालन-पोषण किया था ॥८॥ वह ही क्षेत्रपाल होगया था और पशुपाल तथा राजपाल तथा अजापाल होगया क्योंकि वह महान् बलवान् था ॥६॥ फिर उसको यह बुद्धि समुत्पन्न हुई थी कि इस लोक में जब तक बहुत ऊँची कीर्ति सुसंस्थित रहे तभी तक उसके साथ निवास करना उचित है ॥१०॥ ऐसा ही हो-इस प्रकार से इसकी यथार्थता को उसने स्वीकार कर लिया था और फिर उस नराधिप ने अपनी कीर्ति का विस्तार करने के लिए सम्पूर्ण भूमि पर विचरण करना आरम्भ कर दिया था ॥११॥ इसके पश्चात् वह वशी लोक में विचरण करता हुआ एक द्वैत वन नाम वाले परम पुण्यमय स्थल में पहुँचा था। वहाँ पर यह उस समय में अत्यधिक प्रसन्न हुआ और फिर उसके भीतर उसने प्रवेश किया था ॥१२॥ वहाँ पापों का विमोचन करने वाली अतिशय पुण्यमयी देवी का दर्शन किया था जो ब्रह्मा की द्वजा हरिजिह्वा पुत्री सरस्वती थी ॥१३॥ वह सुदर्शन की जननी थी। वहाँ एक सुविस्तृतहृद की रचना कर उसने जल को प्राप्त कर नृप उसमें स्नान करके परम प्रसन्न हुआ था ॥१४॥

समाजगाम च पुनर्ब्रह्मणो वेदिमुत्तराम् ।
स्यमन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुत्तमम् ॥१५
आसमन्ताद्योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः ।
किमन्या वेदयो देव ब्रिह्मणः पुरुषोत्तम ॥१६
येनोत्तरतया वेदी गदिता सर्वपञ्चके ।
वेदयो लोकनाथस्य पञ्चधर्मस्य सर्वतः ॥१७
यासु चेष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शंभुना ।
प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गया शिरः ॥१८
विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी ।
प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता ॥१९
स्यमन्तपञ्चके प्रोक्ता वेदिरेवोत्तरा तथा ।
तदमन्यत राजर्षिरिदं क्षेत्रं महाफलम् ॥२०

करिष्यामि कृपिष्यामि सर्वान्कामान्यथेप्सितम् ।
इति सचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम् ॥२१

इसके अनन्तर फिर वह ब्रह्मा की उत्तरा वेदी आगया था जो स्यमन्तक पञ्चक नाम वाला अतीव उत्तम धर्म स्थान था ॥१५॥ वहाँ चारों ओर पाँच पाच योजन तक सभी तरफ धर्म स्थान का पुण्य प्रभाव फैला हुआ था। देवगण ने कहा—हे पुरुषोत्तम ! ये अन्य क्या वेदियाँ थी जो कि वहाँ पर ब्रह्मा की थीं ? ॥१६॥ आपने अभी सर्व पञ्चक में एक उत्तरा वेदी का वर्णन किया था। हरि ने कहा—लोकनाथ की सभी ओर पञ्च धर्म की वेदियाँ हैं ॥१७॥ जिनमें सुरशलोक नाथ शम्भु ने अभीष्ट किया है। प्रयाग मध्यमा वेदी है और पूर्वा वेदी गया शिर है ॥१८॥ विरजा दक्षिणा वेदी है जो कि अनन्त फलों के दान करने वाली है। पुष्करा वेदी पश्चिम में है जो तीन कुण्डों से विभूषित है ॥१९॥ स्यमन्तक पञ्चक मे उत्तरावेदी बतलाई गई है। राजर्षि ने उस क्षेत्र को ही महान् फल वाला माना था ॥२०॥ अपने समस्त कामनाओं को पूर्ण करूँगा और अवश्य ही कर उसने अपने मन में चिन्तन करके फिर अपने उत्तम स्यन्द कर दिया था ॥२१॥

कृषतेऽन्यरसमन्ताच्च सप्त क्रोशामन्हीपतिः ।
ततोऽहमग्र व गत्वा कुरो किमिदमित्यथ ॥२७
तदाऽष्टाङ्ग महाधर्म समास्यात नृपेण हि ।
ततो मयाऽस्य गदित नृप बीज क्व तिष्ठति ॥२८

उस पार्थिवों में परम श्रेष्ठ ने यहाँ पर उस स्थान को अपनी कीर्ति के लिए अनुपम स्थल कर लिया था। फिर उसने सुवर्ण का हल बनाकर रुद्र को वृष बनाया था ॥२२॥ यमराज को महिष जो बोटा था और स्वयं कर्षण कर्म करने के लिए उद्यत होगया था। कर्षण करने वाले उस नर श्रेष्ठ के समीप में स्वयं इन्द्रदेव आये थे ॥२३॥ इन्द्र ने कहा था—हे राजन् ! आप यहाँ पर यह करना चाहते हैं। तब उस राजा ने सुरश्रेष्ठ इन्द्र से कहा था कि तप-सत्य-क्षमा-दया-शौच-दान-योग और ब्रह्मचर्य इनकी समुत्पत्ति के लिये कर्षण कर रहा हू। उससे फिर इन्द्रदेव ने कहा—हे नरेश्वर ! इनका बीज कहा से प्राप्त किया है ॥२४-२५॥ मेरा इनका बीज आपको प्राप्त होगया है—इस तरह कहते हुए उपहास करके इन्द्रदेव वहाँ से चले गये थे। इन्द्र के चले जाने पर भी राजा दिन प्रतिदिन सीर को धारण किये रहते थे ॥२६॥ वह चारों ओर नृपति सात कोश तक कर्षण करता है। इसके अनन्तर मैंने वहाँ आकर उससे कहा था—हे कुरो ! यह क्या हो रहा है ? उस समय राजा ने अष्टांग महाधर्म कहा था। तब मैंने इससे कहा था—हे नृप ! बीज कहाँ पर स्थित है ॥२७-२८॥

स चाह मम देहस्थं वीज तमह मग्र वम् ।
देहाह वापयिष्यामि सीर कृषतु वै भवान् ॥२९
ततो नृपतिना बाहुर्दक्षिणः प्रसृतः कृत. ।
प्रसृत त भुज दृष्ट्वा महाचक्रेण वेगन. ॥३०
सहस्रधा प्रचिच्छेद यस्मादेक भुजोऽभवत् ।
ततः सव्यो भुजो राजा दत्तश्छिन्नोऽप्यगो मया ॥३१
तथैवोरुयुग प्रान्मया च्छिन्नौ च तावुभौ ।
ततः समेशिरः प्रादात्तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च ॥३२

वरदोऽस्मीत्यथेत्युक्तो कुरुर्वरमयाचत ।
यावदेतन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु वः ॥३३
स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलत्विह ।
उपवासश्च दानं च स्नानं जप्यं च माधव ॥३४
होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाऽप्यशुभं विभो ।
त्वत्प्रसादाद्धृषीकेश शङ्खचक्रगदाधर ॥३५
अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्वत्र महाफलम् ।
तथा भवान्सुरैः सार्द्धं समं देवेन शूलिना ॥३६
वसाक्ष पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जकेऽच्युत ।
इत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा बाढमुवाच तम् ॥३७

उसने फिर मुझ से कहा था कि यह बीज मेरे देह में स्थित है। तब मैंने उससे कहा था कि उसे मुझे दो ! मैं उस बीज का वपन करूँगा और आप हलका कर्षण करना ॥२६॥ इसके पश्चात् उस राजा ने अपना दक्षिण बाहु प्रसृत कर दिया था। उस फैलाये हुए भुजा को देखकर महान् चक्र से वेग के साथ सहस्र टुकड़ों में काट दिया था और फिर वह राजा एक ही भुजा वाला रह गया था। इसके पश्चात् उस राजा ने अपना सव्य भुजा भी दे दिया था। उसको भी मैंने छिन्न कर दिया था ॥३०-३१॥ उसी भाँति उसने अपने दोनों अङ्ग भी देदिये थे और मेरे द्वारा वे भी काट डाले गये थे। इसके अनन्तर उसने अपना शिर देदिया था। उससे मैं परम प्रसन्न उस पर हुआ था ॥३२॥ मैं वरद हूँ—ऐसा उससे कहने पर उस कुरु ने मुझसे वरदान माँगा था—कुरु ने कहा—जितना भी यह मैंने भू भाग कर्षित किया है वह आपका धर्म क्षेत्र हो जावे ॥३३॥ यहाँ पर जो भी स्नान करने वाले हो अथवा मृत्युगत हो उनके लिये यह स्थल महान् पुण्य फल देने वाला हो जावे। हे माधव ! यहाँ पर उपवास, दान, स्नान, जाप और होम यज्ञादिक तथा हे विभो ! अन्य भी शुभ कर्म अथवा अशुभ कर्म भी आपके प्रसाद से अक्षय एवं महान् फल वाला हो जावे। यहीं इस प्रवर क्षेत्र का

प्रभाव होवे। आप तो विषयेन्द्रियों के स्वामी और साक्षात् शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले प्रभु हैं। इसी भाँति मैं यह भी वरदान आप से चाहता हूँ कि आप हे अच्युत ! हे पुण्डरीकाक्ष ! समस्त देवों तथा देव मुनी के साथ यहीं पर निवास करें और यह स्थल मेरे नामका व्यञ्जक होवे। इतना उसके कहने पर मैंने उससे 'तथास्तु'—सब ऐसा ही होगा—यह उससे मैंने कहा था ॥३४-३७॥

तथा च त्वं दिव्यवपुभव भूयो महीपते।
तथान्तकाले मय्येव लयमेष्यसि सुव्रत ॥३८
शाश्वती तव कीर्तिश्च भविष्यति न संशयः।
तत्र वै याजको यज्ञान्यजिष्यसि सहस्रशः ॥३९
तस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः।
यक्ष च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पन्नगम् ॥४०
विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशं राक्षसेश्वरम्।
अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम् ॥४१
एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम्।
अमीषां बलिनोऽन्ये च भृत्याश्चैवानुयायिनः ॥४२
अष्टौ सहस्राणि धनुर्द्धराणां निवारयन्तीह सुदुष्कृतान्वै।
स्नातुं न यच्छन्तिमहोग्ररूपास्त्वन्यस्य ते वीरचराचराणाम् ॥

फिर मैंने उससे कहा था—हे महीपते ! आप अब दिव्य वपु वाले हो जावें तथा अन्तकाल में आप हे सुव्रत ! मुझमें ही लय को प्राप्त होंगे ॥३८॥ आपकी कीर्ति शाश्वती होगी–इसमें कुछ भी संशय नहीं होगा। वहाँ पर याजक सहस्रों यज्ञों का यजन करेगा ॥३९॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—उन भगवान् पुरुषोत्तम प्रभु ने फिर उस क्षेत्र की रक्षा के लिये चन्द्र नाम वाले यक्ष को तथा वासुकि सर्प को प्रदान किया था ॥४०॥ विद्याधर, शङ्कुकर्ण, सुकेश, राक्षसेश्वर, अजावन, नृपति, महादेव पावक, इन सबको प्रदान किया था और ये सभी वहाँ पर एकत्रित होकर सभी ओर से उस कुरु जाँगलकी रक्षा करते हैं। इनके अन्य बलशाली भृत्य तथा अनुयायी गण आठ सहस्र धनुर्धारी यहाँ पर दुष्कृतों

का निवारण किया करते हैं। वे महान् स्वरूप वाले चराचरों में अन्य किसी को स्नान नहीं करने देते थे ॥४१-४३॥

तस्यैव मध्ये वहुपुण्य युक्त पृथूदक पापहर शिव च ।
पुण्यानदीप्राङमुखताप्रयाताजलौघयुक्तस्य सुताजलाढ्या ॥४४
पूर्वं नदीय प्रपिता महेन सृष्टा मम भूतगणै. समस्तै. ।
मही जल वह्निसमीरमेव ख त्वेवमादौविबभौ पृथूदकम् ॥४५
सर्वे तथाऽन्योयधयो महान्नस्तीर्थानि नद्य. स्रवणाः स रासि ।
सर्निर्मितानीह महाभुजेन सदेवमार्गं सलिल हि तेपु ॥४६
सरस्वतीदृषद्वत्योरन्तरे कुरजाङ्गले ।
मुनिप्रवरमासीन पुराण लोमहर्षणम् ।
अपृच्छन्त द्विजवरा प्रभव सुरसत्तमाः ॥४७
प्रमाण सरसो ब्रूहि तीर्थाना च विशेपत ।
देवताना च माहात्म्यमुत्पत्ति वामनस्य च ॥४८
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषा तान्द्विजांल्लोमहर्षण ।
प्रणिपत्य पुराणर्पिमिद वचनमब्रवीत् ॥४६

उसी स्थल के मध्य मे एक परम पुण्य वाली महा नदी जलौघयुक्त की सुता जल से परिपूर्ण पूर्व की ओर मुख वाली प्रयाण करती थी जिसका जल बहुत अधिक था तथा पुण्यमय—पापो के हरण करने वाला एव शिव था ॥४४॥ पहिले इस नदी का सृजन प्रपितामह ने ही किया था और समस्त भूतगणो के साथ मही, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ही आदि मे यह अधिक जल वाली शोभित हुई थी ॥४५॥ तथा सभी महान् तीर्थ, नदिया, स्रवण और सरोवर बिना जल वाले थे और ऐसे ही निर्मित किये गये थे । महाभुज ने उनमें देवमार्ग के साथ जल दिया था ॥४६॥ सरस्वती और दृपद्वती के मध्य भाग मे कुरुजाङ्गल म आसीन मुनियो मे परम प्रवर पुराण लोम हर्षण से सुर सत्तम द्विज वरों ने प्रभव पूछा था ॥४७॥ ऋषियों ने कहा—इस सरोवर का प्रमाण वतलाइये और विशेष रूप से समस्त तीर्थों के विषय मे भी वणन कीजिए । देवगणो का तथा वामन का माहात्म्य एव उत्पत्ति के विषय

मे वर्णन कीजिएगा ॥४८॥ यह वचन उन सबका श्रवण करके लोम हर्षण ने उन सब का प्रणिपात किया था और उस पुराण ऋषि ने उन सबसे यह वचन कहा था ॥४६॥

ब्रह्माणमीशं कमला सनस्थं विष्णुं च लक्ष्मीसहितं तथैव ।
रुद्रं च देव प्रणिपत्य मूर्ध्ना तीर्थं वरं ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये ॥५०
रन्तुकादोजसचापि पावनाच्च चतुर्मुखम् ।
सरः सन्निहितं प्रोक्तं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु ॥५१
कलिद्वापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना ।
सरः प्रमाणं यत्प्रोक्तं तच्छृण्वन्तु द्विजोत्तमाः ॥५२
विश्वेश्वराद्धस्तिपुरं तथा कन्या जरद्गवी ।
यावदोघवती प्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः ॥५३
मया श्रुतं प्रमाणं तु कथ्यमानं तु वामनम् ।
तच्छृण्वंतु द्विजश्रेष्ठाः पुण्य वृद्धिकरं महत् ॥५४
विश्वेश्वराद् ववरात्पावनी च सरस्वती ।
सरः सन्निहित प्रोक्तं समन्तादर्द्धयोजनम् ॥५५
एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः ।
सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थे चापरे स्थिताः ॥५६

लोम हर्षण ने कहा—ब्रह्माजी, ईश, कमलासन पर स्थित विष्णु जो लक्ष्मी के सहित विराजमान है, रुद्रदेव और तीर्थवर ब्रह्मसर सबको शिर के बल प्रणाम करके ही मैं बताऊँगा ॥५०॥ रन्तुकादोजस और पावन करने से चतुर्मुख यह सर सन्निहित ब्रह्मा ने पहिले ही कहा था ॥५१॥ कलि और द्वापर के मध्य मे महात्मा श्री व्यास देव ने इस सर का जो प्रमाण बतलाया है हे द्विजोत्तम वृन्द ! उसे आप अब मुझसे श्रवण करिये ॥५२॥ विश्वेश्वर से हस्तिपुर तथा कन्या जरद्गवी तक ओघ वाली बताई गई है । वही तक यह सरोवर भी सन्निहित है ॥५३॥ मैंने इसका प्रमाण वामन के द्वारा कथ्यमान मैंने श्रवण किया है । हे द्विजश्रेष्ठो ! उसे ही आप लोग सुनिये । यह पुण्यमय और महान् वृद्धि का करने वाला है ॥५४॥ देव वर विश्वेश्वर से पावनी सरस्वती है ।

उसी के सन्निहित यह सर चारों ओर अर्थ योजन के प्रमाण वाला बताया गया है। इसी का समाश्रय करने वाले ऋषिगण और देव वृन्द वहां आये हुए हैं। ये सभी मुक्ति की कामना पूर्ण करने के लिये और कुछ दूसरे स्वर्ग लोक प्राप्त करने की कामना से इसका सेवन किया करते हैं ॥५५-५६॥

> ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टि कामेन योगिना ।
> विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम् ॥५७
> रुद्रेण च सरोमध्य प्रविष्टेन महात्मना ।
> सेव्य तीर्थं महातेजा. स्थाणुत्व प्राप्तवान्हरः ॥५८
> आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामह्लद. स्मृतः ।
> कुरुणा च यत कृष्ट कुरुक्षेत्र तत. स्मृतम् ॥५९
> तरन्तुकारन्तुकयोर्यदन्तर यदन्तर रामह्लदस्य पश्चकात् ।
> एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चक पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥६०

प्रजा का सृजन करने की कामना से योगीराज ब्रह्माजी ने इसका सेवन किया था। भगवान् विष्णु ने भी हरि रूप से जगत् की स्थिति (पालन-पोषण) की कामना लेकर इसका सेवन किया था। महात्मा रुद्र देव ने इस सर के मध्य मे प्रवेश करके महान् तेजस्वी देव ने इस तीर्थ का सेवन किया था सो तभी से वह भगवान् हर स्थाणुत्व को प्राप्त हो गये थे ॥५७-५८॥ यह सबसे प्रथम ब्रह्मा की वेदी थी फिर इसको राम ह्लद कहा गया था जब कुरु ने इस स्थल का कर्षण किया था तो तभी से इसको कुरुक्षेत्र—इस नाम से कहा जाता है। तरन्तु कारन्तुक का जो अन्तर है और पञ्चक से राम-ह्लद का जो अन्तर है वह समन्त पञ्चक कुरुक्षेत्र पितामह की उत्तर वेदी कही जाती है ॥५९-६०॥

२३—दैत्यराज वलि-वश वर्णन

> ब्रूहि वामन माहात्म्यमुत्पत्ति च विशेषतः ।
> यथा वलिर्नियमितो दत्त राज्य शतक्रतो. ॥१

श्रृण्वन्तु मुनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः ।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले ॥२
तथैव वंशं दैत्यानां श्रृण्वन्तु द्विज सत्तमाः ।
यस्मिन्वंशे समभवद्बलिर्वैरोचनिः पुरा ॥३
दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुर्भवत् ।
तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम दानवः ॥४
तस्माद्विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनात् ।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः ॥५
राज्यं कृतं च तेनेष्टं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते ॥६
जये तथा बलवतोर्मयशम्बरयोस्तथा ।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप वामन देव की उत्पत्ति तथा उनका पूर्ण माहात्म्य हमारे सामने वर्णन कीजिए । इसको विशेष रूप से बतलाइये । जिस प्रकार से बलि राजा का वामन प्रभु ने निग्रहन किया था और जिस प्रकार से उसका सम्पूर्ण राज्यैश्वर्य इन्द्र को दे दिया था ॥१॥ लोम हर्षण ने कहा—हे मुनिगण ! आप सब परम प्रसन्न होकर महान् आत्मा वाले वामन प्रभु का प्रभाव तथा उत्पत्ति एवं कुरु-जांगल में उनका निवास सभी कुछ आनन्द श्रवण कीजिए ॥२॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! उसी भाँति दैत्यों के वंश का भी आप लोग श्रवण करें जिस वंश में पहिले विरोचन का पुत्र बलि समुद्भूत हुआ था ॥३॥ इन दैत्यों का आदि पुरुष जो था वह हिरण्यकशिपु नाम वाला दैत्य था । उसका पुत्र महान् तेज से सुसम्पन्न दानव प्रह्लाद हुआ था ॥४॥ उससे विरोचन नाम वाला दैत्य प्रसूत हुआ था और विरोचन से बलि ने अपना जन्म ग्रहण किया था । हिरण्यकशिपु के निहत हो जाने पर सभी ओर से देवों का उत्सादन किया गया था । उसने चराचर त्रैलोक्य में अपना अभीष्ट राज्य किया था । यत्नों के करने वाले दैत्यों के हो जाने पर यह त्रैलोक्य ही दैत्य भाव को प्राप्त हो गया था ॥५-६॥ बलवान् मयशम्बर

हो जाने पर सभी दिशाओ के पूर्णतया शुद्ध हो जाने पर धर्म-कर्म के प्रवृत्त हो जाने पर सभी ओर धर्म का प्रभाव था ॥७॥

सप्रवृत्त दैत्यपथे अयनस्थे दिवाकरे ।
प्रह्लादशम्बरमयैरनु रागेण चैव हि ॥८
दिक्षु सर्वासु गुप्तासु गगने दैत्यपालिते ।
वेदेषु मखशोभा च स्वर्गस्था दर्शयत्सु च ॥९
प्रकृतिस्थे ततो लोके वर्त्तमाने च सत्पथे ।
अभावे सर्वपापाना धर्मभावे सदोत्थिते ॥१०
चतुष्पादे स्थिते धर्मे ह्यधर्मे पादविग्रहे ।
प्रजापालनयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु ।
स्वधर्मयुक्तेषु तथा सर्वेष्वाश्रमवासिषु ॥११
अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैर्दैत्यराज्ये बलिस्तदा ।
हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च ॥१२
अथाभ्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पद्मान्तरप्रभा ।
पद्मोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी ॥१३

सभी दिशाओं के सुरक्षित हो जाने पर दैत्यो के द्वारा गगन के भी पालित होने पर वेदो मे मखो की शोभा स्वर्ग मे स्थित दिखाते हुए स्थित होने पर फिर सम्पूर्ण लोक के सत्पथ पर वर्त्तमान हो जाने पर सभी पापों का अभाव हो गया था और धर्म का भाव सर्वदा उत्थित रहता था धर्म के चतुष्पाद स्थित रहने पर और अधर्म के एक पाद मात्र विग्रह वाले रहने पर सभी राजा लोग अपनी प्रजा के पालन मे युक्त थे और सर्वत्र भ्राजमान हो रहे थे । सभी आश्रमो में रहने वाले लोग भी अपने २ धर्मों तथा कर्मों मे युक्त हो रहे थे । ऐसे अवसर में समस्त असुरो ने दैत्यो मे राज्यसिंहासन पर राजा बलि का अभिषेक किया था । उस समय म सभी दैत्यगण परम प्रसन्न-अत्यन्त सुखी और आनन्द मे मग्न हो रहे थे ॥११-१२॥ इसके अनन्तर पद्मान्तर प्रभावाली लक्ष्मी पद्मों के उद्योत रूपी करो वाली वरदा सुन्दर प्रवेश करने वाली देवी लक्ष्मी राजा बलि के समीप मे अभ्युपगत हुई थी ॥१३॥

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते ।
प्रीतास्मि तव भद्रं ते देवराजपराजये ॥१४
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजः पराजितः ।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता ॥१५
नाश्चर्यं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले ।
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मेदमीदृशम् ॥१६
विशेषितस्त्वया राजन्दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ।
येन भुक्तं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमव्ययम् ॥१७
एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम् ।
प्रविष्टा वरदा सेव्या सर्वदेवमनोरमा ॥१८
तुष्टाश्च देव्यः प्रवरा ह्री. कीर्तिर्द्युतिरेव च ।
प्रभा धृतिः क्षमा भक्तिर्ऋद्धिर्दिव्या महामतिः ॥१९
श्रुतिर्विद्या स्मृतिः कीर्तिः शान्तिः पुष्टि स्तथा क्रिया ।
सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्तगीतविशारदाः ॥२०
प्रपद्यन्ते तु दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना ॥२१

श्री देवी ने राजा बलि से आकर कहा—हे राजा बलि ! आप तो बलवान परम श्रेष्ठ हैं । हे दैत्यों के नृपति ! आपकी द्युति में तो महान् है । मैं आपसे इस समय परम प्रसन्न हूँ । अब आपका कल्याण ही होगा तथा देवराज इन्द्र को आप पराजित कर देंगे ॥१४॥ जो तुमने अपने परमातिशय विक्रम से युद्ध में देवराज को पराजित किया है उसी आपके परम सत्त्व को देखकर मैं स्वयं तुम्हारे पास आई हूँ ॥१५॥ हे दानवों में व्याघ्र के सदृश पराक्रम वाले ! हिरण्यकशिपु के कुल में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आप भी उसी असुरेन्द्र के कुल में समुत्पन्न हुए हैं आपका ऐसा ही कर्म होना ही चाहिए ॥१६॥ हे राजन् ! दैत्यों के स्वामी प्रपितामह को आपने विशेषित किया है जिससे यह सम्पूर्ण धन अव्यय समन्वित है ॥१७॥ इस प्रकार से कहकर वह दैत्य नृप में प्रविष्ट हो गई थी जो सब देवों में अतीव मनो—

देने वाली और सेवन करने के योग्य हैं ।।१८।। श्री के प्रसन्न हो जाने पर फिर सभी देवियाँ सन्तुष्ट हो गई थीं उनमे ह्री कीर्ति, द्युति, प्रभा-धृति, शक्ति, ऋद्धि दिव्या, महामति, श्रुति, स्मृति, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि तथा क्रिया ये प्रवरा देवियाँ थी । (सभी अप्सराऐं जो दिव्य थी और नृत्य एव गान की विदुषी थी दैत्येन्द्र को प्रयत्न हो गई थी)। ब्रह्मवादी राजा बलि ने चराचर त्रैलोक्य तथा अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ।।१६-२१।।

२४—बलि की देवताओं पर विजय

देवाना ब्रूहि मे कर्म यद्वृत्तास्ते पराजिता. ।
कथ देवाधिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनता गत. ।।१
बलिसस्थ च त्रैलोक्य दृष्ट्वा देवः पुरदर ।
मेरुसस्थ ययौ शक्र स्वमातुर्निलय शुभम् ।।२
समीप प्राप्य मातुश्च कथयामास ता गिरम् ।
आदित्याश्चरणे सर्वे दानवेन पराजिता ।।३
यद्येव पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे ।
बलिर्विरोचनसुत॰ सर्वैश्चैव मरुद्गणै ।।४
सहस्रशिरसा शक्य केवल हन्तुमेव हि ।
तेनैकेन सहस्राक्ष हन्तु नान्येन शक्यते ।।५
तद्वत्पृच्छाम्य पितर कश्यप ब्रह्मवादिनम् ।
पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ।।६
ततो देवा सहसुराः सप्राप्ताः कश्यपान्तिकम् ।
स तापदयश्च मारीच मुनि दीप्ततपोनिधिम् ।।७

ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! अब आप उन देवो के कर्मों को बतलाइये जो कैसे चरित्र वाले थे कि पराजित हो गये थे ? यह भी कृपया बतलाइये कि देवों के भी आधिदेव भगवान् विष्णु किस कारण से

दोना रूप वाले हुए थे ? ॥१॥ लोम हर्षण ने कहा—पुरन्दर देव राज ने जब देखा कि यह समस्त त्रैलोक्य राजा बलि के ही अधिकार में चला गया है तो उस समय में इन्द्र देव मेरु पर्वत पर विराजमान अपनी माता के परम शुभ निवास स्थान पर पहुंचे थे ॥२॥ अपनी माता के समीप में पहुंच कर इन्द्र ने यह वचन उससे कहे थे कि समस्त देवगण दानव के द्वारा पराजित कर दिये गये हैं ॥३॥ अदिति ने कहा—यदि हे पुत्र ! ऐसा है तो उस दानव को आप लोग युद्ध में नहीं मार सकते हो। बलि विरोचन का पुत्र है वह समस्त मरुद्गण के साथ केवल सहस्र शिरो वाले के द्वारा ही हनन किया जा सकता है। हे महाबाहो ! वही एक इसको मार सकते हैं अन्य किसी के भी द्वारा नहीं मारा जा सकता है ॥४-५॥ तो अब तुम ब्रह्मवादी अपने पिता कश्यप से जाकर पूछो कि उस महात्मा दैत्यराज बलि राजा का पराजय कैसे होगा ॥६॥ इसके अनन्तर समस्त देवता सुरो के साथ कश्यप ऋषि के समीप में प्राप्त हुए थे। वहाँ पर उन्होंने दीप्ततप की खान मारिच मुनि का दर्शन प्राप्त किया था ॥७॥

आद्यं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मतेजसा ।
तेजसा भास्कराकारं स्थितमग्निशिखोपमम् ॥८
न्यस्तदण्ड तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम् ।
वल्कलाजिनसंवीत प्रदीप्तमिव तेजसा ॥९
हुताशमिवदीप्यमान माज्यगन्धपुरस्कृतम् ।
स्वाध्यायवन्त पितरं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥१०
ब्रह्मवादिनमत्युग्र चराचरगुरुं प्रभुम् ।
ब्रह्मणा प्रतिम लक्ष्म्या कश्यप दीप्ततेजसम् ॥११
यः स्रष्टा सर्वलोकानां प्रजाना पतिरुत्तमः ।
आत्मभावविशेषेण तृतीयोऽन्य प्रजापतिः ॥१२
अथ प्रणम्य तं देवाः सहादित्याः सुरर्षभाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्मण्याः धिषमानसाः ॥१३

अजेयो युधिशक्रेण बलिर्दैत्यो बलाधिकः ।
तस्माद्विधत्त नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम् ।
श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः ॥१४

कश्यप महर्षि समस्त देवों के गुरु-परम दिव्य स्वरूप ब्रह्म तेज से प्रदीप्त-तेज से सूर्य के समान-अग्नि की शिखा के सदृश सरिथत थे ॥८॥ न्यस्तदण्ड वाले-तपश्चर्या से समन्वित-कृष्ण मृगचर्म के वस्त्र को बाँधे हुए-वल्कल एवं अजिन से संवीत और तेज से प्रकृष्ट दीप्ति वाले थे ॥९॥ अग्नि के तुल्य दीप्यमान-आज्य (घृत) की गन्ध से पुरस्कृत ऐसे स्वाध्याय करने वाले अनल के समान देह को धारण करने वाले अपने पिताजी को जोकि ब्रह्म वादी तथा चराचर के गुरु और प्रभु थे एवं ब्रह्मा के सदृश प्रतिमा वाले लक्ष्मी से युक्त—दीप्त तेज वाले एवं अतीव उग्र थे, प्राप्त किया था ॥१०-११॥ जो समस्त लोकों के सृजन करने वाले उत्तम प्रजाओं के पति थे और आत्मभाव की विशेषता से यह तीसरे प्रजापति ही थे ॥१२॥ इसके अनन्तर उन सब देवों ने सुरर्षभ आदित्यादि के साथ उनको प्रणाम किया था। फिर मन में शिव के ध्यान वाले ब्रह्मण्य सब ने हाथ जोड़कर उनसे कहा ॥१३॥ देवों ने कश्यप जी से कहा था कि बल में परमाधिक दैत्यराज बलि युद्ध में इन्द्र के द्वारा अजेय हो रहा है। इसलिये देवगण की पुष्टि बढ़ाने वाला कोई श्रेय आप ही करिये। उन देवगण के इस वचन का श्रवण कर जोकि सभी उनके अपने ही पुत्र थे महर्षि प्रभु कश्यप जी बोले ॥१४॥

कुरुध्व गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ।
कथयिष्यत्युपायं वो यथा जेष्यथ दैत्यपम् ॥१५
शक्र गच्छाम सदनं ब्राह्मणः परमाद्भुतम् ।
यथा पराजयं सर्वे ब्रह्मणः स्यातुमुद्यताः ॥१६
सहादित्यास्ततो देवा याताः काश्यपमाश्रमम् ।
प्रस्थिता ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥१७

ते मुहूर्तेन संप्राप्ता ब्रह्मलोकं सुवर्चसः ।
दिव्यः कामगमैर्यानैर्यथार्हैः सुमहाबलैः ।।१८
ब्रह्माणं प्रष्टुमिच्छन्तस्तपोराशिं तमव्ययम् ।
अभ्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम् ।।१६
षट्पदोद्गीतमधुरां सामगैः समुदीरिताम् ।
श्रेयस्करीममित्रघ्नीं दृष्ट्वा सजहृषुस्तदा ।।२०
ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षरैः ।
शुश्रुवुरस्त्वमरव्याघ्रा विततेषु च कर्मसु ।।२१

कश्यप मुनीन्द्र ने कहा—अब आप सभी लोग ब्रह्म लोक में जाने की बुद्धि करो। वहाँ लोकों की रचना करने ब्रह्माजी कोई उपाय आपको बतला देंगे कि वह दैत्यराज किस प्रकार से जीता जा सकेगा ।।१५।। हे इन्द्र ! ब्रह्माजी के परम अद्भुत सदन में चले जाओ और सभी लोग उनसे जिस प्रकार से सबका पराजय हुआ उसे कहने के लिये तत्पर हो जाओ ।।१६।। इसके पश्चात् आदित्यादि के साथ समस्त देवगण काश्यपाश्रम में गये थे। सबने ब्रह्माजी के निवास स्थान के लिए प्रस्थान किया था जोकि ब्रह्मर्षिगण के द्वारा निषेवित था ।।१७।। मुहूर्त्त मात्र समय में ही वे सब सुवर्चस ब्रह्मलोक को प्राप्त होगये थे और सुमहान् बल वाले-दिव्य और इच्छा से ही गमन करने वाले यानों के द्वारा वहाँ पहुँच गये थे ।।१८।। तपोराशि-अव्यय ब्रह्माजी से पूछने की इच्छा वाले देवगण ब्रह्माजी से पूछने की इच्छा वाले देवगण ब्रह्माजी से पूछने की इच्छा वाले देवगण ब्रह्माजी की परम विस्तार वाली सभा में प्राप्त हुए थे ।।१६।। वह ब्रह्माजी की सभा षट्पदों के गीतों से अतीव मधुर था तथा सामवेद के गानों के द्वारा समुदीरित थी एवं श्रेय को वाली-शत्रुओं के हनन करने वाली उस सभा को उस समय में देखकर सब परम प्रसन्न हुए थे ।।२०।। क्रम-पदाक्षरों के सहित ऋचायें बहुत ऋचों में मुख्यों के द्वारा कही गयी थी तथा अमर व्याघ्रों ने उनका वितत कर्मों में श्रवण किया था ।।२१।।

यज्ञविद्यावेदविदः पदक्रमविदस्तथा ।
स्वरेण परमर्षीणा सा बभूव प्रणादिता ॥२२
यज्ञसस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विजै. ।
छन्दसा च तथा विज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥२३
लोकायतिकमुख्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम् ।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान्सशितव्रतान् ॥२४
जपहोमपरान्मुख्यान्ददृशु कश्यपात्मजाः ।
तस्या सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२५
चराचरगुरु श्रीमान्विद्यया वेदमायया ।
उपासते च तत्रैव प्रजाना पतयो विभुम् ॥२६
दक्षः प्रचेता पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमाः ।
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥२७
विद्यास्तथान्तरिक्ष च वायुस्तेजो जल मही ।
शब्द. स्पर्शश्च रूप च रसो गन्धस्तथैव च ॥२८

यज्ञविद्या वेद के वेत्ता तथा पद, क्रम, ,घन जटा और वजटा आदि के ज्ञाता परमर्षियो के द्वारा स्वर मे वह वेद ध्वनि प्रणादित हुई थी ॥२२॥ यज्ञों के सस्तवन के ज्ञाता तथा शिक्षा के वेत्ता एव छन्दो के मनीषी और समस्त शास्त्रो के विशारद द्विजो के द्वारा एव लोकायतिक प्रमुखों के द्वारा वह ईरित स्वर श्रुत हुआ था । वहां पर कश्यप के पुत्र देवो ने सशित व्रतों वाले—नियत-जप एव होम मे तत्पर मुख्य विप्रेन्द्रो का दर्शन किया था ॥२३-२४॥ उस सभा मे लोको के पितामह ब्रह्माजी विराजमान थे ॥२५॥ वह चराचर के गुरु श्रीमान् ब्रह्मा तथा प्रजाओं के पतिगण वेद माया विद्या के द्वारा वहाँ पर ही विभु की उपासना कर रहे थे ॥२६॥ वहाँ पर दक्ष प्रचेता-प्रलह-मरीचि-भृगु-अत्रि-वसिष्ठ-गौतम-नारद ये सभी स्वयम्भु की उपासना कर रहे थे ॥२७॥ विद्या-अन्तरिक्ष-वायु-तेज-जल—मही-शब्द, स्पर्श-रूप-रस और गन्ध भी उपासना मे व्यस्त थे ॥२८॥

प्रकृतिश्च विकाराश्च यच्चान्यत्कारणं महत् ।
साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा ॥२९
तपांसि क्रतवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ।
एते चान्ये च बहवः स्वयम्भुवमुपासते ॥३०
धर्मो ह्यर्थश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः ।
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवर्त्तोऽप्यथ बुधस्तथा ॥३१
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ।
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः ॥३२
दिवाकरश्च सोमश्च दिनं रात्रिस्तथैव च ।
अर्द्धं मासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः ॥३३
तां प्रविश्य सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामदाम् ।
कश्यपस्त्रिदशेशश्च पुत्रो धर्मभृतां वरः ॥३४

प्रकृति और उसके विकार तथा अन्य कारण महत्-साङ्गोपांग चारों वेद तथा लोक पति तप क्रतु-सङ्कल्प और प्राण बहुत से स्वयम्भू प्रभु की उपासना में लीन थे। धर्म, अर्थ, काम, क्रोध-हर्ष शुक्र, गुरु, संवर्त्त-बुध-शनैश्चर-राहु प्रभृति सभी ग्रह वहाँ पर व्यवस्थित थे। मरुत, विश्वकर्मा,वसुगण, दिवाकर, सोम, दिन, रात्रि, अर्धमास, मास, ऋतुगण छै ये सभी वहाँ पर संस्थित थे ॥२९-३३॥ ऐसी उस दिव्य ब्रह्मा की सभा में जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली थी देवों ने प्रवेश किया था उनमें कश्यप त्रिदशेश और धर्म भृतों के श्रेष्ठ पुत्र भी थे ॥३४॥

सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् ।
ब्राह्मया श्रिया सेव्यमानामचिन्त्यां विगतक्लमाम् ॥३५
ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमासनमास्थितम् ।
शिरोभिः प्रणता देवं देवा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥३६
ततः संस्पृश्य चरणौ नियताः परमात्मनः ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः सर्वे विगतकल्मषाः ॥३७

दृष्ट्वा तु तान्सुरान्सर्वान्कश्यपेन सहागतान् ।
आह ब्रह्मा महातेजा देवाना प्रभुरीश्वरः ॥३८

वह ब्रह्माजी की सभा सम्पूर्ण तेज परिपूर्ण तेज से परिपूर्ण-परम दिव्य तथा ब्रह्मर्षिगण के द्वारा सेवित थी। वह ब्राह्मी श्री के द्वारा से ध्यमान और अचिन्तनीय एव विगत कल्मषवाली थी ॥३५॥ परासन पर विराजमान लोक पितामह ब्रह्माजी का उन सबने दर्शन किया था। सबने मस्तक मनु का कर ब्रह्मर्षियो के सहित देवताओ ने उनको प्रणाम किया ॥३६॥ इसके अनन्तर सबने नियत होते हुए उनके चरणों का स्पर्श किया था जो कि परमात्मा प्रभु थे। वे सभी लोग चरण स्पर्श कर सम्पूर्ण पापो से विमुक्त होकर विगत कल्मष होगये थे॥३७॥कश्यप के साथ आए हुए उन सभी सुरो को देखकर महान् तेज वाले ब्रह्माजी ने जोकि देवो के प्रभु और ईश्वर थे कहा था ॥ ३८ ॥

२५—कश्यप आदि का क्षीरसागर गमन

यदर्थमिह सम्प्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि ।
चिन्तयाम्यहमव्यग्रमेतदर्थं महाबलाः ॥१
भविष्यति च वः सर्वं काङ्क्षितयत्सुरोत्तमाः ।
बलेर्दानवमुख्यस्य योऽस्य जेता भविष्यति ॥२
न केवल सुरारीणा गतिर्मम स विश्वकृत् ।
त्रैलोक्यस्यापि नेता च देवानामपि स प्रभुः ॥३
यः प्रभुः सर्वलोकाना विश्वं यश्च सनातनम् ।
पूर्वज य मम प्राहुरादिदेव सनातनम् ॥४
तं देवाश्च महात्मान न विदुः कोऽस्त्ययसाविति ।
देवानस्माश्च विश्वं च स वेत्ति पुरुषोत्तमः ॥५
तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमा गतिम् ।
यदि योग समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम् ॥६

क्षीरोदस्योत्तरे कूल उदीच्या दिशि विश्वकृत् ।
तत श्रोष्यथ सघुष्टां मेघगम्भीरनिस्वनाम् ॥७
रक्तां पुष्टाक्षरां रम्याममया सर्वदा शिवाम् ।
वाणी परमसस्कारा वदता ब्रह्मवादिनाम् ॥८

ब्रह्माजी ने कहा—आप सभी लोग जिस कार्य के लिए आये हैं हे महाबल वालो ! मैं अव्यग्र होकर इसके लिये चिन्तन करता हूँ ॥१॥ हे सुरोत्तमो ! आपका अभीष्ट सम्पूर्ण तभी होगा जब कि इस दानवों में मुख्य को जीतने वाला हो जायगा ॥२॥ सुरों के शत्रुओं के विषय में केवल मेरी गति नहीं है। वह इस विश्व की रचना करने वाले भगवान् त्रिलोकी के नेता हैं और देवगणों के भी वे प्रभु हैं ॥३॥ वह प्रभु समस्त लोकों के हैं और जो सनातन विश्व स्वरूप हैं। मेरे भी पूर्वज जिनको आदि देव एवं सनातन कहते हैं ॥४॥ और हे देवगण ! उस महान् आत्मा वाले को कोई भी नहीं ठीक २ जानता है कि यह कौन है। वह स्वयं पुरुषोत्तम प्रभु देवों को-हमको और सम्पूर्ण विश्व को को जानते हैं ॥५॥ उन्हीं के प्रसाद से मैं परमगति कह सकूंगा यदि योग में समास्थित होकर चिरकाल पर्यन्त तपश्चर्या करूँ ॥६॥ क्षीर-सागर के उत्तर तट पर उदीची दिशा में विश्व का स्रष्टा निवास किया करते हैं। वहाँ पर ही वह श्रवण करेंगे उस ब्रह्म वादियों की कही हुई परम सस्कार वाली वाणी को जो भली भाँति घोषित की गई है और मेघों के गम्भीर गर्जन की ध्वनि के समान है एवं रक्त, पुष्टाक्षरों वाली रम्य, भय रहित तथा सदा सर्वदा शिव स्वरूप वाली है ॥७-८॥

दिव्यां सत्याकरां सत्यां सर्वकल्मषनाशिनीम् ।
सर्वदेवाधिदेवश्च ततोऽसौ भवितात्मना ॥६
तद्व्रतस्य समाप्त्यां तु योगव्रत विसर्जने ।
अमोघ तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः ॥१०
कश्यपाय वर देवा ददामि वरदस्थिताः
स्वागत च सुर श्रेष्ठा मत्समीपमुपागताः।
ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वर तदा ॥११

प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते ।
भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः ॥ २
उक्तश्च परया वाचा तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति ।
देवा ब्रुवन्त ते सर्वे कश्यपोऽदितिरेव च ॥१३
तथाऽस्त्विति स च श्रीमान्वक्ष्यते सर्वलोककृत् ।
तस्माद्देवाद्गृहीत्वैव वरं त्रिदशसत्तमाः ॥१४
कृतकृत्यास्ततः सर्व गच्छध्व स्व स्वमालयम् ।
तथाऽस्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ॥१५

वह वाणी दिव्य-सत्य को आकर सत्यस्वरूपिणी और समस्त कल्मषों का नाश करने वाली है। सर्व देवों के भी अधिदेव इसके पश्चात् भावितात्मा ने उस व्रत की समाप्ति होने पर और योग व्रत के विसर्जन हो जाने पर उन महान् आत्मा वाले देव का अमोघ विश्व तेज को निसृत किया था ॥९-१०॥ भगवान् अच्युत ने कहा था—हे वरद स्थित देवगण ! मैं महर्षि कश्यप के लिये वर देता हूँ। हे सुरश्रेष्ठो ! मैं आपका स्वागत करता हूँ क्योंकि इस समय मे आप लोग मेरे निवास स्थान पर उपस्थित हुए हैं। इसके अनन्तर उस वर को महर्षि अदिति के पति कश्यप एवं उनकी पत्नी ने ग्रहण किया था ॥११॥ उन परम धीमान् देवेश्वर के चरणों मे सिर झुकाकर प्रणाम किया था और प्रार्थना की थी कि आप हमारे ऊपर प्रसाद करें कि आप ही स्वयं पुत्र रूप मे जन्म ग्रहण करें ॥१२॥ भगवान् ने इसकी हुई अभ्यर्थना पर अपनी परम सुरम्य वाणी से कहा था 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा। तब वे समस्त देवगण-कश्यप मुनि तथा अदिति ने कहा था कि सब लोगों की रचना करने वाले श्रीमान् प्रभु ने 'तथास्तु' कह दिया है। फिर तो वे सभी देवगण ने भगवान् से वरदान प्राप्त कर लिया था भगवान् ने उनसे कहा था कि अब आप सब कृत कृत्य हो गये हैं सब लोग अपने २ आश्रमों को चले जावें। ऐसा ही होगा—यह कहकर सब देवताओं ने प्रभु के चरणों मे मस्तक झुका कर प्रणाम किया था ॥१२-१५॥

श्वेतद्वीप समुद्दिश्य गताः सौम्यां दिशं प्रति ।
तेऽचिरेणैव सम्प्राप्ताः क्षीरोदं सरितां पतिम् ॥१६
यथाऽऽदिष्टं भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना ।
ते क्रान्त्वा सागरान्सर्वान्पर्वतांश्च सकाननान् ॥१७
नदीश्च विविधाः पुण्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमा ।
अपश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥१८
अभास्करममर्याद तमसा सर्वतो वृतम् ।
अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन महात्मना ॥१९
दीक्षित्वा कश्यपो दिव्य व्रतं वर्षसहस्रकम् ।
प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते ॥२०
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय भूतये ।
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च ॥२१
क्रमेण च सुराः सर्वे तपोयोगं समास्थिताः ।
कश्यपस्तत्र भगवान्प्रसादार्थं महात्मनः ।
उदीरयंश्च वेदोक्तं यमाहुः परमं स्तवम् ॥२२

फिर वे सब श्वेत द्वीप का उद्देश्य बनाकर उत्तर दिशा की ओर जो परम सौम्य थी चले गये थे। वे शीघ्र ही सरिताओं के पति क्षीरोद पर प्राप्त हो गये थे ॥१६॥ जिस प्रकार से सत्यवादी भगवान् ब्रह्मा ने आदेश दिया था उन्होंने समस्त सागरों का तथा वनों के सहित सम्पूर्ण पर्वतों का भ्रमण किया था ॥१७॥ उन सुरेत्तमों ने पृथिवी में अनेक परम पुण्यमयी नदियों को देखा था और समस्त सत्वों से रहित अत्यधिक घोर अन्धकार को भी देखा था जो भास्कर भगवान् से रहित मर्यादा शून्य सभी ओर तम से समावृत महात्मा कश्यप ने अमृत स्थान की प्राप्ति की थी ॥१८-१९॥ वहाँ पर परम धीमान् योगस्वरूप सुरेश्वर प्रभु के प्रसाद प्राप्त करने के लिये दिव्य सहस्र वर्ष के लिए व्रत की दीक्षा ली थी ॥२०॥ सहस्राक्ष भूति-देव नारायण के लिये ही यह व्रत ब्रह्मचर्य-मौन और स्थान पर वीरासन ग्रहण कर दीक्षा स्वीकार की थी ॥२१॥ इसी प्रकार से सभी सुरवृन्द क्रम से वहाँ तपोयोग में

समाश्रित हो गये थे। उस स्थान पर भगवान् कश्यप मुनीन्द्र ने महात्मा प्रभु की प्रसन्नता के लिये वेदोक्त परमोत्तम स्तव को उदीरित किया था ॥२२॥

२६—कश्यप कृति भगवत् स्तुति

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय एकशृङ्ग वृषसिन्धो वृषाकपे सुरवृष अनादिसभव रुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते ध्रुव धर्म वैकुण्ठ वृषावर्त्त अनादिमध्यनिधन धनंजय शुचिश्रव पृश्नितेजः निजजय अमृतशय सनातन त्रिधामन् तुषित महानत्त्व लोकनाथ पद्मनाभ विरञ्चे बहुरूप अक्षय अक्षर हव्यभुक् खण्डपरशो शक्र मुञ्जकेश हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर विरज. लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाभ हव्यभुक् गभस्तिनाथ शतक्रतु नाथ चन्द्ररथ सूर्यतेजः समुद्रवासः अजसहस्रशिरः सहस्र पाद अधोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रबाहो सहस्रमूर्त्ते सहस्रास्य सहस्रसभवविश्व त्वामाहुः पुष्पहास चरम त्वमेव वौषट् वषट्कार त्वामाहुरग्र्य मखेषु प्राशितार शतधार सहस्रधार वभूव भूवन्द्य भूनाथ भृगुपुत्र वेदवेद्य ब्रह्मशय ब्राह्मणप्रिय त्वमेव द्यौरसि मातारिश्वाऽसि धर्मोऽसि होता पोता हन्ता मन्ता नेता होमहेतु स्त्वमेव अग्रयश्च धाम्ना त्वमेव श्रुभिः सुभाण्ड इज्योऽसि सुमेधोऽसि समिधस्त्वमेव पतिर्गनिर्दाता त्वमसि मोक्षोऽसि योगोऽसि सृजसि धाता परमयज्ञोऽसि सोमोऽसि दीक्षितोऽसि दक्षिणाऽसि विश्वमसिस्थविर हिरण्यगर्भ नारायण त्रिनयन आदिवर्ण आदित्यतेजः महा पुरुष पुरुषोत्तम आदिदेव भूविक्रम त्रिविक्रम प्रभाकर शमो स्वयम्भूः भूतादिमहाभूतोऽसि विश्वभूत विश्व त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि विश्वभव ऊर्ध्वकर्मन् अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृतार्चिः अनन्तकर्म्मवश प्राग्वंशधी. त्वमश्वमेध वरा-

यिना वरदोऽसित्वम् । चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाम्या पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्या तुभ्य होत्रात्मने नमः ॥१

ओम् भगवान् वासदेव के लिये नमस्कार है । श्री कश्यप महर्षि ने कहा–हे एक शृङ्ग ! आपके अनेक अनन्त नाम हैं । आप वृषसिन्धु वृषाकपि-सुरवृष-अनादि सम्भव, रुद्रकपिल,विष्वक्सेन नामो वाले हैं । हे समस्त भूतो के स्वामिन् ! ध्रुव, वैकुण्ठ, वृषावर्त्त, अनादि मध्य निधन-धनञ्जय, शुचिश्र प्रश्निलेज, विजय और अमृतशय ये सब आपके ही नाम हैं । हे सनातन ! विधामन् ! तुषित, महातत्व, लोकनाथ, पद्म नाभ, विरञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हव्यभुक्त खण्ड परशु, चक्र, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, हृषीकेश, सूक्ष्म, महानियमधर, विरज-लोक प्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज, धर्मज, धर्मनाभ, गभस्तिनाथ-शात ऋतुनाथ, चन्द्रस्थ, सूर्यतेज आप ही हैं । समुद्र में वास करने वाले अज सहस्रशिर, सहस्र पाद, अधोमुख, महा पुरुष पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्त्ति, सहस्तास्य और सहस्र विश्व सम्भव आप ही को कहते हैं । पुष्प हास और चरम आप ही हैं । वौषट्, वषट्कार आप ही को कहते हैं । मखों मे अग्र्य, प्राशिता, शतधार, सहस्रधार आप ही हुए थे । भूपर वन्दना करने के योग्य, भू के नाथ, भृगु के पुत्र, वेदों के द्वारा जानने के योग्य, ब्रह्मशय, ब्राह्मणो को प्रिय आप ही हैं । आप ही द्यौ हैं-मातरिश्वा हैं-आप ही धर्म्म हैं-होता पोता, दन्ता, मन्ता, नेता और होम के हेतु भी आप ही हैं । धाम अर्थात् तेज मे सर्वाग्रणी आप ही हैं– श्रुवाओ के द्वारा यजन करने के योग्य सुभाण्ड आप हैं । सुन्दर मेधा वाले और समिध भी आप ही हैं । सब के पति, सब की गति अर्थात् उद्धारक, सबको देने वाले भी आप ही हैं । आप ही मोक्ष स्वरूप हैं योग के स्वरूप म भी आप ही रहते हैं । आप ही रहते हैं । आप ही सृजन किया करते हैं तथा धाताभी आप ही हैं । परमोत्कृष्ट यज्ञ के रूप में भी आप रहते हैं–आप ही सोम हैं–दीक्षित हैं–दीक्षित हैं-दक्षिणा भी आपका ही स्वरूप है । आप ही विश्व हैं तथा स्थविर हिरण्य गर्भ नारायण एव त्रिनयन ग बर भी आप ही हैं । आदि वर्ण-आदित्य

तेज, महापुरुष, पुरुषों में उत्तम-आदिदेव, भूविक्रम, त्रिविक्रम, प्रभाकर, शम्भु, स्वयम्भू और भूतादि महाभूत भी आप ही हैं, विश्वभूत तथा यह विश्व भी आप ही हैं। हे भगवन् ! आप इस विश्व की रक्षा करने वाले हैं। आप· सब में पवित्र रूप वाले हैं। विश्वम्भर, ऊर्ध्व कर्म्मा, अमृत, दिवस्पति, वाचस्पति, घृतार्चि, अनन्त कर्म्मवंश, प्राग्वश भी आप ही हैं। अश्वमेध और वरों के चाहने वालों को वरदान देने वाले आप ही हैं। चारों-चारों से दो से और पाँचों में तथा फिर दोनों से आपके लिए हवन किया जाता है ऐसे होत्रात्मा आपके लिये बारम्बार नमस्कार है ॥१॥

२७—अदिति कृत भगवत् स्तुति

नारायणस्तु भगवाञ्छ्रुत्वैवं परमं स्तवम् ।
ब्रह्मजेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥१
उवाच वचनं सम्यक्तुष्टः पुष्टपदाक्षरम् ।
श्रीमान्प्रीतमना देवो यद्वदेत्प्रभुरीश्वरः ॥२
वरं वृणुध्वं भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः
सुप्रीतोऽस्मि सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निश्चयात् ॥३
वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीनां नन्दवर्द्धनः ।
आदित्या अपि च श्रीमान्भगवानस्तु मे सुतः ॥४
अदितिर्देवमाता च एत मेवार्थमुत्तमम् ।
पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्तं वरार्थिनी ॥५
निःश्रेयसार्थं सर्वेषां देवतानां महेश्वर. ।
त्राता भर्ता च दाता च शरणं भवनः सदा ॥६

महामुनीन्द्र लोम हर्षण जी ने कहा—भगवान् नारायण ने इस प्रकार से कश्यप महर्षि के द्वारा किये गये परम स्तव का श्रवण किया था जोकि ब्रह्मा के श्रेष्ठ पुत्र तथा द्विजगण में अत्युत्तम कश्यप के द्वारा मुख से समुच्चारित किया गया था ॥१॥ इस स्तुति से अतीव सन्तुष्ट

होकर परम पुष्ट पद एवं अक्षरों वाले वचन श्रीमान् प्रीति वाले देव प्रभू एव ईश्वर ने कहे थे। आप कोई भी वरदान माँगलो, आपका कल्याण होगा। हे सुरोत्तमो ! मैं अब आप लोगों को वरदान देता हू। कश्यप जी न कहा—हे सुर श्रेष्ठ ! मैं आप सब लोगों के ही निश्चय से अत्यन्त प्रसन्न होगया हूँ ।।२-३।। इन्द्रदेव का छोटा भाई अपनी ज्ञाति क जनो के आनद का वर्द्धन करने वाला है और आदित्य भी है। श्रीमान् भगवान् सुत होवें ।।४।। देवो की माता अदिति ने इमी उत्तम अर्थ के लिए वरदान चाहने वाली होकर वर देने वाले भगवान् से पुत्र क लिए ही कहा था ।।५।। देवगण ने कहा—महेश्वर प्रभु समस्त देवो के कल्याण के लिये त्राण करने वाले दाता और सदा हम सब के रक्षक होवें ।।६।।

ततस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवास्तान्स्वयमेव च ।
सर्वेषामेव युष्माक ये भविष्यन्ति शत्रवः ।
मुहूर्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः ।।७
हत्वाऽसुरगणान्सर्वान्यज्ञभागाग्र भोजिनः ।
हव्यादाश्च सुरान्सर्वान्कव्यादाश्च पितॄनपि ।।८
करिष्ये विबुधश्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।
यथायातेन मार्गेण निवर्तध्व सुरोत्तमा ।।६
एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
तत' प्रहृष्टमनस पूजयन्ति स्म त प्रभुम् ।।१०
विश्वे देवा महात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च ।
नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रहसा ।।११
प्रयाताः प्राग्दिश सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम् ।
ते कश्यपाश्रम गत्वा कुरुक्षेत्रवन महत् ।।१२
सप्रसाद्यादिति तत्र तपसे ता न्ययोजयन् ।
सा चचार तपो घोर वर्षाणामयुत तदा ।।१३
तस्या नाम्ना वन दिव्य सवकामप्रद शुभम् ।
आराधनाय कृष्णस्य वाग्यता वायुभोजना ।।१४

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने स्वयं ही उन सब देवों से कहा था कि आप सब लोगों के जो भी कोई शत्रु होंगे वे सब मेरे आगे एक मुहूर्त भर भी स्थित न होंगे ।।७।। समस्त असुरों को, जो इस समय में यज्ञ के भागों के अग्रभोजी बन रहे हैं, मार कर सब सुरों को हव्य ग्रहण करने वाले और सब पितरों को कव्य-भोजी कर दूँगा, हे विबुधो में श्रेष्ठो ! आप सुरों में उत्तम जो हैं वे सभी पारमेष्ठ्य् कर्म के द्वारा यातायात मार्ग से निवृत्त हो जाओ अर्थात् वापिस चले जाओ ।।८-९।। इस प्रकार से प्रभविष्णु भगवान् विष्णु के द्वारा कहने पर सब देवता परम प्रसन्न मन वाले होकर उन प्रभु का पूजन करने लगे थे ।।१०।। विश्वेदेवा जो महान् आत्मा वाले थे, महर्षि कश्यप और अदिति सब ने सुरों के स्वामी उस देव के लिये प्रणाम किया था और फिर सब विस्तृत कश्यपाश्रम को प्राग्दिशा में प्रयाण कर गये थे । वे कश्यप के आश्रम में पहुँच कर महान् कुरुक्षेत्र वन में गये थे ।।११-१२।। वहाँ अदिति देवी को भली भाँति प्रसन्न कर उसको तपश्चर्या करने के लिये नियोजित किया था । उस देवी अदिति ने भी उस समय में दश हजार वर्ष व्यापी महान् घोर तप किया था ।।१३।। उसी के नाम से वह दिव्य वन सम्पूर्ण कामनाओं के प्रदान करने वाला परम शुभ हो गया था । भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने के लिये पूर्ण मौनवती और केवल वायु का ही भोजन करने वाली होकर तपस्या कर रही थी ।।१४।।

दैत्यैर्निराकृतान्दृष्ट्वा समयान्नृपिसत्तमान् ।
वृथापुत्राऽहमिति सा निर्वेदात्प्रणता हरिम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः स्तुतिभिः सा तपोधना ।।१५

शरण्य शरण विष्णुं प्रणता भक्तवत्सलम् ।
देवदैत्यमय चादिमध्यान्तस्वरूपिणम् ।।१६

नम. कृत्यातिनाशाय नमः पुष्करमालिने ।
नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे ।।१७

नम पङ्कजनेत्राय नम: पङ्कजनाभये ।
नम: पङ्कजसभूतिसभवायात्मयोनये ।।१८
श्रिय: कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे ।
नम: पद्मादिहस्ताय नम: कनक वाससे ।।१९
तथाऽत्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने ।
निर्गु णाय विशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे ।।२०
जगत्सतिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते ।
नम: स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे ।।२१

दैत्यो के द्वारा निराकृत (अपमानित) और भय से संयुत ऋषि वृन्दो को देखकर वह मनमें विचार करती थी कि मैं तो वृथा ही पुत्रों वाली हुई हूँ—ऐसा चिन्तन करते हुए ही उस देवी ने अत्यन्त निर्वेद पूर्वक हरि के चरणों मे प्रणत होकर उनकी अभीष्ट वाणियो से युक्त स्तुतियो के द्वारा हरि का स्तवन कर उन्हें तपोधन वाली ने तुष्ट किया था ।।१५।। जो भगवान् विष्णु शरण्य और शरण अर्थात् शरणागतों की रक्षा करने वाले थे तथा जो देव एव दैत्यो से परिपूर्ण तथा भक्त वत्सल थे उनकी ही उसने प्रणत होकर प्रार्थना की थी जिसका स्वरूप ही आदि-मध्य तथा अन्त वाला था ।।१६।। अदिति ने कहा—हे भगवन् ! आप कृतार्त्ति के नाश करने वाले हैं और पुष्कर माला धारी हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है । आपको मेरा नमस्कार है । आप परम कल्याण करने वाले और प्राणियो के कल्याण करने के लिए आदि वेधा हैं ऐसे आपको मेरा प्रणाम है ।।१७।। पकज के तुल्य नेत्रो वाले तथा नाभि में पकज प्रसूत करने वाले आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है । पकज से उत्पन्न आत्मयोनि आप को प्रणाम है ।।१८।। श्री के कान्त परमदान्त, दान्तदृश्य, सुदर्शन, चक्रधारी, पद्म प्रभृति आयुधधारी और कनक अर्थात् पीत वस्त्रधारी आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम है ।।१९।। आत्मज्ञान के लिये यज्ञ रूपी-योगियों के द्वारा चिन्तन के योग्य-परमयोगी गुणो से रहित-विशेष स्वरूप वाले, ब्रह्मरूपी हरि के लिये नमस्कार है ।।२०।। जिसमे सम्पूर्ण जगत् सस्थित रहता है और जो जगत् को

दिखलाई नहीं देते हैं, ऐसे स्थूल और अत्यन्त सूक्ष्म शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाले देव के लिए मेरा नमस्कार है ॥२१॥

य न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः ।
अपश्यद्भिर्जगद्यश्च दृश्यते हृदि संस्थितः ॥२२
बहिर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः ।
यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिलं जगत् ॥२३
तस्मै समस्तजगता मुनाथाय नमो नमः ।
आद्यः प्रजापतिर्यस्तु पितृणां यः परः पतिः ।
पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे ॥२४
यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते ।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते ॥२५
यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे ॥२६
यं पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम् ।
न पुनर्जन्ममरणं प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥२७
यो यज्ञं यज्ञपुरुष इज्यते यज्ञमास्थितः ।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥२८

मनुष्य सम्पूर्ण इस जगत् को देखते हुए भी जिस प्रभु को नहीं देख पाते हैं। इस जगत् को नहीं देखते हुओं के द्वारा भी जो हृदय में स्थित दिखलाई दिया करते हैं। बाहिर ज्योति से युक्त भी जो अलक्ष्य है और ज्योति से भी पर जो लक्षित होता है। जिसमें ही अन्दर स्थित तथा जिससे ही प्रसूत यह सम्पूर्ण जगत् जिसका ही है उन समस्त जगतों के नाथ एक अति सुयोग्य स्वामी के लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है। जो आद्य प्रजापति है और जो पितरों का परम पति है तथा सुरों का भी जो स्वामी है उन भगवान वेधा श्रीकृष्ण के लिए मेरा प्रणाम है ॥२२-२४॥ जो प्रवृत्ति वाले तथा निवृत्ति युक्त कर्मों से विरक्त है एवं स्वर्ग तथा अपवर्ग (मोक्ष) के फल प्रदान करने वाले हैं उन गदाधारी प्रभु को मेरा म मेरा बारम्बार प्रणाम निवेदित है ॥२५॥ मन से

पर्यन्त जिसने इस स्थावर-जङ्गम जगत् को व्याप्त कर रक्खा है जो समुनद्ध माया जाल है उस उपेन्द्र को मेरा प्रणाम समर्पित है ॥३१॥ जो तीसरे स्वरूप में स्थित होकर अखिल जगत् का भरण करने वाला ईश्वर है उस विश्व के पति एवं प्रजापति विष्णु को मैं प्रणाम करती हूँ ॥३२॥ जो इस असुरमय तप को उसके बिना ही नष्ट कर दिया करता है जोकि रात्रि में उत्पन्न होता है उस सूर्य रूपी उपेन्द्र को मैं प्रणाम करती हू ॥३३॥ जिसके चन्द्र-सूर्य रूपी दो नेत्र सम्पूर्ण लोक में शुभ एवं अशुभ कर्म को सवदा देखा करते हैं उस उपेन्द्र को प्रणाम करती हूँ ॥३४॥ जिस सर्वेश्वर में निरत ही यह सत्य मैंने बतलाया है जो अनृत रहित-अज एवं अव्यय प्रभु विष्णु हैं उनको नमस्कार है॥३५॥ मैंने जो यह पुनः सत्य वाणी कही है अतः हे जनार्दन ! उसी आपके सत्य से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जावें यही मेरी विनम्र प्रार्थना आपके चरणों में है ॥३६॥

२८—अदिति को वर प्रदान वर्णन

एवं स्तुतोऽथ भगवान्वासुदेव उवाचताम् ।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः ॥१
मनोरथास्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान् ।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः ॥२
शृणु त्वं च महाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः ।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति ॥३
यश्चेह मद्वने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति ।
सर्वे कामाः समृध्यन्ते मनसा यानिहेच्छति ॥४
दूरस्थोऽपि वनं यस्तु ह्यदिते स्मरते नरः ।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन्नरः ॥५
यश्चेह ब्राह्मणान्पञ्च त्रीन्वा द्वावेकमेव वा ।
भोजयेच्छ्रद्धया युक्तः स याति [illegible]

महर्षि लोमहर्षण जी ने कहा—इस भाँति जब अदिति के द्वारा स्तुति की गई तो भगवान् वासुदेव ने उससे कहा जोकि समस्त प्राणियों को अदृश्य रहते हैं वे उसको उस समय में दर्शन प्रदान कर रहे थे ॥१॥ श्रीभगवान् ने कहा—हे अदिति ! जिन अपने मन के अभीष्ट मनोरथों को तू चाहती है उन सभी मनोरथों को तू प्राप्त कर लेगी। तू तो बहुत बड़ी धर्म की ज्ञाता है। मैं प्रसन्न हूँ अब मेरे प्रसाद से यह सभी सफल होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२॥ हे महा भाग्य वाली ! अब तुम श्रवण करो जो कुछ वरदान प्राप्त करना हृदय में चाहती हो। मेरा दर्शन कभी भी विफल नहीं हुआ करता है ॥३॥ मेरे इस वन में जो कोई तीन रात्रि भी स्थित होकर साधना करेगा उसके सभी काम जिनकी वह मन में इच्छा करेगा सफल हो जाया करेंगे ॥४॥ दूर में भी स्थित कोई मनुष्य यदि अदिति की तपश्चर्या उस वन का स्मरण कर लेता है वह भी परम पद को चला जाया करता है उस वन की ऐसी महिमा है जो उसी में निवास करता है उसके लिये क्या कहा जावे ॥५॥ यहाँ पर जो भी कोई पाँच-तीन-दो और एक भी ब्राह्मणों का श्रद्धा से युक्त होकर भोजन कराता है वह परम गति को प्राप्त होता है ॥६॥ अदिति ने कहा—हे देवेश्वर ! यदि आप मेरी भक्ति से प्रसन्न हैं तो अपने भक्तों पर प्यार करने वाले प्रभो ! मैं यह चाहती हूँ कि मेरा पुत्र वासव त्रैलोक्य का अधिपति होवे ॥७॥

यदि देव: प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल ।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः ॥७

हृत राज्य हृतश्चास्य यज्ञभाग इहासुरैः ।
त्वयि प्रसन्ने वरद तत्प्राप्नोतु सुतोमम ॥८

हृत राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव ।
प्रपन्नदायविभ्रंशः पीडा मे कुरुते हृदि ॥९

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम् ।
स्वांशेन चैव ते गर्भे संभविष्यामि कश्यपात् ॥१०

तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः ।
तानह निहनिष्यामि निर्वृता भव नन्दिनि ॥११

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन ।
नाह त्वामुदरे वोढुमीश शक्ष्यामि केशव ।
यस्मिन्प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्त्वमीश्वरः ॥१२

अहं च त्वां वहिष्यामि स्वात्मानं चैव नन्दिनि ।
न च पीडां करिष्यामि स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥१३

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे ॥१४

यहाँ पर असुरों ने इसके राज्य का हरण कर लिया है और यज्ञों का भाग भी इस विचारे का असुरों के द्वारा अपहृत हो गया है हे वरद ! अब आपके प्रसन्न होने पर वह उसको प्राप्त कर लेवे ॥८॥ हे केशव ! मेरे पुत्र का राज्य अपहृत हो गया है—इसका उसको दुःख नहीं है किन्तु प्रपन्न के दाय के भ्रंश हो जाने से मेरे हृदय में अत्यन्त पीड़ा होती है ॥९॥ भगवान् ने कहा—हे देवि ! मैंने अपना प्रसाद (प्रसन्नता) तुम्हारे पर कर दिया है जैसा कि तुमको अभीष्ट है। मैं अपने ही अंश से आपके गर्भ में कश्यप महर्षि से उत्पन्न होऊँगा ॥१०॥ जब मैं आपके गर्भ से समुत्पन्न हो जाऊँगा तो जो भी सुरों के शत्रु हैं उनको मैं मार गिराऊँगा। हे नन्दिनि ! अब आप निर्वृत हो जाओ ॥११॥ अदिति ने कहा—हे देवदेवेश ! आप प्रसन्न होइये। हे विश्व भावन ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है। हे केशव ! आपतो सबके ईश हैं मैं आप को अपने उदर में वहन नहीं कर सकूँगी जिन आप में सभी कुछ प्रतिष्ठित है क्योंकि आप तो सम्पूर्ण विश्व की योनि हैं और आप सबके ईश्वर हैं ॥१२॥ श्री भगवान् ने कहा—हे नन्दिनि ! मैं आपको और स्वयं आपने आत्मा को वहन करूँगा। मैं आपको कुछ भी पीड़ा नहीं करूँगा। आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ ॥१३॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—इतना कह कर भगवान के अन्तर्धान हो जाने पर अदिति ने गर्भ धारण किया था ॥१४॥

गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः ।
चकम्पिरे महाशैला जग्मुः क्षोभं महाब्धयः ॥१५
यतो यतोऽदिनिर्याति ददाति पदमुत्तमम् ।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम द्विजपुङ्गवाः ॥१६
दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने ।
बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमात्मना ॥१७

भगवान् श्रीकृष्ण के गर्भ में संस्थित हो जाने पर सम्पूर्ण भूमि चलायमान हो गई थी,जो महान् शैल थे वे सब कम्पित हो गये थे और महासागर क्षोभ को प्राप्त होगये थे ॥१५॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! जहाँ-जहाँ भी अदिति जाती थी और अपना उत्तम पद रखती थी वहाँ-वहाँ पर ही खेद से यह मही झुक आया करती थी ॥१६॥ भगवान् मधुसूदन के गर्भ में संस्थित हो जाने पर सभी दैत्यों के तेज की हानि होगई थी अर्थात् असुरों का तेज क्षीण हो गया था जैसा कि परमात्मा ने कहा था ॥१७॥



२६—प्रह्लाद कृत बलि निन्दा एवं शाप

निस्तेजसोऽसुरान्दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः ।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥१
तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना ।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहताइव ॥२
दुरिष्टं किं नु दैत्यानां किं कृत्या सुरनिर्मिता ।
नाशायैषां समुद्भूता येन निस्तेजसोऽसुराः ॥३
इत्थं दैत्यवरस्तेन पृष्टः पौत्रेण ब्राह्मणाः ।
चिरं ध्यात्वा जगादैवमसुरं तं तदा बलिम् ॥४
चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहजां स्थितिम् ।
नद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः ॥५

सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः ।
देवताना परा लक्ष्मीः कारणेनानुमीयते ॥६
महदेतन्महाबाहो कारण दानवेश्वर ।
न ह्यल्पमिति मन्तव्य क्रिया कार्या कथञ्चन ॥७

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—दैत्यराज बलि ने जब देखा था कि समस्त असुर निस्तेज हो गये हैं तब उसने अपने पितामह प्रह्लाद से इसके विषय में पूछा था ॥१॥ बलि ने कहा—हे तात ! इस समय में सभी दैत्य तेज से हीन हो गये हैं मानों इन दैत्यों को अग्नि ने दग्ध कर दिया हो, सबकी ऐसी ही दशा हो गई है । क्या कारण है ? क्या ये सब सहसा ही आज ब्रह्मदण्ड से हत की तरह होगये हैं ?॥२॥ यह क्या कोई दैत्यो का दुरिष्ट है या कोई कृत्या सुरो ने निर्मित की है जो कि समुत्पन्न हो गई है और नाश किया चाहती है ? जिस कारण से ये सभी दैत्य निस्तेज हो गये हैं ॥३॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—हे ब्राह्मण वृन्द ! उस दैत्यराज बलि ने जो कि प्रह्लाद का पौत्र था प्रह्लाद से इस तरह पूछा तो उसने चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके उस समय असुर बलि से कहा—प्रह्लाद ने कहा—पर्वतमाला चलायमान हो गई है और यह भूमि भी अपनी स्वाभाविक स्थिति का त्याग करती है । नदियाँ तथा सागर क्षोभ युक्त हो गये हैं । समस्त दैत्य तेज से हीन कर दिये हैं ॥४-५॥ सूर्योदय होने पर जिस प्रकार से पहिले जाया करते थे उस तरह अब ग्रह गमन नहीं कर रहे हैं । यह देवताओं की परालक्ष्मी के ही कारण ऐसा हो रहा है—ऐसा अनुमान किया जाता है ॥६॥ हे महाबाहो ! आप तो दानवों के राजा हैं । इसका कोई साधारण नहीं बल्कि महान् ही कारण है । इसको तुम छोटा न समझना किसी प्रकार से कोई क्रिया अवश्य ही करनी चाहिए ॥७॥

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः ।
अत्यर्थभक्तो देवेश जगाम मनसा हरिम् ॥८
स ध्यान प्रथम कृत्वा प्रह्लादस्तु ततोऽसुरः ।
विचारयामास ततो यथा देव जनार्दनम् ॥९

स ददर्शोदरे तस्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम् ।
तदन्तश्च वसूंश्च रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥१०
साध्यान्विश्वांस्तथा देवान्गन्धर्वोरगराक्षसान् ।
विरोचन च तनय बलि चासुरनायकम् ॥११
जम्भ कुजम्भ नरक बाणमन्यास्तथाऽसुरान् ।
आत्मान गगन वायु मनस्तोय हुताशनम् ॥१२
समुद्राद्रिद्रुमद्वीपान्सरासि च पशून्महीम् ।
वयोमनुष्यानखिलास्तथैव च सरीसृपान् ॥१३
समस्तलोकस्रष्टार ब्रह्माण भवमेव च ।
ग्रहनक्षत्रताराश्चान्पीदर्चैव प्रजापतिम् ॥१४
सपश्यन्विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात्पुन ।

वत्स ज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम् ।
तेजसो हानिरुत्पन्ना तच्छृणु त्वमशेषतः ॥१६
देवदेवो जगद्योनिर्जगदादिरजः प्रभुः ।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः ॥१७
परावराणां परमं परापरवतां गतिः ।
प्रभुः प्रमाणं मानानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः ।
स्थितिं कर्त्तुं जगन्नाथोऽदित्या गर्भगः प्रभुः ॥१८
प्रभुः प्रभूणां परमः पराणामनादिमध्यो भगवाननन्तः ।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेकः कर्तुं महात्माऽदितिजोऽवतीर्णः ॥१९
न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनिर्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमिश्राः ।
जानन्ति दैत्याधिपते स्वरूपं स वासुदेवः कलयाऽवतीर्णः ॥२०
यमक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यं ज्ञानविधूतपापाः ।
यस्मिन्प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति तं वासुदेवं प्रणमामि चाद्यम् ॥२१

प्रह्लाद ने कहा था कि हे वत्स ! मैंने सभी कुछ जान लिया है जिस कारण से आप लोगों को यह तेज की हानि उत्पन्न हुई है । अब आप पूर्ण रूप से मुझसे इसका श्रवण करो ॥१६॥ देवों के भी देव-इस सम्पूर्ण जगत् के कारण-जगत् के आदि स्वरूप, अजन्मा, प्रभु, अनादि, विश्व के आदि वरेण्य—वरद, हरि जो परावरों में परम है और परापर वालों की गति अर्थात् उद्धारक हैं । जो मानों के भी प्रमाण है तथा सातों लोकों के गुरु के भी गुरु हैं वह जगत के नाथ प्रभु स्थिति करने के लिये अदिति के गर्भगत हुए हैं ॥१७-१८॥ यह प्रभुओं के भी परम प्रभु हैं तथा परों के अनादि एवं मध्य हैं । यह अन्त से रहित भगवान् है । यह एक ही हैं जो महात्मा इस त्रिभुवन को अपने अंश से सनाथ करने के लिये अदिति के गर्भ से जन्म ग्रहण कर अवतीर्ण हो रहे हैं ॥१९॥ जिसके स्वरूप को हे दैत्यपते ! रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र और मरीचि आदि महा मुनीन्द्र भी नहीं जानते हैं वही भगवान् वासुदेव साक्षात् कला से अवतीर्ण हो रहे हैं ॥२०॥ जिन प्रभु को वेदों के विशारद मनीषी गण अक्षर बतलाते हैं और जिसमें ही पापों से

विमुक्त होकर प्रवेश किया करते हैं। जब उनकी चरणों की सन्निधि मे पहुँच जाते हैं तो फिर जन्म भ्रमण नहीं करते हैं मैं उन प्रभु वासुदेव को आज सादर प्रणाम करता हूँ ॥२१॥

भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्रम् ।
लयं च यस्मिन्प्रलयप्रयान्तितवासुदेवप्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम् ॥२२
रूपं च चक्षुर्ग्रहणे त्वगेषा स्पर्शग्रहेऽयो रसना रसस्य ।
घ्राणं च गन्धग्रहणेनियुक्तं त्वग्घ्राणचक्षूंषि न तानि यस्य ॥२३
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या ह्यनादिमध्यं त्वनघं च देवम् ।
नमाम्यहं ते हरिमीशितारंलोकैकनाथभवभीतिनाशनम् ॥२४
येनैकदंष्ट्रेण समुद्धृतेयं धराऽचला धारयतीह विश्वम् ।
इदं च हर्ता सकलंजगद्यस्तमीड्यमीशंप्रणतोऽस्मिविष्णुम् ॥२५
अशावतीर्णेन च येन गर्भ हृतानि तेजांसि महासुराणाम् ।
नमामि तं देवमनन्तमीशमशेषसंसारतरोः कुठारम् ॥२६
देवो जगद्योनिरयं महात्मा स षोडशांशेन महासुरेन्द्र ।
सुरेन्द्रमातुर्जठरं प्रविष्टो हृतानि वस्तेन बलं वपूंषि ॥२७
तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम् ।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिका ॥२८

समस्त भूत जान जिससे प्रादुर्भूत होते हैं जिस प्रकार महासागर से निरन्तर तरंग उत्पन्न होती रहा करती हैं। जब प्रलय का काल आता है तो उसी प्रभु के रूप में सब लय हो जाया करते हैं उन्हीं अचिन्तनीय वासुदेव की सेवा में मैं प्रणत होता हूँ ॥२२॥ चक्षु रूप के ग्रहण में-यह त्वचा स्पर्श के ग्रहण में-रसके ग्रहण में रसना, गन्धग्रहण में घ्राण नियुक्त हैं किन्तु उसके ये त्वग्घ्राणचक्षु नहीं हैं ॥२३॥ वह सर्वेश्वर युक्ति से ही जानने के योग्य होता है। उस अनादि मध्य वाले, अनघ देव को मैं नमस्कार करता हूँ,जो पापों के हर्ता हरि-ईशिता-लोकों के एक नाथ और संसार के भय के नाश करने वाले हैं ॥२४॥ जिसने वराह अवतार धारण कर अपनी एक ही दाढ़ पर इस सम्पूर्ण भूमि को

धारण कर लिया था और अब भी विश्व को धारण किये रहते हैं। जो इस जगत् के हर्त्ता हैं उन स्तुति करने के योग्य ईश विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२५॥ जिस अंश से अवतीर्ण ने समस्त महान् असुरों के तेजों का हरण कर लिया है उन अनन्त ईश और इस संसार रूपी वृक्ष का छेदन करने के लिये कुठार रूप वाले प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥ हे महा सुरेन्द्र यह महात्मा ही जगत् का कारण स्वरूप अर्थात् उत्पन्न करने वाला है। वह ही प्रभु इस समय षोडश अंश से सुरेन्द्र की माता के उदर मे प्रविष्ट होकर संस्थित हैं। उसी ने आप लोगों के तेज-बल और वपुओं का हरण किया है ॥२७॥ यह प्रह्लाद की उक्ति को श्रवण कर राजा बलि ने कहा—बलि बोला—हे तात ! यह हरि नाम वाला कौन है जिससे हम लोगों को यह महान् भय आगया है ? मेरे पास तो वासुदेव से भी बल में अधिक सैकड़ों दैत्य हैं ॥२८॥

विप्रचित्तिःशिविःशंभुर्जम्भः कुम्भस्तथैव च ।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहनुः ॥२९
वातापिः प्रवशः शुम्भः कुकुराक्षश्च दुर्जयः ।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा ॥३०
महाबला महावीर्या भूभारधरणक्षमाः।
एषामेकैकशः कृष्णे न वीर्यबलसंमितः ॥३१
पौत्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यपुङ्गवः ।
सक्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥३२
विनाशमुपयास्यन्ति दैत्यास्ते चापि दानवाः ।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान् ॥३३
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम् ।
त्वामृते पापसंकल्पः कोऽन्य एवं वदिष्यति ॥३४
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः ।
सब्रह्मकास्तथा देवा; स्थावरान्ताश्च जातयः ॥३५

त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीवनम् ।
समुद्रद्वीपलोकाश्च यच्चेङ्गति च नेङ्गति ॥३६
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्त व्यापिनः परमात्मनः ।
एकैकांशकलाजन्म कस्तमेव वदिष्यति ॥३७

राजा बलि उन दैत्यों के नाम बतलाने लगे जो महान् बलशाली थे—विप्रचित्ति, शिवि, शम्भु, जम्भ, कुम्भ, हयशिरा, अश्वशिरा, भगकार महाहनु, वातापि, प्रबल, शुम्भ, कुकुराक्ष, दुर्जय ये सब और इनके अतिरिक्त अन्य भी दैत्य तथा दानव हैं ॥२६ ३०॥ जो महान् बल वाले, अधिक वीर्य युक्त और इस भूमि के धारण करने में समर्थ हैं इनमें एक-एक ऐसा है जो कृष्ण के बल-वीर्य में समान है ॥३१॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—पौत्र के इस वचन को सुनकर दैत्यों में परम श्रेष्ठ प्रह्लाद क्रोध में भर कर उस भगवान् वैकुण्ठनाथ पर आक्षेप करने वाले बलि से बोले ॥३२॥ वे सभी दैत्य और दानव सब विनाश को प्राप्त हो जायगे जिनका तुम जैसा दुष्ट बुद्धि वाला और विवेक हीन राजा है ॥३३॥ देवों के भी देव—महाभाग-अज और विभु भगवान् वासुदेव के प्रति तुम्हारे बिना अन्य कौन ऐसा कहेगा ॥ ३४ ॥ जो ये समस्त दैत्य तथा दानव आपने अभी बतलाये हैं, ब्रह्मा के सहित देवगण और स्थावरान्त जातियाँ, तुम, मैं और अद्रि, द्रुम, नदी तथा वन के सहित यह सम्पूर्ण जगत्, समुद्र, द्वीप और लोक जो भी इंगित होता है और इंगित नहीं होता है। यह सभी जिस अभिवादन के योग्य एवं वन्दनीय-व्यापी-परमात्मा के एक-एक अंश कला से जन्म वाले हैं, ऐसा कौन है जो उसको इस प्रकार से कहेगा ॥३५-३७॥

ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम् ।
दुर्बुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम् ॥३८
शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताऽधमः ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवावमानकः ॥३९
तिष्ठत्वनेकसंसारसङ्घाघौघविनाशिनी ।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेद्यो भवता न किम् ॥४०

न मे प्रियतर कृष्णादपि देह महात्मनः।
इति जानात्यय लोको भवाश्च दितिजाधम ॥४१
जानन्नपि प्रियतर प्राणेभ्योऽपि हरि मम ।
निन्दा करोपि तस्य त्वमकुर्वन्गौरव मम। ॥४२

तुम तो अब विनाश के अभिमुख हो और पूर्णतया विवेकहीन हो—दुर्बुद्धि—अजितात्मा तथा वृद्धो के शासन को उल्लघन करने वाले भी हो, ऐसे तुम्हारे बिना अन्य कोई भी नही है ॥३८॥ मैं स्वय शोक करने के योग्य हूँ कि जिस मेरे घर मे अत्यधम तेरा पिता उत्पन्न हुआ था जिस के तुम जैसा पुत्र पैदा हुआ है जो देवों के भी देव प्रभु का अपमान करने वाला है ॥३९॥ अनेक ससारो के सघो के अघो के समूह को विनाश करने वाली श्रीकृष्ण मे भक्ति जिसके अन्दर है ऐसे मेरे रहते हुए भी आपने मेरे कथन का आदर क्यो नही किया था ? ॥४०॥ मुझे उन महान् आत्मा वाले कृष्ण से भी प्रिय मेरा देह भी नही है—यह सम्पूर्ण लोक इस बात को जानता है और दितिजों में महान् अधम आप भी अच्छी तरह जानते है ॥४१॥ मेरे प्राणों से भी अधिक प्रिय मेरे हरि को जानते हुए भी मेरा कुछ भी गौरव न करते हुए तुम स्वय उन हरि भगवान् की निन्दा करते हो ॥४२॥

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले ।
ममापि सवजगता गुरुर्नारायणो हरि ॥४३
निन्दा करोपि तस्मिंस्त्व कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ ।
यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद्भ्र शमेष्यसि ॥४४
स देवो जगता नाथो वले मम जनार्दन ।
न त्वह प्रत्यवेक्ष्यस्ते पितुर्मान्योऽत्रयो गुरुः ॥४५
एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम्।
नापेक्षित त्वया यस्मात्तस्माच्छाप ददामि ते ॥४६
यथा मे शिरसश्छेदादिद गुरुतर वचः।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥४७

यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे ।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥४८

हे बलि! विरोचन आपका गुरु अर्थात् पिता है और उस विरोचन का भी पिता मैं हूँ। ऐसे मेरे भी गुरु जो समस्त जगतों के गुरु हैं नारायण हरि हैं ॥ ४३ ॥ उन भगवान् श्रीकृष्ण की जो गुरु के गुरु के भी गुरु हैं तुम निन्दा करते हो। इसी कारण से अब तुम इस संसार में शीघ्र ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाओगे ॥४४॥ हे बलि! यह देव जगतों का नाथ है और यह जनार्दन प्रभु मेरा भी नाथ है। क्या तुमने मेरे पिता के भी मान्य के गुरु का आदर नहीं करना चाहिए था जोकि इस समय में बिल्कुल भी नहीं किया है ॥४५॥ उन भगवान् जगद्गुरु की निन्दा करते हुए तुमने किसी की भी परवाह नहीं की थी—इतने ही अपराध से मैं तुझे अब शाप देता हूँ ॥४६॥ मेरे शिर का छेदन करने से भी अधिक गुरुतर यह तेरे निन्दा करने वाले वचन हैं जो भगवान् अच्युत पर आक्षेप करने वाले हैं, इस समय में अपने मुख से कहे हैं। इसलिये तू राज्य से भ्रष्ट हो जाओ ॥४७॥ इस संसार में भगवान् कृष्ण से अन्य कोई भी भवार्णव को परित्राण करने वाला नहीं है। मैं बहुत ही शीघ्र तुमको राज्य से हीन देखूंगा। तुमने निन्दा करके महान् अपराध किया है ॥४८॥

३०—ब्रह्मा कृत वामन स्तुति

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा गुरोर्वचनमप्रियम् ।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥१
प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहृते मयि ।
बलावलेपमूढेन मयैतद्वाक्यमीरितम् ॥२
मोहापहृतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम ।
यच्छतोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम् ॥३

राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम् ।
विषण्णोऽसि यथा तात तथैवाविनयः कृतः ॥४
त्रलोक्यैश्वर्यमन्यद्वा किमपीह न दुर्लभम् ।
संसारे दुर्लभास्तात गुरवो ये भवद्विधाः ॥५
तत्प्रसीद न मे कोप कर्त्तुमर्हसि दैत्यप ।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽहं परितप्ये दिवानिशम् ॥६
वत्स कोपेन मे मोहो जनितस्तेन ते मया ।
दत्तः शापो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम ॥७

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—उस दैत्यों के पति बलि ने इस प्रकार से अपने गुरु देव के ये परम अप्रिय वचनों का श्रवण किया था और फिर बारम्बार प्रणिपात करके उनको प्रसन्न किया था ॥१॥ बलि ने कहा—हे तात ! आप प्रसन्न हो जाइये । मोह से हत मुझ पर अब आप कोप न करिये । बल के घमण्ड में आकर मैंने ऐसे दुर्वचन कह डाले थे ॥२॥ हे दितिजों में महान् श्रेष्ठ ! मोह से उपहृत विज्ञान वाला मैं महान् पापी हूँ । आपने मुझ जैसे दुष्ट आचार वाले को जो भी इस समय में शाप दिया है वह आपने बहुत ही उचित किया है ॥३॥ मुझे राज्य का भ्रंश और यश का भ्रंश प्राप्त करना ही होगा । फिर भी हे तात ! मैंने बहुत ही अधिक अविनय का काम किया है, मैं बहुत ही विषाद से युक्त हूँ ॥४॥ त्रिलोकी का ऐश्वर्य अथवा अन्य भी कुछ इस संसार में दुर्लभ नहीं है । हे तात ! इस संसार में आपके समान गुरु वर्ग्य ही परम दुर्लभ हैं ॥५॥ हे दैत्यप ! इसलिए आप अब मुझ पर प्रसन्न होइये और कोप न करिये क्योंकि मैं अब आपके कोप का पात्र होने के योग्य नहीं हूँ । आपके कोप से परिदग्ध मैं रात दिन परितप्यमान रहूँगा ॥६॥ प्रह्लाद ने कहा—हे वत्स ! उस कोप से मुझे मोह उत्पन्न हो गया था और इसी हेतु से मैंने तुमको शाप दे दिया था क्योंकि उस मोह ने मेरे विवेक का अपहरण कर लिया था ॥७॥

यदि मोहेन मे ज्ञानं न क्षिप्तं स्यान्महासुर ।
तत्कथं सर्वगं जानन्हरिं कश्चिच्छपाम्यहम् ॥८

योऽयं शापो मया दत्तो भवते दैत्यपुंगव ।
भाव्य मेतेन ते नूनं तस्मात्त्वं मा विषीद वै ॥६
अद्य प्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ ।
भवेस्त्व भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥१०
शाप प्राप्य च मे वीर देवेशः संस्मृतस्त्वया ।
तथा तथा वदिष्यामि श्रेयस्त्वं प्राप्स्यसे यथा ॥११
अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम् ।
क्रमेणैव हरिर्वृद्धि देवः प्राप्तो महायशाः ॥१२
ततो मासे च दशमे काले प्रसव आगते ।
अजायत स गोविन्दो भगवान्वामनाकृतिः ॥१३
अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन्सवामरेश्वरे ।
देवाश्च मुमुचुर्दुःख देवमाताऽदितिस्तथा ॥१४

प्रह्लाद ने कहा था कि हे महासुर ! यदि मोह के द्वारा ज्ञान क्षिप्त न होता तो मैं हरि को सर्वत्र विद्यमान रहने वाले जानते हुए भी कैसे किसी को शाप दे डालता ॥८॥ जो यह शाप हे दैत्य पुंगव ! मैंने तुम को दिया है। यह सब तुमको होगा तो अवश्य ही किन्तु इसका विषाद तुमको नहीं करना चाहिए ॥६॥ आज से लेकर अब आगे भविष्य में तुम देवेश-भगवान् अच्युत हरि में जो अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं आपकी भक्ति हो जायगी और फिर वही प्रभु तुम्हारा त्राण करने वाले भी होंगे ॥१०॥ हे वीर ! तुमने इस मेरे शाप को प्राप्त करके देवेश का संस्मरण कर लिया है। अब मैं वही-वही कहूँगा जिससे तुमको श्रेय की प्राप्ति हो जायगी ॥११॥ लोमहर्षण मुनीन्द्र ने कहा—इस प्रकार से उस अदिति ने समस्त कामनाओं की समृद्धि के देने वाले वरदान को प्राप्त किया था और फिर महान् यश वाले देवेश हरि क्रम से वृद्धि को प्राप्त हुए थे ॥१२॥ इसके अनन्तर दशम मास में समय आने पर जबकि प्रसव होने का अवसर आया तो वामन (बौना) की आकृति वाले भगवान् गोविन्द समुत्पन्न हुए थे अर्थात् उन्होंने जन्म ग्रहण किया था ॥१३॥ जगत् के नाथ उन वामनेश्वर भगवान् के

अवतीर्ण होने पर सब देवगण के अत्यन्त जो दुःख थे वे सब छूट गये तथा माता अदिति भी दुःखो से मुक्त होगई थी ॥१४॥

ववुर्वाता. सुखस्पर्शा विरजस्कमभून्नभः ।
धर्मे च सर्वभूताना तदा मति रजायत ॥१५
नोद्वेगश्चाप्यभूद्देहे मनवाना द्विजोत्तमाः ।
तदा हि सर्वभूताना धर्मे मतिरजायत ॥१६
त जातमात्रं भगवान्ब्रह्मा लोकपितामह ।
जातकर्मादिका कृत्वा क्रिया तुष्टाव च प्रभुः ॥१७
जयाधीश जयाजेय जय सर्व गुरो हरे ।
जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत ॥१८
जयाजित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय ।
परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञान ज्ञेयार्थ निश्चिन ॥१९
जयाशेष जगत्साक्षिञ्जगत्कर्त्तर्जगद्गुरो ।
जगतोऽजगतश्चे श स्थितौ पालयसे जय ॥२०
जयाखिल जयाशेष जय सर्वहृदि स्थित ।
जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम ॥२१

भगवान् वामन के अवतीर्ण होते हुए सम्पूर्ण वातावरण एक दम बदल गया था। सुखमय स्पर्श करने वाली वायु चलने लगी थी और आकाश धूलि रहित अति निर्मल होगया था। उस समय में समस्त मानवो की धर्म्म में बुद्धि होगई थी ॥१५-१६॥ उन वामन देव के उत्पन्न होते ही लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा जी ने उनकी जात कर्मादि पूर्ण क्रिया कर डाली थी और फिर प्रभु ने उनका स्तवन किया था ॥१७॥ ब्रह्मा जी ने कहा—हे अधीश ! आपकी जय हो। हे अधीश ! आपकी जय हो। हे अजेय ! आपका विजय होवे। हे सबके गुरुदेव ! हे हरे ! आपका जय होवे। आप तो जन्म-मृत्यु और जरा (वृद्धता) से भी अतीत हैं अर्थात् आपको जन्मादि कभी नहीं हुआ करते हैं। हे अच्युत ! आप तो अनन्त हैं आपका जय हो ॥१८॥ हे अजित ! हे अशेष ! आपकी स्थिति किसी को भी व्यक्ति नहीं होती है आपका

जय हो, विजय हो। आप परमार्थ के भी अर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं, आपका स्वरूप ज्ञान और ज्ञेय भी है तथा आप निश्चित रूप वाले हैं ॥१९॥ हे भगवन् ! आप अशेष-जगत् के साक्षी-जगत् के कर्त्ता, जगत् के गुरु और समस्त जगत् सब के ईश हैं और स्थिति के समय में आप इस जगत् का पालन किया करते हैं, आपकी जय हो ॥२०॥ आप अजित, अभेद और सबके हृदय में स्थित रहने वाले हैं। आप आदि-मध्य और अन्त से परिपूर्ण हैं तथा सर्वज्ञान मय एवं उत्तम हैं, आपकी सदा जय हो ॥२१॥

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर।
योगिभिर्मुक्तिकामैस्तु दमादिगुणभूषण ॥२२
जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जगन्मूल जगन्मय।
जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जय योगिन्ननीन्द्रिय ॥२३
जय स्वमायायोगस्थ शेषभोगशयाक्षर।
जयैकदंष्ट्राप्रान्तेन समुद्धृतवसुंधर ॥२४
नृकेसरिन्सुराराति वक्षःस्थलविदारण।
साम्प्रतं जय विश्वात्मन्मायावामन केशव ॥२५
स्वमायापटलच्छन्नजगद्धातर्जनार्दन।
जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकनिधे प्रभो ॥२६
वर्द्धस्व वर्द्धितानेकविकारप्रकृते हरे।
त्वय्येषा जगती शेषसंस्थिता धर्म पद्धतिः ॥२७
न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे।
ज्ञातुमीशा न ऋषयः सनकाद्या न योगिनः ॥२८

जो मुक्ति की इच्छा रखने वाले प्राणी हैं उनके द्वारा आप अनिर्देश्य हैं। आप नित्य ही प्रसन्न तथा जय के स्वामी हैं। मुक्ति की कामना वाले योगिजनों के द्वारा आप दम आदि गुणों से विभूषित हैं ॥२२॥ आप अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप वाले हैं और आप बहुत ही अधिक दुःख से जानने योग्य होते हैं। आप जगत् के मूल और जगन्मय हैं। आप सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म रूप वाले हैं। हे योगिन ! आप इन्द्रियों

की पहुच से भी परे हैं, आपकी जय होवे । आप अपनी माया के योग में स्थित रहने वाले हैं तथा शेष के भोग पर शयन करने वाले एव अक्षर है । आपने वराह अवतार धारण कर अपनी एक दाढ़ के कुछ छोटे से भाग पर इस सम्पूर्ण भूमि को धारण कर लिया था । आपकी सदा जय हो ॥२३-२४॥ हे नृसिंह रूप के धारण करने वाले ! आपने सुरों के शत्रु हिरण्यकशिपु के वक्ष, स्थल को विदीर्ण किया था । अब हे विश्वात्मन् ! आपने माया से वामन स्वरूप धारण किया है । हे केशव ! आपका विजय हो॥२५॥हे भगवन् ! आप अपनी माया परत्र से इस जगत के धाता और जनो की पीड़ा के अदक हैं । आपका स्वरूप अचिन्तनीय है तथा अनेक स्वरूपो के आप एक निधि हैं,आपका जय हो॥२६॥ आपने अनेक विकार प्रकृतियो का बद्ध न किया है,अब आप स्वय वर्द्धित होइये । आपने ही इस जगती को सस्थित किया है और धर्म की पद्धति की स्थापना की है ॥२७॥ हे भगवन् ! आपको मैं ब्रह्मा ईशान और इन्द्रादि देवगण हे हरे ! ऋषि वृन्द और सनकादि योगीजन कोई भी जानने में समर्थ नही हैं ॥२८॥

त्व माया पटसवीतो जगत्यत्र जगत्पते ।
कस्त्वा वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसाद विना नर ॥२९

त्वमेवाराधितो येन प्रसादसुमुख प्रभो ।
स एव केवल देव वेत्ति त्वा नेतरो जन. ॥३०

नन्दीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व वामन ।
प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन्पृथु लोचन ॥३१

एव स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः ।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारूढसपदम् ॥३२

स्तुतोऽह भवता पूर्वमिन्द्राद्यै कश्यपेन च ।
मया चास्य प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम् ॥३३

भूयश्चाह स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मया श्रुतम् ।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्य हतकण्टकम् ॥३४

सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः ।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥३५

हे भगवन् ! आप तो माया के पट से संवीत (आवृत) इस जगत् में हे जगत् के पति ! संस्थित रहते हैं । हे सर्वेश ! आपके प्रसाद के बिना कौनसा मनुष्य ऐसा समर्थ हो सकता है जो आपके स्वरूप को जान लेगा ॥२९॥ हे प्रसाद सुन्दर मुख वाले प्रभो ! जिसने आपकी समाराधना की हो हे देव ! वह ही केवल आपको जान पाता है अन्य कोई भी मनुष्य नहीं जानता है ॥३०॥ हे विभो ! हे वामनदेव ! आप नन्दीश्वर के स्वामी ईशान हैं। अब आप अपने स्वरूप को वर्द्धित कीजिए। हे पृथु लोचन ! आप इस विश्व की आत्मा हैं, इस विश्व के के प्रभव के लिए वर्द्धित होइये ॥३१॥ लोमहर्षण ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा जब स्तुति की गई तो उस समय में वामन के आकार वाले भगवान् हृषीकेश ने हँसकर आरूढ सम्पदा वाले तथा भाव से अति गम्भीर वचन बोले थे ॥३२॥ भगवान् वामन ने कहा—पहिले आपने तथा इन्द्रादि देवों ने और महर्षि कश्यप ने मेरी स्तुति की थी और मैंने इस इन्द्र के लिये तीनों भुवनों को प्रदान करने के लिये प्रतिज्ञा करदी थी ॥३३॥ इसके पश्चात् फिर अदिति ने मेरी स्तुति की थी उसका भी मैंने श्रवण किया था और प्रतिज्ञा करदी थी कि बिना किसी कण्टक वाला यह त्रैलोक्य का राज्य इन्द्र को मैं दे दूंगा ॥३४॥ वही मैं अब ऐसा ही करूंगा जिससे यह इन्द्र इस सम्पूर्ण जगत् का स्वामी बन जावे, यह सहस्राक्ष अवश्य ही सब का पति होगा—यह मैं आप सबसे सर्वथा सत्य कर रहा हूँ ॥३५॥

ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान् ।
यज्ञोपवीतं भगवान्ददौ तस्य बृहस्पतिः ॥३६

आषाढमददाद्दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कुशांश्चीरमथाङ्गिराः ।
आसनं चैव पुलहः पुलस्त्यः पीतवाससी ॥३७

उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवोच्चारभूषणाः ।
शास्त्राण्यशेषाणि तथा साङ्ख्ययोगोक्तयस्तथा ॥३८
स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः ।
सर्ववेदमयो देवो बलेरध्वरमभ्यगात् ॥३९
यत्र यत्र पदं विप्रा भूभागे वामनो ददौ ।
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्राभिपीडिता ॥४०
स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छ-सपर्वताम् ।
साब्धिद्वीप वना सर्वां चालयामास मेदिनीम् ॥४१
बृहस्पतिस्तु शनकैर्मार्गं दर्शयते शुभम् ।
तथा क्रीडाविनोदार्थे गतिर्जगति साऽभवत् ॥४२
ततः शेषो महानागो निःसृत्यासौ रसातलात् ।
साहाय्यं कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः ॥४३
तदद्यापि च विख्यातं महाविपुलमुत्तमम् ।
तस्य सदर्शनादेव नागेभ्यो न भयं भवेत् ॥४४

इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने एक कृष्ण मृग का चर्म (मृगछाला) हृषीकेश के लिये दी थी। बृहस्पति भगवान् ने उनको यज्ञोपवीत दिया था ॥३६॥ ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ऋषि ने आषाढ दण्ड समर्पित किया था। वसिष्ठ ने एक कमण्डलु दिया था और अंगिरा मुनि ने कुशाऐं और चीर दिया था। पुलह ने आसन और पुलस्त्य ने पीत दो वस्त्र दिये थे ॥३७॥ प्रणव के उच्चारण के भूषण वाले वेदों ने उनका उपस्थान किया था। समस्त शास्त्रों ने तथा साङ्ख्य योग की उक्तियों ने भी उपस्थान किया था ॥३८॥ जटाजूट धारण करने वाले, दण्डधारी छत्र ग्रहण करने वाले तथा कमण्डलु हाथ में लिये हुए सर्व वेद मय वह वामनदेव राजा बलि के यज्ञ स्थल में गये थे ॥३९॥ हे विप्रगण ! वह वामन भगवान् जहाँ-जहाँ पर भी भूमि में अपना चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पर ही भूमि अत्यन्त पीड़ित होकर विवर दे दिया करती थी ॥४०॥ उन वामन भगवान् ने जडगति वाले होकर मृदुता के साथ गमन करते हुए पर्वत, द्वीप और वनों के सहित सम्पूर्ण भूमि को चलाय-

मान बना दिया था ॥४१॥ देव गुरु बृहस्पति धीरे २ उनको परम शुभ मार्ग दिखाते जारहे थे। वह गति जगत् में एक क्रीडा के विनोद के लिये ही हुई थी ॥४२॥ इनके अनन्तर महानाग शेष भी रसातल से निकलकर देवदेव भगवान् चक्री की सहायता कर रहे थे ॥४३॥ उनका भी महान् विपुल एवं उत्तम स्वरूप विख्यात था। उनके दर्शन से ही नागों को कोई भय नहीं हुआ था ॥४४॥

२१—वामन बलि चरित्र वर्णन

सपर्वतवनामुर्वी दृष्ट्वा सक्षुभिता बलिः।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥१
आचार्य क्षोभमायाति साब्धिभूभृद्वना मही।
कस्माच्च नासुरान्भागान्प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः ॥२
इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः ॥३
अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः।
वामनेनेह रूपेण परमात्मा सनातनः ॥४
स नूनं यज्ञमायाति तव दानवपुंगव।
यस्य पादप्रतिक्षेपादियं प्रचलिता मही ॥५
कम्पन्ते गिरयश्चेव सक्षुब्धा मकरालयाः।
नैनं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम् ॥६
सदेवासुरगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगा।
अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः।
धारयत्यखिलान्देवान्मनुष्यांश्च महासुरान् ॥७

महर्षि सोमहर्षण ने कहा—जब राजा बलि ने पर्वतों और वनों के साथ भूमि को अत्यन्त सक्षोभ से युक्त देखा तो कृताञ्जलि होकर अपने गुरु शुक्राचार्य से प्रणाम करके उसने पूछा था ॥१॥ हे आचार्यवर ! क्या कारण उपस्थित हो गया है कि यह भूमि पर्वत-सागर और

वनों के सहित क्षोभ को प्राप्त हो रही है ? ये वह्नि असुरों के भागों को भी ग्रहण नहीं करती हैं-इसका भी क्या कारण है ? ॥२॥ वेदों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ आचार्य शुक्रदेव से जब राजा बलि के द्वारा इस प्रकार पूछा गया तो उन महान् मति वाले आचार्य ने चिर काल तक ध्यान में समास्थित होकर दैत्यों के अधिपति से कहा था ॥३॥ इस जगत् के कारण हरि कश्यप के घर में स्वयं अवतीर्ण हुए हैं। उन सनातन परमात्मा का इस समय में वामन स्वरूप है ॥४॥ हे दानवों में परम श्रेष्ठ ! वह निश्चय ही आपके यज्ञ में आरहे हैं जिनके पादों के प्रतिक्षेप से ही यह भूमि प्रचलित होगई है ॥५॥ सभी पर्वत काँप रहे हैं और समस्त सागर सक्षुब्ध हो उठे हैं। यह भूमि भूतों के पति इन का वहन करने में इस समय समर्थ नहीं हो रही है ॥६॥ इन्हीं के द्वारा तो देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, तथा समस्त देवगण और मनुष्य एवं महान् असुर धारण किये हुए हैं ॥७॥

इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य दुस्त्यजा ।
धाय धारकभावेन यया संपीडितं जगत् ॥८
तत्सन्निधानादधुना भागहाराः सुरोत्तमाः ।
भुञ्जते नासुरान्भागानपि वै ते त्रयोऽग्नयः ॥९
शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद्बलिः ।
धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यतो यज्ञपतिः स्वयम् ॥१०
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः कोन्योऽधिकः पुमान् ।
यं योगिनः सदोद्युक्ताः परमात्मानमव्ययम् ॥११
द्रष्टुमिच्छन्ति देवोऽसौ ममाध्वरमुपैष्यति ।
यन्मयाऽऽचार्य कर्त्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि ॥१२
यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर ।
त्वया तु दानवा दैत्य यज्ञभागभुजः कृताः ॥१३
अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम् ।
त्रिसृष्टं च तथैवान्ते स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः ॥१४

जगत् के धाता भगवान् कृष्ण की यह माया परम दुस्त्यज है। धार्य तथा धारक भाव से यह सम्पूर्ण जगत सम्पीडित हो रहा है। अर्थात् स्वयं प्रभु सबके धारण करने वाले हैं और ये सभी उनके धार्य हैं ॥८॥ इस समय मे उनके सन्निधान होने से सुरोत्तम भागहार होगये हैं इसीलिये वे तीनो अग्नियाँ भी असुर भागो को भी नही भोग रही हैं ॥६॥ शुक्राचार्य के इस वचन का श्रवण कर परम प्रसन्न होकर बलि ने कहा—मैं परम धन्य हूँ और मैंने बहुत बड़ा कोई पुण्य किया है। जिसम कि यज्ञों के स्वामी स्वय मेरे यज्ञ मे आरहे हैं। हे ब्रह्मन्! इस समय मे ससार मे मुझसे अधिक भाग्य शाली कौन मनुष्य हो सकता है ? अर्थात् अन्य कोई भी नही है मैं ही सर्वाधिक भाग्य वाला हूँ। जिस अविनाशी परमात्मा को योगीजन सदा देखन के लिये उद्योग शील रहा करते हैं और दर्शन करने की इच्छा किया करत हैं। वही देवेश्वर साक्षात् स्वय मेरे यज्ञ स्थल मे पदार्पण करे गे अब हे आचार्य वर! मुझे जो भी कुछ करना चाहिए उसका उपदेश मुझे आप प्रदान करने के योग्य हैं ॥१०-१२॥ शुक्राचार्य ने कहा—हे असुर! वेदो के प्रमाण से यज्ञो के भागो का उपभोग करने वाले देवगण ही होते हैं। हे दैत्य! इन दानवों को तो यज्ञों के भागो का भोग करने वाले आपने ही बना दिया है ॥१३॥ यह देव तो सत्व मे सस्थित रहने वाले हैं और स्थिति की अवस्था में सबका यह प्रति पालन किया करते हैं। यही विशेष रूप मे सृजन करते हैं और अन्त मे उसी भाँति सब प्रजा का स्वय ही सहरण करते हैं ॥१४॥

त्वया तु वञ्चिता देवा नून विष्णु स्थितौ स्थित ।
विदित्वैतन्महाराज कुरु यत्ते मनोगतम् ॥१५
त्वया च दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि ।
प्रतिज्ञा नैव वोढव्या वाच्य साम तथा फलम् ॥१६
कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चापि कुर्वतः ।
नालं दातुमह देव त्वया वाच्य तु याचतः ।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥१७

अद्यान्यथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः ।
नास्तीति किमु देवेश संसाराघौघहारिणम् ॥१८

व्रतोपवासैर्विविधैर्यः प्रभुर्गृह्यते हरि.।
स चेद्वक्ष्यति देहीति गोविन्द किमतोऽधिकम् ॥१९

यत्प्रीतिकरणार्थेन पुंभि. शौचगुणान्वितैः ।
यज्ञा क्रियन्त दवश्च स मा देहीति वक्ष्यति ॥२०.

तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च न.।
यन्मया दत्तमीशश्चस्वयमादास्यते हरिः ॥२१

आपने तो देवों को वञ्चित कर दिया है जब कि स्थिति के कार्य्य करने मे भगवान् विष्णु संस्थित हैं। हे महाराज ! यह सब समझ कर जो भी आपके मन मे हो वही करो॥ १५ ॥ हे दैत्याधिपते ! आपको किसी स्वल्पातिस्वल्प वस्तु के विषय मे प्रतिज्ञा कभी नहीं करनी चाहिए। साम बोलना चाहिए। वैसा ही फल होगा ॥१६॥ कृत-कृत्य देव हैं और देवगण का कार्य करने वाले हैं। यदि कुछ याचना भी करें तो कह देना कि मैं हे देव ! कुछ भी प्रदान करने मे समर्थ नहीं हूँ। हे महासुर ! यह भगवान् कृष्ण तो देवो की विभूति को समृद्ध करने के लिये ही प्रवृत्त हुए हैं॥ १७ ॥ राजा बलि ने कहा—हे महान् ! अन्य के द्वारा जब मुझ से याचना की जावे तो मैं यह कैसे बालदू कि मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है। फिर जिसमे भी उन देवेश्वर से जो समस्त संसार के अघो के ओघ का हरण करने वाले हैं ॥१८॥ जो प्रभु अनेक व्रतो और उपवासो के द्वारा भगवान् हरि ग्रहण किये जाया करते हैं वही हरिगोविन्द यदि मुझ से यह कहें कि कुछ दो तो फिर इससे अधिक लाई और क्या हो सकती है ? ॥१९॥ जिस परात्पर प्रभु को प्रीति करने के लिये मनुष्य शौच आदि गुणों से समन्वित होकर यज्ञ किया करते हैं वही देव साक्षात् स्वयं मुझसे कहे कि कुछ दान दो ॥२०॥ यदि ऐसा होता है तो हमारा कोई ऐसा साधु सुकृत कर्म और तप ही है जो कभी किया गया है कि मैं

उन्हें दूँ और ईश हरि जिसे स्वयं ग्रहण करेंगे । इसमे अधिक कोई भी महत्वपूर्ण पुण्योदय और हो ही नहीं सकता है ॥२१॥

नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये कथमागतमीश्वरम् ।
प्राणत्याग करिष्यामि न नास्तीति न मे क्वचित् ॥२२
तदेतद्वाञ्छितं प्राप्तं नूनं चात्र न संशयः ।
यज्ञेऽस्मिन्यदि यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः ॥२३
निजमूर्द्धानमप्यस्मै दास्याम्ये वा विचारितम् ।
स मे वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम् ॥२४
नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम् ।
वक्ष्यामि कथमायाते तस्मिन्नभ्यागतेऽच्युते ॥२५
श्लाघ्य एव हि धीराणां दानाद्यापत्समागमः ।
न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत्स्मृतम् ॥२६
मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः ।
नाभूषितो न चोद्विग्नो न प्रसादविवर्जितः ॥२७
हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च तृप्तः सर्वं गुणान्वितः ।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी ॥२८

हे गुरुदेव ! मेरे घर पर समागत होने वाले प्रभु को मैं देने के लिये कुछ भी नहीं रखता हूँ—यह कैसे कहूँगा ? मैं अपना प्राणों का त्याग कर दूंगा परन्तु मैं दे नहीं सकता—ऐसा कभी भी किसी दशा में नहीं कह सकता हूँ ॥२२॥ मैं तो यह समझता हूँ कि निश्चय ही इस यज्ञ में यदि ऐसा होना है तो मैंने अपना वाञ्छित फल प्राप्त कर लिया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यदि इस यज्ञ में यज्ञों का ईश जनार्दन स्वयं आकर मुझसे कुछ याचना करते हैं ॥२३॥ मैं तो अन्य वस्तु की क्या बात है बिना ही कुछ विचार किये हुए अपना मस्तक भी उनको दे डालूंगा । वह गोविन्द मुझसे यह तो कहें कि कुछ दान दो—इससे और अधिक अच्छा क्या कर्म हो सकता है ॥२४॥ मेरे पास नहीं है—ऐसा तो मैंने अन्य याचना करने वालों से भी अभी तक कभी नहीं कहा है । फिर उन भगवान् को जो स्वयं अच्युत मेरे घर पर आग-

मन करेंगे मैं कैसे निषेधात्मक वचन कहूगा ॥२५॥ धीर पुरुषों को दान देने स यदि आपदाओं का समागम भी होता है तो व श्लाघा के ही योग्य होता है। जो दान बाधा करने वाला नहीं है वह दान को बलवान करने वाला ही कहा गया है ॥२६॥ मेरे राज्य मे कोई भी असुखी-दरिद्र और आतुर नहीं है और न कोई ऐसा ही है जो अभूषित उद्विग्न और प्रमाद से रहित हो ॥२७॥ हे महाभाग ! सभी जन हृष्ट-पुष्ट सुगन्धी तृप्त और सब प्रकार के पदार्थों से समन्वित हैं। इससे अधिक और क्या कहू मैं भी सदा सुखी हूं ॥२८॥

एतद्विशिष्टमत्राप्त दानबीजफल मया ।
विदित मुनिशार्दूल अथैतत्त्वन्मुखाच्छ्रुतम् ॥२६
एतद्बीजवर दानबीज पतति चेद्गुरो ।
जनार्दने महापात्रे किं न प्राप्त ततो मया ॥३०
विशिष्ट मम तद्दान परितुष्टाश्च देवता ।
उपभोगाच्छतगुण दान सुखकर स्मृतम् ॥३१
मत्प्रसादपरो नून यज्ञेनाराधितो हरिः ।
तेनाभ्येति न सदेहो दर्शनादुपकारकृत् ॥३२
अथ कोपेन चाभ्येति देव भागोपरोधिनम् ।
मा निहन्तु ततो हि स्याद्वधः श्लाघ्यतमोऽच्युतात् ॥३३
समाहन्तु हृषीकेश कथ वै समुपेष्यति ॥३४
एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नपरेण न ।
त्वयाभाव्य जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते ॥३५

यह सब मैंने दान बीज का ही विशेषता से युक्त फल प्राप्त किया है जो यहाँ इस ससार मे मुझे प्राप्त हो रहा है। हे मुनि शार्दूल ! यह सब भी मैंने आपके ही मुख से श्रवण किया है और जाना है ॥२६॥ हे गुरुवर ! यह श्रेष्ठ बीज जोकि दान रूपी बीज है यदि सबसे उत्तम महा पात्र जनार्दन प्रभु में गिरता है तो फिर मैंने इस जीवन में क्या नहीं प्राप्त कर लिया है ? अर्थात् फिर तो सभी कुछ प्राप्त कर लिया और अन्य प्राप्त करने को रहा ही नहीं है ॥३०॥ मेरा वह दान जो विशिष्ट

दान ही होगा जिसमे देवता भी परितुष्ट होंगे। क्योंकि स्वयं उपभोग करने से तो दान सौगुना सुख करने वाला बताया गया है ॥३१॥ यज्ञ के द्वारा समाराधित भगवान् हरि मेरे ऊपर प्रसाद करने मे परायण निश्चय ही हो गये हैं। इसी लिये वे स्वयं यहाँ पर समागत हो रहे हैं जोकि स्वयं मुझे अपना दर्शन प्रदान कर उपकार करने वाले होंगे—इसमे कुछ भी सन्देह मुझे नहीं है ॥३२॥ यदि कोप करके ही मेरे पास वे आयेंगे और देवों के भागों को उपरुद्ध करने वाले मुझे मार डालने के लिए ही उनका यहाँ आगमन होगा तो भी भगवान् अच्युत के हाथ से मेरा वध हो जाना भी परम श्लाघ्य (प्रशंसनीय) ही होगा ॥३३॥ भगवान् हृषीकेश मुझे मारने के लिये कैसे आयेंगे-यही मैं देखने को उत्सुक हूँ ॥३४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह जानकर दान मे विघ्न डालने वाले आप जब जगत् के नाथ गोविन्द यहाँ समुपस्थित हो जावें तो उस समय मे ऐसा कुछ भी विरोध न करें कि मेरा दान न हो सकें। या तो यहाँ आप रहें ही नहीं या कुछ भी विरुद्ध न बोलें ॥३५॥

इत्येवं वदतस्तस्य यज्ञवाटमुपागतः ।
सहैवामरवृन्दैः स वृहस्पतिपुरस्सरैः ॥३६
वलिः पुनरुवाचेदं शुक्रं निजपुरोहितम् ।
मां च यत्तितुमभ्येति यतो गेहागतो हरिः ॥३७
स यत्र ऽऽत्मेच्छया सर्वचेतः साक्षी जनार्दनः ।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक् ॥३८
तं दृष्ट्वा यज्ञवाटं तु प्रविष्टमसुराः प्रभुम् ।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः ॥३९
वेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे ।
वसिष्ठो गाधिजो गर्गस्तथाऽन्ये मुनिसत्तमाः ॥४०
वलिस्त्वेवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः ।
ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित्किचिदुक्तवान् ॥४१
प्रत्येकं देव देवेशं पूजयामास तेजसा ।
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान् ॥४२

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—वह इस प्रकार से कह ही रहे थे कि वह बृहस्पति आदि देवगण के साथ उस यज्ञवाट में उपागत होगये थे ॥३६॥ राजा बलि ने फिर शुक्राचार्य जी से कहा था जोकि उनके वंश के पुरोहित थे, क्योंकि मेरे घर पर हरि आगये हैं और मुझ से याचना करने के लिये ही वे समागत हो रहे हैं ॥३७॥ वे सबके चित्त के साक्षी हैं, ऐसे जनार्दन प्रभु अपनी ही इच्छा से पधारे हैं। वे सर्व देवमय-अचिन्तनीय और माया से ही ऐसा वामन (बौना) का रूप धारण करने वाले हैं ॥३८॥ उस समय में उन वामन देव प्रभु को प्रविष्ट देखकर उस यज्ञ वाट में जो महासुर थे उनके तेज के प्रभाव से निष्प्रभ होकर अत्यन्त क्षुब्ध होगये थे ॥३९॥ जो मुनिगण वहाँ आये थे उस महाध्वर में कम्पित हो गये थे। उन मुनियों में वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग तथा अन्य भी श्रेष्ठ मुनिगण थे ॥४०॥ राजा बलि ने तो अपना जीवन पूर्ण रूप से उस समय में सफल मान लिया था। इसके पश्चात् सक्षोभ को प्राप्त होकर कोई भी कुछ उस समय में नहीं बोला था ॥४१॥ वहाँ पर प्रत्येक ने उन देव देवेश का जो तेज सम्पन्न थे पूजा की थी। इसके अनन्तर उस असुरों के पति को तथा उन सब मुनिवरों को अतीव विनम्र एवं विनीत देखकर परम प्रसन्न हुए थे ॥४२॥

देवदेवपतिः साक्षाद्विष्णुर्वामनरूपधृक्।
तुष्टाव यज्ञं वह्निं च यजमानमथर्त्विजः।
यज्ञकर्माधिकारस्थान्सदस्यान्द्रव्यसंपदः ॥४३

सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्।
यज्ञवाटस्थिता विप्राः साधु साध्वित्युदैरयन् ॥४४

सचार्घ्यमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तथा।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेद महासुरः ॥४५

सुवर्णरत्नसंघातान्गजांश्च महिषांस्तथा।
स्त्रियो वस्त्राण्यलंकारान्गावः कुप्यं च पुष्कलम् ॥४६

सर्वं च सकलां पृथ्वीं भवतो वा यदीप्सितम् ।
तद्ददामि शृणु श्रेष्ठ ममार्थाः सन्ति ते प्रियाः ।।४७
इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भमिदं वचः ।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान्वामनाकृतिः ।।४८
ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन्पदत्रयम् ।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ।।४९

देवों के देवों के भी पति वामन रूप धारण करने वाले भगवान् साक्षात् विष्णु ने स्वयं यज्ञ, वह्नि, यजमान और ऋत्विगण तथा यज्ञ कर्म में अधिकृत पुरुष, सदस्य, वहाँ पर स्थित द्रव्य सम्पत्ति की प्रशंसा की थी ।।४३।। वहाँ पर जो भी सदस्य यज्ञ वाट में स्थित थे तथा विप्रगण सब ने 'साधु-साधु'—ऐसा कहा था ।।४४।। फिर राजा बलि प्रसन्नता से पुलकाय मान होकर स्वयं अर्घ्य पात्र लेकर वहाँ समुपस्थित हुआ था। वह महासुर वामनदेव से कहने लगा—।।४५।। राजा बलि ने कहा—हे भगवन् ! मेरे यहाँ जो भी सुवर्ण-रत्न और मणियों का संघात हैं वे सब—गज, महिष, स्त्रियाँ, वस्त्र, अलंकार, गौऐं, पुष्कल कुप्य, यह सम्पूर्ण भूमि, इनमें जो भी आपको अभीष्ट हो, जो भी मेरे अर्थ हैं और आपको प्रिय हैं तो हे श्रेष्ठ तप ! मैं उन सबको देने के लिए प्रस्तुत हूँ ।।४६-४७।। दैत्यपति के द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना की जाने पर भगवान् वामन देव ने गम्भीरता संयुत स्मित पूर्वक प्रीति समन्वित यह वचन कहा था ।।४८।। मुझे हे राजन् ! इस समय अग्नि स्थापने के लिये तीन पद भूमि दो और सुवर्ण, ग्राम तथा रत्न आदि अन्य अर्थियों को दो। मुझे इन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है ।।४९।।

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर ।
शतं शतसहस्रं वा पदानां मार्गतां भवान् ।।५०
एतैः पदैर्दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे ।
अन्येपामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान् ।।५१

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः ।
ददौ तस्मै महाबाहुर्वामनाय पदत्रयम् ॥५२

पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः ।
सर्वदेवमय रूपं दर्शयामास तत्क्षणात् ॥५३

चन्द्रसूर्यौ तु नयने द्यौः शिरश्चरणौ क्षितिः ।
पादाङ्गुल्यश्च पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥५४

विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः ।
यज्ञाश्चाङ्गेषु संभूता लेखाश्चाप्सरसस्तथा ॥५५

दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः ।
तारका रोमकूपाणि रोमेषु च महर्षयः ॥५६

राजा बलि ने कहा—हे भगवन् ! केवल तीन पद भूमि से आपका क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? जो बड़ पदों वाले हैं उनके सौ पद तथा सहस्र पद प्रमाण भूमि आप मांगें तो भी उचित है ॥५०॥ श्री वामन देव ने कहा—हे दैत्यपति ! मैं तो इन ही तीन पदों के परिमाण वाली भूमि से कृत कृत्य हो जाऊंगा जोकि मैं स्वयं अपने ही पदों से नापकर ग्रहण करूंगा । धन आदि तो अन्य याचकों की इच्छा पूर्वक आप दान करेंगे ॥५१॥ महान् आत्मा वाले वामनदेव के इस कथन का श्रवण कर महाबाहु बलि ने उन वामन देव को तीन पैंड भूमि का दान कर दिया था ॥५२॥ जैसे ही हाथ में संकल्प का जलगिरा था कि वह वामन स्वरूप अवामन हो गया था और उसी क्षण में भगवान् ने सर्व देव-मय रूप दिखला दिया था ॥५३॥ अब भगवान् वामन देव का जो सुविस्तृत सर्व देवमय स्वरूप दिखाई दिया था उसका वर्णन किया जाता है—चन्द्र और सूर्य दोनों उनके नेत्र थे—द्यौ शिर था—दोनों चरण क्षिति थी, पदों की अँगुलियां पिशाच थे, हाथों की अँगुलियों में गुह्यक थे ॥५४॥ वामन देव के जानुओं में विश्वेदेवा थे, जाँघों में सुरोत्तम साध्य गण स्थित थे । उनके अंगों में यज्ञ संभूत थे तथा लेखाओं में अप्सरा गण थीं॥५५॥ अशेष नक्षत्र ही उनकी दृष्टि थी तथा प्रभु के केश

सूर्य की किरणें थी। सब तारे उनके रोम कूप थे और रोमों मे सब महर्षिगण विद्यमान थे ॥५६॥

बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महाबलः ॥५७
प्रसादे चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः।
सत्यमस्याभवद्वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥५८
ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा।
स्वर्गद्वारमभून्मेक्ष त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ ॥५९
मुखे वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः ॥
हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपोमुनिः ॥६०
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसंधिषु।
वक्ष स्थले तथा रुद्रा धैर्यं चास्य महार्णवाः ॥६१
उदरे चास्य गन्धर्वा मरुतश्च महाबलाः।
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्ति सर्वविद्याश्च वै कटिः ॥६२
सर्वज्योतिरसौ देवस्तपश्च परम महत्।
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम् ॥६३

उन वामन देव की बाहुऐं विदिशाऐं थी तथा महात्मा के श्रोत्र दिशाऐं थीं। अश्विनीकुमार श्रवण थे और महान् बलवान् वायु ही नासिका थी ॥५७॥ प्रसाद मे चन्द्रमा देव स्थित हैं और धर्म मन मे समाश्रित है। इन देव की वानी में सत्य विराजमान था तथा जिह्वा मे सरस्वती देवी थी ॥५८॥ ग्रीवा में देवो की माता अदिति स्थित थीं और उनके वलय मे विद्या थी। मेंत्र स्वर्ग द्वार था तथा त्वष्टा और पूषा ये दोनो भृकुटियाँ थी ॥५९॥ वामन देव के मुख मे वैश्वानर विराजमान थे। प्रजापति वृषण थे। पर ब्रह्म उनके हृदय मे संस्थित थे तथा कश्यप मुनि पुंस्त्व थे ॥६०॥ वामन देव के पृष्ठ मे वसुदेव थे और समस्त सन्धियो मे मरुत देव थे। सब रुद्रगण वक्षःस्थल मे विराजमान थे और जो महासागर थे वे ही इनके धैर्य्य थे ॥६१॥ इन वामन देव के उदर मे गन्धर्व तथा महान् बल वाले मरुद्गण थे। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति

और समस्त दिशाऐं कटि मे स्थित थीं ॥६२॥ यह देव सब प्रकार की ज्योति वाले तथा परम महान् तप स्वरूप थे। उन देवादिदेव का अनुत्तम तेज प्रोद्भूत हुआ था ॥६३॥

तनौ कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामखाः ।
इष्टय पशुबन्धाश्च द्विजाना चेष्टितानि च ॥६४
तस्य देवमय रूप दृष्ट्वा विष्णोर्महाबलाः ।
नोपसर्पन्तिः ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम् ॥६५
चिक्षुरस्तु महादैत्यः पादाङ्गुष्ठं गृहीतवान् ।
दन्ताभ्या तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनद्धरिः ॥६६
प्रमथ्य सर्वानसुरान्पादहस्ततलैर्विभुः ।
कृत्वा रूप महाकाय सजहाराशुमेदिनीम् ॥६७
तस्य विक्रमतो भूमि चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
नभो विक्रममाणस्य सक्थि देशे स्थितावुभौ ॥६८
पर विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ ।
विष्णोरास्ता स्थितस्यैतौ देवपालनकर्मणि ॥६९
जित्वा लोकत्रय कृत्स्न हत्वा चासुरपु गवान् ।
पुरदराय त्रैलोक्य ददौ विष्णुरुरुक्रमः ॥७०

वामन देव के शरीर मे और कुक्षियो मे समस्त वेद थे तथा महान् मख जानुओ मे स्थित थे। एव इष्टियाँ-पशुबन्ध और द्विजो की चेष्टित क्रियाऐं भी जानुओ मे सस्थित थी ॥६४॥ महान् बल वाले दैत्यगण वामन देव के इस तरह के सर्व देवमय स्वरूप का दर्शन कर पावक को देखकर जैसे पतग वहाँ से नही हटते हैं उसी भाँति वामन देव के निकट से नही हटकर जा रहे थे ॥६५॥ महादैत्य चिक्षुर ने उनके पादके अगुष्ठ को पकड लिया था। हरि ने उसकी ग्रीवा को दाँतो से पकडकर अगुष्ठ के द्वारा ही उसका हनन कर दिया था ॥६६॥ विभु ने समस्त असुरो को चरण तथा हस्त के तलों से प्रमथित करके अपना स्वरूप महान् काया वाला बनाकर शीघ्र ही मेदिनी (भूमि) का भली भाँति हरण कर लिया था ॥६७॥ भूमि मे विक्रमण करने वाले तथा नभ मे विक्रम माण

के चन्द्र और सूर्य जो स्तनो के अन्तर मे थे दोनों सन्धि देश मे स्थित हो गये थे ।।६८।। पर विक्रममाण उनके दोनो प्रभाकर जानुमून मे थे देवो के पालन करने के कर्म मे स्थित भगवान् विष्णु के समीप मे थे दोनो थे ।।६९।। इस भाँति तीनों लोको को पूर्णतया जीतकर और असुरो मे जो अति बलशाली थे उनको मारकर उरुक्रम भगवान् विष्णु ने त्रिभुवन को इन्द्रदेव के लिये दे दिया था ।।७०।।

सुतल नाम पातालमधस्ताद्वसुधातलात् ।
बलेर्दत्त भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ।।७१
अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
यत्त्वया सलिल दत्त गृहीतं पाणिना मया ।।७२
कल्पप्रमाण तस्मात्ते भविष्यत्यायुरुत्तमम् ।
वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा ।।७३
सावर्णिके तु सप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति ।
इदानी भुवन दत्त सर्व शक्राय वै तव ।।७४
चतुर्युगव्यवस्था च साऽधिका ह्येकसप्ततिः ।
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः ।।७५
तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले ।
सुतल नाम पाताल पाताल समादाय वचो मम ।।७६
वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन् ।
तत्र देवासुरोपेते प्रासादशतसंकुले ।।७

सुतल नाम वाला जो पाताल लोक था जो कि इस वसुधा तल के नीचे है प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने राजा बलि को दे दिया था ।।७१।। इसके अनन्तर सब के ईश्वरो के भी ईश्वर भगवान् विष्णु ने दैत्येश्वर से कहा—हे दैत्यराज ! जो तुमने सकल्प के समय मे मुझे जल दिया था और मैंने उसे अपने हाथ से ग्रहण किया था ।।७२।। उससे एक कल्प के प्रमाण पर्यन्त आपकी उत्तम आयु होगी । वैवस्वत मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर सावर्णिक मन्वन्तर प्राप्त होगा आप इन्द्र हो जाँयगे । इस समय मे तो मैंने यही तुम्हारा भुवन समस्त इस समय इमने इन्द्र को दे

दिया है ॥७३-७४॥ वह चतुर्युग की व्यवस्था एक सप्तति (इक्हत्तर) अधिक है। जो भी इसके परिपन्थी हैं वे सभी मुझे नियन्त्रित करने हैं ॥७५॥ हे बले ! उसने पराभक्ति से पहिले मेरी आराधना की है। सुतल नाम वाला जो पाताल है वहाँ पर मेरा वचन ग्रहण करके निवास करो। हे असुर ! मेरे इस आदेश का यथा रीति पालन करो। वह भी देव और असुरों से युक्त है तथा वहाँ पर सैकड़ों प्रासाद बने हुए हैं जिनसे वह स्थल सकुल रहता है ॥७७॥

प्रोत्फुल्लपङ्कज सरोद्र मशुद्धसरिद्वरे।
सुगन्धी रूपसपन्नो हेमाभरणभूषित ॥७८
स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहर.।
उपभुङ्क्ष्व महाभोगान्विपुलान्दानवेश्वर ॥७९
ममाज्ञया बले तत्र तिष्ठ स्त्रीशतसवृत:।
यावत्सुरैश्च विप्रैश्च विरोध न करिष्यसि ॥८०
तावत्त्व भुङ्क्ष्व सभोगान्सर्वकामसमन्वितान्।
यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोध त्व करिष्यसि।
बन्धक्रन्च तदा पाशो दारुणो घोरदर्शन: ॥८१
तत्राशन मे पाताले भगवन्भवदाज्ञया।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्।
आप्यायितोऽसौ देवेश स्मरेय त्वामह सदा ॥८२
दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धयायानि तानि दास्यन्ति ते फलम् ॥८३
अदक्षिणास्तथा यज्ञा: क्रियाश्चाविधिना कृता:।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्य व्रतानि च ॥८४

वहाँ पर वह स्थान ऐसा सुन्दर है कि विकसित कमलों वाले सरोवर हैं तथा द्रुमावली है और अति श्रेष्ठ सरिताऐं भी विद्यमान हैं। सुगन्ध से युक्त, रूप से सम्पन्न, सुवर्ण के आभरणों से भूषित होकर वहाँ निवास करो ॥७८॥ माला और चन्दन आदि से दिग्ध अंगों वाले होकर रहो एवं नृत्य एवं गीतों से परम सुन्दर बनकर निवास करो। हे महा-

सुर ! आप वहाँ पर बहुत-से भोगों का उपभोग करें ॥७६॥ हे बलि ! मेरी आज्ञा से तुम वहाँ पर सैकड़ों स्त्रियों से संवृत होकर अपनी स्थिति करो किन्तु जब तक भी वहाँ पर तुम निवास करो तब तक देवों के साथ और विप्र वृन्द के साथ किसी भी प्रकार का विरोध न ही करोगे ॥८०॥ जब तक निर्विरोध भाव से वहाँ निवास करोगे तब तक समस्त कामनाओं से युक्त सभोगों का उपभोग करो। जभी कभी तुम सुरों और विप्रों से विरोध करोगे उसी समय में परम घोर दर्शन वाला अत्यन्त दारुण पाश तुम्हारा बन्धन करने वाला होगा ॥८१॥ राजा बलि ने कहा—हे भगवन् ! वहाँ पाताल में आपकी आज्ञा से मेरा अशन (भोजन) क्या होगा जो कि उपभोगों का उपपादक उपादान है ? हे देवेश्वर ! मैं तो परम तृप्त हो गया हूँ और सर्वदा आपका ही स्मरण इसीलिये करता रहूँगा ॥८२॥ श्री भगवान् ने कहा—बिना विधि के दिये हुए दान-अश्रोत्रिय श्राद्ध तथा बिना श्रद्धा के किये हुए हवन जो भी हैं वे सभी तुमको फल देने वाले होंगे ॥८३॥ जो यज्ञ बिना ही दक्षिणा वाले हैं और जो क्रियाएँ बिना विधि-विधान के की गई हैं तथा अधीत एवं अव्रत ये सब आपको फल देने वाले होंगे ॥८४॥

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण याः क्रियाः ।
आज्येन च विना होमः फलं दास्यन्ति ते बले ॥८५
यश्चेद स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित्करिष्यति ।
न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन ॥८६
ज्येष्ठाश्रमं महापुण्यं तथा विष्णु पद ह्रदम् ।
ये च श्राद्धानि कुर्वन्ति व्रतं नियममेव च ॥८७
क्रिया कृता च या काचिद्विधिना च महात्मना ।
सर्वं तद् क्षयं तस्य भविष्यति न सशयः ॥८८
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥८९
द्वादश्यां वामन दृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे तथा ।
दत्त्वा दानं यथाशक्ति प्राप्नोति परम पदम् ॥९०

बलयेऽमुं वरं दत्त्वा शक्रायापित्रिविष्टपम् ।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥८१

हे बले ! बिना जल के की हुई पूजा-बिना दर्भ के की हुई क्रिया तथा आज्य (घृत) के बिना किया हुआ होम तुमको सब फल प्रद हो जायेंगे ॥८५॥ जो कोई भी इस स्थान का समाश्रय करके कुछ भी क्रियाऐं करेगा वहाँ पर कोई भी आसुर भाग कभी भी नहीं होगा ।८६। ज्येष्ठाश्रम महान् पुण्यमय है । उसी भाँति विष्णु पद ह्रद भी है । वहाँ पर जो भी कोई श्राद्ध करते हैं या कोई व्रत एव नियम किया करते हैं । वहाँ पर जो भी कोई क्रिया महान् आत्मा के द्वारा विधिपूर्वक की जाती है वह सब उसकी अक्षय होती है—इसमे तनिक भी संशय नहीं है ॥८७ ८८। ज्येष्ठ मास के सित पक्ष मे एकादशी के दिन उपोषित रहे अर्थात् व्रत करे और फिर द्वादशी के दिन वामन प्रभु का दर्शन तथा विष्णु पद मे स्नान करे । यथा शक्ति दान देवे तो वह मनुष्य परम पद की प्राप्ति किया करता है ॥८६-६०॥ लोमहर्षण मुनि ने कहा—इस प्रकार से राजा बलि को वरदान देकर तथा इन्द्र को भी त्रिविष्टप प्रदान करके फिर भगवान् हरि व्यापक उस रूप से अदर्शन को प्राप्त हो गये थे अर्थात् अन्तर्धान को प्राप्त हो गये थे ॥६१॥

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूजितः ।
अवसच्च यथा स्थानं बलि. पातालमाश्रितः ॥६२
इत्येतत्कथित तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
शृणुयाद्यो वामनस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६३
बलिप्रह्लादसवाद मन्त्रित बलिशक्रयोः ।
बलेर्विष्णोश्च कथित ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ॥६४
नाधयो व्याधयस्तेषा न च मोहाकुल मनः ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पाप तस्य कदाचन ॥६५
च्युतराज्यो निज राज्यमिष्टप्राप्ति वियोगवान् ।
समाप्नोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम् ॥६६
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति जयति क्षत्रियो महीम् ।

वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते ॥६७

त्रिलोकी में पूजित इन्द्रदेव ने पूर्व की ही भाँति त्रिभुवन का शासन किया था और राजा बलि ने पाताल लोक में अपना आश्रय बनाकर यथा स्थान निवास किया था ॥६२॥ यह भगवान् विष्णु का अत्युत्तम माहात्म्य हम ने वर्णित कर दिया है । इस वामन देव के इस माहात्म्य का जो भी कोई पुरुष श्रवण करता है वह समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥६३॥ राजा बलि तथा उनके पितामह प्रह्लाद का पारस्परिक सम्वाद तथा बलि और इन्द्र का मन्त्रित और बलि और विष्णु का कथन जो भी मानव श्रवण करेंगे ॥६४॥ उनको मानसिक चिन्ताएं एवं शारीरिक रोग कभी नहीं होंगे तथा उनका मन भी कभी मोह से आकुलित नहीं होगा । हे द्विजश्रेष्ठो ! उस पुरुष को पाप तो कभी भी हो ही नहीं सकता ॥६५॥ जिसके राज्य का भ्रंश हो गया है वह अपने च्युत राज्य को तथा जो कोई वियोग वाला है उसे अपने अभीष्ट पुरुष से संयोग प्राप्त होता है । हे महाभाग वालो ! मनुष्य इस कथा का श्रवण करके ऐसी उपलब्धियाँ किया करता है ॥६६॥ जो ब्राह्मण है उस वेदों के ज्ञान का लाभ होता है और जो क्षत्रिय है वह भूमि को प्राप्त किया करता है । वैश्य धन की समृद्धि का लाभ लेता है तथा शूद्र सभी प्रकार का सुख प्राप्त करता है । जो भी कोई इस वामन देव के माहात्म्य का श्रवण करता है वह सभी प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥६७॥

३२—सरस्वती-स्तोत्र

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामुत्तमा नदी ।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी ॥१
कथं च सरः आसाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः ।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा ।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि तीर्थं ब्रह्मविदां वर ॥२

प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी ।
सर्वपापक्षय करी स्मरणादपि नित्यशः ॥३
सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी ।
प्रविष्टा पुण्यतोयैषा वन द्वैतमिति श्रुतम् ॥४
तस्मिन्प्लक्षे स्थिता दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः ।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम् ॥५
त्वं देवि सर्वलोकाना माता वेदारणिः शुभा ।
सदसद् वि यत्किञ्चिन्मोक्षवोधाय यत्पदम् ॥६
यथा जल सागरे हि तथा तत्त्वयि सस्थितम् ।
अक्षर परम ब्रह्म विश्व चैतत्क्षरात्मकम् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! समस्त नदियों में परम उत्तम यह सरस्वती नदी किस प्रकार से समुत्पन्न हुई थी जो कि महान् भाग वाली है और कुरुक्षेत्र की ओर प्रयाण करके बहती है ? ॥१॥ किस प्रकार से सर को प्राप्त करके पार्श्व मे तीर्थों को करके यह शुभ नदी दृश्य और कहीं अदृश्य गति वाली होती हुई पश्चिम दिशा मे गई है । आप तो ब्रह्म वेत्ताओं मे सर्व श्रेष्ठ ज्ञाता हैं । इस विषय का वर्णन विस्तार पूर्वक कर हमको समझा दीजिए क्योंकि यह भी एक उत्तम तीर्थ है ॥२॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—यह सनातनी सरिता प्लक्ष के वृक्ष से समुत्पन्न हुई थी और नदियों मे इसको परम श्रेष्ठ नदी माना जाता है । यदि नित्य प्रति इसके नाम का स्मरण भी नियम पूर्वक कर लिया जाता है तो यह मनुष्य के समस्त पापों का क्षय कर दिया करती है—ऐसा इसका माहात्म्य है ॥३॥ वह यही नदी सहस्रों बड़े २ विशाल पर्वतों का विदारण करती हुई फिर द्वैतवन मे प्रविष्ट हो जाती है और इसका जल परम पुण्यमय माना जाता है । ऐसा ही श्रुत है ॥४॥ उस प्लक्ष (वृक्ष) मे स्थित इस नदी को देख कर महामुनीन्द्र मार्कण्डेयजी ने इसको शिर से प्रणिपात किया था और फिर उन्होंने सरस्वती सरिता का स्तवन किया था ॥५॥ मार्कण्डेय ने कहा—हे देवि ! आप तो सब लोकों की माता और परम शुभ वेदारणि हैं । हे देवि ! आपका जो पद है वह तो मोक्ष

प्रदान करने वाला ही है चाहे कोई सद् एवं असत् कैसा भी आचरण करने वाला क्यों न हो ॥६॥ जिस प्रकार का जल सागर मे है वैसा ही आप मे स्थित है । यह तो अक्षर–परम ब्रह्म है और विश्व तो क्षरात्मक होता है ॥७॥

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम् ।
तथा त्वयि स्थित ब्रह्म जगच्चेदमशेषत: ॥८
ॐकाराक्षरसस्थान यत्र देवि स्थिरास्थिरम् ।
तत्र मात्रात्रय सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥९
त्रयो लोका त्रयो वेदास्त्रैविद्य पावकत्रयम् ।
त्रीणि ज्योतीषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ॥१०
त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात् ।
त्रिधातवस्तथाऽवस्था पितरश्चाणिमादय. ॥११
एतन्मात्रात्रय देवि तव रूप सरस्वति ।
विभिन्नदर्शना आद्या ब्रह्मणो हि सनातना. ॥१२
सोमसस्था हवि सस्था. पाकसस्था सनातना. ।
तास्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभि ॥१३
अनिर्देश्य तथा चान्यदर्धमात्राश्रित परम् ।
अविकार्यक्षय दिव्य परिणामविवर्जितम् ॥१४

जिस प्रकार से काष्ठ में अग्नि अवस्थित रहता है किन्तु किसी को भी वह दृश्यमान नहीं होता है ठीक उसी भाँति आप म भी ब्रह्म की सस्थिति विद्यमान है और सम्पूर्ण जगत् भी है ॥८॥ हे देवि ! जहाँ पर स्थिर और अस्थिर ओंकार अक्षर का सस्थान है वहा पर तीन मात्राऐं ही सब हैं और नहीं भी हैं ॥९॥ तीन ही लोक होते हैं—तीन ही वेद हैं, तीन विद्याऐं हैं तीन अग्नियाँ हैं—तीन ज्योतियाँ हैं तथा धर्म, अर्थ और काम आदि तीन ही वर्ग हैं ॥१०॥ सत्व, रज और तम ये तीन ही गुण हैं, तीन वर्ण हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन ही देव हैं । तीन धातुऐं हैं, तीन अवस्थाऐं होती हैं, पितर गण भी तीन हैं एव अणिमादि भी तीन ही हैं ॥११॥ यह हे देवि ! मात्राओं का त्रिगुड़ा

हे सरस्वति ! आपका स्वरूप भी है। आपके विभिन्न प्रकार के दर्शन हैं। आप आद्या है तथा ब्रह्मा की सनातन स्वरूपा हैं ॥१२॥ आप सोम संस्था है, हवि में सस्थान करने वाली हैं और सनातना पाक संस्था हैं। हे देवि ! ये सब आपके उच्चारण ब्रह्मवादियों के द्वारा किये जाया करते हैं ॥१३॥ इसी भाँति अन्य अनिर्देश्य और अध मात्रा में आश्रित हैं एवं वह परम अविकार्य क्षय, दिव्य तथा परिणाम से विवर्जित है ॥१३-१४॥

तथैतत्परम रूप यन्न शक्य मयोदितुम् ।
न चास्ये न तथा जिह्वा ताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ॥१५
स विष्णु स शिवो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च ।
विश्वावास विश्वरूप विश्वात्मान महेश्वरम् ॥१६
साङ्ख्यसिद्धान्तवेदोक्त बहुशाखास्थिरीकृतम् ।
अनादिमध्यनिधन सदसच्च सदैव तु ॥१७
एक त्वनेकधाऽप्येक भावभेदसमाश्रितम् ।
अनाख्य षड्गुणाख्य च बह्वाख्य त्रिगुणाश्रयम् ॥१८
नानाशक्तिविभावज्ञ नानाशक्तिविभावकम् ।
सुखात्सौख्य महासौख्य रूप तत्त्वगुणात्मकम् ॥१९
एव देवि त्वया व्याप्त निष्कल सकल जगत् ।
अद्वैतावस्थित ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥२०

मार्कण्डेय मुनि ने कहा था कि हे देवि ! आपका यह अति परम स्वरूप है जो वस्तुतः मेरे द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है। अन्य भी कोई वर्णन नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह जिह्वा-तालु, ओष्ठादि द्वारा अवर्णनीय हैं—वही विष्णु, शिव, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य और ज्योति है। विश्व का आधार आवास स्थान, विश्व का रूप, विश्व का आत्मा, महेश्वर है ॥१६॥ साङ्ख्य सिद्धान्त वेदोक्त है तथा बहुत-सी शाखाओं में स्थिर किया हुआ है। वह अनादि, मध्य और निधन स्वरूप है तथा सदा ही सत् एवं असत् रूप है ॥१७॥ वह एक ही अनेक स्वरूपों में विद्यमान है तथा भाव भेदों में समाश्रित है। वह अनाख्य अर्थात् अवर्णनीय, षड्गुणाख्य, बह्वाख्य और त्रिगुण के आश्रय वाला है ॥१८॥ नाना

प्रकार की शक्तियों के प्रकाश से जाना गया है और अनेक शक्तियों का विभावक है। मुख में मौक्ष्य, महामौक्ष्य तत्त्वगुणात्मक रूप है ॥१९॥ हे देवि ! इस प्रकार से इस निष्कल सम्पूर्ण जगत् को आपने व्याप्त कर रक्खा है। जो सदा अद्वैतावस्था में स्थित रहता है उसे द्वैत में व्यवस्थित कर दिया है ॥२०॥

येऽर्थानित्यायेविनश्यन्तिचान्येयेऽर्था स्थूला ये विनश्यन्ति सूक्ष्माः ।
ये वा भूमौयेऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषादृश्यासात्वमेवोपलब्धिः ॥२१

यद्वा मूर्त्तयच्च मूर्तं समस्त यद्वा भूतेष्वेव कर्मास्ति किञ्चित् ।
यद्वा देवेष्वस्ति लेखेऽन्यतो वा तत्सबद्ध त्वक्षरैर्व्यञ्जनैश्च ॥२२
एव स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती ।
प्रत्युवाच महात्मान मार्कण्डेयं महामुनिम् ।
यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यनन्द्रिता ॥२३
आद्य ब्रह्मसर पुण्य ततो नागह्रद स्मृतम् ।
कुरुणा ऋषिणाकृष्ट कुरुक्षत्र ततः स्मृतम् ।
तस्य मध्येन वै याहि पुण्या पुण्यजलावहा ॥२४

जो अर्थ नित्य है और जो विनष्ट होने हैं-अन्य जो स्थूल हैं और विनाश को प्राप्त होते हैं और सूक्ष्म हैं। अथवा जो भूमि में है-अन्तरिक्ष में हैं अथवा अन्य कहीं पर भी हैं उनकी दृश्य स्वरूप वाली वह आप ही उपलब्धि हैं ॥२१॥ अथवा जो मूर्त और जो समस्त मूर्त स्वरूप से युक्त हैं-यद्वा भूतों में ही कुछ कर्म हैं-अथवा जो कुछ भी देवों में है—लेख में है अथवा अन्य कहीं भी अक्षरों एव व्यञ्जनों से सम्बद्ध है वह सभी आपका ही स्वरूप है ॥२२॥ इस प्रकार से मार्कण्डेय के द्वारा उस समय में वह देवी स्तुति की गई तो वह भगवान् विष्णु की जिह्वा सरस्वती देवी उन महामुनीन्द्र परम महान् आत्मा वाले मार्कण्डेय से बोली थीं। हे विप्र ! जहाँ पर भी तुम मुझे लेजाओगे वहीं पर मैं निरालमा होकर चली जाऊ गी ॥२३॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—सबसे आदि मे होने वाला परम पुण्यमय ब्रह्मसर है। इसके अनन्तर नागह्रद बताया गया है। कुरु ऋषि ने कृष्ट किया है इसीलिए उसका नाम

कुरुक्षेत्र पड गया है। उसके मध्य मे होकर पुण्य स्वरूपा और पुण्यमय जल के प्रवाह वाली आप गमन करें ॥२४॥

३३—सरस्वती माहात्म्य वर्णन

इत्येवंवचन श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
नदी प्रवाहसयुक्ता कुरुक्षेत्रं विवेश ह ॥१
तत्र सा रन्तुक प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती ।
कुरुक्षेत्रं समाप्लाव्य प्रयाता पश्चिमा दिशम् ॥२
तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च ।
तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥३
तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम् ।
स्नानं पुण्यकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः ॥४
ये स्मरिष्यन्ति तीर्थाना देवताः प्रीणयन्ति च ।
स्नान्ति च श्रद्दधानाश्च ते यान्ति परमां गतिम् ॥५
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्ष सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥६
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
अप्येता वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७

महर्षि लोम हर्षण ने कहा—परम धीमान् मार्कण्डेय ऋषि के इस भाँति वचन का श्रवण कर वह प्रवाह से संयुक्त नदी कुरु क्षेत्र में प्रविष्ट होगई थी ॥१॥ वहाँ पर उसने रन्तुक को प्राप्त कर पुण्यमय जल वाली सरस्वती नदी ने कुरुक्षेत्र को सम्प्लवित करके फिर पश्चिम दिशा मे प्रयाण किया था ॥२॥ वहाँ पर सहस्रों तीर्थ हैं जो ऋषियों के द्वारा सेवित हैं। अब हम उन्हीं तीर्थों को बतलायेंगे और उन तीर्थों की व्याख्या परमेष्ठी के प्रसाद से ही होगी ॥३॥ तीर्थों का स्मरण करने ही से महान् पुण्य होता है तथा तीर्थों के दर्शन करने से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। तीर्थों का स्नान तो पुण्य करने वाला होता ही है

जो भी कोई दुष्कृत कर्म वाले होते हैं उनके पापों का क्षय करने वाला स्नान को बताया गया है ॥४॥ जो भी कोई पुरुष तीर्थों का स्मरण किया करते हैं उन पर देवगण परम प्रसन्न होते हैं। जो तीर्थों में स्नान किया करते हैं वे मनुष्य परम गति को प्राप्त हो जाते हैं ॥५॥ चाहे कोई अपवित्र हो या पवित्र हो अथवा कैसी ही अवस्था में विद्यमान क्यों न हो, जो भी भगवान् पुण्डरीकाक्ष का स्मरण किया करता वह उनके स्मरण मात्र से ही बाहिर-भीतर से पवित्र हो जाया करता है ॥६॥ मैं कुरुक्षेत्र में जाऊंगा—ऐसी भी वाणी यदि कोई पुरुष कह देता है तो इतने कथन मात्र से ही वह सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥७॥

ब्रह्मज्ञानं गया श्राद्धं गोग्रहे मरणं ध्रुवम् ।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥८
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥९
दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि वसाम्यहम् ।
एवं यः सततं ब्रूयात्सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥१०
तत्रैव च वसन्धीरः सरस्वत्यास्तटे स्थितः ।
तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयं भविष्यति न संशयः ॥११
देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाङ्गलम् ।
तस्य संसेवनान्नित्यं ब्रह्म चात्मनि पश्यति ॥१२
चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षकाङ्क्षिणः ।
वसन्ति नियतात्मानो येऽपि दुष्कृतकारिणः ॥१३
ते विमुक्ताश्च कलुषैरनेकजन्मसंभवैः ।
पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम् ॥१४

ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना—गया तीर्थ में जाकर पितरों का श्राद्ध करना—गोग्रह में मृत्यु प्राप्त करना तथा कुरुक्षेत्र में पुरुषों का निवास करना ये चार प्रकार की मुक्ति बतलाई गई है ॥८॥ सरस्वती और दृषद्वती-इन दोनों नदियों का जो अन्तर भाग है

उसी भाग को देवो द्वारा निर्मित ब्रह्मावर्त्त कहा जाता है ॥६॥ यद्यपि मैं यहाँ पर दूर देश मे स्थित हू तथापि मैं कुरु क्षेत्र मे जाऊंगा और वहाँ पर निवास करूगा-इस प्रकार से जो निरन्तर बोला करता है वह सब पापो से मुक्त हो जाता है ॥१०॥ वहाँ पर ही निवास करता हुआ जो कोई धीर पुरुष सरस्वती नदी के तट पर स्थित रहता है उसको ब्रह्ममय ज्ञान हो जाया करता है—इसमे लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥११॥ देवगण-ऋषिवृन्द, और सिद्ध लोग कुरुजाङ्गल का सेवन किया करते हैं। उसके भली भाँति सेवन करने से पुरुष नित्य ही अपनी आत्मा मे ब्रह्म का दर्शन किया करता है ॥१२॥ यह मनुष्यत्व अर्थात् मनुष्य जीवन बड़ा चपल है। ऐसे इस जीवन को प्राप्त करके जो मोक्ष की आकाङ्क्षा रखने वाले हैं वे नियतात्मा होकर निवास किया करते हैं चाहे वे दुष्कर्मो के करने वाले भी रहे हों ॥१३॥ वे जो *यहां निवास करने वाले होते हैं अनेक जन्मो के होने वाले पापों* से भी विमुक्त हो जाते हैं और फिर शुद्ध होकर हृदय कमल में संस्थित सनातन निर्मल देव का दर्शन कर लिया करते हैं ॥१४॥

ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं सन्निहितं सरः ।
सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥१५

ग्रहनक्षत्रताराणाकालेन पतनाद्भयम् ।
कुरुक्षेत्रमृतानां च पतनं नैव विद्यते ॥१६

यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ।
गन्धर्वाश्चाप्सरो यक्षाः सेवन्ते स्थानकाङ्क्षिणः ॥१७

गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाह्रदे ।
मनसा चिन्तितं कामं लभते नास्ति संशयः ॥१८

नियमं च नरः कृत्वा सरः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
रन्तुकं च समासाद्य क्षामयित्वा पुनः पुनः ॥१९

सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यक्षं दृष्ट्वा प्रणम्य च ।
पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचमुदीरयेत् ॥२०॥

तव प्रसादाद्यक्षेन्द्र वनानि सरितस्तथा ।
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि ह्यविघ्नं कुरु मे सदा ॥२१

ब्रह्मवेदि कुरुक्षेत्र पुण्य सर सन्निहित है उस सर को सेवन करते हुए मनुष्य नित्य परम पद को प्राप्त करते हैं ॥१५॥ ग्रह-नक्षत्र और तारे का काल आ जाने पर पतन होने से भय होता है किन्तु जो कुरु क्षेत्र में प्राण त्याग किया करते हैं उनका कभी भी पतन नहीं होता है ॥१६॥ जहाँ पर ब्रह्मा प्रभृति देव, ऋषिगण और सिद्ध तथा चारण लोग, गन्धर्व, अप्सराऐं एवं यक्ष उस सर का स्थान की आकाङ्क्षा करते हुए सेवन किया करते हैं ॥१७॥ वहाँ पहुँच कर श्रद्धा भाव से युक्त होकर स्थाणु महाह्रद में स्नान करे तो भी मन के द्वारा कामना का चिन्तन किया जाता है उसको अवश्य ही मनुष्य प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१८॥ मनुष्य वहाँ पर नियम धारण करे और इस सर की परिक्रमा देवे तथा रन्तुक के समीप में जाकर बारम्बार क्षमापन करे ॥१९॥ सरस्वती नदी में स्नान करके मनुष्य यक्ष का दर्शन करे तथा उनको प्रणाम करे फिर पुष्प, धूप और नैवेद्य समर्पित करके यह वाणी बोले ॥२०॥ हे यक्षेन्द्र ! आपके ही प्रसाद से इन समस्त वनों को तथा सरिताओं को भ्रमण कर देखूँगा और तीर्थों का भी पर्यटन कर दर्शन करूंगा । आप सदा मेरे आने वाले विघ्नों को दूर कर देवें ॥२१॥

३४—स्नान तीर्थ माहात्म्य वर्णन

वनानि सप्त नो ब्रूहि सप्त नद्यश्च काः स्मृताः ।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा ॥१
येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत्फलम् ।
तत्सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम ॥२
शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः ।
येषा नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च ॥३

काम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत् ।
व्यासस्य च वनं पुण्य फलकीवनमेव च ॥४
तथा सूर्यवनं स्थान तथा मधुवनं महत् ।
पुण्यशीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम् ॥५
वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः ।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥६
आपगा च महा पुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी ।
मधुस्रवा अम्लुनदी कौशिकी पापनाशिनी ॥७

ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आप अब उन सात वनों को बतलाइये तथा हमको यह भी बतला दीजिए कि वे सात नदियाँ कौन सी बताई गयी हैं ? समस्त तीर्थों को तथा तीर्थों के स्नान का क्या फल होता है यह भी बतलाइये ॥१॥ जिस-जिस विधान से जिस-जिस तीर्थ का जो भी फल होता है, हे पौराणिकों में सर्व शिरोमणे ! वह सभी यहाँ पर अब विस्तार पूर्वक हमको बतला देवें ॥२॥ लोमहर्षण मुनि ने कहा—हे ऋषि गण ! अब आप लोग सुनिये, यहाँ पर कुरुक्षेत्र के मध्य में ये सात वन हैं जिनके नाम परम पुण्यमय हैं और समस्त पापों के हरण करने वाले हैं ॥३॥ एक वन का नाम काम्यक वन है जो परम पुण्यमय है । दूसरा महान् अदिति वन नाम वाला है । एक पुण्यमय व्यास वन है । तथा एक फल की वन है ॥४४॥ एक सूर्य वन नाम वाला स्थान है तथा महान मधुवन है । पुण्य शीत वन नाम का एक है जो समस्त कल्मषों का नाश करने वाला है ॥५॥ हे द्विजगण ! ये सात वन हैं जिनके नाम अभी आपको बतलादिये हैं । अब मुझसे सात नदियों के नामों का श्रवण करो । एक तो सरस्वती महान् पुण्यमयी नदी है । दूसरी वैतरणी नदी है ॥६॥ महान् पुण्य वाली एक आपगा नदी है । एक पुण्य मन्दाकिनी गंगा नदी है । मधुस्रवा-अम्लु नदी और पापों का नाश करने वाली एक कौशिकी नदी है ॥७॥

दृषद्वती महापुण्या तथा हिरण्वती नदी ।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥८

एतासामुदक पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्तितम् ।
रजस्वलात्वमेतासा विद्यते न कदाचन ।
तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या ह्येताः सरिद्वराः ॥९
शृण्वन्तु मुनयः प्रीतास्तीर्थस्नानफल महत् ।
गमन स्मरण चैव सर्वकल्मषनाशनम् ॥१०
रन्तुक च नरो दृष्ट्वा द्वारपाल महाबलम् ।
यक्ष समभिवाद्यैव तीर्थयात्रा समारभेत् ॥११
ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा नाम्नाऽदितिवन महत् ।
अदित्या यत्र पुत्रार्थे कृत घोर महत्तपः ॥१२
तत्र स्नात्वा च सपूज्यह्यदिति देवमातरम् ।
पुत्र जनयते शूर सर्वदोषविवर्जितम् ।
आदित्यशतसकाश विमानं चाधिरोहति ॥१३
ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा विष्णुस्थानमनुत्तमम् ।
सततं नाम विख्यात यत्र सनिहितो हरिः ॥१४

महापुण्यमयी दृषद्वती तथा हिरण्वती नदी है । केवल सरस्वती नदी को छोड़कर अन्य सभी नदियाँ वर्षा ऋतु के समय में ही बहने वाली हैं ॥८॥ इन सबका जल वर्षा के समय में भी परम पुण्यमय कहा गया है । इन नदियों को रजस्वलात्व कभी भी नहीं होता है । तीर्थ के प्रभाव से ये श्रेष्ठ नदियाँ परम पुण्यमयी हैं ॥९॥ अब हे मुनिगण ! आप परम प्रीति से युक्त होकर तीर्थों के स्नान करने का फल सुनिये । इन पर गमन करना तथा इनका स्मरण करना भी सब कल्मषों का नाश करने वाला है ॥१०॥ सबसे प्रथम महान् बलशाली द्वारपाल रन्तुक का दर्शन करके तथा फिर यक्ष का समभिवादन करके मनुष्य तीर्थ यात्रा का आरम्भ करे ॥११॥ हे विप्रेन्द्रगण ! इसके अनन्तर महान् जो अदिति वन है उस पर जाना चाहिए जहाँ पर कि देव माता अदिति ने पुत्र प्राप्ति के लिए महान् घोर तपश्चर्या की थी ॥१२॥ वहाँ पर स्नान करके तथा अदिति देवी की अर्चना करके जोकि देवगण की माता है समस्त दोषों से रहित शूरवीर पुत्र के जन्म को प्राप्त किया

करता है वह पुत्र सौ आदित्यों के समान तेज से युक्त होता है तथा विमान पर अधिरोहरण किया करता है ॥१३॥ इसके उपरान्त हे विप्रेन्द्रो! अतीव उत्तम विष्णु स्थान को जाना चाहिए। उसका नाम निरन्तर विख्यात है जहाँ पर कि हरि भगवान् नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं ॥१४॥

विमले च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च विमलेश्वरम् ।
निर्मलः स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति ॥१५
हरिं च बलदेवं चाप्येकादश्या समन्वितौ ।
दृष्ट्वा दोषैर्विमुच्येत कलिकल्मषसंभवैः ॥१६
ततः पारिप्लवं गच्छेत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्माणं वेदसंयुतम् ॥१७
ब्रह्मयज्ञफलं प्राप्य निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
तत्रापि संगमं रम्यं कौशिक्यास्तीर्थसंभवम् ॥१८
संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम् ।
अरण्ये चापराधा ये कृता हि पुरुषेण वै ।
सर्वांस्तान्क्षमते तत्र स्नातमात्रस्य देहिनः ॥१९
ततो दक्षाश्रमं गत्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम् ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥२०
ततः शालूकिनं गच्छेत्स्नात्वा तीर्थे द्विजोत्तमः ।
हरिं हरेण संयुक्तं पूजयित्वा तु भक्तितः ।
प्राप्नोत्यभिमतं लोकं सर्वपापविवर्जितः ॥२१

विमल तीर्थ में स्नान करके और विमलेश्वर का दर्शन करके मनुष्य बिल्कुल विशुद्ध हो जाता है वह फिर स्वर्ग लोक को और रुद्रलोक को प्राप्त होता है ॥१५॥ एकादशी तिथि में समन्वित भगवान् और बलदेव का दर्शन करके मनुष्य कलियुग के कल्मषों से समुत्पन्न दोषों से विमुक्त हो जाया करता है ॥१६॥ इसके पश्चात् त्रिलोकी में महान् प्रसिद्ध पारिप्लव तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ पर स्नान करके वेदों से संयुत भगवान् ब्रह्माजी का दर्शन प्राप्त करे ॥१७॥ इससे उसे ब्रह्म यज्ञ का

फल प्राप्त हो जाता है और वह निर्मल होकर सीधा स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। वहा पर भी कोशिकी का तीर्थ सम्भव अति सुन्दर सङ्गम होता है ॥१८॥ उस सङ्गम मे मनुष्य स्नान करके परम पद को प्राप्त करता है। जिस किसी पुरुष ने अरण्य मे जो भी कोई अपराध किये हैं वहा पर केवल स्नान करने ही से देहधारी उन सबको नष्ट कर देता है ॥१९॥ इसके अनन्तर दक्षाश्रम मे आकर दक्षेश्वर भगवान् शिव का दर्शन करे तो मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है ॥२०॥ इसके पश्चात् फिर शालूकी को जाना चाहिए। वहा पर द्विजोत्तम को उस तीर्थ मे स्नान करना चाहिए। वहा हर के साथ हरि का भक्ति भाव से पूजन करके सब पापों से रहित होकर अभिमत लोक की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

सर्पिर्दधि समासाद्य नागाना तीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नान नर. कृत्वा मुक्तो नागभयाद्भवेत् ॥२२
ततो गच्छेद् विप्रेन्द्रा नरकोद्वाररन्तुकम् ।
तत्रापि रजनीमेका स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ॥२३
तत्र द्वितीय सपूज्य द्वारपाल प्रयत्नतः ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥२४
तव प्रसादाद्यक्षेन्द्र मुक्तोऽहं सर्वकिल्विषैः ।
सिद्धिर्मयाऽभिलषिता समारे ता लभाम्यहम् ॥२५
एव प्रसाद्य यक्षेन्द्र तत. पञ्चनद व्रजेत् ॥२६
पञ्चनदाश्च रुद्रेण कृता दानवभीषणाः ।
तेन सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनद स्मृतम् ॥२७
कोटितीर्थानि रुद्रेण समाजह्रे यतस्ततः ।
तेन त्रैलोक्यविख्यात कोटितीर्थं प्रचक्षते ॥२८
तस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वर हरम् ।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति नित्य श्रद्धासमन्वितः ॥२९

सर्पिर्दधि पर पहुँच कर जो नागों का अत्युत्तम तीर्थ है। वहाँ मनुष्य स्नान करके नागों के भय से विमुक्त हो जाया करता है ॥२२॥

इसके उपरान्त हे विप्रेन्द्रगण ! नरकोद्धार रन्तुक में आवे । वहाँ पर भी उस परम शुभ एवं श्रेष्ठ तीर्थ में एक रात्रि तक ठहरे और स्नान करे ॥२३॥ वहाँ प्रयत्न पूर्वक द्वितीय द्वारपाल का पूजन करे और ब्राह्मणों को भोजन करा कर प्रणिपात पूर्वक अपराधों का क्षमापन करे ॥२४॥ यह प्रार्थना करे—हे यक्षेन्द्र ! आपके प्रसाद से मैं समस्त किल्बिषों से मुक्त हो गया हूँ । अब मैं यही चाहता हूँ कि संसार में जो भी सिद्धि मेरी अभिलषित है उसको मैं प्राप्त कर लूँ ॥२५॥ इस भाँति यक्षेन्द्र को प्रसन्न करके फिर पञ्चनद तीर्थ को जाना चाहिए ॥२६॥ भगवान् रुद्र ने दानवों के लिये महाभीषण पाँच नदियाँ विरचित की हैं । इसी कारण से सब लोकों में पञ्चनद नामक तीर्थ कहा गया है ॥२७॥ भगवान् रुद्र ने क्योंकि कोटि तीर्थों का समाहरण किया था इसीलिये त्रैलोक्य में कोटि तीर्थ विख्यात होकर कहा जाता है ॥२८॥ उस तीर्थ में नर स्नान करके और कोटीश्वर भगवान् हर का दर्शन करके पाँच यज्ञों का फल नित्य ही श्रद्धा से समन्वित रहने वाला प्राप्त करता है ॥२९॥

तत्रैव वामनो देवः सर्वदेवैः प्रतिष्ठितः ।
तत्रापि च नरः स्नात्वा ह्यग्निष्टोमफलं लभेत् ॥३०
अश्विनोस्तीर्थमासाद्य श्रद्धावान्यो जितेन्द्रियः ।
रूपवान्भाग्ययुक्तश्च स यशस्वी न संशयः ॥३१
वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकल्पितम् ।
तस्मिन्स्नात्वा श्रद्दधानः प्रयाति परमां गतिम् ॥३२
तत्र गच्छेत विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा व्याधिमुक्तोऽभवत्पुरा ॥३३
तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ।
राजसूयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥३४
व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जितः ।
सोमलोकमवाप्नोति चन्द्रेण रमते चिरम् ॥३५

वहीं पर वामन देव भी हैं जो समस्त देवों के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं । वहाँ पर भी मनुष्य स्नान करके अग्निष्टोम यज्ञ के फल को

प्राप्त किया करता है ॥३०॥ अश्विन तीर्थ पर पहुँच कर जो श्रद्धावान् और इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष है वह रूपवान् तथा सौभाग्य से युक्त एवं यशस्वी होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३१॥ वराह तीर्थ आख्यात है जिसको भगवान् विष्णु ने परिकल्पित किया है। इस तीर्थ में स्नान करने से श्रद्धा वाला पुरुष परम गति को प्राप्त हो जाता है ॥३२॥ हे विप्रेन्द्र वृन्द ! वहाँ पर परमोत्तम सोम तीर्थ में जाना चाहिए जहाँ पर सोम (चन्द्र) ने तपस्या करके पहिले व्याधि से विमुक्त हुआ था ॥३३॥ वहाँ सोमेश्वर प्रभु का दर्शन करे तथा स्नान करके जोकि वहाँ पर शुभ तीर्थ है, राजसूय यज्ञ का फल मनुष्य पा जाता है ॥३४॥ व्याधियों से मुक्त होकर सब दोषों से रहित हो जाता है और सोम लोक को प्राप्त करता है तथा चन्द्र के साथ रमण किया करता है ॥३५॥

भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा ।
तत्र लिङ्गं समभ्यर्च्य न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥३६
एकहंसे नरः स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत् ।
कृतशौचं समासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ॥३७
पौण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेन्नरः ।
ततो मुञ्जवटं नाम महादेवस्य धीमतः ॥३८
उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमवाप्नुयात् ।
तत्रैव च महाभागा यक्षिणी लोकविश्रुता ॥३९
स्नात्वाऽभिगम्य तत्रैव महापातकनाशनम् ।
कुरुक्षेत्रस्य तद्द्वारं विश्रुतं पुण्यवर्द्धनम् ॥४०
प्रदक्षिणमुपावर्त्य ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।
पुष्करं च ततो गत्वा ह्यभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥४१
जामदग्न्येन रामेण कृतं तच्च महात्मना ।
कृतकृत्यो भवेद्राजा अश्वमेधं च विन्दति ॥४२

वहीं पर भगवान् भूतेश्वर हैं तथा ज्वाल मालेश्वर प्रभु भी विराजमान हैं। उस लिंग का अभ्यर्चन करे तो फिर दुबारा इस संसार में

जन्म ग्रहण मनुष्य नहीं किया करता है ।।३६।। एक हंस नामक तीर्थ मे मनुष्य को स्नान करके एक सहस्र गायों के दान का फल प्राप्त होता है । द्विजोत्तम को शौच(शुद्धि)करके ही तीर्थ पर पहुँचकर उसका सेवन करना चाहिए ।।३७।। कृत शौच मनुष्य पौण्डरीक को निश्चय ही प्राप्त किया करता है । इसके पश्चात् धीमान् महादेव का मुञ्जवट नाम वाला तीर्थ है ।।३८।। वहाँ पर एक रात उपवास करके गाणपत्य के पद को प्राप्त करता है । वहा पर ही महान् भाग वाली यक्षिणी है जो सम्पूर्ण लोक मे विख्यात है ।।३९।। वहाँ स्नान और अभिगमन करके महान् पातकों का नाश हो जाता है । वही कुरुक्षेत्र का द्वार पुण्यों की वृद्धि करने वाला प्रसिद्ध है ।।४०।। उसकी वहाँ प्रदक्षिणा करके फिर ब्राह्मणों को भोजन करावे । इसके पश्चात् पुष्कर में जावे और पितरों का जो देवरूप है अभ्यर्चन करे ।।४१।। उसको जामदग्न्य और महात्मा राम ने विरचित किया है । राजा यहा कृत-कृत्य हो जाता है तथा अश्वमेध यज्ञ के महान् पुण्य-फल का प्राप्त किया करता है ।।४२।।

कन्यादान च यस्तत्र कार्त्तिक्या वै करिष्यति ।
प्रसन्ना देवतास्तस्य दास्यन्त्यभिमत फलम् ।।४३

कपिलश्च महायक्षो द्वारपाल स्वय स्थितः ।
विघ्न करोति पापाना दुर्गति च प्रयच्छति ।।४४

पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोलूखलमेखला ।
आहत्य दुन्दुभि सा तु भ्रमते नित्यमेव हि ।।४५

सा ददर्श स्त्रिय चैका सपुत्रा पापदेशजाम् ।
तामुवाच तदा यक्षी आहत्य निशि दुन्दुभिम् ।।४६

युगन्धरे दधि प्राश्य उषित्वा चाच्युतस्थले ।
तद्वद्भूतालये स्नात्वा सपुत्रा वस्तुमिच्छसि ।।४७

दिवा मया ते कथित रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचन प्रणिपत्य च यक्षिणीम् ।।४८

उवाच दीनया वाचा प्रसाद कुरु भामिनि ।
ततः सा यक्षिणी ता तु प्रोवाच कृपयान्विता ॥४९
यदा सूर्यस्य ग्रहण कालेन भविता क्वचित् ।
सरस्वत्या तदा स्नात्वा पूना स्वर्ग गमिष्यसि ॥५०

यहाँ पर जो कोई कार्तिकी में किसी एक कन्या का दान करता है उस पर समस्त देवगण अत्यन्त ही प्रसन्न हो जाया करते हैं और उसको उसका जो भी कुछ अभिमत मनोरथ होता है वही फल प्रदान कर देते हैं ॥४३॥ और महायक्ष कपिल स्वयं वहाँ द्वारपाल होकर सन्निहित रहता है। वह पापों का विघ्न किया करता है और दुर्गति को भी प्राप्त कर देता है ॥४४॥ उसकी पत्नी महायक्षी है और वह नाम से उलूखल मेखला है। उसने दुन्दुभि का हनन किया था। वह वहाँ पर नित्यमेव भ्रमण किया करती है ॥४५॥ उसने एक पुत्रवती पाप देश में जन्म लेने वाली स्त्री को देखा था। उस महायक्षी ने रात्रि में दुन्दुभि का हनन करके उसी समय में उस स्त्री से कहा था ॥४६॥ युगन्धर में दधि खाकर के और अच्युत स्थल में निवास करके उसी की भांति भूतालय में स्नान करके वह पुत्र के सहित वास करने की इच्छा करती है ॥४७॥ मैंने यह बात दिन में तो कह दी है किन्तु रात्रि में निश्चित रूप से भक्षण कर जाऊँगी। यह उस महायक्षिणी का वचन सुन कर उस स्त्री ने यक्षिणी को प्रणिपात किया था ॥४८॥ फिर उसने उससे दीन वचनों में प्रार्थना की थी—हे भामिनि! प्रसन्नता करो। इसके उपरान्त वह यक्षिणी उस स्त्री से बोली तथा कृपा से समन्वित हुई थी ॥४९॥ जब किसी समय में काल से सूर्य का ग्रहण कहीं पर होगा उस समय में सरस्वती नदी में स्नान करके पूत होती हुई स्वर्ग को चली जावेगी ॥५०॥

३५—नाना तीर्थ एव वन माहात्म्य वर्णन

ततो रामह्रद गच्छेत्तीर्थ सेवी द्विजोत्तमः ।
तत्र रामेण विप्रेण तरसा दीप्ततेजसा ॥१

क्षत्रमुत्साद्य विप्रेण ह्रदाः पञ्च निवेशिताः ।
पूरयित्वा नरव्याघ्र रुधिरेणेति नः श्रुतम् ॥२
पितरस्तर्पितास्तेन तथैव च पितामहाः ।
ततस्ते पितरः प्रीता राममूचुर्द्विजोत्तमाः ॥३
राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव ।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो ॥४
वरं वृणीष्व भद्रं ते यमिच्छसि महायशः ।
एवमुक्तस्तु पितृभी रामः प्रभवतां वरः ॥५
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं स पितॄन्गगनस्थितान् ।
भवन्तो यदि मे प्रीतास्तदनुग्राह्यतामयम् ॥६
पितृप्रसादादिच्छेय तपसोऽप्यायनं पुनः ।
यतो रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया ॥७

महर्षि लोम हर्षण ने कहा—इसके अनन्तर फिर तीर्थों के सेवन करने वाले द्विजश्रेष्ठ को रामह्रद में जाना चाहिए। वहाँ पर विप्र राम ने जो परम दीप्त तेज से युक्त थे क्षत्रियों का उत्सादन करके पाँच ह्रद निवेशित किये थे। हे नर व्याघ्र ! हमने ऐसा सुना है कि उन्हें रुधिर से पूरित किया था ॥१-२॥ उसीसे उसने अपने पितरों तथा पितामहों को तृप्त किया था। इसके पश्चात् वे पितृगण तृप्त होकर हे द्विजवृन्द ! राम से बोले थे ॥३॥ हे राम ! हे भार्गव ! हम सब लोग तुमसे बहुत ही प्रसन्न हुए हैं क्योंकि हे विभो ! तुम्हारा प्रशसनीय विक्रम है एवं यह पितृभक्ति भी परम श्लाघनीय है ॥४॥ अब तुम हमसे कोई भी वरदान माँगलो तुम्हारा कल्याण होगा। तुम कौनसा महान् यश चाहते हो ? इस तरह से पितरों के द्वारा कहे जाने पर प्रभाव वालों में श्रेष्ठ राम हाथ जोड़कर गगन में स्थित पितृगण से यह वाक्य बोले थे—आप लोग यदि मुझ पर परम प्रीति वाले प्रसन्न हैं तो मुझ पर यह अनुग्रह करिये ॥६॥ पितरों के प्रसाद से मैं पुनः तप का स्थापन करना चाहता हूँ क्योंकि रोष में अभिभूत होकर मैंने क्षत्रियों का उत्सादन कर दिया है ॥७॥

ततस्तु पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम् ।
ह्रदाश्चं ते तीर्थभूता भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥८
एवं श्रुत्वा शुभं वाक्यं रामस्य पितरस्तदा ।
प्रत्यूचुः परमप्रीता राम हर्षपुरस्कृताः ॥६
तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः ।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं त्वया ॥१०
ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातितास्ते स्वकर्मभिः ।
ह्रदाश्च तेऽद्य तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न सशयः ॥११
ह्रदेष्वेतेषु यः स्नात्वा स्वान्पितृंस्तर्पयिष्यति ।
तस्य दास्यन्ति पितरो यथार्थमभिलषितं फलम् ॥१२
ईप्सितान्मानसान्कामान्स्वर्गवासं च शाश्वतम् ।
एवं दत्त्वा वरान्विप्रा रामस्य पितरस्तदा ॥१३
रामं सुभार्गव प्रीतास्तत्रैवान्तर्दधुस्तदा ।
एवं रामह्रदाः पुण्या भार्गवस्य महात्मनः ॥१४

इसके अनन्तर ही आपके तेज से मैं इस पाप से मुक्त होऊंगा। ये जो ह्रद मैंने निर्मित किये हैं वे सब तीर्थभूत होकर भूमण्डल में विश्रुत हो जावें ॥८॥ उस समय में समस्त पितृगण राम के इस परम शुभ वचन को सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित होकर परम प्रीति युक्त होते हुए राम से बोले थे ॥६॥ हे पुत्र ! विशेष रूप से पितृभक्ति से तुम्हारा तप वर्द्धित हो जावेगा जो कि तुमने क्रोध से अभिभूत होकर क्षत्रियों का समुत्सादन किया है ॥१०॥ उस पाप से आप मुक्त हो जावेंगे। वे सभी क्षत्रिय अपने ही कर्मों से निपातित हुए हैं। ये तुम्हारे द्वारा विनिर्मित ह्रद तीर्थ का स्वरूप धारण करलेंगे-इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥११॥ जो पुरुष इन ह्रदों में स्नान करके अपने पितरों का तर्पण करेगा उसको उसके पितृगण अवश्य ही अभिलाषा वाले फल प्रदान करदेंगे ॥१२॥ उस समय में राम के पितर देविप्रगण ! ईप्सित मानस-कामनाओं को प्रदान कर तथा शाश्वत स्वर्ग वास देकर भार्गव राम

अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और फिर वे वहीं पर अन्तर्धान होगये थे। इस प्रकार से महात्मा भार्गव के वे राम ह्रद पुण्य शाली हुए थे ॥१३-१४॥

स्नात्वा ह्रदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिव्रतः ।
रामं समभ्यर्च्य तथा विन्देद्बहु सुवर्णकम् ॥१५
वंशमूलं समासाद्य तीर्थसेवी सुसंयतः ।
स्ववंशमुद्धरेद्विप्राः स्नात्वा चैव समूलकम् ॥१६
कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम् ।
शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन्न संशयः ॥१७
शुद्धिदेहश्च सयाति यस्मान्नावर्त्तते पुनः ।
तावद्भ्रमन्ति तीर्थेषु सिद्धास्तीर्थपरायणाः ।
यावन्न प्राप्नुवन्तीह तीर्थं तत्कायशोधनम् ॥१८
तस्मिंस्तीर्थे च सप्लाव्य काय संयतमानसः ।
परं पदमवाप्नोति यस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥१९
ततो गच्छेच्च विप्रेन्द्रास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
लोका यत्रोद्धृताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥२०
लोकोद्धारं समासाद्य तीर्थं स्मरणतत्परः ।
स्नात्वा तीर्थवरे तस्मिँल्लोकं पश्यति शाश्वतम् ॥२१

ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर शुचिव्रत वाला पुरुष राम के रचित ह्रदों में स्नान करके तथा राम का अभ्यर्चन करके बहुत-सा सुवर्ण का लाभ प्राप्त किया करता है ॥१५॥ वंश मूल को ग्रहण कर तीर्थों का सेवन करने वाला सुसंयत होकर मूल के सहित स्नान करके हे विप्रगण ! अपने वंश का उद्धार करना चाहिए ॥१६॥ यह तीर्थ त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध है। काया का शोधन करके इसका सेवन करे। इसमें स्नान करके शरीर की शुद्धि प्राप्त होती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७॥ वह परम शुद्ध होकर वहाँ से परलोक में जाता है जहाँ से पुनः पुनः इस लोक में वह आवर्त्तन नहीं किया करता है तीर्थ परायण सिद्ध लोग सभी तब तीर्थों में भ्रमण किया करते हैं जब तक यहाँ तीर्थ में अपनी काया का भली भाँति शोधन प्राप्त नहीं किया करते हैं

॥१८॥ संयत मन वाला पुरुष उस तीर्थ में अपनी काया को सम्प्लावित करके परम पद की प्राप्ति कर लेता है जहाँ से पुनः उसे जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है ॥१९॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसके बादतम स्तत्रिलोक में विश्रुत तीर्थ पर जाना चाहिए जहाँ पर प्रभु विष्णु भगवान् विष्णु सब लोकों का उद्धार किया था ॥२०॥ लोकोद्धार तीर्थ को प्राप्तकर स्मरण में तत्पर रहता हुआ तीर्थ पर स्नान करे जिससे वह फिर शाश्वत लोक की प्राप्ति कर लेता है ॥२१॥

यत्र विष्णु स्थितो नित्यं शिवो देवश्च शाश्वतः ।
तौ देवौ प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुयात ॥२२
श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेच्छा लग्राममनुत्तमम् ।
यत्र स्नातस्य सान्निध्यं सदा देवः प्रयच्छति ॥२३
कपिलाह्रदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च दैवतानि पितृस्तथा ॥२४
कपिलाना सहस्रस्य फल विन्दति मानवः ।
तत्रस्थितं महादेवं कपिलं वपु राश्रितम् ॥२५
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति ऋषिभिः पूजितं शिवम् ।
सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः ॥२६
अर्चयित्वा पितृन्देवानुपवासपरायणः ।
अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥२७
सहस्रकिरणं देवं भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो ज्ञानसमन्वितः ॥२८

जहाँ पर विष्णु और शाश्वत देव शिव नित्य ही स्थित रहा करते हैं। उन देवों को प्रणिपात करके प्रसन्न कर लेने पर मानव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥२२॥ इसके उपरान्त फिर श्री तीर्थ पर जाना चाहिए। जहाँ सर्वोत्तम शालग्राम है। जहाँ पर स्नान कर लेने पर उस पुरुष को देव सदा ही सान्निध्य प्रदान किया करते हैं ॥२३॥ फिर कपिला ह्रद को प्राप्त करे जो तीर्थ त्रिलोकी में प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके देवों और पितरों का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥२४॥

वहाँ स्नानाभ्यर्चन से एक सहस्र कपिला गौओं के दान करने का पुण्य-फल मनुष्य प्राप्त किया करता है। सत्र मे मस्थित महादेव कपिल के वपु मे समाश्रित हैं ॥२५॥ उन ऋषिगण के द्वारा समर्चित भगवान् शिव का दर्शन करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। फिर सूर्य तीर्थ को प्राप्त करे और वहाँ नियत मन वाला होकर स्नान करे ॥२६॥ वहाँ पितरों तथा देवो का पूजन करके उपवास तत्पर हो जाना चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य अग्निष्टोम याग का फल पाता है और सूर्यलोक चला जाया करता है ॥२७॥ सहस्र किरणो वाले और त्रैलोक्य मे विख्यात देव भानु का दर्शन करके मनुष्य ज्ञान से सयुत होता हुआ मुक्ति की प्राप्ति किया करता है ॥२८॥

भवानीवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत् ॥२६
पितामहस्य पिबतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि ।
उद्गारात्सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता ॥३०
तस्याः सुरभयो जाता मातरो लोकमातरः।
ताभिस्तत्सकलं व्याप्तं पातालं सुनिरन्तरम् ॥३१
पितामहस्य यजतो दक्षिणार्थमुपाहृताः ।
आहूता ब्राह्मणास्ते च विभ्रान्ता विवरेण हि ॥३२
तस्मिन्विवरद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम् ।
यं दृष्ट्वा सकलान्कामान्प्राप्नोति नियतेन्द्रियः ॥३३
सङ्गिनी तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम् ।
देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपमुत्तमम् ॥३४
अनन्तां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रैः समन्वितः ।
भोगांश्च विपुलांल्लब्ध्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥३५

इसके उपरान्त भवानी वन मे पहुँच कर जो तीर्थों का सेवन करने वाला पुरुष है वह क्रमानुसार वहाँ स्नान करके एक हजार गौओं के दान का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ॥२६॥ जिस समय पितामह अमृत का पान पूर्व मे ही कर रहे थे तो उनके उद्गार से एक सुरभि

उत्पन्न हुई थी और वह पाताल लोक में समाश्रित हो गई थी ॥३०॥ उसमें फिर मनाऐ तथा लोह मान ऐ सुरभियाँ उत्पन्न हुई थी और उनसे सम्पूर्ण पाताल लोक निरन्तर व्याप्त होगया था ॥३१॥ यजन करने वाले ब्रह्मा ने दक्षिणा के लिये उपाहृत बहुत से ब्राह्मण थे। उन समाहृत ब्राह्मणों ने उस विवर को देखा तो वे विभ्रान्त हो गये थे ॥३२॥ उस विवर के दरवाजे पर भगवान् गणपति स्वयं समास्थित थे। जिन गणपति का दर्शन करके मनुष्य समस्त लोकों को प्राप्त कर लेता है किन्तु नियतइन्द्रियों वाला होना चाहिए ॥३३॥ सगिनी नामक तीर्थ पर पहुच कर मनुष्य मुक्ति का समाश्रय ग्रहण कर लेता है। उस देवी के तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उत्तम रूप को लब्ध कर लेता है ॥३४॥ वह मनुष्य अनन्तश्री की प्राप्ति किया करता है और पुत्र तथा पौत्रों से भी समन्वित हो जाता है। बहुत-से भोगों का लाभ करके अन्त में यह परम पद की प्राप्ति कर लेता है ॥३५॥

ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः।
जायते नात्र सदेहः प्राणान्मुञ्चति चेच्छया ॥३६
ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा द्वारपालं च रन्तुकम्।
तत्र तीर्थं सरस्वत्या यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥३७
तत्र स्नानं समासाद्य ह्युपवासपरायणः।
यक्षस्य च प्रसादेन लभते कामिकं फलम् ॥३८
ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्तं मुनिस्तुतम्।
ब्रह्मावर्ते नरः स्नात्वा ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम् ॥३९
ततो गच्छेत्तु विप्रेन्द्राः सुतीर्थकमनुत्तमम्।
तत्र सन्निहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह ॥४०
तत्राभिषेकं कुर्वीत पितृदेवार्चने रतः।
अश्वमेधमवाप्नोति पितृन्प्रीणाति शाश्वतम् ॥४१
ततोऽम्बुवन्त्या च धर्मज्ञ समासाद्य यथाक्रमम्।
कामेश्वरस्य तीर्थं तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ॥४२

ब्रह्मावर्त्त तीर्थ में मनुष्य स्नान करके ब्रह्म ज्ञान से युक्त हो जाता है, इसमें किञ्चिनमात्र भी सन्देह नहीं है और यह भी क्षमता प्राप्त होती कि वह अपनी ही इच्छा से अपने प्राणों का त्याग किया करता है ।।३६।। हे विप्रेन्द्रगण ! इसके पश्चात् द्वारपाल रन्तुक के समीप में जाना चाहिए जोकि वहा पर तीर्थ मे सरस्वती के महात्मा यक्षेन्द्र का रहता है ।।३७।। वहा ज्ञान की प्राप्ति कर उपवास मे परायण हो जावे। फिर यक्ष के प्रसाद से कामिक फल प्राप्त कर लेता है ।।३८।। इसके बाद हे विप्रेन्द्रो ! मुनियो के द्वारा संस्तुत ब्रह्मावर्त्त मे जाना चाहिए। उस ब्रह्मावर्त्त तीर्थ में मनुष्य स्नान करके निश्चितरूप से ब्रह्म की प्राप्ति किया करता है ।।३९।। हे विप्रेन्द्र वृन्द ! इसके पश्चात् सर्वोत्तम सुतीर्थक मे पहुँचे। वहा पर नित्य ही देवताओ के साथ पितर सन्निहित रहा करते हैं ।।४०।। वहा पर पितृगण तथा देव वृन्द के अभ्यर्चन मे रति रखकर अभिषेक करना चाहिए। इसका ऐसा पुण्यफल होता है कि वह अश्वमेध यज्ञ का फल बिना ही किये पा लेता है और निरन्तर पितृगण को प्रसन्न कर लेता है ।।४१।। हे धर्म के ज्ञाता ! फिर अवन्तीपुरी में पहुँचकर यथाक्रम कामेश्वर के तीर्थ में श्रद्धा के भाव से युक्त होकर स्नान करे ।।४२।।

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम् ।
मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तितः ।।४३
प्रजा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम् ।
ततः शीतावनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।।४४
तीर्थं तत्र च विप्रेन्द्रा महदन्यत्र दुर्लभम् ।
पुनाति दर्शनादेव पुरुषानेकविंशतिम् ।।४५
केशानभ्युक्ष्य चैकस्मिन्पूतो भवति पापतः ।
तत्र तीर्थं वरं चान्यच्छ्वानुलोमापहं महत् ।।४६
तत्र विप्रा महाप्राज्ञा विद्वांसस्तीर्थतत्पराः ।
श्वविलोमापहे तीर्थं विप्रास्ते सोमयवियुते ।।४७

प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः ।
पूतात्मानश्च ते विप्राः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥४८
दशाश्वमेधिकं चैव तत्र तीर्थं सुविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तस्तदेव लभते फलम् ॥४९

इसका यह फल होता है कि वह समस्त प्रकार की व्याधियों से मुक्त हो जाता है और निश्चित रूप से ब्रह्म की प्राप्ति कर लेता है। वहीं पर मातृतीर्थ है उसमें भक्ति के साथ स्नान करने वाले पुरुष को सब प्रकार की वृद्धि होती है ॥४३॥ नित्य ही उसकी सन्तान बढ़ती हैं और अनन्त श्री की प्राप्ति भी होती है। इसके अनन्तर सीता वन नामक तीर्थ में नियत होकर तथा नियत भोजन वाला होकर ही जावे ॥४४॥ हे विप्रेन्द्र वृन्द! वहा पर ऐसा महान् तीर्थ है जो कि अन्यत्र बहुत ही दुर्लभ है। उसके दर्शन मात्र से ही वह इक्कीस पुरखों को पवित्र कर देता है ॥४५॥ एक में अपने केशों का अभ्युक्षण करके पाप से पवित्र हो जाता है अर्थात् पाप छूट कर शुद्धता प्राप्त होती है। वहां पर एक अन्य महान् शुभों का लोमा यह श्रेष्ठतम तीर्थ है ॥४६॥ वहां पर हे विप्रगण! महान् विद्वान् तथा अत्यन्त विशाल प्रज्ञा वाले, तीर्थों में परायण ब्राह्मण उस श्व-विलोमा यह तीर्थ में जो कि त्रैलोक्य में परम विख्यात है ॥४७॥ वहां पर ही दशाश्व मेधिक नामक तीर्थ अति प्रसिद्ध है। वहा जाकर भक्ति के भाव से स्नान करने पर वही फल भी प्राप्त होता है अर्थात् दश अश्व मेध यज्ञों का फल मिल जाता है ॥४८॥

ततो गच्छेद्धि श्रद्धावान्मानुषं लोकविश्रुतम् ।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य मुक्तो भवति किल्विषैः ॥५०
पुरा कृष्णमृगास्तत्र व्याधैस्तु शरपीडिताः ।
अवगाह्य सरस्यस्मिन्मानुषत्वमुपागताः ॥५१
ततो व्याधाश्च ते सर्वे मानपृच्छन्द्विजोत्तमान् ।
मृगाः क्व ऋषयो याता अस्माभिः शरपीडिताः ॥५२
निमग्नास्ते सरः प्राप्य किं तद्ब्रूत द्विजोत्तमाः ।
तेऽब्रुवंस्तत्र वै पृष्टा वयं ते च द्विजोत्तमाः ॥५३

अस्य तीर्थस्य महात्म्यान्मानुषत्वमुपागता ।
तस्माद्यूय श्रद्दधाना स्नात्वा तीर्थे विमत्सराः ।।५४
सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यथ न सशयः ।
तत. स्नाताश्च ते सर्वे शुद्धदेहा दिव गता ।।५५
एत तीर्थस्य माहात्म्य मानुपस्य द्विजोत्तमाः ।
ये शृण्वन्ति श्रद्दधानास्तेऽपि यान्ति परागतिम् ।।५६

इसके अनन्तर श्रद्धाभाव रखने वाला मनुष्य लोक प्रसिद्ध मानुप तीर्थ पर जावे । उस तीर्थ के दर्शन से समस्त किल्विषों से मनुष्य मुक्त हो जाया करता है ।।५०।। पहले समय मे वहा पर काले हरिण व्याधों के द्वारा शरों से पीडित किये गये थे । वे सब इस सर मे अवगाहन (स्नान) करके मानुपत्व को प्राप्त हो गये थे ।।५१।। इसके पश्चात् उन व्याधो ने उन द्विजोत्तमो से पूछा था—हमारे शरों से पीडित होकर मृगरूप मे आने वाले हे मृगो ! कहा आप लोग चल दिये हैं ? ।।५२।। हे द्विजोत्तमो ! आप लोग इस सर को प्राप्त कर निमग्न हो गये थे न ? फिर यह क्या हुआ ? इसे आप हमको स्पष्ट बतलाइये । उन द्विजोत्तमों से जब इस तरह पूछा गये तो कहा कि हम वे ही मृग हैं ।।५३।। यह इस तीर्थ का ही महान् माहात्म्य है इसी से हमने यह मानुपत्व प्राप्त कर लिया है । इसलिये आप लोग भी श्रद्धा भाव समन्वित होकर इस तीर्थ मे स्नान करने से मात्सर्यों से रहित हो जाओगे ।।५४।। तथा समस्त पापों से भी छुटकारा पा जाओगे—इसमे कुछ भी संशय नही है । इसके पश्चात् उन सब ने भी स्नान किया था और शुद्ध देह वाले होकर वे समस्त व्याध दिव लोक मे चले गये थे । हे द्विजोत्तमो ! इस मानुप तीर्थ का का यही माहात्म्य है । जो इस तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण किया करते हैं और श्रद्धा के भाव से समन्वित होते हैं । वे भी परम गति को प्राप्त हो जाया करते हैं । इसमे लेश मात्र भी सन्देह का कोई अवसर ही नही है ।।५५-५६।।

३६—तीर्थ माहात्म्य वर्णन (१)

मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रे द्विजोत्तमाः ।
आपगा नाम विख्याता नदी द्विजनिषेविता ॥१
श्यामाकं पयसा सिद्धमाज्येन च परिप्लुतम् ।
ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्तेषां पापं न विद्यते ॥२
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राप्य तामापगां नदीम् ।
ते सर्वकामसंयुक्ताभविष्यन्ति न संशयः ॥३
स्मरन्ति पितरस्तस्य स्मरन्ति च पितामहाः ।
अस्माकं च कुले पुत्रः पौत्रो वाऽपि भविष्यति ॥४
य आपगां नदी गत्वाऽस्मांस्तिलैस्तर्पयिष्यति ।
तेन तृप्ता भविष्यामो यावत्कुलशतं भवेत् ॥५
नभस्ये मासि संप्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषतः ।
चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात् ॥६
ततो गच्छेत्त विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
ब्रह्मोदुम्बरमित्येवं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥७

महर्षिलोम हर्षण ने कहा—हे द्विजोत्तम वृन्द ! इन मानुष तीर्थ के पूर्व में एक कोश दूरी पर आपका नाम वाली विख्यात नदी है है जिसका कि द्विजगण सेवन किया करते हैं ॥१॥ आज्य से परिप्लुत और पय के द्वारा सिद्ध किया हुआ श्यामाक की ब्राह्मणों के लिये जो दान किया करते हैं उनको फिर कोई भी पाप शेष ही नहीं रहा करता है ॥२॥ उस आपगा नदी पर पहुँच कर जो भी कोई मनुष्य अपने पितरों का श्राद्ध करेंगे वे सब अपनी कामनाओं से संयुक्त होकर सफल हो जायगे इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३॥ उसके पितृगण तथा पितामह लोग स्मरण किया करते हैं कि हमारे कुल में जो भी कोई पुत्र अथवा पौत्र होगा ॥४॥ जो आपगा नदी पर जाकर हमको तिलों के द्वारा तृप्त करेगा अर्थात् हमारा तर्पण करेगा उससे हम ऐसे तृप्त हो जायेंगे कि जब तक उसके सौ कुल (अर्थात् सौ पीढ़ियाँ) होंगे तब

तक बराबर हमारी तृप्ति बनी रहेगी ॥५॥ नभस्य मास के प्राप्त होने पर विशेष करके कृष्ण पक्ष मे चतुर्दशी के दिन मध्याह्न में जो पिण्ड दान करता है वह मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥६॥ इसके पश्चात् हे विप्रेन्द्र गण ! ब्रह्माजी के उत्तम स्थान मे जाना चाहिए। वह सब लोको मे 'ब्रह्मोदर' इसी नाम से विख्यात हैं ॥७॥

तत्र ब्रह्मादिकुण्डेषु स्नातस्य द्विज सत्तमाः ।
सप्तर्षीणा प्रसादेन सप्तसोमफल लभेत् ॥८
भरद्वाजो गौतमश्च जमदग्निश्च कश्यपः ।
विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः ॥९
एते समेत्य तत्कुण्ड कल्पित भुवि दुर्लभम् ।
ब्रह्मणा सेवित तस्माद्ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते ॥१०
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥११
देवान्पितृन्समुद्दिश्य यो विप्र पूजयिष्यति ।
पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥१२
सप्तर्षीश्च समुद्दिश्य पृथक्स्नान समाचरेत् ।
ऋषीणा च प्रसादेन सप्तलोकाधिपो भवेत् ॥१३
कपिलस्येति विख्यातं सर्वपातकनाशनम् ।
यस्मिन्स्थितः स्वयं देवो वृद्धकेदारसंज्ञितः ॥१४

वहां पर ब्रह्मादि कुण्डों मे हे द्विजगण ! जो भी कोई स्नान करता है वह सप्तर्षियों के प्रसाद से सात सोमों के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है ॥८॥ ये सात ऋषि ये हैं—भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि ये सात ऋषि सप्तर्षि कहे जाते हैं ॥९॥ इन सबने वहां एकत्रित होकर भूमण्डल में अति दुर्लभ वह कुण्ड बनाया है। ब्रह्माजी के द्वारा सेवित है इसी लिए ब्रह्मोदुम्बर इस नाम से कहा जाया करता है ॥१०॥ उस तीर्थ में स्नान करके जो कि परम श्रेष्ठ तीर्थ है अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के ब्रह्मलोक को अवश्य ही प्राप्त हो जाता है—इसमे कुछ भी विचार या सशय नहीं करना चाहिए ॥११॥

देवों और पितरों का उद्देश्य लेकर जो विप्रों की पूजा करेगा उससे उसके पितरों को परम सुख प्राप्त होगा और फिर वे उन परमोत्तम पदार्थों को प्रदान करेंगे जो इस भूलोक में अति दुर्लभ हैं ॥१२॥ सप्तर्षियों का उद्देश्य लेकर पृथक् स्नान करना चाहिए। ऋषियों के प्रसाद से मनुष्य सातों लोकों का अधिपति हो जाता है ॥१३॥ कपिलस्य इस नाम से विख्यात तीर्थ समस्त पातकों का नाश करने वाला होता है जिसमें वृद्ध केदार नाम वाले स्वयं देव संस्थित हैं ॥१४॥

तत्र स्नात्वार्चयित्वा च रुद्रं दण्डिसमन्वितम्।
अन्तर्द्धानमवाप्नोति शिवलोके स मोदते ॥१५
यस्तत्र तर्पणं कृत्वा पिबते चुलकत्रयम्।
देवदेवं नमस्कृत्य केदारस्य फलं लभेत् ॥१६
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं शिवमुद्दिश्य मानवः।
चैत्रशुक्ल चतुर्दश्यां प्राप्नोति परमं पदम् ॥१७
कलस्यां तु ततो गच्छेद्यत्र देवी च संस्थिता।
दुर्गा कात्यायनी भद्रा निद्रा माया सनातनी ॥१८
कलस्या च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा दुर्गां तटस्थिताम्।
संसारगहनं दुर्गं निस्तरेन्नात्र संशयः ॥१९
ततो गच्छेद्धि सरकं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥२०
लभते सर्वकामांश्च शिवलोकं स गच्छति।
तिस्र. कोट्यस्तु तीर्थानां सरके द्विजसत्तमाः ॥२१

वहाँ पर स्नान करके तथा अभ्यर्चन करके अर्थात् दण्ड समन्वित भगवान् रुद्रदेव का पूजन करके अन्तर्धान को प्राप्त होता है और फिर वह शिवलोक में आनन्द प्राप्त किया करता है ॥१५॥ जो वहाँ पर तर्पण करके तीन चुल्लू जलका पान किया करता है और देवों के भी देव को नमस्कार किया करता है वह केदार के पुण्य-फल को प्राप्त करलेता है ॥१६॥ जो मानव भगवान् शिव का उद्देश्य लेकर वहाँ पर श्राद्ध करता है और वह भी चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी

तिथि मे करता है वह परम पद को प्राप्ति करता है ॥१७॥ इसके उपरान्त कलस्वी मे जाने जहा पर देवी विराजमान है। वही देवी दुर्गा-कात्यायनी,भद्रा,निद्रा,माया और सनातनी हैं।१८॥कलसी मे स्नान करके मनुष्य तट पर स्थित दुर्गा का दर्शन करे तो इस गहन तम संसार के दुर्ग का निस्तरण प्राप्तकर लेता है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥१९॥ इसके बाद फिर सरक नामक तीर्थ मे गमन करे जोकि त्रैलोक्य मे भी परम दुर्लभ तीर्थ है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि मे महेश्वर देव का वहां पर दर्शन करे तो अपने समस्त मनोरथों की पूर्ति करता है और अन्त मे वह मनुष्य शिवलोक को चला जाता है। हे द्विज श्रेष्ठों ! इस सरक तीर्थ मे तीन करोड़ तीर्थ विद्यमान रहते हैं ॥२०-२१॥

रुद्रकोटिस्तथा कूपे सरोमध्ये व्यवस्थिता ।
तस्मिन्सरसि यः स्नात्वा रुद्रकोटिं स्मरेन्नरः ॥२२
पूजयित्वा रुद्रकोटिं भ विष्यति न संशयः ।
रुद्राणां च प्रसादेन सर्वदोषविवर्जितः ॥२३
ऐन्द्रयानेन संयुक्तः परं पदमवाप्नुयात् ।
इडास्पदं च तत्रैव तीर्थं पापभयापहम् ॥२४
यस्मिन्मुक्तिमवाप्नोति दर्शनादेव मानवः ।
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च पितृदेवगणानपि ॥२५
न दुर्गतिमवाप्नोति चिन्तितं मनसाऽऽप्नुयात् ।
केदारं च महातीर्थं सर्वकल्मषनाशनम् ॥२६
तत्र स्नात्वा तु पुरुषः सर्वदानफलं लभेत् ।
किं रूपं च महातीर्थं तत्रैव भुवि दुर्लभम् ।
तस्मिन्स्नातस्तु पुरुषः सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२७
सरकस्य तु पूर्वेण तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अस्य जन्म भुवि ख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८

कूप मे रुद्र कोटि है तथा सर के मध्य मे व्यवस्थित है। उस सर मे स्नान करके जो कोई मनुष्य रुद्र कोटि का स्मरण करता है ॥२२॥

जो रुद्र कोटि का स्मरण करता है वह रुद्रों के प्रसाद से समस्त दोषों से रहित हो जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२३॥ ऐन्द्रयान से संयुक्त होकर परम पद की प्राप्ति किया करता है। वहीं पर एक इड़ास्पद नाम वाला तीर्थ है जो पापों के भय को नष्ट कर देने वाला है ॥२४॥ वह ऐसा तीर्थ है जिसमें आकर दर्शन मात्र से ही मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लेता है। वहाँ स्नान करके तथा समर्चन करके एवं पितृगण और देवगण का पूजन करके मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है ॥२५॥ वह मनुष्य कभी भी दुर्गति की प्राप्ति तो करता ही नहीं है और जो भी मन से कुछ चिन्तन करता है उसकी भी प्राप्ति कर लेता है। यह केदार महान् तीर्थ है जो सम्पूर्ण कल्मषों का नाश करने वाला होता है। ॥२६॥ वहाँ पर स्नान करके मनुष्य सम्पूर्ण प्रकार के दानों के पुण्य का फल प्राप्त कर लेता है। वह वहाँ विश्व का पालक महान् तीर्थ है जो भूमण्डल में अत्यन्त दुर्लभ है। उस तीर्थ में स्नान करने वाला पुरुष समस्त यज्ञों के फलों का भागी हो जाया करता है ॥२७॥ इस तरह तीर्थ के पूर्व में त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ है। इसका जन्म भूमण्डल में सब पापों का प्रणाश करने वाला ही विख्यात है ॥ २८ ॥

नारसिंहं वपुः कृत्वा हत्वा दानवमूर्जितम् ।
तिर्यग्योनिस्थितो विष्णुः सिंहीषु रतिमाप्तवान् ॥२९
ततो देवाः सगंधर्वा आराध्य वरदं शिवम् ।
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्य लम्भने ॥३०
ततो देवो महात्मासौ शारभं रूपमास्थितः ।
युद्धं चकार सुमहद्दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥३१
युद्धयमानौ तु तौ देवौ पतितौ ह्रदमध्यतः ॥३२
तस्मिन्सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः ।
आश्वत्थस्थानमाश्रित्य ध्यानस्थस्तौ ददर्श ह ॥३३
विष्णुश्चतुर्भुजो जज्ञे लिङ्गाकारः शिवः स्थितः ।
तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभावतः ॥३४

नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभृते नमः ॥३५

नारसिंह वपु धारण करके परम ऊर्जित दानव (हिरण्यकशिपु) का हनन किया था तथा भगवान् विष्णु ने तिर्यग्योनि में स्थित होकर सिंहनियों में रति प्राप्त की थी ॥२६॥ इसके अनन्तर गन्धर्वों के सहित देवों ने वरदान प्रदान करने वाले भगवान् शिव का समाराधन किया किया था । सब ने प्रणत अङ्गों वाले होकर विष्णु के देह के शमन के लिये प्रार्थना की थी ॥३०॥ इसके पश्चात् महान् आत्मा वाले इस देव ने शरभ का रूप धारण किया था और अत्यन्त महान् युद्ध एक हजार वर्ष तक किया था ॥३१॥ इस प्रकार से युद्ध करते हुए वे दोनों देव ह्रद के मध्य में गिर गये थे ॥३२॥ उस सर के तट पर देवर्षि विप्र नारद संस्थित थे जो कि एक अश्वत्थ के स्थान का समाश्रय करके ध्यान में विद्यमान थे । इन ने उन दोनों को देखा था ॥३३॥ भगवान् विष्णु तो चार भुजाओं वाले थे और शिव लिङ्ग के आकार में संस्थित थे । उन दोनों महापुरुषों का दर्शन कर अति भक्ति की भावना से उन्होंने उनका स्तवन किया था ॥३४॥ नारदजी ने इस प्रकार से उनकी स्तुति की थी—देव शिव के लिये तथा प्रभु विष्णु विष्णु हरि के लिये मेरा नमस्कार समर्पित हो । उमा के स्वामी और स्थिति काल के भरण करने वाले देव के लिये नमस्कार है ॥३५॥

हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे ।
त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे ॥३६
धन्योऽहं सुकृती नित्य यद्दृष्टौ पुरुषोत्तमौ ।
ममाश्रममिदं पुण्यं युवाभ्यां विमलीकृतम् ॥३७
अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये धन्य जन्मेति विश्रुतम् ॥३८
य इहागत्य च स्नात्वा पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ।
तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानमिन्द्र भविष्यति ॥३९
अश्वत्थस्य च यन्मूलं सदा तत्र वसाम्यहम् ।
अश्वत्थवन्दनं कृत्वा शिवं कृष्णं नमस्यति ॥४०

ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा नागस्य ह्रदमुत्तमम् ।
पुण्डरीकाम्भसि स्नात्वा यज्ञस्यफलमाप्नुयात् ॥४१
दशम्या शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः ।
स्नानं जपस्तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम् ॥४२

भगवान् हर जो कि बहुत-से स्वरूपों वाले हैं तथा भगवान् विष्णु के लिये जो विश्व के स्वरूप वाले हैं नमस्कार है । सुसिद्ध त्र्यम्बक के लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥ नारद ने कहा—मैं परम धन्य भाग वाला हूँ और निश्च ही बहुत सुकृती है जिसने इन दोनों पुरुषोत्तमों का आज दर्शन प्राप्त कर लिया है । मेरे आश्रम को आप दोनों ने परम पुण्यमय तथा विमल बना दिया है ॥३७॥ आज से लेकर मैं लोक्य में धन्य जन्म है—ऐसा विख्यात होगा ॥३८॥ जो भी कोई यहाँ पर समागत होकर स्नान करेगा तथा अपने पितृगण का तर्पण करेगा उस श्रद्धा से समन्वित पुरुष का ज्ञान इन्द्र हो जायगा ॥३६॥ इस अश्वत्थ का जो मूल है, मैं वहाँ पर सदा वास करता हूं । जो इस अश्वत्थ (पीपल) की वन्दना करके शिव तथा कृष्ण को नमस्कार करेगा । इसके पश्चात् हे विप्रेन्द्र-गण ! नाग के उत्तम ह्रद पर जाकर पुण्डरीकाम्भ में स्नान करेगा वह यज्ञ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेगा ॥४०-४१॥ चैत्रमास की शुक्ल पक्ष की विशेष रूप से दशमी तिथि में स्नान जप तथा श्राद्ध मुक्ति के मार्ग का प्रदान करने वाला होता है ॥४२॥

ततस्त्रि विष्टप गच्छेत्तीर्थं देवनिषेवितम् ।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी ॥४३
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेत्व परमां गतिम् ॥४४
ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्रा रसावर्तनमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥४५
चैत्रशुक्लचतुर्दश्या तीर्थे स्नात्वा ह्यलेपके ।
पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेशो न विद्यते ॥४६
ततो गच्छेद्धि विप्रेन्द्राः फलकीवनमुत्तमम् ।

यत्र देवा: सगन्धर्वा: साध्याश्च ऋषयस्तथा ।
तपश्चरन्ति विपुल दिव्य वर्ष सहस्रकम् ॥४७

दृषद्वत्या नर: स्नात्वा तर्पयित्वा च देवता· ।
अग्निष्टोमातिरात्रस्य फल विन्दति मानव: ॥४८

सोमक्षये च सप्राप्ते सोमस्य च दिने तथा ।
य: श्राद्ध कुरुते मर्त्यस्तस्य पुण्यफल शृणु ॥४६

इसके अनन्तर त्रिविष्टप तीर्थ मे जावे जो देवों के द्वारा निषेवित होता है । वहा पर परम पुण्यमयी वैतरणी नाम वाली नदी है जो पापों से छुटकारा दिलाने वाली होती है ॥४३॥ वहा पर स्नान करके तथा शूल पाणि वृषभ्वज का अर्चन करके समस्त पापो से छूटकर विशुद्ध आत्मा वाला पुरुष हो जाया करता है और फिर परम गति को प्राप्त होता है । इसके उपरान्त हे विप्रेन्द्र गण ! उत्तम रसावर्तन तीर्थ मे जाना चाहिए । वहा पर भक्ति से युक्त होकर स्नान करने मे मनुष्य उत्तम सिद्धि को प्राप्त किया करता है ॥४४-४५॥ चैत्रमास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी मे अलेपक तीर्थ मे स्नान करके तथा वहा पर शिव का पूजन करे तो पापो का लेशमात्र भी नहीं रहता है ॥४६॥ इसके पश्चात् हे विप्रगण ! फिर उत्तम फल की वन तीर्थ मे चला जावे जहा पर देवगण, गन्धर्व, साध्य तथा ऋषि वृन्द विपुल एव दिव्य तप सहस्रो वर्ष पर्यन्त किया करते हैं ॥४७॥ दृषद्वती नदी मे मनुष्य स्नान करके तथा देवो का तर्पण करके अग्निष्टोमातिरात्र यज्ञ के फल का लाभ किया करता है ॥४८॥ सोमक्षय प्राप्त होने पर सोम के ही दिन मे जो मनुष्य श्राद्ध करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसको अब आप लोग मुझसे श्रवण करें ॥४६॥

गयाया च यथा श्राद्ध पितृन्प्रीणाति नित्यश· ।
तथा श्राद्ध च कर्त्तव्य फलकीवनमाश्रितै: ॥५०

मनसा स्मरते यस्तु फलकीवनमुत्तमम् ।
तस्यैव पितरस्तृप्ति प्रयास्यन्ति न सशय: ॥५१

तत्रापि तीर्थं सुमहत्सर्वदेवैरलङ्कृतम् ।
तस्मिन्स्नातस्तु पुरुषो गोसहस्रफलं लभेत् ।।५२
पाणिखाते नरः स्नात्वा पितृन्सन्तर्प्य मानव. ।
अवाप्नुयाद्राजसूयं साङ्ख्यं योगं च विन्दति ।।५३
ततो गच्छेद्धि सुमहत्तीर्थमिश्रकमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना ।।५४
व्यासेन मुनिशार्दूल दधीचार्थं महात्मना ।
सर्वतीर्थेषु स स्नातो मिश्र के स्नाति यो नरः ।।५५
ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशन. ।
मनोजवे नर स्नात्वा इष्ट्वा देव मनीषिणम् ।।५६

गया तीर्थ में किया हुआ श्राद्ध जिस प्रकार से नित्य ही पितृगण को परम प्रसन्नता देता है उसी प्रकार का श्राद्ध इस फल्गु की वन नामक तीर्थ में समाश्रित होकर पुरुषों को करना चाहिए ।।५०।। मन से जो इस श्रेष्ठतम फल्गु की वन का स्मरण किया करता है उसके भी पितर तृप्ति को प्राप्त हो जायेंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।५१।। वहाँ पर भी सुमहान् तीर्थ है जो समस्त देवों के द्वारा अलङ्कृत है । उसमें स्नान करने वाला पुरुष सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है ।।५२।। पाणिखात में मनुष्य स्नान करके पितरों का तर्पण करता है वह राजसूय यज्ञ का फल पा जाता है तथा साङ्ख्य और योग शास्त्र का ज्ञाता हो जाया करता है ।।५३।। इसके अनन्तर सुमहान् एवं उत्तम मिश्रक तीर्थ को जाना चाहिए । वहाँ पर महात्मा मुनि ने तीर्थों को मिश्रित कर दिया है ।।५४।। हे मुनियों में शार्दूल ! भगवान् महात्मा व्यास देव ने दधीच के लिये ही ऐसा मिश्रण किया था । जो मनुष्य मिश्रक तीर्थ में स्नान करता है वह सभी तीर्थों में स्नान कर लिया करता है क्योंकि यहाँ पर तो सभी तीर्थों का मिश्रण विद्यमान है ।।५५।। इसके बाद फिर व्यास वन नामक तीर्थ को जावे तथा नियत एवं नियत अशन वाला होकर ही जाना चाहिए । मनोजव में जाकर जो स्नान

करता है और मनीषिण देव का दर्शन करता है उसका महान् पुण्य होता है ।।५६।।

मनसा चिन्तितं सर्वं सिद्धयते नात्र संशयः ।
गत्वा मधुवनं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः ।।५७
तत्र स्नात्वा च वै देवान्पितृंश्च प्रयतो नरः ।
स देव्या समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः ।।५८
कौशिक्याः संगमे यस्तु दृषद्वत्यां नरोत्तमः ।
स्नायीत नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५९
ततो व्यासस्थली गच्छेद्यत्र व्यासेन धीमता ।
पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाय निश्चयः ।।६०
कृतो देवैश्च विप्रेन्द्र पुनरुत्थापितस्तदा ।
अभिगम्य स्थली तस्य पुत्रशोकं न विन्दति ।।६१
किंदत्तकूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च ।
गच्छेच्च परमां सिद्धिं ततो मुक्तिमवाप्नुयात् ।।६२
अह्नं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे ।
तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात् ।।६३

वहां पर जो भी मानव मन मे चिन्तन किया करता है उस सबकी प्राप्ति उसे अवश्य ही हो जाया करती है इसमे कुछ भी संशय नहीं है। देवी के मधुवन तीर्थ मे मनुष्य शुचि होकर जावे ।।५७।। वहा पर स्नान करके तथा प्रयत मनुष्य देवो और पितरो का तर्पण करे तो देवी के प्रसाद से समनुज्ञात होकर सिद्धि का लाभ किया करता है ।।५८।। कौशिकी के संगम मे तथा दृषद्वती मे जो उत्तम नर स्नान करता है और आहार मे नियत रहता है वह निश्चय ही सब पापो से छुटकारा पा जाया करता है ।।५९।। इसके पश्चात् व्यास स्थली को चले जाना चाहिए। जहा पर धीमान् व्यास देव ने पुत्र के शोक से अभिभूत होकर देह के त्याग करने का निश्चय किया था ।।६०।। हे विप्रेन्द्र ! उस समय मे देवों ने पुनः उत्थापित किया था। जो उस स्थली मे पहुँचता है वह कभी पुत्र का शोक प्राप्त नहीं किया करता है ।।६१।। किंदत्त कूप नामक

तीर्थ में प्राप्त होकर एक प्रस्थ तिलों का दान प्राप्त किया करता है ॥६२॥ इस भूमण्डल में अन्न और सुदिन में दो तथ अत्यन्त दुर्लभ हैं। इन दोनों में स्नान करके विशुद्ध आत्मा वाला हो जाता है और फिर सूर्य लोक की प्राप्ति किया करता है ॥६३॥

कृतपुण्य ततो गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिषेकं कुर्वीत गङ्गायां प्रयत स्थितः ॥६४
अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ।
कोटितीर्थं च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम् ॥६५
तत्र स्नात्वा श्रद्दधानः कोटियज्ञफलं लभेत् ।
ततो वामनकं गच्छेत्त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥६६
यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।
बलेरपहृतं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम् ॥६७
तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम् ।
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥६८
ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपातकनाशनम् ।
तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं सम्प्रयाति न संशयः ॥६९
ज्येष्ठमासे सिते पक्ष एकादश्यामुपोषितः ।
द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठत्वं लभते नृप ॥७०

इसके अनन्तर कृत पुण्य नामक तीर्थ में जाना चाहिए जो कि तीनों लोकों में परम प्रसिद्ध तीर्थ है। वहाँ पर अभिषेक करना चाहिए और गंगा में प्रयत होकर स्थित होवे ॥६४॥ महादेव का अर्चन करने से अश्वमेध यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त होता है। वहीं पर ही कोटि तीर्थ है। कोटीश्वर प्रभु का दर्शन करे ॥६५॥ वहाँ स्नान करके श्रद्धालु मनुष्य कोटि यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। इसके उपरान्त फिर वामनक नाम वाले तीर्थ में जावे जोकि तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥६६॥ जहाँ पर प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने वामन स्वरूप धारण करके दानवराज बलि के राज्य का अपहरण किया था और देवराज इन्द्र को प्रतिपादित कर दिया था ॥६७॥ वहाँ विष्णुपद में स्नान करके

और वामन भगवान् की पूजा करे। इससे समस्त पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध आत्मा वाला हो जाता है और अन्त में विष्णु लोक की प्राप्ति उस मनुष्य को होती है ।।६८।। वहीं पर ज्येष्ठाश्रम नामक तीर्थ है जो समस्त पापों का नाश करने वाला है। उनका दर्शन करके मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति अवश्य ही कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।६९।। ज्येष्ठ मास के सित पक्ष में एकादशी तिथि के दिन उपवास करे और फिर द्वादशी के दिन स्नान करे तो वह समस्त मनुष्यों में ज्येष्ठता प्राप्त किया करता है ।।७०।।

तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनतत्पराः ।।७१
तेभ्यो दत्तानि श्राद्धानि दानानि विविधानि च ।
अक्षयाणि भविष्यन्ति यावन्मन्वतरस्थितिः ।।७२
तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटि यज्ञफलं लभेत् ।।७३
कोटीश्वरं नरो दृष्ट्वा तस्मिंस्तीर्थे महेश्वरम् ।
महादेवप्रसादेन गाणपत्यमवाप्नुयात् ।।७४
तत्रैव सुमहत्तीर्थं सूर्यस्य च महात्मनः ।
तस्मिन्स्नात्वा भक्तियुतः सूर्यलोके महीयते ।।७५
ततो गच्छेत्त विप्रेन्द्रास्तीर्थं कल्मषनाशनम् ।
कुलोत्तारणकं नाम्ना विष्णुना कल्पितं पुरा ।।७६

वहाँ पर प्रभविष्णु भगवान् विष्णु ने विप्रों के प्रतिष्ठित किया है। वे सब दीक्षा प्रतिष्ठा से संयुक्त थे और भगवान् विष्णु के प्रसन्न करने के कर्मों में तत्पर रहा करते थे ।।७१।। उन ब्राह्मणों को दिए हुए श्राद्ध तथा विविध दान अक्षय फल वाले होते हैं और जब तक मन्वन्तर की स्थिति रहती है वे अक्षय रहा करते हैं ।।७२।। वहीं पर ही कोटि तीर्थ है जो तीनों लोकों में विख्यात है उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके एक कोटि यज्ञों के फल का लाभ प्राप्त कर लेता है ।।७३।।

मनुष्य कोटीश्वर महेश्वर का दर्शन प्राप्त करके उस तीर्थ मे महादेव के प्रसाद से गणपत्य पद को पाजाता है ॥७४॥ वहीं पर महात्मा सूर्य देव का एक सुमहत् तीर्थ भी है। उस तीर्थ मे भक्ति भाव से युक्त मनुष्य स्नान करके सूर्य लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥७५॥ इसके पश्चात् हे विप्रवृन्द ! कल्मषों के नाश करने वाले कुलोतारण नाम वाले तीर्थ मे मनुष्य जावे जिसको भगवान् विष्णु ने पहिले कल्पित किया था ॥७६॥

वर्णानामाश्रमाणां च तारणाय सुनिर्मलम् ।
तेऽपि तत्तीर्थमासाद्य पश्यन्ति परम पदम् ॥७७
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
कुलानि तारयेत्स्नातः सप्त सप्त च सप्त च ॥७८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च तत्पराः ।
तीर्थस्नाता भक्तियुता. पश्यन्ति परम पदम् ॥७६
दूरस्थोऽपि स्मरेद्यस्तु कुरुक्षेत्र सवामनम् ।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनस्तु वसन्नरः ॥८०

यह तीर्थ वर्णो तथा आश्रमो के तारण करने के लिये ही अत्यन्त सुनिर्मल है। वे भी उस तीर्थ में प्राप्त होकर परम पद का दर्शन किया करते हैं ॥७७॥ चाहे कोई ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो अथवा यति हो यदि इस तीर्थ मे स्नान कर लेता है तो वह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार कर दिया करता है ॥७८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्रियाँ इनमे कोई भी हो जो तत्परायण होकर भक्ति से युक्त रहते हुए तीर्थ मे स्नान करते हैं वे परम पद का दर्शन किया करते हैं ॥७६॥ चाहे कोई दूर देश मे ही स्थित हो और वामन के-सहित कुरुक्षेत्र का केवल स्मरण ही कर लेवे तो वह मनुष्य भी मुक्ति को प्रात कर लेता है फिर उस व्यक्ति का तो कहना ही क्या है जो वहाँ वास करके उनका दर्शन स्मरण किया करता है। वह तो अवश्य ही उत्तमोत्तम फल का भागी होता ही है ॥८०॥

३७–तीर्थों का माहात्म्य वर्णन (२)

पवनस्य ह्रदे स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
विमुक्तः सर्वकलुषः शवं पदमवाप्नुयात् ।।१
पुत्रशोकेन पवनो यस्मिंल्लीनो बभूव ह ।
ततः सब्रह्मकैर्देवैः स्तुत्वा तं भक्तिसंयुतः ।।२
ततो गच्छेद्धि हनुमतस्थान तच्छूलपाणिनः ।
यत्र देवैः सगन्धर्वैर्हनुमान्प्रकटीकृत. ।।३
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात् ।
कुलोत्तारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ।।४
कुलानि तारयेत्सर्वान्मातामहपितामहान् ।
शालिहोत्रस्य राजर्षेस्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।५
तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवैः ।
श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्या तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।।६
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या ह्यग्निष्टोमफल भवेत् ।
ततो नैमिषकुञ्ज तु समासाद्य नरः शुचिः ।।७

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—पवन के ह्रद में स्नान करके जो महेश्वर देव का दर्शन करता है वह समस्त कलुषों से विमुक्त हो जाता है और अन्त मे शैव पद की प्राप्ति करता है ।।१।। जहाँ पर पवन देव अपने पुत्र के शोक में लीन होगये थे । इसके पीछे ब्रह्मक देवों के साथ उनका स्तवन करके भक्तिभाव से संयुत होवे ।।२।। इसके उपरान्त शूलपाणि के हनुमतस्थान पर जावे जहाँ पर देव गन्धर्वों के सहित हनुमान् प्रकटी कृत हुए हैं ।।३।। उस तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है । कुलोत्तारण पर पहुँच कर तीर्थों का सेवन करने वाला द्विजोत्तम अपने मातामह पितामह आदि के सब कुलों का तारण कर देता है । शालिहोत्र का तीर्थ है राजर्षे ! त्रैलोक्य में विख्यात है ।।४-५।। वहाँ स्नान करने से मनुष्य सम्पूर्ण देह से समुत्पन्न कलुषों से विमुक्त हो जाया करता है । सरस्वती मे श्रीकुञ्ज तीर्थ भी ऐसा प्रसिद्ध है जिसको त्रिभुवन मे सभी कोई जानता है ।।६।। वहाँ जाकर

स्नानादि भक्तिभाव से जो कोई करता है वह मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त किया करता है। इसके पश्चात् एक नैमिष कुञ्ज नामक तीर्थ है वहाँ पर मनुष्य प्राप्त होकर मुक्ति होवे ॥७॥

नैमिषस्य च स्नानेन यत्पुण्य तत्समाप्नुयात् ।
तत्र तीर्थं महत्ख्यात वेदवत्या निषेवितम् ॥८
रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसत्तमा ।
तद्वधाय च सा प्राणान्मुमुचे शोककर्शिता ॥९
ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मन ।
सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता ॥१०
सा हृता रावणेनैव विनाशायात्मनः स्वयम् ।
रामेण रावणं हत्वा अभिषिच्य विभीषणम् ॥११
समानीता गृह सीता कीर्तिरात्मवन यथा ।
तस्या तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायज्ञफल लभेत् ॥१२
विमुक्तः कलुषै. सर्वैः प्राप्नोति परम पदम् ।
ततो गच्छेच्च सुमहद्ब्रह्मण. स्थानमुत्तमम् ॥१३
यत्र वर्णावरः स्नात्वा ब्राह्मण्य लभते नरः ।
ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात् ॥१४

नैमिष तीर्थ के स्नान करने से जो भी पुण्य होता है वह फल मनुष्य प्राप्त करता है। वहा पर बहुत अधिक ख्यात तीर्थ है जोकि वेदवती के द्वारा निषेवित है ॥८॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! रावण ने उसके केश पकड़ कर उसे ग्रहण किया था। उसके वध के लिये शोक से कर्शित होकर अपने प्राणो को त्याग दिया था ॥९॥ इसके पश्चात् महान् आत्मा वाले राजा जनक के घर मे वह उत्पन्न होकर सीता इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी तथा परम पतिव्रता वह श्री राम की पत्नी हुई थी ॥१०॥ वही रावण के द्वारा ही स्वय अपने ही विनाश करने के लिये हरण की गई थी इसका परिणाम यह हुआ था कि श्रीराम ने रावण का हनन कर दिया था और उसके राज्यासन पर विभीषण को अभिषिक्त कर दिया गया था ॥११॥ फिर सीता को घर मे लाया गया

या जिस प्रकार से आत्मवत की कीत्ति लाई गई थी। उसके तीर्थ में मनुष्य स्नान करके कन्या यज्ञ के फल को प्राप्त किया करता है ॥१२॥ समस्त कलुषो से विमुक्त होकर परम पद की प्राप्ति कर लेता है। इसके पश्चात् सुमहत् ब्रह्मा के उत्तम स्थान मे जाना चाहिए ॥१३॥ जहाँ पर अवर वर्ण वाला भी मनुष्य स्नान करके ब्राह्मण्य को प्राप्त कर लेता है। यदि ब्राह्मण स्नान करता है तो वह विशुद्ध आत्मा वाला होकर परम पद को प्राप्त करता है ॥१४॥

ततो गच्छेत्सोमतीर्थं त्रैलोक्ये चापि दुर्लभम् ।
यत्र सोमस्तपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्तवान् ॥१५
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च स्वपितॄन्दैवतानि च ।
निर्मुक्त. स्वर्गमायाति कार्त्तिक्यां वामन यथा ॥१६
सप्तसारस्वत तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
यत्र सप्त सरस्वत्य एकीभूता वहन्ति च ॥१७
सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विमला मानसह्लदा ।
सरस्वतोघ नाम्नी च सुवर्णा विमलोदका ॥१८
पितामहस्य यजत. पुष्करेषु स्थितस्य ह ।
अब्रुवन्नृषय. सर्वे नाय यज्ञो महाफल. ॥१९
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ।
तच्छ्रुत्वा भगवान्प्रीत सस्माराथ सरस्वतीम् ॥२०
पितामहेन यजताह्याहूता पुष्करेषु च ।
सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती ॥२१

इसके उपरान्त सोम तीर्थ को जाना चाहिए जो तीर्थ त्रिभुवन मे परम प्रसिद्ध है तथा दुर्लभ है जहाँ पर सोमदेव ने उग्र तपश्चर्या करके द्विजाग्रय को प्राप्त किया था ॥१५॥ वहा उस सोम तीर्थ में स्नान करे और पितृगण एव देव वृन्दों का अर्चन करे। इससे यह फल होता है कि मनुष्य पापो से निर्मुक्त होकर स्वर्ग मे चला जाता है जिस तरह कार्तिकी मे वामन गये थे ॥१६॥ फिर सप्त सारस्वत तीर्थ है जो त्रिलोकी मे भी महान् दुर्लभ है। जहां पर सात सरस्वती

एकीभूत होकर बहती हैं ॥१७॥ उन सातों सरस्वतियों के ये नाम हैं—सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विमला, मानस ह्रदा, सरस्वत्तोया, सुवर्ण और विमलोदका ये सातों के नाम हैं ॥१८॥ यजन करने वाले तथा पुष्कर में संस्थित पितामह से सब ऋषियों ने कहा था कि यह यज्ञ का महान् फल नहीं है अर्थात् महान् फल वाला यह यज्ञ नहीं है ॥१९॥ अति श्रेष्ठ सरस्वती नदी सामने में स्थित होती हुई दिखलाई नहीं देती है। यह श्रवण करके भगवान् परमेष्ठी परम प्रसन्न हुए थे और उन्होंने सरस्वती का स्मरण किया था ॥२०॥ यजन करने वाले ब्रह्माजी के द्वारा (पुष्कर) में समाहृत हुई सुप्रभा नाम वाली वह देवी सरस्वती वहाँ पर विख्यात हुई थी ॥२१॥

> ता दृष्ट्वा मुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम् ॥ ।
> पितामहं मानयन्ती ते तु तां बहुमेनिरे ॥२२
> एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती ।
> समानीता कुरुक्षेत्रं मार्कण्डेन महात्मना ॥२३
> नैमिषे मुनयः स्थित्वा शौनकाद्यास्तपोधनाः ।
> ते पृच्छन्ति महात्मानं पुराणं लोमहर्षणम् ॥२४
> कथं न स्याद्यज्ञफलं वर्त्तता सत्पथे मुने ।
> ततोऽब्रवीन्महाभाग प्रणम्य शिरसा मुनीन् ॥२५
> सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत् ।
> एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो नानास्वाध्यायवेदिनः ॥२६
> समागम्य ततः सर्वे सस्मरन्ति सरस्वतीम् ।
> सा तु ध्याता ततस्तत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ॥२७

उसका दर्शन करके जो कि बड़े वेग वाली सरस्वती थी मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। पितामह का मान करने वाली उस देवी का उन मुनि गण ने भी बहुत अधिक सम्मान किया था ॥२२॥ इस प्रकार से यह श्रेष्ठ सरिता सरस्वती पुष्कर में स्थित होने वाली हुई थी फिर महात्मा मार्कण्डेय के द्वारा यह कुरुक्षेत्र में लाई गई थी ॥२३॥ नैमिष क्षेत्र में समस्त मुनिगण जिनमें शौनकादिक भी थे और बहुत ही तपोधन

से स्थित होकर सबने महात्मा परम पुराण लोम हर्षण से पूछा था ॥२४॥ हे मुने ! सन्मार्ग में स्थित होकर कर्म करने वाले हमको यज्ञ का फल क्यों नहीं होता है ? इसके पश्चात् महाभाग लोम हर्षण ने समस्त मुनियों को सिर से प्रणिपात करके कहा था ॥२५॥ जहाँ पर सरस्वती स्थित है वहीं पर यज्ञ का महान् फल होता है। यह श्रवण करके अनेक स्वाध्याय के ज्ञाता मुनिगण यहाँ पर समागत हुए थे ॥२६॥ फिर सबने समागम करके सरस्वती देवी का स्मरण किया था। इस प्रकार मुनि मण्डल के द्वारा ध्यान की हुई थी। वे सब ऋषि सत्र वाली थे ॥२७॥

समागता प्लवनार्थं यज्ञे तेषां महात्मनाम् ।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मङ्कणेन महौजसा ॥२८
समायाता कुरुक्षेत्र पुण्यतोया सरस्वती ।
गयस्य यजमानस्य गयायां च महाक्रतौ ॥२९
आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती ।
विशाला नाम तां प्राहुर्ऋषयः संशितव्रताः ॥३०
सरित्सा हि समाहूता मङ्कणेन महात्मना ।
कुरुक्षेत्रं समायाता प्रविष्टा च महानदी ॥३१
उत्तरे कोशलाभागे पुण्ये देवर्षिसेविते ।
उद्दालकेन मुनिना तत्र ध्याता सरस्वती ॥३२
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ।
पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः ॥३३
मनोहरेति विख्याता केदारे या सरस्वती ।
सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋषिसिद्धनिषेविता ॥३४
साऽपि तेनेह मुनिना ह्याराध्य परमेश्वरम् ।
ऋषीणामुपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता ॥३५

फिर वह देवी उन सब महात्माओं के प्लावन के लिये यज्ञ में समागत हुई थी। नैमिष क्षेत्र में महान् ओज वाले मंकण के द्वारा काञ्चनाक्षी नाम वाली हुई थी। वह यहाँ पर समायात हुई सरस्वती परम पुण्यमय जल वाली थी। गय नाम वाले यजमान के गया में महान्

ऋतु में भी वह श्रेष्ठ सरिता सरस्वती समाहूत हुई थी और उस गय यज्ञ में सचिन्त व्रत वाले ऋषियों ने वहाँ पर उसका नाम विशाला कहा था ॥२८-३०॥ उस सरिता को महात्मा मङ्कण ने भी समाहूत किया था और वह कुरुक्षेत्र लाई थी तथा उस महानदी ने वहाँ पर प्रवेश किया था ॥३१॥ उत्तर कोशलाभाग में जो देवर्षियों के द्वारा सेवित परम पुण्यमय है वहाँ पर इस सरिता का उद्दालक मुनि ने ध्यान किया था ॥३२॥ मुनि के द्वारा समाह्वान करने के कारण से वह अतिश्रेष्ठ नदी उस देश में आगई थी। वल्कल और मृगचर्म धारण करने वाले मुनि वृन्दों के द्वारा वह वहाँ पर पूजित हुई थी ॥३३॥ जो यह सरस्वती सरिता केदार में 'मनोहरा'—इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी वह सब पापों के क्षय करने वाली तथा ऋषि और सिद्धों के द्वारा निषेवित जाननी चाहिए ॥३४॥ यहाँ पर भी वह मुनि के द्वारा परमेश्वर का समाराधन करके ऋषियों के उपकार करने के लिये ही कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट कराई गई थी ॥३५॥

दक्षेण यजता सापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ।
विमलोदा भगवती दक्षेण प्रकटीकृता ॥३६
समाहूता ययौ तत्र मङ्कणेन महात्मना ।
कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजता च सरस्वती ॥३७
सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता ।
अभिष्टूय महाभागः पुण्यतोया सरस्वतीम् ॥३८

प्रजापति दक्ष के द्वारा जो कि यजन कर रहा था वह सरस्वती गंगाद्वार में भगवती विमलोदा प्रकट की गई थी और दक्ष ने ही इसे प्रकट किया था ॥३६॥ वहाँ महात्मा मङ्कण के द्वारा समाहूत होकर गई थी ; कुरुक्षेत्र में तो यजन करने वाले कुरु के द्वारा यह सरस्वती नदी सर के मध्य में समानीत हुई थी । परम धीमान् मार्कण्डेय मुनि के द्वारा भी वहाँ लाई गई थी । इस पुण्यमय जल वाली सरस्वती का अभिस्तवन कर महान् भाग वाले मङ्कण जहाँ पर सप्त सारस्वत में सिद्ध स्थित हुए हैं ॥३७-३८॥

३८—मंकण कृत शिवस्तुति

कथं मङ्कणकः सिद्धः कस्माज्जातो महानृषिः ।
नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः ॥१
कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्कणो मुनिः ।
स्नानं कर्तुं व्यवसितो गृहीत्वा वल्कलं द्विजाः ॥२
तत्रगता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनाः ।
स्नान्त्येव रुचिराकारा मुक्तवस्त्रा अनिन्दिताः ॥३
ततो मुनेस्तदा क्षोभाद्रेतः स्कन्नं यदम्भसि ।
व्याधो जग्राह तद्रेतः कलशे व्यक्षिपत्तथा ॥४
सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह ।
तत्रर्षयः सप्त जाता विद्युर्यान्मरुतो गणान् ॥५
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ।
वायुकालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान् ॥६
ह्यस्यर्षेस्तनया एते धारयन्ति चराचरम् ।
पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति मे श्रुतम् ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! मंकणक किस प्रकार सिद्ध होगये थे और यह किस कारण से महान् ऋषि भी हुए थे ? (नृत्यमान यह देव के द्वारा किस लिए निवारित कर दिये गये थे ?)॥१॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—यह मंकण मुनि कश्यप मुनी न्द्र से मानस पुत्र समुत्पन्न हुए थे। हे द्विजगण ! यह वल्कल ग्रहण करके स्नान करने के लिए व्यवसित हुए थे ॥२॥ वहाँ पर प्रिय दर्शन वाली रम्भा आदि अप्सराऐं आगई थीं। वे सब रुचिर आकार वाली वस्त्रों का त्याग करके आनिन्दित होकर स्नान कर रहीं थीं॥३॥इसके पश्चात् उसी समय मे उन्हे देखकर मुनि के हृदय मे कुछ क्षोभ हो गया था और उनका वीर्य जल मे जो स्कन्न हो गयाथा उसे व्याध ने ग्रहण कर लिया था तथा उस वीर्य को कलश मे डाल दिया था॥४॥वह कलश मे स्थित सात भागों मे हो गया

था। वहाँ पर सात ऋषि उत्पन्न हुए थे जिनको मरुद्गण कहा जाता है ॥५॥ वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुकाल, वायुरेता, वायुचक्र, वीर्यवान् ये इतने उस ऋषि के पुत्र थे जो इस चराचर को धारण किया करते हैं। पहिले मकणग सिद्ध कुशाग्र से हुए थे, ऐसा मैंने श्रवण किया है ॥६-७॥

क्षतात्किल करे विप्रास्तस्य शाकरसोऽस्रवत् ।
स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः स नृत्तवान् ॥८
ततः सर्वं प्रनृत्तं च स्थावरं जङ्गमं च यत् ।
प्रनृत्तं च जगद्दृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम् ॥९
ब्रह्मादिभि. सुरैस्तत्र ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
विज्ञप्तो वै महादेवो मुनेरर्थे द्विजोत्तमाः ॥१०
नाय नृत्येद्यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतिं तदा ॥११
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत ।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवैव मुनिसत्तम ।
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम ॥१२
किं न पश्यसि मे ब्रह्मन्कराच्छ.करसं स्रुतम् ।
यं दृष्ट्वा च प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽन्वितः ॥१३
तं प्रहस्याब्रवीद्देवो मुनिं रागेण मोहितम् ।
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीह प्रपश्य माम् ॥१४

(हे विप्रवृन्द ! क्षत से उसके हाथ मे शाकरस स्रवित हो गया था और वह उस शाकरस को देखकर हर्ष मे समाविष्ट होकर नृत्य करने लगा था ॥८॥) इसके अनन्तर यह हुआ था कि जो भी स्थावर तथा जगम था वह सभी नर्तित होगये थे।) उसके तेज से मोहित होकर यह सम्पूर्ण जगत् ही प्रवृत्त होगया था—ऐसा ब्रह्मादिक ने देखा था ॥९॥ तब सब ब्रह्मादि सुरो ने तथा तपोधन ऋषियों ने हे द्विजोत्तमो ! [illegible] के लिये महादेव जी से कहा था॥१०॥ तब से महादेव जी से [illegible] थी कि हे देव ! आप ऐसा ही कर देवें कि [illegible]

आप ऐसा करने मे समर्थ हैं। उसी समय मे महादेव जी ने मुनि को हर्षाविष्ट मति वाला देखा था ॥११॥ देवगण के हित की कामना से महादेव जी ने कहा था—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से हर्ष होने का क्या कारण उपस्थित हो गया है ? हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ ! आप तो धर्म के मार्ग मे समास्थित हैं और परम तपस्वी हैं—ऐसा आप को तो कभी नहीं होना चाहिए ॥१२॥ ऋषि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! क्या आप नहीं देख रहे हैं कि मेरे कर से शाकरस स्रुत होगया है जिसको देखकर मैं महान् हर्ष से समन्वित होकर प्रवृत्त हो गया हूँ ॥१३॥ तब तो महादेव जी ने हँसकर रोग से मोहित उस मुनि से कहा था। हे विप्र ! मैं तो विस्मित नही हो रहा हू। आप मुझे ही देखलो ॥१४॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ देवदेवो महाद्युतिः ।
अङ्गुल्यग्रेण विप्रेन्द्राः स्वाङ्गुष्ठस्ताडितोऽभवत् ॥१५
ततो भस्मक्षतात्तस्मान्निर्गत हिमसन्निभम् ।
तद्दृष्ट्वा व्रीडितो विप्र पादयो. पतितोऽब्रवीत् ॥१६
नान्यद्देवादहं मन्ये शूलपाणेर्महात्मनः ।
चराचरस्य जगतो गुरुस्त्वमसि शूलधृक् ॥१७
त्वदाश्रयाश्च दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ ।
सर्वस्त्वमसि देवाना कर्ता कारयिता महान् ॥१८
त्वत्प्रसादात्सुराः सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभया. ।
सुरा सुरस्य चाधीश न तपो मे क्षरेन्महत् ॥१९
एव स्तुत्वा महादेवमृषिः स प्रणतोऽभवत् ।
ततो देवः प्रसन्नात्मा तमृषि वाक्यमब्रवीत् ॥२०
तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ।
आश्रमे चेह वत्स्यामित्वया सार्द्धमह सदा ॥२१
सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते नरः ।
न तस्य दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ॥२२
सारस्वत च ते लोक गमिष्यन्ति न सशयः ।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम् ॥२३

महान् द्युति से सपन्न मुनि श्रेष्ठ से यह कहकर हे विप्रेन्द्रगण ! अंगुलि के अग्रभाग से वह अपने अंगुष्ठ मे ताड़ित हुआ था ।१५। इसके अनन्तर भस्मक्षत उससे हिम सन्निभ निकला था । उसको देखकर विप्र ब्रीडित होकर चरणों मे गिर गया था और बोला—॥१६॥ मैं महात्मा शूलपाणि देव से अन्य किसी देव को नही मानता हूं । शूलधृक् आप तो इस चराचर जगत् के गुरु हैं ॥१७॥ हे अनघ ! ये समस्त ब्रह्मादिक सुर आपके ही आश्रय वाले दिखलाई देते हैं । समस्त देवों मे महान् करने वाले तथा कराने वाले सब कुछ आप ही हैं ॥१८॥ आपके ही प्रसाद से ये भी सुरगण आनन्दित हैं । हे सुरासुरो के अधीश ! यह मेरा महान् तप क्षय न होवे॥१९॥महर्षि लोमहर्षण ने कहा—इस प्रकार उस ऋषि ने महादेवजी की स्तुति करके वह प्रणत हो गया था । इसके पश्चात् महादेव प्रसन्न चित्त होकर उस ऋषि से यह वाक्य बोले थे ॥२०॥ ईश्वर ने कहा—हे विप्र ! आपका तप मेरे प्रसाद से सहस्र गुना बढ़ जावेगा और मैं अब इसी आश्रम मे सदा तुम्हारे ही साथ में निवास करूंगा ॥२१॥ इस सप्त सारस्वत मे स्नान करके जो मनुष्य मेरा अर्चन करेगा उस मनुष्य को इस लोक मे और परलोक मे कुछ भी दुर्लभ पदार्थ नहीं रहेगा । तथा वे सब सारस्वत लोक मे अन्त में चल जायेंगे—इसमे कुछ भी संशय नही है । भगवान् शिवदेव के प्रसाद से वह मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है ॥२२-२३॥

३९—औशनस तीर्थ माहात्म्य

ततश्चौशनस तीर्थं गच्छेत्तुश्रद्धयाऽन्वितः ।
उशनायत्र ससिद्धो ग्रहत्व समवाप्तवान् ॥१
तस्मिन्पुण्ये कुरुक्षात्रे पातकैर्जन्मसम्भवैः ।
मुक्तो याति पर ब्रह्म यतो नावर्त्तते पुनः ॥२
रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो बभूव ह ।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमहात्म्यदर्शनात् ॥३

कथं रहोदरो ग्रस्तः कथं मोक्षमवाप्तवान् ।
तीर्थस्य तस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥४
पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः ॥५
तत्रैकस्य शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः ।
क्षुरेण शितधारेणतत्पपात महावने ॥६
रहोदरस्य तल्लग्नं ग्रीवायां न यदृच्छया ।
वने विचरतस्तस्य ह्यस्थि भित्वा विवेश ह ॥७

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—इसके अनन्तर फिर औशनस तीर्थ पर जाना चाहिए और श्रद्धा से समन्वित होकर ही उस तीर्थ पर गमन करे वह ऐसा तीर्थ है जहाँ पर उशना ससिद्ध होगया था और ग्रहत्व की प्राप्ति की थी ॥१॥ उस परम पुण्यमय कुरुक्षेत्र मे जाकर मनुष्य अनेक जन्मो से सञ्चित पातको से मुक्ति पा जाता है तथा परम ब्रह्म को प्राप्त करता है जहाँ से फिर इस ससार मे पुन: आवृत्ति ही नहीं हुआ करती है॥२॥जहा पर रहोदर नामक मुनि मुक्त हो गया था तीर्थ माहात्य के दर्शन से महान् शिर से ग्रस्त होगया था ॥३॥ ऋषियो ने कहा—हे भगवन् ! रहोदर किस प्रकार से तो ग्रस्त हो गया था और फिर किस तरह उसने मोक्ष की प्राप्ति की थी हम सब उस तीर्थ का माहात्म्य श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा रखते है ॥४॥ लोमहर्षण ने कहा—हे द्विजशार्दूलो ! बहुत पहिले इस दण्डकारण्य मे महान् आत्मा वाले श्री राघवेन्द्र ने निवास किया था और वहा पर जो भी राक्षस गण थे उनका हनन कर दिया था ॥५॥ वहा पर एक दुरात्मा राक्षस का शिर पैनी धार वाले क्षुर से शिर कट गया था और उस महावन मे पडा था ॥६॥ वह शिर यदृच्छा से ही रहोदर की ग्रीवा मे लग्न हो गया था । वह रहोदर वन मे ही विचरण कर रहा था । उस समय में वह शिर उसकी अस्थि का भेदन करप्रवेश कर गया था ॥७॥

स तेन लग्नेन दता विहर्तुं न शशाक ह ।
अभिगम्य महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ॥८

स तु तेनापि स्रवता वेदनार्त्तो महामुनिः ।
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानिचित् ॥९

ततः स कथयामास ऋषीणांभावितात्मनाम् ।
तेऽब्रुवन्नृषयो विप्र प्रयाह्यौशनसं प्रति॥१०

तेषा तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः ।
ततः औशनसं तीर्थं तस्यापः स्पृशयस्तदा ॥११

तच्छिरः शरणं मुक्त्वा पपातान्तजले द्विजाः ।
ततः स विरजा भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः ॥१२

आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम् ।
ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१३

कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः ।
तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम् ॥१४

वह उस शिर के लग्न होने के कारण बिल्कुल भी विहार नहीं कर सकता था। वह महान् प्राज्ञ अनेक तीर्थों तथा आयतनों में भी गया था ॥८॥ वह उसके स्रवण करने से महामुनीन्द्र अत्यन्त ही वेदना से आर्त्त होरहा था और पृथिवी मण्डल के जो कोई भी तीर्थ थे उन सब मे गया था ॥९॥ इसके पश्चात् भावितात्मा ऋषियो से-उसने अपनी उस महती वेदना के विषय मे कहा था। उन ऋषियो ने उससे कहा था-हे विप्र! औशनस तीर्थ पर चले जाओ ॥१०॥ वह रहोदर उन सबके वचनो का श्रवण करके वहाँ गया था। इसके उपरान्त उस औशनस तीर्थ के जल का उसी समय मे स्पर्श किया था ॥११॥ वह शिर तुरन्त ही शरण का त्याग कर जल के अन्दर गिर गया था। फिर वह बिल्कुल विरज होकर कल्मषों से रहित और पवित्र आत्मा हो गया था॥१२॥फिर वह परम प्रसन्न होकर आश्रम मे आ गया था और जो कुछ भी हुआ था वह सब कह सुनाया था। उन सब ऋषियो ने इस तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण किया था ॥१३॥ वहाँ पर समागत सब लोगो ने उस तीर्थ का 'कपाल मोचन'—यह नाम रख दिया था।

वहाँ पर भी एक बहुत बड़ा विश्वामित्र का तीर्थ है, जो अति प्रख्यात है ॥१४॥

ब्राह्मण्य लब्धवान्यत्र विश्वामित्रो महामुनिः ।
तस्मिंस्तीर्थवरे स्नात्वा ब्राह्मण्य लभते ध्रुवम् ॥१५
ब्राह्मणस्तु विशुद्धात्मा परं पदमवाप्नुयात् ।
ततः पृथूदकं गच्छेन्नियतो नियताशन. ॥१६
तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षिरार्ष्टिषेणुरिति नामत. ।
जातिस्मर ऋषङ्गुस्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः ॥१७
अन्तकाल ततो दृष्ट्वा पुत्रान्वचनमब्रवीत् ।
स्मृत्वा तीर्थगुणान्सर्वान्प्राहेदमृषिसत्तमान् ॥१८
सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ।
पृथुदके जप्यपरो नैतस्य मरण भवेत् ॥१९
तत्रैव ब्रह्मयोन्यस्ति ब्रह्मणा यत्र वै पुरा ।
पृथूदक समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितम् ॥२०
चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्यर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत् ।
तस्याभिध्यायत सृष्टि ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ॥२१
मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्या क्षत्रियास्तथा ।
ऊरुभ्या वैश्यजातीया. पद्भ्या शूद्रास्ततोऽभवन् ॥२२

जिस तीर्थ मे महामुनि विश्वामित्र जी ने ब्राह्मण्य प्राप्त किया था। उस परम श्रेष्ठ तीर्थ मे स्नान करने वाला पुरुष निश्चय ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति किया करता है ॥१५॥ जो विशुद्ध आत्मा वाला ब्राह्मण होता है वह परम पद को प्राप्त होजाता है। इसके पश्चात् पृथूदक तीर्थ पर जाना चाहिए और नियत अशन वाला होकर ही जावे ॥१६॥ वहाँ पर सिद्ध-ब्रह्मर्षि ऋषङ्गु इस नाम वाले हैं जाति स्मर ऋषङ्गु सदा गंगा के द्वार पर ही स्थित रहा करते थे ॥१७॥ जब उनका अन्त काल आया तो उन्होंने अपने पुत्रों से यह वचन कहा था तथा सब तीर्थ के गुणों का स्मरण करके श्रेष्ठ ऋषियों से कहा था ॥१८॥ सरस्वती के उत्तर तीर्थ में जो अपने शरीर का त्याग करता है और पृथूदक म

जो जप्य मे परायण रहता है इसका मरण ही नही होता है ॥१६॥ वहाँ पर ब्रह्मयोनि तीर्थ है जहाँ पर पहिले ब्रह्माजी पृथूदक का समाश्रय करके सरस्वती के तट पर स्थित हुए थे ॥२०॥ चारों वर्णों की सृष्टि करने के लिए आत्मज्ञान में परायण हो गये थे। इस प्रकार से सृष्टि करने के लिये ध्यान करने वाले अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे—बाहुओं से क्षत्रिय—ऊरुओं से वैश्य जाति वाले तथा पैरों से शूद्र समुत्पन्न हुए थे ॥२१ २२॥

> चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा आश्रमाः स्थापितास्ततः ।
> एव प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति सञ्ज्ञितम् ॥२३
> तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनिं न पश्यति ।
> तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णेति नामतः ॥२४
> यस्मिन्स्तीर्थे बको दाल्भ्यो राष्ट्रं वैचित्रवीर्यात् ।
> जुहावब्राह्मणैः सार्द्धं तत्रानुत्पत्ततो नृपः ॥२५
> कथं प्रतिष्ठितं तीर्थं मवकीर्णेति नामतः ।
> धृतराष्ट्रेण राज्ञा स किमर्थं न प्रसादितः ॥२६
> नैमिषेयाश्च ऋषयो दक्षिणार्थं ययुः पुरा ।
> तत्रैव च बको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमयाचत ॥२७
> तेनापि तत्र निन्दार्थमुक्तं यद्य धृतं तु तत् ।
> ततः क्रोधेन महता मांसान्युत्कृत्य तत्र ह ॥२८

इसके अनन्तर चातुर्वर्ण्य की रचना को देखकर फिर उन्होंने आश्रमों की स्थापना की थी। इस तरह से ब्रह्म योनि—इस संज्ञा वाला तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ था ॥२३॥ वहाँ स्नान करके जो मुक्ति की कामना वाला पुरुष है वह पुनः किसी भी योनि का दर्शन नहीं किया करता है। वहाँ एक अवकीर्ण नाम वाला भी तीर्थ परम प्रसिद्ध है ॥२४॥ जिस तीर्थ मे बक दाल्भ्य ने धृतराष्ट्र से याचना की थी, उसने भी वहाँ निन्दा के लिये यही कहा था कि जो भी धारण किया हो वही हो। इसके अनन्तर महान् क्रोध से वहाँ पर मांसो को उत्कृत्त करके,—

पृथूदक महातीर्थ मे नरपति धृत राष्ट्र का राष्ट्र हवन किया गया था। सभी से अवकीर्ण—यह नाम पड गया था ॥२५-२८॥

पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णेति नामतः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतस्ततः ॥२९
हूयमाने तदा राष्ट्रे प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि ।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै ॥३०
ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम् ।
पुरोहितेन सहितो रत्नान्यादाय सर्वशः ॥३१
प्रसादनार्थं विप्रस्य ह्यवकीर्णे ययौ तदा ।
प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम् ॥३२
ब्राह्मणा नावमन्तव्याः पुरुषेण विजानता ।
ब्राह्मणश्चैवज्ञातो हन्यात्त्रिपुरुषं कुलम् ॥३३
एवमुक्त्वा स नृपतिमाज्येन पयसा पुनः ।
उत्थापयामास मृतांस्तस्य राज्ञो हिते स्थितः ॥३४
तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
स प्राप्नोति नरो दिव्यं मनसा चिन्तितं फलम् ॥३५

उस समय मे यज्ञ कर्म्म के प्रवृत्त होने पर राष्ट्र के हूयमान हो जाने से नृपति के दुष्कृत से फिर वह राष्ट्र क्षीण होने लग गया था ॥२९-३०॥ इसके उपरान्त उसने इस तरह ब्राह्मण के विचेष्टित (कृत्य) पर विशेष चिन्ता की थी और पुरोहित को साथ मे लेकर सब प्रकार के रत्नों को लेलिया था ॥३१॥ उस समय मे विप्र को प्रसन्न करने के लिए अवकीर्ण मे राजा गया था। राजा के द्वारा वह प्रसन्न किया गया तथा वह अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उस राजा से बोला था ॥३२॥ विशेष रूप मे ज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा ब्राह्मणो का कभी भी अपमान नही करना चाहिए। यदि किसी भी ब्राह्मण को अपमानित किया गया तो वह तीन पुरुषों के कुल को नष्ट कर देता है ॥३३॥ उसने उस राजा से ऐसा कहकर फिर घृत—दुग्ध से पुनः उस राजा

को मनाई करने में मस्थिन होकर मृतकों को उठा दिया था ॥३४॥ जो भी कोई जितेन्द्रिय होकर श्रद्धा भाव से युक्त हो उस तीर्थ में स्नान करता है वह मनुष्य अपने मनमें सोचे हुए दिव्य फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥३५॥

तत्र तीर्थं सुविख्यात ययात नाम नामतः ।
यस्यह यजमानस्य मधु सुस्राव वै नदी ॥३६
तस्मिन्स्नातोऽथ भक्त्या तु मुच्यते मर्वकिल्विषैः ।
फल प्राप्नोति यज्ञस्य ह्यश्वमेधस्य मानवः ॥३७
मधुस्रवं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतम द्विजाः ।
तस्मिन्स्नात्वा नरो भक्त्या मधुनः तर्प्पयेत्पितॄन् ॥३८
तत्रापि सुमहत्तीर्थं वसिष्ठोद्वाहसञ्जितम् ।
तत्र स्नातो भक्तियुतो वासिष्ठ लोकमाप्नुयात् ॥३९

वहा पर 'ययात'—इस नाम से सुविख्यात तीर्थ है। यहा पर जिस यजमान का मधु नदी स्रवण करती थी ॥३६॥ इस तीर्थ में स्नान जो भक्ति की भावना से करता है वह सब किल्विषों से मुक्त हो जाता है। वह मानव अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है ॥३७॥ हे द्विजगणो ! वहीं पर अतीव पुण्यमय मधुस्रव नाम वाला तीर्थ है। इसमें भक्ति पूर्वक मनुष्य स्नान करके मधु से पितरों को तृप्त करे ॥३८॥ वहीं पर वसिष्ठोद्वाह सज्ञा वाला एक सुमहान तीर्थ है। वहीं पर भक्ति से युक्त मनुष्य स्नान करके वासिष्ठ लोक की प्राप्ति किया करता है ॥३९॥

४—अरुण सरस्वती माहात्म्य

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ महावेगो बभूव ह ।
किमर्थं सरिच्छ्रेष्ठा तमृषि प्रत्यवाहयत् ॥१

विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मन ।
भृशं वैरं बभूवेह तपःस्पर्द्धाकृते महत् ॥२
आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह ।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमत ॥३
यत्रेष्ट्वा भगवा स्थाणु पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम् ॥४
वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थित ।
तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो बभूव ह ॥५
सरस्वती समाहूय इद वचनमब्रवीत् ।
वसिष्ठ मुनिशार्दूलं स्वेन वेगेन चानय ॥६
इहायात मुनिश्रेष्ठ हनिष्यामि न संशय ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचन व्यथिता सा नदी किला ॥७

ऋषिगण ने कहा—वसिष्ठ का यह अपवाह महान् वेग वाला हो गया था। किसलिये उस परम श्रेष्ठ सरिता ने उस ऋषि को प्रतिवाहित किया था ॥१॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—एक बार राजर्षि विश्वामित्र और महात्मा वसिष्ठ का तपस्या की स्पर्धा के लिये महान् वैर हो गया था ॥२॥ स्थाणु तीर्थ में वसिष्ठ का आश्रम था। उसके पश्चिम दिशा के भाग में धीमान् विश्वामित्र का आश्रम था ॥३॥ जहाँ पर भगवान् स्थाणु ने यजन करके तथा सरस्वती का पूजन करके देवेश्वर ने लिंग के आकार वाली सरस्वती की संस्थापना की थी ॥४॥ वहाँ पर महर्षि वसिष्ठ घोर रूप वाले तप से युक्त होकर संस्थित हुए थे। यहाँ पर विश्वामित्र कुछ तप से हीन थे ॥५॥ विश्वामित्र ने सरस्वती को बुलाकर यह कहा था कि तुम अपने वेग से मुनि शार्दूल वसिष्ठ को ले आओ ॥६॥ यहाँ पर आये हुए मुनियों में श्रेष्ठ उस वसिष्ठ को मैं निश्चय ही मार डालूँगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस विश्वामित्र के वचन को सुनकर उस नदी को बहुत अधिक व्यथा हुई थी ॥७॥

तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम्।
विश्वामित्रोऽब्रवीत्क्रुद्धो वसिष्ठ शीघ्रमानय ॥८

ततो गत्वा मिरञ्च्छ्रिमा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्।
कथयामास रुदती विश्वामित्रस्य तद्वचः ॥९
तपःकृशां विवर्णां च भृशं शोकसमन्विताम् ।
उवाच तां सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह ॥१०
तस्य तद्व चनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
प्लावयामास तत्स्थानं प्रवाहेणाम्भसस्तदा ॥११
स च कूलापहारेण मैत्रावरुणिरुह्यतः ।
वाहमानश्च तुष्टाव तदा देवी सरस्वतीम् ॥१२
पितामहस्य सरसः प्रवृत्ताऽसि सरस्वति ।
व्याप्तं त्वया जगत्सर्वं तवैवाम्भोभिरुत्तमैः ॥१३
त्वमेव कामगा देवी मेघेषु सृजसे पयः ।
सर्वास्त्वापस्त्वमेवेति त्वत्तो वय वहामहे ॥१४

इस प्रकार से अतीव व्यथित और कम्पित हुई महानदी को देखकर विश्वामित्र बहुत ही क्रोध मे भर गये थे और उससे कहा था कि शीघ्र ही वसिष्ठ को ले आ ॥८॥ इसके अनन्तर वह श्रेष्ठ नदी वसिष्ठ के पास पहुँची थी और मुनि श्रेष्ठ वसिष्ठ से उसने रुदन करते हुए विश्वामित्र के वचन को कहा था ॥९॥ तपश्चर्या से अत्यन्त कृश,कान्ति से हीन और बहुत अधिक शोक से पीडित उस श्रेष्ठ सरिता से वसिष्ठ जी ने कहा था कि विश्वामित्र के लिये मुझे बहा दे ॥१०॥ उस सरिता ने कृपा के स्वभाव वाले उन महर्षि वसिष्ठ के वचन का श्रवण कर उसी समय में जल के प्रवाह से उस स्थान को प्लावित कर दिया था ॥११॥ कूल के अपहार के द्वारा उह्यत वह मैत्रावरुणि ने बहते हुए ही उस समय में उस देवी सरस्वती का स्तवन किया था ॥१२॥ हे सरस्वति ! आप परमेष्ठी पितामह के सर से प्रवृत्त हुई हो । आपने इस सम्पूर्ण जगत् को अपने ही उत्तम जलों के द्वारा व्याप्त कर रक्खा है ॥१३॥ आप देवी काम पूर्वक गमन करने वाली हो और मेघो में आप ही जल का सृजन किया करती हो । सम्पूर्ण जल आपका ही स्वरूप है इसीलिये हम आप से बह रहे हैं ॥१४॥

पुष्टिधृतिस्तथा कीर्त्तिः सिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा ।
स्वधा स्वाहा तथा वाणी तवायत्तमिदं जगत् ॥१५
त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता ।
एवं सरस्वती तेन स्तुता भगवती तदा ॥१६
सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
न्यवेदयत्तदार्चित्वा विश्वामित्राय तं मुनिम् ॥ १७
तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
अथान्विषत्प्रहरणं वसिष्ठान्तकरं तदा ॥१८
तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्नदी ।
अपोवाह वसिष्ठं च मध्येन स्वाम्भसस्ततः ।
उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम् ॥१९
ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।
अब्रवीत्क्रोधरक्ताक्षो विश्वमित्रो महातपाः ॥२०
यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे वञ्चयित्वा विनिर्गता ।
शोणितं वह कल्याणि रक्षोग्रामसुसंयुता ॥२१

पुष्टि, धृति, कीर्त्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा और वाणी इन सबसे युक्त यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही अधीन है ॥१५॥ हे देवि ! आप ही समस्त प्राणियों मे वाणी के स्वरूप से विराजमान रहती हैं। उस समय मे भगवती सरस्वती इस प्रकार से वसिष्ठ के द्वारा स्तुत हुई थी ॥१६॥ फिर वह बहुत ही सुख के साथ उस विप्र को विश्वामित्र के आश्रम के प्रति वहन करके ले आई थी और वहा पर आकर अर्चन करके विश्वामित्र के लिये उस मुनि को सौंप कर निवेदन किया था ॥१७॥ सरस्वती सरिता के द्वारा लाये हुए उसको देखकर विश्वामित्र कोप से युक्त हो गये थे और उसी समय में वसिष्ठ के अन्त कर देने वाले प्रहरण (शस्त्र) को खोजने लगे ॥१८॥ उनको क्रोधयुक्त देखकर ब्रह्म हत्या के भय से नदी ने उन दोनों से बात करती हुई विश्वामित्र को वञ्चित करके वसिष्ठ अपने जल के मध्य मे ग्रहण कर लिया ॥१९॥ इसके

अनन्तर ऋषि श्रेष्ठ वसिष्ठ को वहा से अपवाहित देखकर महान् तपस्वी विश्वामित्र क्रोध से रक्त नेत्रो वाले होकर बोले—॥२०॥ हे सरिताओ मे परमश्रेष्ठ नदि ! क्योंकि तुम मुझको वञ्चित करके निकल गई हो। इसीलिये हे कल्याणि ! तुम राक्षसों के ग्राम मे सुसयता होती हुई शोणित (खून) को बहाओगी अर्थात् तुम्हारे अन्दर रक्त का बहाव होगा ॥२१॥

तत: सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता ।
अवहच्छोणितोन्मिश्र तोय सवत्सर तदा ॥२२
अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ।
सरस्वती तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदु:खिता ॥२३
तस्मिस्तीर्थवरे रम्ये शोणित समुपावहत् ॥२४
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागता: ॥
ततस्ते शोणित सर्वेपिबन्ति सुखमासते ॥२५
हृष्टाश्च तेन सुभृश सुखिता विगतज्वरा: ।
नृत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥२४
कस्यचित्त्वथ कालस्य मुनयः शतयोजनात् ।
तीर्थयात्रा समाजग्मु: सरस्वत्या तपोधना: ॥२७
ता दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरै: पीयमाना महानदीम् ।
परित्राणे सरस्वत्या: पर यत्न प्रचक्रिरे ॥२८

उस समय मे धीमान् विश्वामित्र के द्वारा शाप दी हुई सरस्वती एक सम्वत्सर पर्यन्त शोणित मिश्रित जल को बहाती थी ॥२२॥ इसके पश्चात् ऋषिगण, देवता, गन्धर्व और अप्सराऐं सब उस समय मे सरस्वती को देखकर अत्यन्त दु खित हुए थे ॥२३॥ उस परम श्रेष्ठ तीर्थ मे जो अत्यन्त सुन्दर भी था शोणित बहता था ॥२४॥ इसके अनन्तर भूत, पिशाच और राक्षस वहाँ पर आगये थे और वे सब रक्त का पान कर रहे थे तथा सुख का आनन्द प्राप्त कर रहे थे ॥ २५ ॥ वे उससे बहुत ही अधिक हृष्ट (गर्वयुक्त) सुखित और विगत ज्वर वाले हो रहे थे। वे सब नृत्य करते हुए तथा

हास्य करने वाले थे मानों उन्होंने स्वर्ग को ही जीत लिया हो ।।२६।। कुछ काल के व्यतीत होने के पश्चात् तप के धनी मुनिगण शत योजन से सरस्वती पर तीर्थ यात्रा करने को यहाँ आगये थे ।।२७।। उन्होंने महान् घोर राक्षसों के द्वारा पीये जाने वाली उस महा नदी को देखकर सरस्वती के परित्राण में उन्होंने परम यत्न किया था ।।२८।।

ते तु सर्वे महाभागाः समागम्य महाव्रताः ।
आश्रित्य सरितां श्रेष्ठामिद वचनमब्रवन् ।।२६
किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन वहस्यहो ।
एवमाकुलता याता श्रुत्वा पृच्छामहे वयम् ।।३०
ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम् ।
ततस्ते मुनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन् ।।३१
अरुणां पुण्यतो योघां सर्वदुष्कृतनाशनीम् ।
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता भृशम् ।।३२
ऊचुस्तान्वै मुनीन्सर्वान्दैन्ययुक्ताः पुनःपुनः ।
वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः ।।३३
न च नः कामकारोऽयं यद्वयं पापकारिणः ।
युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ।।३४
पक्षोऽयं वर्धतेऽस्माकं यतश्च ब्रह्मराक्षसाः ।
एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः ।।३५

महान् व्रतों वाले, महान् भाग्य से सयुत उन सबने वहाँ आकर उस सरिताओं में श्रेष्ठा का समाश्रय ग्रहण किया था और फिर उससे यह वचन कहे थे—।।२६।। हे सरिच्छ्रेष्ठे ! क्या कारण ऐसा हो गया था कि जिससे तुम रक्त के साथ बह रही हो इस प्रकार से महती आकुलता को प्राप्त होने वाली आप से हम पूछते हैं ।।३०।। इसके पश्चात् उस सरस्वती ने सब कुछ जो विश्वामित्र का विचेष्टित था कह सुनाया था । इसके पश्चात् वे मुनिगण परम प्रसन्न हुए थे और सरस्वती मे पुण्य तोय से समन्वित तथा सम्पूर्ण दुष्कृतों के नाश करने वाली अरुणा को वे ले आये थे । फिर राक्षस लोग सरस्वती के जल को देख कर

राक्षस बहुत ही अधिक दुःखित हुए थे ॥३१-३२॥ दैत्यों से युक्त वे उस समस्त मुनियों से बार २ कहने लगे थे। हम सब बहुत ही क्षुधित हैं और निरन्तर धर्म से भी हीन हैं ॥३३॥ हमारा यह कामकार नहीं है कि हम पापों के करने वाले हैं। ऐसा हम सब को आपकी अप्रसन्नता से तथा दुष्कृत कर्म से हो होता है ॥३४॥ हमारा यह पक्ष बढ़ता है क्योंकि ब्रह्म राक्षस भी हममें मिल जाते हैं तथा विकर्मों के सहित वैश्य, क्षत्रिय और शूद्र भी सम्मिलित होते हैं ॥३५॥

ये ब्राह्मणान्प्रद्विषन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः।
आचार्यं मातरं चैव पितरं ये द्विषन्ति ह ॥३६

वृद्धानामवमानेन ते भवन्तीह राक्षसाः।
योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते ॥३७

शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे।
तेषां ते मुनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते ॥३८

ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्विजाः।
क्षुतकीटावपन्नं च यत्त्वशिष्टाशितं भवेत् ॥३९
केशावपन्नमाधूतं मारुतश्वासदूषितम्।
एतैः संस्पृष्टमन्नं च भागो वै राक्षसो भवेत् ॥४०

जो लोग ब्राह्मणों के साथ द्वेष किया करते है वे ही यहाँ पर राक्षस हो जाया करते हैं। जो अपने आचार्य्य, माता, पिता के साथ द्वेष करते हैं तथा जो वृद्धों का अपमान करते हैं वे यहाँ राक्षस होते हैं। यह पक्ष योषितों के पापों के योनि दोष से भी बढता रहता है ॥३६-॥३७॥ हे मुनि वृन्द ! आप तो समस्त लोकों के उद्धार करने में समर्थ हैं। उनके इस वचनावली का श्रवण करके वे कृपाशील मुनिगण फिर उनसे कहने लगे थे। वे सब द्विज परस्पर में तप्यमान हुए थे। क्षुत कीटाव पन्न और जो अशिष्टों का अशित है वही तुम्हारा भोजन है ॥३९॥ केशावपन्न, आधूत, मारुत श्वास से दूषित इनसे संस्पृष्ट जो अन्न होता है वह राक्षसों का भाग होता है ॥४०॥

तस्माज्ज्ञात्वा सदा विद्वांस्तान्येतानि विवर्जयेत् ।
राक्षसान्वै भोजयते यो भुङ्क्ते स्वयमीदृशम् ॥४१
शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ।
मोक्षार्थं रक्षसा तेषां संगमं चाप्यकल्पयन् ॥४२
अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते ।
त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥४३
प्राप्ते कलियुगे घोरे ह्यधर्मे प्रत्युपस्थिते ।
अरुणासंगमे स्नात्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः ॥४४
ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविवर्जिताः ।
दिव्यमाल्याम्बरधराः स्वर्गस्त्रीभिः समन्विताः ॥४५

इसलिए विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य कि है सर्वदा जान कर पदार्थों का सेवन करे और उन उपर्युक्त (जो बताये गये हैं उनका) त्याग देवे । जो राक्षसों को खिलाता है वह स्वयं भी ऐसा ही भोजन किया करता है ॥४१॥ उन तपोधन मुनियों ने उस तीर्थ का भली भाँति शोधन करके उन राक्षसों की मुक्ति के लिये संगम की कल्पना की थी ॥४२॥ अरुणा और सरस्वती के लोक में प्रसिद्ध संगम में तीन रात्रि पर्यन्त जो उपवास करके स्नान करता है वह सब किल्विषों से मुक्त हो जाया करता है ॥४३॥ घोरतम कलियुग के प्राप्त होने पर अधर्म ही सर्वत्र उपस्थित होगा । उस समय में जो मानव अरुणा के संगम में स्नान करता है वह मुक्ति की प्राप्ति किया करता है ॥४४॥ इसके पश्चात् उन सब राक्षसगण ने स्नान किया था और पापों से वर्जित होगये थे । फिर वे सब दिव्य मालाओं को धारण कर तथा दिव्य मालाओं को धारण कर तथा दिव्य वस्त्रधारी होकर स्वर्गीय स्त्रियों के साथ आनन्दोपभोग वाले होगये थे ॥४५॥

४१—ऋण मोचन तथा काम्यक तीर्थ माहात्म्य

समुद्रास्तस्र चत्वारः ऋषिणा निर्मिताः पुरा ।
प्रत्येकं च नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत् ॥१

यत्किंचित्क्रियते तस्मिंस्तपस्तीर्थे द्विजोत्तमाः ।
परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मणः ॥२
शतसाहस्रकं तीर्थं तत्रैव शतिकं द्विजा ।
उभयोरिह सुस्नातो गोसहस्रफलं लभेत् ॥३
सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम् ।
यस्मिन्स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत् ॥४
रेणुकाष्टकमासाद्य श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
मातृभक्त्या तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः ॥५
ऋणमोचनमासाद्य तीर्थं ब्रह्मणसेवितम् ।
कुमारस्याभिषेकं च ओजसं नाम विश्रुतम् ॥६
तस्मिन्स्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः ।
कौमारं पुरमाप्नोति कृत्वा स्नानं तु मानवः ॥७

महर्षि लोमहर्षण ने कहा—पहिले समय में ऋषि के द्वारा निर्मित चार समुद्र थे। उन चारों में प्रत्येक समुद्र में स्नान करने वाला पुरुष एक सहस्र गौओं के दान का पुण्य, फल प्राप्त किया करता है ॥१॥ हे द्विजोत्तमो ! उस तपस्तीर्थ में जो कुछ भी किया जाता है वह दुष्कृत कर्म करने वाले का भी सब ही परिपूर्ण हो जाता है ॥२॥ वहीं पर एक शत साहस्रक तीर्थ है और एक शतिक तीर्थ है। इन दोनों में भली-भाँति स्नान करने वाला पुरुष एक सहस्र गा दानों का फल प्राप्त किया करता है ॥३॥ वहाँ पर ही एक सोम तीर्थ है जो सरस्वती के तट पर स्थित है जिसमें स्नान करने वाला पुरुष राजसूय यज्ञ के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है ॥४॥ रेणुकाष्टक में जाकर श्रद्धा वाला जितेन्द्रिय पुरुष मातृभक्ति से जो पुण्य प्राप्त करता है वही पुण्य इससे उस नर को मिलता है ॥५॥ ब्राह्मणों के द्वारा सेवित ऋण मोचन नामक तीर्थ पर तथा कुमार के अभिषेक पर जाकर जिसका 'ओजस'—यह नाम विख्यात है ॥६॥ उसमें स्नान करने वाला पुरुष यश से समन्वित होकर कौमार पुर की प्राप्ति किया करता है जो भी इसमें मानव स्नान कर लेता है ॥७॥

चैत्रषष्ठ्यां शुक्लपक्षे यस्तु श्राद्धं करिष्यति ।
गयाश्राद्धे च यत्पुण्यं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥८
सन्निहत्यां यथा श्राद्धं वायुना कथितं पुरा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्र समाचरेत् ॥६
यस्तु स्नानं श्रद्दधानश्चैत्रषष्ठ्या करिष्यति ।
अक्षयं चोदकं तस्य पितृणामुपजायते ॥१०
तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम् ॥११
तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवदेवं महेश्वरम् ।
गाणपत्यमवाप्नोति देवतैः सह मोदते ॥१२
कुरुक्षेत्र च विख्यातं कुरुणा यत्र वै तपः ।
तप्तं सुघोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः ॥१३
तस्य घोरेण तपसा तुष्ट इन्द्रोऽब्रवीद्वचः ।
राजर्षे परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रत ॥१४

चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि में जो भी पुरुष श्राद्ध करेगा उसको गया मे श्राद्ध करने से जो पुण्य होता है वही पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है ॥८॥ सन्निहति मे जिस प्रकार से पहिले वायु देव ने श्राद्ध बताया है इससे सब प्रकार के प्रयत्न से वहां पर श्राद्ध करना चाहिए ॥६॥ जो पुरुष श्रद्धा पूर्वक चैत्रमास की षष्ठी तिथि मे वहा स्नान करेगा उसका उदक पितृगण के लिये अक्षय हो जाया करता है ॥१०॥ वहाँ पञ्च वट नाम वाला तीनो लोकों मे परम प्रख्यात एक तीर्थ है जहाँ पर योग मूर्त्ति को धारण करने वाले स्वयं महादेव विराजमान रहा करते हैं ॥११॥ वहा स्नान करके और देवों के भी देव महेश्वर भगवान् का अर्चन करके मानव गाणपत्य को पा जाता है तथा फिर वह देवगण के साथ आनन्द मनाया करता है ॥१२॥ एक कुरुक्षेत्र विख्यात तीर्थ है जहां हे द्विजगण ! कुरु ने क्षेत्र कर्षण के लिय अत्यन्त घोर तप किया था ॥१३॥ उसकी महा घोर तपस्या से परम सन्तुष्ट

होकर इन्द्रदेव ने यह वचन कहा था—हे राजर्षे ! आप सुन्दर व्रत वाले हो, मैं आपके इस तप से परितुष्ट हो गया हूं ॥१४॥

यज्ञं च ये कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतक्रतुम् ।
ते गमिष्यन्ति सुकृतांल्लोकान्पापविवर्जितान् ॥१५
अवहस्य ततः शक्रोजगाम त्रिदिवं प्रभुः ।
आगम्यागम्य चैवेनं भूयोभूयोऽवहस्य च ॥१६
शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ।
यदा तु तपसो ग्रेण सतप्त देहमात्मनः ।
ततः शक्रोऽब्रवीत्प्रीतो ब्रू हि यत्ते चिकीर्षितम् ॥१७
ये श्रद्दधानास्तीर्थेऽस्मिन्मानवानिवसन्ति ह ।
ते प्राप्नुवन्ति सदन ब्रह्मणः परमात्मनः ॥१८
अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातकदूषिताः ।
अस्मिस्तीर्थे नराः स्नाता मुक्ता यान्तु परां गतिम् ॥१९
कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे कुरुक्षेत्रं द्विजोत्तमाः ।
स दृष्ट्वा मुक्तपापस्तु परं पदमवाप्नुयात् ॥२०
कुरुक्षेत्रे नरः स्नात्वा मुक्तो भवति किल्विषैः ।
कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नो ति परमं पदम् ॥२१

जो पुरुष इस कुरुक्षेत्र मे शतक्रतु यज्ञ को करेंगे वे पुरुष पापों से रहित सुकृत लोकों को प्राप्त हो जायेंगे ॥१५॥ इसके पश्चात् प्रभु इन्द्र अब हास्य करके त्रिदिव लोक को चले गये थे। आ-आ कर और बार-बार इसका अब हास करके निर्वेद से रहित इन्द्र पूछ-पूछ कर चले आया करते थे ! जिस समय में तप की उग्रता से अपना देह भली-भाँति संताप से युक्त हो गया था। इसके पश्चात् प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा था—बोलो, जोभी कुछ तुम्हारे हृदय मे करने की इच्छा हो ॥१६-१७॥ कुरु ने कहा—जो भी मनुष्य श्रद्धाभाव रखते हुए इस तीर्थ मे निवास करते हैं वे परमात्मा ब्रह्मा के सदन मे प्राप्त होवें ॥१८॥ जो दूसरी जगह पर पापों के करने वाले अर्थात् किये हुए पापों से युक्त हों तथा पाच पातकों से दूषित हों वे मनुष्य इस तीर्थ मे जब स्नान कर लेवें तो

अवश्य ही मुक्त होकर अर्थात् सब पापों से छूटकर परम गति को प्राप्त हो जावें ॥१६॥ हे द्विजो में परमोत्तम गण ! इस परम पुण्यमय कुरुक्षेत्र मे कुरुक्षेत्र का दर्शन करके मनुष्य पापो से छुटकारा पाकर परम पद को प्राप्त हो जाता है ॥२०॥ कुरुक्षेत्र में नर स्नान करके सम्पूर्ण प्रकार के किल्विषों से मुक्त हो जाया करता है कुरु के द्वारा समनुज्ञात होकर परम पद को जाता है ॥२१॥

ततो गच्छेदनरक तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
यत्र पूर्वं स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे च महेश्वर ॥२२
रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोत्तरे स्थितः ।
मध्ये ह्यनरक तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥२३
यस्मिन्स्नातास्तु पुरुषाः प्रमुच्यन्ते च पातकैः ।
वैशाखे च यदाऽष्टम्या मङ्गलस्य दिन भवेत् ॥२४
तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः ।
य. प्रयच्छेत्तु कनक तुर्यभागेन सयुतम् ॥२५
कलश च तथा दद्यादपूपैः परिशोभितम् ।
देवताः प्रीणयेत्पूर्वं करकै रत्नसयुतैः ॥२६
ततस्तु कलशो दद्यात्सर्वपातकनाशनो ।
अनेनैव विधानेन यस्तु स्नान समाचरेत् ॥२७

इसके अनन्तर त्रैलोक्य मे विख्यात अनरक नामक तीर्थ पर जाना चाहिए जहा पर पूर्व मे ब्रह्माजी विराजमान हैं और दक्षिण दिशा मे महेश्वर भगवान् सस्थित हैं ॥२२॥ रुद्रदेव की पत्नी पश्चिम मे तथा पद्मनाभ उत्तर में हैं। मध्य मे अनरक नामक तीर्थ है जो त्रिभुवन मे भी महान् दुर्लभ है ॥२३॥ जिस तीर्थ में स्नान करने वाले पुरुष पातकों से मुक्त हो जाया करते हैं। वैशाख मास की अष्टमी तिथि मे मङ्गलवार हो उस समय में वहा स्नान करके मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाता है। जो तुर्य (चतुर्थ) भाग से सयुत कनक का दान करता है तथा पूओं से परिशोभित कलश का दान किया करता है। पहिले रत्नो से समन्वित करकों से देवताओं को प्रसन्न करना चाहिए इसके अनन्तर दोनो कलशों

का दान करे जोकि सब पातकों के नाश करने वाले हैं। इसी विधि-विधान से यहाँ पर स्नान भी करना चाहिए ।।२४-२७।।

स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम् ।
अन्यत्रापि यदा षष्ठी मङ्गलेन भविष्यति ।।२८
तत्रापि मुक्तिफलदा कृत्या तस्मिन्भविष्यति ।
तीर्थे च सर्वं तीर्थानां यस्मिन्स्नातो द्विजोत्तमाः ।।२९
सर्वदेवैरनुज्ञातः परमं चाप्नुयात्पदम् ।
काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातकनाशनम् ।।३०
यस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तु मुक्तो भवति किल्विषैः ।
समाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकटः स्थितः ।।३१
पूपानाम द्विजश्रेष्ठा दर्शनान्मुक्तिमाप्नुयात् ।
आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन्स्नातस्तु मानवः ।
विशुद्धमानसोऽभ्येति मनसा चिन्तितं फलम् ।।३२

वह मनुष्य सब कलुषों से मुक्त होता हुआ परम पद को चला जाया करता है। अन्य मास में भी जब षष्ठी तिथि मङ्गलवार से युक्त होवे वहाँ पर भी कृत्य किये जाने पर मुक्ति के फल देने वाली हुआ करती है। हे द्विजोत्तमो! इस तीर्थ में स्नान करने वाला पुरुष समस्त तीर्थों में स्नान कर लेने वाला हो जाया करता है ।।२८-२९।। जिसमें प्रवेश प्राप्त करने मात्र से ही किल्विषों से मुक्त हो जाया करता है। इस पुण्य वन में समाश्रय करके सविता प्रकट रूप से संस्थित रहा करते हैं। समस्त देवों से अनुज्ञात होकर मनुष्य स्नान करने से परम पद की प्राप्ति करता है। काम्यक वन परम पुण्यमय है और सब पातकों का नाश करने वाला है ।।३०-३१।। पूपा नामक तीर्थ है। हे द्विजगण! इसके दर्शन से ही मुक्ति प्राप्त होती है। आदित्य के दिन प्राप्त होने पर उसमें मानव स्नान करके विशुद्ध मन वाला हो जाता है और फिर मन से चिन्तन किया हुआ फल भी प्राप्त कर लेता है ।।३२।।

—०००—

४२—दुर्गा तीर्थ तथा स्थाणुवट माहात्म्य

काम्य कस्य तु पूर्वेण कुञ्ज देवैर्निषेवितम् ।
तस्य तीर्थस्य सम्भूति विस्तरेण ब्रवीतु न. ॥१
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
ऋषीणा चरित श्रुत्वा मुक्तो भवति किल्विषैः ॥२
नैमिषेयाश्च ऋषय. कुरुक्षेत्र समागता ।
सरस्वत्या च स्नानार्थं प्रवेश न लेभिरे ॥३
ततस्तु कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपवीतिनम् ।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेश हि लेभिरे ॥४
रन्तुकस्याश्रमाद्यावत्तीर्थं च चककम् ।
ब्राह्मणै. परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती ॥५
हिताय सर्वविप्राणा कृत्वा कुण्डानि सा नदी ।
प्रयाता पश्चिम मार्गं सर्वभूतहिते स्थिता ॥६
पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफल लभेत् ।
प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्म्मदा सरिता वरा ॥७

ऋषिवृन्द ने कहा—काम्यक वन के पूर्व मे कुञ्ज है जो-देवगण के द्वारा निषेवित है। हे भगवन्! उस तीर्थ का उद्भव कैसे हुआ था-यह विस्तार के साथ हमको बतलाने की कृपा करें ॥१॥ महर्षि लोमहर्षण ने कहा—हे मुनिगण! आप सब लोग उस उत्तम तीर्थ के माहात्म्य का श्रवण करो। ऋषियों के चरितो का श्रवण करके ही मनुष्य पापो से छुटकारा पाजाया करता है ॥२॥ नैमिष क्षेत्र मे निवास करने वाले ऋषिगण कुरुक्षेत्र मे एकबार समागत हुए थे। उन्होने सरस्वती में स्नान करने के लिये प्रवेश नही प्राप्त किया था ॥३॥ इसके उपरान्त एक यज्ञोपवीती नामक तीर्थ की कल्पना उन्होने की थी। शेष मुनिगण उसमे प्रवेश नही पा सके थे ॥४॥ रन्तुक के आश्रम तक वहा पर्यन्त चक्रक तीर्थ था जो ब्राह्मणो से एकदम परिपूर्ण था—ऐसा उस सरस्वती देवी ने देखा था ॥५॥ उस नदी ने सभी विप्रों के हित के लिये

कुण्डो की रचना की थी और समस्त प्राणियो के हित मे स्थित होकर वह पश्चिम मार्ग को चली गई थी ॥६॥ पूर्व प्रवाह मे जो भी कोई व्यक्ति स्नान करता है वह गंगा के स्नान करने का फल प्राप्त किया करता है उसके दक्षिण दिशा वाले प्रवाह मे सरिताओ मे परमश्रेष्ठ नर्मदा स्थित रहा करती हैं ॥७॥

पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना चाश्रिता नदी ।
यदा ह्युत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी ॥८
एव दिशाप्रवाहेण ह्यतिपुण्या सरस्वती ।
तस्या स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ॥९
ततो गच्छेद्द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः
तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहार नाम नामतः ॥१०
यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।
समागता न चापश्यन्देव देव्या समन्वितम् ॥११
तेऽस्तुवन्त महादेव नन्दिनं गणनायकम् ।
ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चेष्टितम् ॥१२
भवस्य उमया सर्वविहारे क्रीडितं महत् ।
तच्छ्रुत्वा देवताः सर्वाः पत्नीमाहूय ते गताः ॥१३
तेषां क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शकरः ।
योऽस्मिस्तीर्थे नरः स्नाति विहारे श्रद्धयान्वितः ॥१४

पश्चिम दिशा के भाग मे यमुना नदी समाश्रित होकर रहती हैं । जब वह उत्तर की ओर जाती है तो सिन्धु नदी वह हो जाया करती है ॥८॥ इस प्रकार से दिशाओ के प्रवाह के द्वारा वह अत्यन्त पुण्य वाली नदी होती रहा करती है । उसमे यदि किसी मनुष्य ने स्नान कर लिया तो समझ लेना चाहिए कि सभी तीर्थों मे स्नान मनुष्य ने कर लिया है ॥९॥ इसके पश्चात् हे द्विजवृन्द ! महात्मा मदन के तीर्थ पर जाना चाहिए जो त्रैलोक्य मे परम प्रसिद्ध है और नाम से उसको विहार कहा जाता है ॥१०॥ जहाँ पर देवगण आकर भगवान् शिव के दर्शन करने की आकाङ्क्षा वाले होते हैं । वे वहा पर समागत तो हुए

थे किन्तु उन्होंने देवी जगदम्बा से युक्त देवेश्वर का दर्शन नहीं प्राप्त किया था ॥११॥ उन समस्त ऋषियों ने नन्दीगण नामक महादेव की स्तुति की थी। इसके पश्चात् नन्दीश्वर ने प्रसन्न होकर जो चेष्टित था उसे कह दिया था ॥१२॥ सर्व विहार में महादेव का उमा के साथ महान् क्रीडित है। यह श्रवण करके सब देवगण पत्नी को बुलाकर वे गत होगये थे ॥१३॥ उनके क्रीडा के विनोद से परम तुष्ट हुए भगवान् शकर उनसे बोले। जो भी कोई नर इस तीर्थ में श्रद्धा भाव से सयुत होकर विहार में स्नान करता है वह सर्व सुख सम्पन्न हो जाता है ॥१४॥

धनधान्यप्रियैर्युक्तो जायते नात्र सशयः।
दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद्दुर्गाया सेवित महत् ॥१५
यत्र स्नात्वा पितॄन्पूज्य न दुर्गतिमवाप्नुयात्।
तत्रापि च सरस्वत्या कूप त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१६
दर्शनान्मुक्तिमाप्नोति सर्वपातकवर्जितः।
यस्तत्र तर्पयेद्देवान्पितॄश्च श्रद्धया नरः ॥१७
अक्षय्य लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते।
मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुतल्पग ॥१८
स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती।
देवमार्गं प्रतिष्ठाय देवमार्गेण निःसृता ॥१९
प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम्।
त्रिरात्र ये करिष्यन्ति प्राची प्राप्य सरस्वतीम् ॥२०
तेषां न दुष्कृत किंचिद्देहमाश्रित्य तिष्ठति।
नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा स्थाणुस्तथाऽरविः ॥२१

विहार में स्नान से धन-धान्यादि प्रिय पदार्थों से समन्वित अवश्य ही होता है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है। इसके उपरान्त दुर्गा तीर्थ में जाना चाहिए जो भगवती दुर्गा के द्वारा सेवित एव महान् तीर्थ है ॥१५॥ उस तीर्थ में स्नान करके पितृगण की अर्चा करे तो मनुष्य कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है। वहाँ पर भी

सरस्वती का त्रिभुवन में प्रख्यात कूल विद्यमान है ॥१६॥ उसके दर्शन से ही सब पापों से छूटकर मुक्ति की प्राप्ति मनुष्य कर लेता है। जो वहाँ पर देवगण तथा पितरों का तर्पण श्रद्धा से मनुष्य किया करता है ॥१७॥ वह सब अक्षय का लाभ करता है और पितृ तीर्थ में विशेषता को प्राप्त होता है। चाहे कोई माता का हनन कर्त्ता हो या पिता का हन्ता तथा ब्राह्मण का बध करने वाला एवं गुरुतल्प गामी कैसा भी महान् पातकी क्यों न हो इसमें स्नान करने से ही शुद्धि को प्राप्त कर लेता है जहाँ पर प्राची (पूर्व की दिशा वाली) सरस्वती हैं वह देव मार्ग को प्रतिष्ठित करके देव मार्ग से ही निकली है ॥ १८-१९ ॥ प्राची सरस्वती परम पुण्यमयी है जोकि दुष्कृत कर्म करने वाले हैं उनको भी शुद्ध कर देने वाली है। तीन रात्रि तक प्राची सरस्वती के समीप में जाकर जो स्नान किया करते हैं ॥२०॥ उनको कोई भी दुष्कृत (पातक) देह में आश्रय पाकर कभी नहीं ठहरा करता है। नर-नारायण दोनों देवता, ब्रह्मा तथा स्थाणु उसका सेवन किया करते हैं ॥२१॥

प्राचीं दिशं निषेवन्त. सदा देवाः सवासवा. ।
ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानवाः ॥२२
तेषां न दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ।
तस्मात्प्राची सदा सेव्या पञ्चम्यां च विशेषतः ॥२३
पञ्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीवाञ्ज भवेन्नरः ।
तीर्थं औशनसं तत्रन्त्रं लोकयस्यापि दुर्लभम् ॥२४
उशना यत्र संसिद्ध आराध्य परमेश्वरम् ।
ग्रहमध्येपूज्यते स तस्य तीर्थस्यसेवनात् ॥२५
एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम् ।
ये सेवन्ते श्रद्दधानास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥२६
यस्तु श्राद्धं नरो भक्त्या तस्मिं तीर्थे करिष्यति ।
पितरस्तारितास्तेन भविष्यन्ति न संशयः ॥२७
चतुर्मुख ब्रह्मतीर्थं यत्र मर्यादया स्थितम् ।
ये सेवन्ते चतुर्दश्यां सोपवासा वसन्ति च ॥२८

अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य चैत्रे मासि द्विजोत्तमाः ।
ते पश्यन्ति परं सूक्ष्मं यस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥२९

स्थाणुतीर्थं ततो गच्छेत्सहस्रलिङ्गशोभितम् ।
तत्र स्थाणुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किल्वषैः ॥३०

सर्वदा इन्द्र के सहित समस्त देवगण प्राची का आश्रय करके श्राद्ध करते हैं ॥२२॥ उन मनुष्यों को इस लोक में और पर लोक में भी कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है। इसलिये प्राची का सदा सेवन करना ही चाहिए तथा पञ्चमी तिथि में खास तौर से उसका सेवन करे ॥२३॥ जो पञ्चमी तिथि में उसका सेवन करता है वह नर विशेष रूप से लक्ष्मीवान् होता है। वहाँ पर एक औशनस नाम वाला तीर्थ भी है जो तीनों लोकों में भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥२४॥ जहाँ पर परमेश्वर की समाराधना करके उशना ससिद्ध हो गया था। उस तीर्थ के सेवन करने से वह ग्रहों के मध्य में कहा जाता है अर्थात् स्थिति प्राप्त किया करता है ॥२५॥ इस प्रकार से मुनीन्द्र शुक्र ने उस उत्तम तीर्थ का सेवन किया था। जो भी पुरुष सर्वाधिक श्रद्धा से उसका सेवन करते हैं वे परम गति को प्राप्त करते हैं ॥२६॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में भक्ति भाव से श्राद्ध किया करता है वह अपने पितरों को तार देता है—इसमें संशय नहीं है ॥२७॥ जहाँ पर चतुर्मुख ब्रह्म तीर्थ मर्यादा में संस्थित है। जो पुरुष उपवास करते हुए चतुर्दशी तिथि में उसका सेवन किया करते हैं और वहाँ वास करते हैं। तथा चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में हे द्विजगण! उसका सेवन करते हैं वे परम सूक्ष्म का दर्शन प्राप्त किया करते हैं जहाँ से फिर इस संसार में पुनरावर्तन ही नहीं होता है अर्थात् जन्म ग्रहण नहीं करता है। ।२८-२९॥ इसके उपरान्त स्थाणु तीर्थ को जाने जो एक सहस्र लिंगों से शोभित है। वहाँ पर स्थाणु वट है जिसका दर्शन करके किल्विषों से मानव मुक्त हो जाता है ॥३०॥

४३—सृष्टि वर्णन तथा धर्मनिरूपण

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्य वटस्यापि महामुने ।
सन्निहत्या पुरोत्पत्ति पूरण पांशुना तत- ॥१
लिङ्गाना दर्शनात्पुण्य स्पर्शनेन च कि फलम् ।
तथैव सरमाहात्म्य ब्रूहि सर्वमशेषत. ॥२
शृण्वन्तु देवता: सर्वा पुराण वामन महत् ।
यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति प्रसादाद्वामनस्य तु ॥३
सनत्कुमारमासीन स्थाणोर्वटसमीपतः ।
ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्महात्मभि ॥४
मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च ।
पप्रच्छ सरमाहात्म्य प्रमाण च स्थित तथा ॥५
ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्र विशारद ।
ब्रूहि मे सरमाहात्म्य सर्वपापभयापहम् ॥६
कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजसत्तम ।
लिङ्गानि कति पुण्यानि स्थाणोर्यानि समीपत ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे महामुने ! आप स्थाणु तीर्थ का माहात्म्य तथा स्थाणु वट का माहात्म्य और सन्निहति की पहिले उत्पत्ति और फिर पांशु से उसका पूरण एवं लिंगो के दर्शन से पुण्य और उसका क्या फल होता है वह तथा सर का माहात्म्य यह सभी कुछ पूर्णरूप से हमारे सामने बतलाने की कृपा कीजिए ॥१-२॥ महर्षि लोम हर्षण ने कहा—हे समस्त देवगण ! आप अब श्रवण करिये, यह वामन पुराण सबसे महान् है। वामन भगवान् के प्रसाद से इसका श्रवण करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्ति किया करता है ॥३॥ स्थाणु वट के समीप में ही भगवान् सनत्कुमार समासीन हैं और उनके साथ में वालखिल्य प्रभृति ऋषिगण और महात्मा ब्रह्मा के पुत्रादि भी सस्थित हैं ॥४॥ वहां पर मार्कंडेय मुनि विनय पूर्वक आये थे और उन्होने उपस्थित होकर सर का माहात्म्य तथा स्थित प्रमाण के विषय मे पूछा था ॥५॥ मार्कंडेय मुनि ने कहा—

हे महामुने ! आप तो महान् भाग्यशाली हैं तथा समस्त शास्त्रों के महान् मनीषी हैं । आप मुझे सर का माहात्म्य बतलाइये जो कि समस्त पापों के भय को भगा देने वाला है ॥६॥ हे द्विजसत्तम ! कौन से तीर्थ तो दृश्य हैं और कौन से गुप्त हैं ? जो स्थाणु के समीप में हैं उनमें कितने लिंग पुण्यमय हैं ?॥७॥

येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ।
वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे ॥८
प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम् ।
गुह्येषु देवदृष्टेषु यत्पुण्यमभिजायते ॥९
देवदेवो यथा स्थाणुः सरमध्ये व्यवस्थितः ।
किमर्थं पांशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान्पुनः ॥१०
स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम् ।
सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे ॥११
शंकरस्य च गुप्तानि विष्णोः स्थानानि यानि च ।
कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम् ॥१२
त्वं देही चापि देवस्य माहात्म्यं वेत्सि तत्त्वतः ।
विरञ्चस्य प्रसादेन विदितं सर्वमेव च ॥१३

जिन लिंगों के केवल दर्शन ही से मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है । उस वट के पुण्य दर्शन का फल और उसकी उत्पत्ति कैसे हुई थी, यह भी आप कहिए ॥८॥ परिक्रमा करने में जो पुण्य होता है और तीर्थ के स्नान करने में जो पुण्य-फल होता है तथा गुह्य देवों के दर्शन करने पर जो पुण्य उत्पन्न होता है—यह भी आप बतलाने की कृपा करें ॥९॥ जिस तरह देवों के भी देव स्थाणु उनके मध्य में विराजमान होकर स्थित हुए हैं, यह और किस लिये इन्द्र देव ने पुनः पांशु (धूलि) से उस तीर्थ को पूरित कर दिया था ?॥१०॥ स्थाणु तीर्थ का माहात्म्य और चक्र तीर्थ का जो फल होता है तथा सूर्य तीर्थ और सोम तीर्थ का जो माहात्म्य है, वह सभी मेरे समक्ष में आप बतलाइये ॥११॥ भगवान् शंकर तथा भगवान् विष्णु के जो भी कुछ गुप्त स्थान हैं ।

हे महाभाग ! सरस्वती के जो हैं वे सब विस्तार के सहित कहिए ।१२।। आप देहधारी हैं तो भी देव के माहात्म्य को तात्त्विक रूप से भली-भाँति जानते हैं तथा भगवान् विरञ्चि के प्रसाद से सभी कुछ आपको विदित भी है ।।१३।।

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महामुनिः ।
अतिभक्तया तु तीर्थस्य प्रवणीकृतमानसः ।।१४
पर्यङ्कं शिथिलीकृत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
कथयामास तत्सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मणः पुरा ।।१५
नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शुभम् ।
उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम् ।।१६
पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
बृहदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजसंभवम् ।।१७
तस्मिन्नण्डे स्थितो ब्रह्मा शयनायोपचक्रमे ।
सहस्रयुगपर्यन्तं सुप्त्वा स प्रत्यबुध्यत ।।१८
सत्त्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमपश्यत ।
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ।।१९
रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः ।
उपसंहारकाले च प्रवर्त्तेत तमोगुणः ।।२०
गुणातीतः स भगवान्व्यापकः पुरुषः स्मृतः ।
तेनेदं सकलं व्याप्तं यत्किंचिज्जीवसंज्ञितम् ।।२१

लोमहर्षण मुनीन्द्र ने कहा—इस प्रकार के महर्षि मार्कण्डेय के वचन को सुनकर ब्रह्मात्मा वह महामुनि ने तीर्थ की अत्यन्त भक्ति से अपने मन को अत्यन्त प्रवण करते हुए अर्थात् विनम्र बना लिया था ।।१४।। पर्यंक को शिथिल करके तथा महेश्वर को नमस्कार करके वह सभी कुछ कहना आरम्भ कर दिया था जो पहिले ब्रह्माजी से उन्होंने सुना था ।।१५।। सनत्कुमारजी ने कहा—वरदान प्रदान करने वाले परम शुभ स्वरूप ईशान महादेव को प्रणाम करके तीर्थों की उत्पत्ति जो भी ब्रह्माजी ने कही थी मैं आपको बतलाता हूँ ।।१६।। पहिले समय में जब

कि यह सम्पूर्ण विश्व चराचर नष्ट हो गया था और केवल समुद्र ही एक मात्र दिखलाई देता था एवं महान् घोर स्वरूप होकर स्थित था उस समय में एक बृहत् अण्ड हुआ था जो प्रजाओं के बीजोत्पादक रूप वाला था ।।१७।। उसी अण्ड में ब्रह्मा स्थित थे जो शयन के लिये उपक्रम कर रहे थे । एक सहस्र (सतयुग त्रेता द्वापर, कलियुग) इन चारों युगों की चौकड़ी समाप्त होने के समय तक उन्होंने शयन किया था । इसके पश्चात् वे जागे थे ।।१८।। ब्रह्माजी उस समय में केवल सत्त्व से उद्रिक्त थे और उन्होंने लोक को एकदम शून्य मय देखा था । उस समय में उन्होंने सृष्टि करने के विषय में कुछ चिन्तन किया तो वे रजोगुण से मोहित हो गये थे ।।१९।। रजोगुण को सृष्टि का गुण बताया गया है और सत्त्व गुण स्थिति का होता है जिस समय में उपसंहार होता है तमोगुण प्रवृत्त हुआ करता है ।।२०।। वह भगवान् तो गुणों से भी परे हैं और उन्हें व्यापक पुरुष कहा गया है । उसी के द्वारा यह सम्पूर्ण व्याप्त है जो कुछ भी जीव संज्ञा से युक्त है ।।२१।।

स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वर स सनातन ।
यस्त वेद महात्मान स सर्व वेद निश्चितम् ।।२२
गुणातीत स पुरुष परमात्मा सनातन ।
यस्त वेद महात्मान स सर्व वेद मोक्षवित् ।।२३
किं तेषा सकलैस्तीर्थे राश्रमैर्वा प्रयोजनम् ।
येषा चानन्तकं चित्तमात्मन्येव व्यवस्थितम् ।।२४
आत्मा नदी सयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलशमादियुक्ता ।
तस्यास्नात पुण्यकर्मापुनाति न वारिणाशुद्धयति चान्तरात्मा ।।२५
एतत्प्रधान पुरुषस्य कर्म यदात्मसबोधसुखे प्रविष्टम् ।
ज्ञेय तदेव प्रव दति सन्तस्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान् ।।२६
नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति वित्त यथैकता समता सत्यता च ।
शील स्थिति दण्डविधानमार्जवततस्ततश्चोपरमः क्रियासु ।।२७
अपि ब्रह्म समासेन यदुक्त ते द्विजोत्तम ।
यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न सशय ।।२८

वह ब्रह्मा है और वही गोविन्द है तथा सनातन ईश्वर भी वही है। जो इस महान् आत्मा वाले को जानता है वह सभी कुछ निश्चित रूप से जानता है ॥२२॥ वह पुरुष सत्त्वादि गुणो से भी परे है और सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) परमात्मा है। जो उन महान् आत्मा वाले प्रभु का ज्ञान रखता है वह मोक्ष का वेत्ता सभी कुछ का ज्ञान रखता है ॥२३॥ उसको इन समस्त तीर्थों तथा आश्रमो से क्या प्रयोजन है अर्थात् इनकी उसके लिये कुछ भी आवश्यकता नहीं है जिनका अनन्तन चित्त आत्मा म ही व्यवस्थित है ॥२४॥ यह आत्मा एक नदी के तुल्य है जो सयम स्वरूप पुण्य से तीर्थों वाली है। सत्य ही इसमे उदक है और शील तथा शम आदि से यह समन्वित है। उस नदी मे स्नान करने वाला महान् पुण्य कर्मो वाला होता है तथा पवित्र हो जाता है। जल से यह अन्तरात्मा कभी भी शुद्ध नहीं होता है ॥२५॥ पुरुष का यही एक परम प्रधान कर्म है कि वह आत्मा के सबोध स्वरूप वाले सुख मे प्रविष्ट हो जावे। सन्त पुरुष उसी को ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य कहा करते हैं। उसको प्राप्त करके यह देहधारी समस्त कामो का त्याग कर दिया करता है ॥२६॥ एक ब्राह्मण के पास इस प्रकार का अन्य कोई भी धन नहीं है जो कि उसके पास एकता-समता-सत्यता विद्यमान हैं। तात्पर्य यह है कि समता-सत्यता ही ब्राह्मण का सर्वोपरि प्रधान एव उत्तम धन होता है इससे अन्य उत्तम धन कुछ भी नहीं है। शील-स्थिति-दण्ड विधान-आर्जव (सरल सीधापन) और फिर शनै शनै सब क्रियाओं में उपराम वृत्ति का होजाना। यह एक ब्राह्मण का कर्त्तव्य है ॥२७॥ हे द्विजोत्तम ! आपको मैंने सक्षेप मे जो ब्रह्म का स्वरूप भी बतला दिया है। इसका ज्ञान प्राप्त करके आप निश्चय ही परम ब्रह्म को प्राप्त हो जायेंगे, इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२८॥

इदानी शृणु चोत्पत्ति ब्रह्मण. परमात्मनः।
इम चोदाहरस्तत्र श्लोक नारायण प्रति ॥२९
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
तासु शेते स: यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥३०

विशुद्धसलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतं जगत् ।
अण्डं विभज्य भगवांस्तस्मादोमित्यजायत ॥३१
ततो भूरभवत्तस्माद्भुव इत्यपरं स्मृतं ।
स्व: शब्दश्च तृतीयोऽभूद्भूर्भुव: स्वेति संज्ञिता ॥३२
तस्या तेज: समभवत्तत्सवितुर्वरेण्यं यत् ।
उदकं शोषयामास यत्तेजोऽणुविनि:सृतम् ॥३३
तेजसा शोषितं शेषं कललत्वमुपागतम् ।
कललाद्बुद्बुदं ज्ञेयं तत: काठिन्यतां गतम् ॥३४
काठिन्याद्धारणी ज्ञेया भूतानां धारिणी हि सा ।
यस्मिन्स्थाने स्थितं ह्यण्डं तस्मिन्सन्निहितं सर: ॥३५

अब आप परमात्मा ब्रह्मा की उत्पत्ति का श्रवण करो । नारायण के प्रति यहां पर यह एक श्लोक का उदाहरण दिया था ॥२६॥ जलों को ही नारा कहते हैं और ये आप (जल) ही नरसूनु हैं । उन जलों में जो शयन किया करता है वह इसीलिये नारायण—इस नाम से कहा गया है अर्थात् नार ही जिसका अयन है वही नारायण है ॥३०॥ उस विशुद्ध जल में अन्तगत जगत् को जानकर भगवान् ने अण्ड को विभक्त कर दिया और फिर उसमें "ओम्"—यह उत्पन्न हुआ था ॥३१॥ फिर उससे 'भू' हुआ—दूसरा 'भुव' हुआ और तृतीय शब्द 'स्व' यह हुआ था । इस तरह भू भुव स्व संज्ञा वाले तीन शब्द हुए थे ॥३२॥ उसमें जो 'सवितुवरेण्य' तेज था वह हुआ था अर्थात् सविता का वरेण्य तेज हुआ था । जो अणु से विनि:सृत तेज था उसने उदक का शोषण कर दिया था ॥३३॥ तेज के द्वारा शोषण को प्राप्त हो गया था । कललता से बुद्बुदता को प्राप्त होकर फिर कठिनत्व अवस्था में होगया था ।३४। उस काठिन्य की दशा से धरणी समझनी चाहिए जो कि यह समस्त प्राणियों के धारण करने वाली है । जिस स्थान में अण्ड स्थित था उसमें सर सन्निहित था ॥३५॥

यदाद्य नि:सृतं तेजस्तस्मादित्य उच्यते ।
अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामह: ॥३६

तस्योल्वं मेरुरभवज्जरायुः पर्वताः स्मृताः ।
गर्भोदक समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः ॥३७
नाभिस्थानाद्यदुदकं ब्रह्मणो निर्मल महत् ।
महत्सरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा ॥३८
तस्मिन्मध्ये स्थाणु रूपी वटवृक्षो महामनाः ।
तस्माद्विनिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥३९
शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूषार्थं द्विजन्मनाम् ।
ततश्चिन्तयतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥४०
बालखिल्याः समुत्पन्ना मानसाः शुद्धिरूपिणः ।
अष्टाशीतिसहस्राणि बभूवुश्चोर्ध्वरेतसः ॥४१
ततः सृष्टिं चिन्तयतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
मनसो मानसा जाताः सनकाद्या महर्षयः ॥४२

जो आदि मे तेज निकला था उससे ही आदित्य कहा गया है। अण्ड के मध्य मे लोकों के पितामह ब्रह्मा समुत्पन्न हुए हैं ॥३६॥ उसका जो उल्व था वह मेरु गिरि हो गया और जरायु पर्वतश्रेणी कही गई है। गर्भ अर्थात् मध्य मे जो जल था वह सब समुद्र हो गये ये और सहस्रों नदिया हो गई थीं ॥३७॥ ब्रह्मा के नाभि के स्थान से जो उदक निकला था वह बहुत अधिक निर्मल था। उस अति विमल श्रेष्ठ जल से यह महान् सर पूर्ण था ॥३८॥ उसके मध्य में महान् मन वाला स्थाणु रूप से युक्त वट का वृक्ष था। उससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण विनिर्गत हुए थे ॥३९॥ इन द्विजन्माओं की शुश्रूषा करने के लिये ही उससे शूद्र समुत्पन्न हुए थे। इसके पश्चात् अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा से जो कि सृष्टि की रचना करने के विषय में चिन्तन कर रहे थे शुद्ध रूप वाले बालखिल्य मानस पुत्र उत्पन्न हुए थे। ये अट्ठासी हजार संख्या मे थे तथा ऊर्ध्व रेता हुए थे ॥४०-४१॥ फिर भी सृजन का चिन्तन करने वाले अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी के मन से ही मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चार महर्षि उत्पन्न हुए थे ॥४२॥

पुनश्चिन्तयतस्तस्य प्रजाकामस्य धीमतः ।
ऋषयः सप्त चोत्पन्नास्ते प्रजापतयोऽभवन् ॥४३
पुनश्चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ।
वालखिल्याः समुत्पन्नास्तपःस्वाध्यायतत्पराः ॥४४
ते सदा स्नाननिरता देवार्चनपरायणाः ।
उपवासैर्व्रतैस्तीव्रैः शोषयन्ति कलेवरम् ॥४५
दिव्यं वर्षसहस्रं ते कृशा धर्मनिसततः ।
आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शंकरः ॥४६
ततः कालेन महता उमया सह शंकरः ।
आकाशमार्गेण तदा दृष्ट्वा देवी सुदुःखिता ॥४७
प्रसाद्य देवदेवेशं शंकरं प्राह सुव्रता ।
क्लिश्यन्ति ते मुनिगणा देवदारुवनाश्रयाः ॥४८
तेषां क्लेशक्षयं देव विधेहि कुरु मे दयाम् ।
किं देव धर्मनिष्ठानामनन्तं देव दुष्कृतम् ॥४९

इसके भी अनन्तर फिर प्रजा की कामना रखने वाले धीमान् ब्रह्मा जी सृजन का चिन्तन कर रहे थे तो फिर उनसे सात ऋषि समुत्पन्न हुए थे जो कि प्रजापति हुए थे ॥४३॥ फिर भी जब उन्होंने सृष्टि करने का चिन्तन किया तो वे रजोगुण से मोहित हो गये थे और उनके बालखिल्य पैदा हुए थे जो निरन्तर तपश्चर्या करने एवं स्वाध्याय करने में ही परायण रहते थे ॥४४॥ वे सदा स्नान करने मे निरत तथा देवों की पूजा करने में तत्पर रहा करते थे। उपवास तीव्र व्रतों से वे अपने कलेवरों का शोषण करते थे ॥४५॥ एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वे इस प्रकार से अत्यन्त कृश होते हुए धर्म कार्य मे तल्लीन निरन्तर रहे थे और देवेश्वर की आराधना करते रहे किन्तु भगवान् शंकर सन्तुष्ट तथा प्रसन्न नहीं हुए ॥४६॥ इसके पश्चात् जब बहुत-सा समय व्यतीत हो गया तो एक बार जगदम्बा उमा के साथ भगवान् शंकर आकाश मार्ग से जा रहे थे। उस समय में देवी ने उन महर्षियों को घोर तप में लीन देखा था। वह बहुत ही दुःखित हुई थीं। फिर सुन्दर व्रत वाली जगदम्बा ने

देवेश्वर को प्रणाम करके भगवान् शंकर से कहा था—वे मुनिगण देवदारु के वन में अपना आश्रय बनाकर रहते हैं और बहुत अधिक क्लेश पा रहे हैं ॥४८॥ हे देव ! उनके क्लेश का क्षय कर दीजिएगा और मेरे ऊपर दया करो। हे देव ! क्या धर्म में निष्ठा रखने वालों का दुष्कृत अनन्त है ?॥४९॥

नाद्यापि ये न सिद्ध्यन्ति शुष्कस्नाय्वस्थिशोषिताः ।
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः पिनाकी पतितान्तकः ।
प्रोवाच प्रहसन्मूर्ध्नां चारुचन्द्रांशुशोभिनः ॥५०
न वेत्सि देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहनां गतिम् ।
नैते धर्मं विजानन्ति न च कामविवर्जिताः ॥५१
न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः ।
एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीद्देवी मामेव संशितव्रतम् ॥५२
देव प्रदर्शयात्मानं परं कौतूहलं हि मे ।
स इत्युक्त उवाचेदं देवदेवः स्मिताननः ॥५३
तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्रैते मुनिपुङ्गवाः ।
साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम् ॥५४
इत्युक्ता तु ततो देवी शंकरेण महात्मना ।
गच्छस्वेत्याह मुदिता भर्त्तारं भुवनेश्वरी ॥५५
यत्र ते मुनयः सर्वे काष्ठलोष्ठसमाः स्थिताः ।
अधीयाना महाभागाः कृताग्निसदनक्रियाः ॥५६

शुष्क स्नायु और अस्थि वाले तथा एकदम शोषित विचारे ये लोग अभी तक सिद्धि प्राप्त नहीं करते हैं। पिनाकी प्रभु ने जिन्होंने अन्तक पतित कर दिया था देवी के इस वचन को सुना और मस्तक पर सुन्दर चन्द्र किरणों के धारण करने से अत्यन्त शोभित होते हुए हँसकर बोले ॥५०॥ श्री महादेव ने कहा—हे देवि ! आप तात्विक रूप से धर्म की अत्यन्त गहन गति को नहीं जानती हैं। ये लोग सब धर्म को नहीं जानते हैं और न ये लोग काम से रहित ही हैं ॥५१॥ ये लोग क्रोध से भी निर्मुक्त नहीं हैं अर्थात् क्रोध ने इनको अभी तक नहीं छोड़ा है। ये

तो केवल मूढ़ बुद्धि वाले लोग हैं। यह सुनकर देवी ने कहा—हे देव ! मुझे इस प्रकार के संचित व्रत वाले आत्मा को दिखलाइये। मुझे तो इस विषय में हृदय में बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है। इस तरह से कहे जाने पर वह देवों के भी देव मुख पर मुस्कराहट दिखाते हुए यह बोले ॥५२ ५३॥ हे देवि ! आप यहीं पर ठहरो, जहाँ पर ये मुनिगण घोर तपस्या का साधन कर रहे हैं मैं जाता हूँ और उनका जो चेष्टित है उसे आपको दिखलाऊँगा ॥५४॥ इसके उपरान्त महात्मा शंकर के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उस भुवनेश्वरी देवी ने परम प्रसन्न होती हुई भगवान् शंकरजी से जो कि उनके स्वामी थे कहा—आप जाइये ॥५५॥ जहा पर ये सब मुनिगण काष्ठ और लोष्ठ के समान स्थित थे और ये सब महाभाग वेदों का उच्चारण कर रहे थे तथा अग्नि सदन की क्रिया कर चुके थे ॥५६॥

तान्विलोक्य ततो देवो नग्नः सर्वाङ्गसुन्दरः ।
वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत् ॥५७
आश्रमे पर्यटन्भिक्षां मुनीनामाश्रमं प्रति ।
देहि भिक्षां ततश्चोक्त्वा सभ्रमन्नाश्रमं ययौ ॥५८
तं विलोक्याश्रमायान्तं योषितो ब्रह्मवादिनाम् ।
सकौतुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः ॥५९
प्रोचुः परस्परं नार्य एहि पश्यामि भिक्षुकम् ।
परस्परमिति प्रोक्त्वा गृह्य मूलफलं बहु ॥६०
गृहाण भिक्षामूचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः ।
स तु भिक्षाकपालं तत्प्रसार्य बहु सादरम् ॥६१
देहि भिक्षां शिवं वाऽस्तु भवतीभ्यस्तपोधनाः ।
हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः ॥६२

उन श्रेष्ठ मुनिगणों को देखकर देवेश्वर शंकर जो एकदम नग्न थे और सर्वांगों से परम सुन्दर थे वनमाला से कृतापीड, युवावस्था वाले और भिक्षा के ग्रहण करने के लिये कपाल हाथ में धारण करने वाले थे। आश्रम में भिक्षा के लिए घूमते हुए मुनियों के आश्रम की ओर भी

पहुँचे थे। भिक्षा दो, यह कहकर इसके पश्चात् भ्रमण करते हुए आश्रम में चले गये थे ॥५७-५८॥ उन ब्रह्मवादियों की स्त्रियां आश्रम में समागत हुए उनको देखकर कौतुक युक्त स्वभाव के कारण उन देवेश्वर के रूप, सौन्दर्य से मोहित हो गई थीं ॥५९॥ वे नारियां परस्पर में कह रहीं थीं, आओ—आओ, इस भिक्षुक का दर्शन करें। आपस में ऐसा कहकर बहुत से फल और मूल ग्रहण करके वहाँ उनके समीप में पहुँच गई थीं ॥६०॥ वे मुनियों की स्त्रियां उन देवेश्वर से कहने लगीं—यह हमारी भिक्षा आप ग्रहण कीजिए। उन देव ने उस अपने भिक्षा के कपाल को फैलाकर बहुत ही आदर के साथ कहा—भिक्षा दो, आपका कल्याण होवे,आप से ही तपोधन हैं। इस प्रकार से हँसते हुए उन देवेश को वहां पर देवी ने देखा था ॥६१-६२॥

तत्र दत्त्वैव तां भिक्षां पप्रच्छुस्ताः स्मरातुराः ।
कोऽसौ नाम व्रतविधिस्त्वया तापस सेव्यते ॥६३
यत्र नग्नेन लिंगेन वनमालाविभूषितः ।
भवान्वै तापसो हृद्यो ब्रूहि स्म यदि मन्यसे ॥६४
इत्युक्तस्तापसस्ताभिः प्रोवाच हसिताननः ।
इदं मम व्रतकिंचित्र रहस्यं प्रकाशते ॥६५
शृण्वन्ति बह्वो यत्र तत्र वाऽऽस्या न विद्यते ।
अस्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ ॥६६
एवमुक्तास्तदा तेन प्रत्यूचुस्तं तदा मुनिम् ।
रहोऽस्माभिर्हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत् ॥६७
इत्युक्त्वा तास्तदा तं वै जगृहुः पाणिपल्लवैः ।
काचित्कण्ठे सकन्दर्पा काचिद्बाहुमपरा तथा ॥६८
जानुभ्यामपरा नारी केशेषु ललिताऽपरा ।
अपरा तु कटीरन्ध्रे ह्यपरा पादयोरपि ॥६९
क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमे तु स्वयोषिताम् ।
हन्यतामिति सभाष्य काष्ठपाषाणपाणयः ॥७०

वहा पर उस भिक्षा को देकर ही काम से पीडित उन मुनि नारियों ने उन देवेश से पूछा था। नारियो ने कहा—यह कौनसी व्रत की विधि है जिसको हे तपस्विन् ! आपने सेवन कर रक्खा है ? ॥६३॥ जिस विधान मे आप नग्न लिंग से युक्त और वन माला से भूषित हैं। आपनी तपस्वी परम सुन्दर हैं। यदि आप उचित समझते हैं तो हमको बताइये ॥६४॥ इस प्रकार से उन मुनि नारियो के द्वारा कहे जाने पर मुख पर हास्य धारण करते हुए तापस ने कहा था—यह मेरा कुछ व्रत है जिसमे कुछ भी रहस्य प्रकाशित नही होता है ॥६५॥ जिसमे बहुत-से सुनते है किन्तु यहां कोई आख्या नही है। इस व्रत को परम सौभाग्य है—ऐसा मान कर गमन करते है ॥६६॥ इस तरह से जब उन मुनि नारियो से कहा जाने पर उस समय मे उस मुनि से उन्होंने कहा था। हे मुने ! आइये हम सब गमन करेंगी, हमको इसका बडा कौतुक है ॥६७॥ इतना कहकर उसी समय उन नारियो ने उन देवेश को अपने कर पल्लवो से पकड लिया था। उनमे कोई तो काम युक्त हो कण्ठ में लग्न हो गई थी, कोई काम परायण होती हुई जानुओं से लिपट गई, दूसरी केशो मे, तीसरी ललिता कटिरन्ध्र मे और कोई पैरो में सलग्न हो गई थी ॥६८-६९॥ उस समय मे उन मुनियो ने आश्रम मे अपनी नारियो के इस प्रकार के क्षोभ को देखकर 'मारो'—ऐसा कहते हुए अपने करो मे सबने काष्ठ और पत्थर ग्रहण कर लिये थे ॥७०॥

पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमूर्ध्वं विभीषणम् ।
पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः ॥७१

देव्या जहास भगवान्कैलास नगमाश्रितः ।
पतिते देवदेवस्य लिङ्गपृष्ठे चराचरे ॥७२

क्षोभो बभूव सुमहान्पृथिव्या भावितात्मनाम् ।
एव विदित्वा ते तत्र यन्तते व्याकुला स्मृता. ॥७३

उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिमता वरः ।
न वय विद्मः सद्भाव तापसस्य महात्मनः ॥७४

विरिञ्चि शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम् ।
एवमुक्ताः सर्व एव मुनयः सजितेन्द्रियाः ॥७५
ब्रह्मणः सदनं जग्मुर्देवैः सर्वैर्निषेवितम् ।
प्रणिपत्याथ देवेशं लज्जयाऽधोमुखाः स्थिताः ॥७६
अथ तान्दुःखितान्दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
अहो मुग्धा यदा यूयं क्रोधेन कलुषीकृताः ॥७७

उस परम भीषण ऊर्ध्व देवके लिंग पर काष्ठ-पाषाणों को गिरा रहे थे। इसके पश्चात् उस लिंग के पातित हो जाने पर ईश्वर अन्तर्धान को प्राप्त हो गये थे ॥७१॥ चराचर में लिंग पृष्ठ के पतित होने पर भगवान् कैलास पर्वत पर समाश्रित हो गये थे और देवी को हास्य हुआ था ॥७२॥ जो भावुक हृदय वाले ऋषिगण थे उनको बड़ा भारी क्षोभ हुआ था। इस तरह से जानकर वे सब व्याकुल हो गये थे ॥७३॥ उस समय में बुद्धिमानो में परम श्रेष्ठ एक मुनिवर बोला था, उस महान् आत्मा वाले तपस्वी के सद्भाव को हम नहीं जानते हैं ॥७४॥ अब हम सब विरिञ्चि की शरण में जायेंगे वह निश्चय ही इस चेष्टित को जानते होंगे। इस तरहसे कहकर वे सब मुनिगण भली-भाँति अपनी इन्द्रियों का संयम करके ब्रह्मा के सदन में चले गये थे जो कि समस्त देवों के द्वारा निषेवित थे। वहाँ देवेश को प्रणिपात करके सभी लज्जा से नीचे की ओर मुख वाले होकर स्थित हो गये थे ॥७५-७६॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा जी ने उन सबको परम दुःखित देखकर यह वचन कहा था—अहो ! जब आप लोग मुग्ध होकर क्रोध से कलुषित हो गये थे, यह बहुत ही अनुचित हुआ था ॥७७॥

न धर्मं च क्रियां काचिज्जानते मूढबुद्धयः ।
श्रूयतां धर्म सर्वस्व तापसाः क्रूरकर्मणः ॥७८
विदित्वा मद्वचः क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात् ।
योऽसावात्मनि देहेऽस्मिन्विभुर्नित्यो व्यवस्थितः ॥७९
सोऽनादिः स महास्थाणुः पृथक्त्वेन परिसूचितः ।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै ॥८०

तन्मयो भवते तद्वदात्माऽपि मनसा कृतः ।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभिश्चोपचीयते ॥८१

ततः कर्मवशाद्भुङ्क्ते यद्भोगान्स्वर्गनारकान् ।
तन्मनः शोधयेद्धीमाञ्ज्ञानयोगमुपक्रमैः ॥८२

तस्मिञ्छुद्धे ह्यन्तरात्मा स्वयमेव निराकुलः ।
न शारीरस्य सक्लेशैरपि निर्दहनात्मकः ॥८३

शुद्धिमाप्नोति पुरुषः सशुद्धं यस्य नो मनः ।
क्रियानियमनार्थाय पातकेभ्यः प्रकीर्तिताः ॥८४

आप सब मूढ बुद्धि वाले हैं और किसी भी धर्म तथा क्रिया को नहीं जानते हैं । तपस्वी होकर भी क्रूर कर्म के करने वाले है । अब धर्म के सर्वस्व का श्रवण करो ॥७८॥ जो बुध जन होता है वह जानकर शीघ्र ही धर्म के फल की प्राप्ति किया करता है । जो यह विभु आत्मा मे, इस देह मे नित्य एव व्यवस्थित है । वह अनादि है, वह महा स्थाणु है किन्तु पृथक्त्व मे परिसूचित होता है जिस तरह से उपधान के साथ स्थित मणि उज्ज्वल वर्ण को धारण किया करता है ॥७९-८०॥ इसी भाँति आपके लिये यह आत्मा भी मन के ही साथ किया हुआ है । मन के भेद का आश्रय करके कर्मो से उपचित होता है ॥८१॥ इसके अनन्तर कर्मो के वशगत होता हुआ यह स्वर्ग के तथा नरक के भोगों का उपभोग किया करता है । इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को ज्ञानयोग के उपक्रमों से मन का शोधन करना चाहिए ॥८२॥ जब वह मन शुद्ध हो जाता है तो फिर यह अन्तरात्मा स्वयमेव निराकुल हो जाया करता है फिर यह शरीर मे सक्लेशो से भी निर्दहनात्मक नहीं होता है ॥८३॥ जिस पुरुष का मन भली-भाँति शुद्ध नहीं होता है वह पुरुष शुद्धि को कभी भी प्राप्त नहीं होता है । ये सभी क्रियाऐं और नियमादिक भी पातकों के लिये ही कहे गये हैं ॥८४॥

यस्मा दत्यावितं देहं न शीघ्रं शुद्धयते किल ।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्त्तकः ॥८५

वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्य क्षेण केनचित् ।
निमित्त मोहमाहात्म्यं निह्नवोत्तमभागिनाम् ॥८६
भवन्तः क्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिताः ।
ज्ञानि नामाश्रमो वेश्म वेश्माश्रममयोगिनाम् ॥८७
क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो भ्रमः ।
क्व क्रोध ईदृशो घोरो येनात्मान न जानथ ॥८८
यत्क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्य
यद्वा तपस्तपति यच्च जुहोति तन्य ।
प्राप्नोति नैव किमपीह फल हि लोके
मोघ फलं भवति तस्य हि कोपनस्य ॥८९

क्योंकि यह देह अत्यन्त आविल है अतः शीघ्र ही इसकी शुद्धि भी नहीं होती है । इसी से लोकों में यह मार्ग मरवथ का प्रवर्तक होता है ॥८५॥ यह वर्णाश्रम का यह विभाग किसी लोकों के निमित्त ही किया है ॥८६॥ आप लोग क्रोध और काम से अभिभूत इस आश्रम में स्थित हैं । जो अयोगी हैं उनका वेश्याश्रम होना है तथा ज्ञानियों का आश्रम वेश्म ही है ॥८७॥ कहा तो सम्पूर्ण प्रकार की इच्छाओं का त्याग है और कहा नारीमय भ्रम है ? दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है । कहा तो ऐसा घोर क्रोध है जिसके कारण आप लोग आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते हैं ॥८८॥ क्रोधी पुरुष जो भी यजन करता है, नित्य दान देता है, तपस्या करता है और जो भी वह हवन किया करता है वह इस लोक में कुछ भी नहीं प्राप्त किया करता है । ऐसे क्रोध करने वाले पुरुष का लोक में फल सब मोघ (व्यर्थ) ही हो जाया करता है ॥८९॥

९४–ब्रह्मादिदेव कृत शिव-स्तुति

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
पुनरेव च पप्रच्छुर्जगतः श्रेयकारणम् ॥१

गच्छाम शरणं देवं शूलपाणिं त्रिलोचनम् ।
प्रसादाद्देवदेवस्य भविष्यथ यथा पुरा ॥२
इत्युक्ता ब्रह्मणा सार्द्धं कैलासं गिरिमुत्तमम् ।
ददृशुस्तं समासीनमुमया सहितं हरम् ॥३
ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपिता महः ।
देवाधिदेवं वरदं त्रैलोक्यस्य शिवं प्रभुम् ॥४
अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने ।
महादेवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने ॥५
नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा ।
ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः ॥६
नमस्ते पद्मगर्भाय हृत्पद्मशायिने नमः ।
घोरशांतितपापाय चण्डक्रोधनमोऽस्तु ते ॥७

महा मुनीन्द्र सनत्कुमारजी ने कहा—उन समस्त ऋषियों ने ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर उन्होंने उन से फिर जगत् के क्षेम का कारण पूछा था ॥१॥ ब्रह्माजी ने कहा—तीन नेत्रों वाले शूल पाणि देव की शरणागति में चलें। देवों के भी देव के प्रसाद से जैसा पहिले था सब हो जायगा ॥२॥ ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे सब ब्रह्माजी के ही साथ में उत्तम कैलास गिरि पर गये थे और वहाँ पर उमा के साथ बैठे हुए भगवान् हर का उन्होंने दर्शन किया था ॥३॥ इसके अनन्तर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने वरदान दाता—देवों के भी अधिदेव, त्रैलोक्य के प्रभु भगवान् शिव की स्तुति करना समारम्भ कर दिया था ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—जिसका कभी भी अन्त नहीं है ऐसे वरदान प्रदान करने वाले, पिनाकधारी स्थाणु देव, परमात्मा महादेव आपकी सेवा में हमारा प्रणाम सादर समर्पित है ॥५॥ हे तारक ! भुवनों के स्वामी, ज्ञानों के प्रदान करने वाले आपके लिये सर्वदा हमारा नमस्कार है। आप तो एक ही पुरुषों में पुरुषोत्तम देव हैं ॥६॥ हृदय के पद्म में शयन करने वाले पद्म गर्भ आपके लिये नमस्कार है। परम घोर शान्ति

पाप के लिये चण्ड क्रोध वाले आप हैं ऐसे आपके लिये हमारा सबका नमस्कार है ॥७॥

नमस्ते देवविश्वेश नमस्ते शूरनायक ।
शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥८
एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा ऋषिभिस्तदा ।
उवाच तानाव्रजतलिङ्ग वो भविता पुनः ॥६
क्रियतां मद्वचः शीघ्रं येन मे प्रीतिरुत्तमा ।
भविष्यति प्रतिष्ठाया लिङ्गस्यात्र न संशयः ॥१०
ये लिङ्गं पूजयिष्यन्ति मामकं भक्तिमाश्रिताः ।
न तेषां दुर्लभं किंचिद्भविष्यति कदाचन ॥११
सर्वेषामपि पापानां कृतानामपि जानता ।
शुद्धयते लिङ्गपूजाया नात्र कार्या विचारणा ॥१२
युष्माभिः पातित लिङ्गं तारयित्वा महत्सरः ।
सान्निहत्यां तु विख्यात तस्मिञ्छीघ्रं प्रतिष्ठितम् ॥१३
यथाऽभिलषित्त कामं ततः प्राप्स्यथ ब्राह्मणाः ।
स्थाणुनाम्ना हि लोकेषु पूजनीयो दिवौकसाम् ॥१४

हे देवों और समस्त विश्व के ईश ! हे शूरों के नायक ! आपके लिये प्रणाम है । जिनके हाथ मे शूल रहता है तथा जो विश्व भर पर कृपा करने वाले आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥८॥ उस समय में ब्रह्माजी तथा ऋषियों के द्वारा इस तरह से स्तुति किये गये महादेव ने उनसे कहा था—आप सभी लिंग के पास जाइये वह पुनः आपका हो जायगा ॥६॥ क्योंकि मुझे प्रीति उत्पन्न होगई है । मेरे वचन का आप शीघ्र ही पालन करो । उस लिंग की प्रतिष्ठा से कल्याण होगा—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥१०॥ जो लोग भक्ति की भावना का समाश्रय ग्रहण करके मेरे लिंग का पूजन करेंगे उनको कभी भी कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥११॥ समस्त किये हुए पापों को जानते हुए भी मनुष्य लिंग की पूजा से शुद्ध हो जाया करता है । इसमें कुछ भी संदिग्ध होकर विचार नहीं करना चाहिए ॥१२॥ आप लोगो ने जो लिंग

किया है उसने महत्सर का तारण करके अब वह सन्निहति में विख्यात है उसमे शीघ्र ही प्रतिष्ठित कर डालो ।।१३।। हे ब्राह्मणो ! फिर आप लोग जो भी आपकी अभिलषित कामना होगी उसे अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे । वह स्थाणु-इस नाम से देवों के लोकों में पूजनीय है ।।१४।।

स्थाण्वीश्वरे स्थितो यस्मात्तत: स्थाण्वीश्वर: स्मृत: ।
ये स्मरन्ति सदा स्थाणुं ते मुक्ता: सर्वकिल्बिषै: ।।१५
शुद्धदेहा भविष्यन्ति दर्शनान्मोक्षगामिन: ।
इत्येवमुक्ता देवेन ऋषयो ब्रह्मणा सह ।।१६
तस्माद्दारुवनाल्लिङ्गं नेतुं समुपचक्रमु: ।
अशक्तास्तं चालयितुं ते देवा ऋषिभि: सह ।।१७
श्रमेण महता युक्ता ब्रह्माणं शरणं ययु: ।
तेषां श्रमाभिपन्नानामिदं ब्रह्माऽब्रवीद्वच: ।।१८
किं वा श्रमेण महता न यूयं वहनक्षमा: ।
स्वेच्छया पतितं लिङ्गं देवदेवेन शूलिना ।।१९
तस्मात्तमेव शरणं यास्याम: सहिता: सुरा: ।
प्रसन्नश्च महादेव: स्वयमेव स नेष्यति ।।२०
इत्येवमुक्ता ऋषयो देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
कैलासं गिरिमासाद्य रुद्रदर्शनकाङ्क्षिण: ।।२१

क्योंकि स्थाणु में ईश्वर स्थित है इसी कारण से सभी से वह स्थाण्वीश्वर कहा गया है । जो लोग सदा स्थाणु का स्मरण किया करते हैं वे सभी किल्विषों से छुटकारा पाजाया करते हैं ।।१५।। स्थाणु के दर्शन से शुद्ध देह वाले होकर मोक्ष के गामी हो जाते हैं देव के द्वारा इस प्रकार से कहे गये वे समस्त ऋषिवृन्द ब्रह्माजी के ही साथ उस दारुवन से उस लिंग के लाने के लिये उपक्रम करने लगे थे । किन्तु वे सब देवगण ऋषियों के सहित उसे चालित करने में असमर्थ होगये थे ।।१६-१७।। महान् श्रम से युक्त होते हुए भी वे सब ब्रह्माजी की शरण में गये थे । अत्यन्त श्रम से समभिपन्न उनसे ब्रह्माजी ने यह वचन कहा था—।।१८।। आपके द्वारा अत्यन्त महान् श्रम के करने से क्या लाभ है ?

आप लोग इसे वहन करने में समर्थ नहीं हैं। देवों के देव धूनी ने अपनी इच्छा से लिंग को पतित किया है ॥१६॥ इसलिए अब सुरों के सहित उन्हीं की शरण में जायगे। जब महादेव प्रसन्न होंगे तो वह स्वयं ही लेजायगे ॥२०॥ इस तरह कहे जाने पर सब ऋषिगण-देववृन्द ब्रह्माजी के साथ कैलाश पर पहुँच कर रुद्र को दर्शनेच्छा वाले हुए थे ॥२१॥

न च पश्यन्ति ते देव ततश्चिन्तासमन्विताः ।
ब्रह्माणमूचुर्मुनयः क्व स देवो महेश्वरः ॥२२
ततो ब्रह्माचिरं ध्यात्वा देवदेवं महेश्वरम् ।
हस्तिरूपेण तिष्ठन्त मुनिभिर्मानिम स्तुतम् ॥२३
अथ ते ऋषयः सर्वे देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
गता महत्सरः पुण्य यत्र देवः स्वयं स्थितः ॥२४
न च पश्यन्ति ते देवमन्विपन्तस्ततस्ततः ।
ततश्चिन्तान्विता देवा ब्रह्मणा सहितास्तथा ॥२५
पश्यन्ति देवी सुप्रीता कमण्डलुविभूषिताम् ।
प्रीयमाणास्तदा देवीमिद वचनमब्रुवन् ॥२६
क्व देवि मातर्देवेशो दृश्यते सर्वदा समः ।
श्रमेण महता युक्ता अन्विपन्तो महेश्वरम् ॥२७
ततस्तु कृपयाऽऽविष्टा देवी वचनमब्रवीत् ।
अत्रैवाद्य महाभागास्त द्रक्ष्यथ महेश्वरम् ॥२८

किन्तु उन्होंने वहाँ पर देवेश्वर को नहीं देखा था तो वे बहुत ही चिन्ता से युक्त होगये थे। मुनिगण ने ब्रह्माजी से कहा था कि वह महेश्वर देव इस समय में कहाँ पर हैं ॥२२॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने चिरकाल तक ध्यान किया तो देवदेव महेश्वर को हाथी के रूप में स्थित देखा था और फिर मुनियों के सहित उनकी मानत स्तुति की थी ॥२३॥ इसके पश्चात् वे सब ऋषि-देवता ब्रह्मा जी के सहित पुण्य महत्सर पर गये थे जहाँ पर देव स्वयं संस्थित थे ॥२४॥ वे इधर-उधर खोज करते हुए भी देव का दर्शन नहीं कर पाते थे। इसके पश्चात् सब देव ब्रह्मा के सहित चिन्ता से आतुर हो गये थे ॥२५॥ उन्होंने

कमण्डलु से विभूषित और परम प्रसन्न देवी का दर्शन किया था। तब तो सब अति प्रसन्न होते हुए उस जगदम्बा से उस समय में यह वचन बोले थे ॥२६॥ हे देवि ! हे माता ! देवेश्वर कहाँ पर हैं ? वह तो सर्वदा सम दिखलाई दिया करते हैं। हमने तो महान् श्रम किया है और भगवान् महेश्वर की खोज कर रहे हैं ॥२७॥ तब तो दया से परिपूर्ण देवी ने यह वचन कहा था। हे महान् भाग वालो ! आज ही उन महेश्वर प्रभु के आप लोग दर्शन प्राप्त कर लेंगे। २८॥

पीयताममृत देवास्ततो ज्ञास्यथ शंकरम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भवान्या समुदाहृतम् ॥२९
सुखोपविष्टास्ते देवाः पपुस्तदमृत शुचि ।
अनन्तर सुखासीनाः पप्रच्छुः परमेश्वरीम् ॥३०
क्व स देव इहायातो हस्तिरूपधरः स्थितः ।
दर्शितश्च तदा देव्या सरोमध्ये व्यवस्थितः ॥३१
दृष्ट्वा देव हर्षयुक्ताः सर्वे देवाः सवासवाः ।
महाप्रणमग्रत कृत्वा इद वचनमब्रुवन् ॥३२
त्वया त्यक्त महादेव लिङ्गं त्रैलोक्यवन्दितम् ।
तस्य चानयने नान्य समर्थः स्यान्महेश्वर ॥३३
इत्येवमुक्तो भगवान्देवो ब्रह्मादिभिर्हरः ।
जगाम ऋषिभिः सार्द्धं देवदारुवनाश्रयम् ॥३४
तत्र गत्वा महादेवो हस्तिरूपधरो हरः ।
करेण जग्राह ततो लीलया परमेश्वरम् ॥३५
तमादाय महादेवः स्तूयमानो महर्षिभिः ।
निवेशयामास तदा सरः पार्श्वे तु पश्चिमे ॥३६
ततो देवा. सर्व एव ऋषयश्च तपोधनाः ।
आत्मान सफलं दृष्ट्वा रतोश्च चक्रुर्महेश्वरे ॥३७

हे देवगण ! आप लोग अमृत का पान करो। इसके पश्चात् आप शंकर को जान जाओगे। इस वचन का श्रवण करके जोकि भवानी के द्वारा कहा गया था ॥२९॥ वे सब सुख पूर्वक बैठ गये थे और उन्होंने

परम शुचि अमृत का पान किया था । इसके पश्चात् सुख में स्थित उन्होंने परमेश्वरी भगवती से पूछा था ॥३०॥ वह देव यहां पर आये हुए हैं और अब कहाँ पर हैं जोकि हाथी का स्वरूप धारण करके स्थित हैं ? उस समय मे सुर के मध्य मे व्यवस्थित उनको देवी ने दिखा दिया था ॥३१॥ तब देवेश्वर का दर्शन करके समस्त देवगण इन्द्र के सहित हर्ष से युक्त होगये थे और ब्रह्माजी को अपना अग्रगामी बना कर यह वचन कहने लगे थे ॥३२॥ हे महादेव ! आपने ही यह त्रैलोक्य के द्वारा बध्यमान लिंग रक्षक किया है । हे महेश्वर ! उसके लाने मे अन्य कोई भी समर्थ नहीं है॥३३॥इस तरह से कहे गये भगवान् देव हर ब्रह्मा आदि तथा ऋषिगण के साथ देव दारुवनालय को गये थे ॥३४॥ वहाँ पर हाथी का स्वरूप धारण करने वाले महादेव हर ने लीला से ही हाथ (सूंड) से परमेश्वर को ग्रहण करलिया था । उसको लेकर तथा महर्षियों के द्वारा स्तूयमान होते हुए महादेव ने उस समय मे सर के पश्चिम पार्श्व मे निवेशित कर दिया था ॥३५-३६॥ इसके पश्चात् तपोधनी सब ऋषिगण और देववृन्द ने अपने आपको सफल मानकर भगवान् महेश्वर का स्तोत्र किया था ॥३७॥

नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन् परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ ज्ञानज्ञेय सर्वेश्वर महाविरञ्चे महाविभूते महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास मनोनिवास आदिदेव महादेव सदाशिव ईशान दुर्विज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर परमेश्वर महायोगेश्वर त्र्यम्बक महायोगिन् परब्रह्मन् परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ॐकार वषट्कार स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण सर्वगत सर्वदर्शन सर्व-शक्त सर्वदेव अज सहस्रार्चिः सुधामन् हरधाम यशवर्त्त संवर्त्त संकर्षण वडवानल अग्नीषोमात्मक पवित्र महापवित्र महामेघ महाकामहन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर महाकामुक महा-हंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित हिरण्यबाहु हिरण्यरेतः हिरण्यनाभ हिरण्याग्रकेश मुञ्जकेशिन् सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर कमलेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शंभो च विभो महायज्ञ महायाज्ञिक सर्वयज्ञ-

मय सर्वयज्ञसंस्तुत निराश्रय समुद्रेश अत्रिसभूत भक्तानुकम्पक अभग्नयोग योगधर वासुकि महाहिविद्योतितविग्रह हरितनयन त्रिलोचन जटाधर नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर उमाशरीरार्धधर शूलधर पिनाकधर खड्गचर्मधर गजचर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर प्रसीद भक्तजनवत्सल ॥३८

एवं स्तुतो देवगणैः सुभक्त्या स ब्रह्ममुख्यैश्च पितामहेन ।
त्यक्त्वातदाहस्तिरूपमहारमालिङ्ग तदा सन्निधानं चकार ॥३९

हे परमात्मन् ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम समर्पित है। आप अनन्त योनि हैं। लोकों के साक्षी स्वरूप हैं—परमेष्ठी हैं। हे भगवान् ! आप सब कुछ के ज्ञाता हैं—क्षेत्र के जानने वाले हैं—ज्ञान के द्वारा ही आप जानने के योग्य होते हैं। आप सबके ईश्वर हैं—महान् विरञ्चि हैं—आप महान् विभूति हैं—महान् क्षेत्रज्ञ हैं आप महान् पुरुष हैं तथा समस्त प्राणी आपके ही अन्दर निवास किया करते हैं। आप सबमें वास करने वाले हैं। आप आदि देव हैं और सबसे बड़े देव हैं। आप सर्वदा मंगलमय स्वरूप वाले हैं। ईशान और अत्यन्त ही दुःख से जानने के योग्य हैं। आपकी आराधना अत्यन्त कठिन है ऐसे आपका रूप है। आप महान् भूतों के ईश्वर हैं—परम ईश्वर हैं तथा आप महान् योग के स्वामी हैं। आप त्र्यम्बक हैं—पर ब्रह्म हैं तथा आप परम ज्योति हैं। आप—ब्रह्म वेत्ताओं में सर्वोत्तर देव हैं। आप ओंकार के स्वरूप वाले हैं—वषट्कार-स्वधा के आकार वाले—स्वाहाकार तथा आप परम कारण स्वरूप हैं। आप सब में व्याप्त रहते हैं। सर्व दर्शन-सर्वशक्ति और आप सबके देव है। आप अजन्मा हैं तथा सहस्र अर्चियों वाले हैं। आप सुधामा हैं। आप हरधाम वशवर्त्त-सवर्त्त तथा सकर्षण स्वरूप वाले हैं। आप वडवानल तथा अग्नी-षोमात्मक हैं। आप पवित्र—महान् पवित्र-महामेघ तथा महाकाम का हनन करने वाले हैं। आप हंस-परमहंस-महाराजिक, महेश्वर, इन शुभ नामों से भूषित होने वाले हैं। आप महान् कामुक हैं और महान् हंस हैं। आप इस संसार के भय के नाशक तथा देव और सिद्धों के द्वारा

पूजित हैं। आप हिरण्यवाह—हिरण्यरेता, हिरण्यनाभ और हिरण्याग्र केशो हैं। आप मुञ्ज केशो तथा समस्त लोकों को वरदान देने वाले—सभी पर अनुग्रह करने वाले-कमल में शयन करने वाले और हृदयों में शयन करने वाले हैं। हे शम्भो ! हे विभो ! आप महान् यज्ञ स्वरूप हैं तथा महान् याज्ञिक (यज्ञ कराने वाले) हैं। आपका स्वरूप समस्त यज्ञों से परिपूर्ण हैं तथा सब यज्ञो के द्वारा सस्तवन किये हुए हैं। आप बिना आश्रय वाले—समुद्र के स्वामी अग्नि से समुत्पन्न, भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले हैं। आप अभग्न योग से समन्वित हैं योग के धारण करने वाले हैं। आप महान् सर्प वासुकि के द्वारा विशेष रूप से द्योतित विग्रह वाले हैं। आप हरित नयन-तीन लोचनों वाले, जटा के धारी, नीले कण्ठ वाले, अर्धचन्द्र को धारण करने वाले हैं। आप जगदम्बा उमा के अर्द्ध शरीर को धारण करने वाले, त्रिशूलधारी-पिनाक धारी—खग और चर्म के धारण करने वाले-गज के चर्म के धारी हैं। हे शम्भो ! आप इस दुस्तर संसार में महान् संहार कर देने वाले हैं और आप अपने भक्तजनों पर वात्सल्य रखने वाले हैं। आप प्रसन्न होइये अर्थात् हम लोगों पर प्रसन्नता प्रकट करिये ॥३८॥ इस प्रकार से देवगण के द्वारा—ब्रह्म मुख्यों के द्वारा—और पितामह के द्वारा सुन्दर भक्ति से स्तुति किये गये वहाँ देवेश्वर महान् आत्मा वाले शम्भु ने अपना हाथी का रूप त्याग कर उस समय में लिंग का सन्निधान किया था ॥३९॥

४५—स्याणु लिंग माहात्म्य

अथोवाच महादेवो देवान्ब्रह्मपुरोगमान् ।
ऋषीणां चैव प्रत्यक्षं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥१
एतत्सन्निहतं प्रोक्तं सरः पुण्यतमं महत् ।
मयोपवेशितं यस्मात्तस्मान्मुक्तिप्रदायकम् ॥२

इह ये पुरुषाः केचिद्ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
लिङ्गस्य दर्शनादेव पश्यन्ति परमं पदम् ॥३
अहन्यहनि तीर्थानि आसमुद्रात्सरांसि च।
स्थाणुतीर्थं समेष्यन्ति मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥४
स्तोत्रेणानेन सततं ये मां स्तोष्यन्ति भक्तितः।
तस्याहं सुलभो नित्यं भविष्यामि न संशयः ॥५
इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रो ह्यन्तर्धानं गतः प्रभुः।
देवाश्च ऋषयः सर्वे स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥६
ततो निरन्तरं स्वर्गं मानुषैर्मिश्रितं कृतम्।
स्थाणुलिङ्गस्य माहात्म्यदर्शनात्स्वर्गमाप्नुयुः ॥७

महामुनीन्द्र सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर ब्रह्मा जिनके अगुआ थे उन देवगण से महादेवजी ने कहा था और ऋषियों का जो प्रत्यक्ष उत्तम तीर्थ का माहात्म्य था उसका वर्णन किया था ॥१॥ यह महान् पुण्यतम सर सन्निहत कहा गया है। क्योंकि इसको मैंने उपवेशित किया है इसीलिये यह मुक्ति के प्रदान करने वाला है ॥२॥ यहाँ पर जो भी कोई पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं वे सब इस लिंग के दर्शन से ही परम पद को पाते हैं ॥३॥ प्रतिदिन समुद्र से लेकर सरों तक प्रत्येक तीर्थ दिवाकर के मध्यगत होने पर स्थाणु तीर्थ में आया करेंगे ॥४॥ इस स्तोत्र से निरन्तर जो भक्ति पूर्वक स्तवन करेंगे उनको मैं नित्य ही सुलभ हो जाऊंगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५॥ इतना कहकर भगवान् रुद्र प्रभु अन्तर्धान होगये थे। और फिर सब देवगण तथा ऋषि लोग भी अपने २ स्थानों को चले गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर यह हुआ था कि जो स्वर्ग देवगण के निवास का ही स्थान था वह मनुष्यों से मिश्रित कर दिया गया था। स्थाणु लिंग के माहात्म्य के दर्शन से स्वर्ग को प्राप्त होगये थे ॥७॥

ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः।
तानुवाच तदा ब्रह्मा किमर्थमिह चागताः ॥८

ततो देवाः सर्व एव इदं वचनमब्रुवन् ।
मानुषेभ्यो भयं तीव्रं रक्षास्माकं पितामह ॥९
तानुवाच तदा ब्रह्मा देवं त्रिदशनायकम् ।
पांशुना पूर्यतां शीघ्रं साद्धं शक्र हितं कुरु ॥१०
ततो ववर्ष भगवान्पांशुना पाकशासनः ।
सप्ताहं पूरयामासुः सेन्द्रा देवास्तदा स्मृताः ॥११
तं दृष्ट्वा पांशुवर्षं च देवदेवो महेश्वरः ।
करेण धारयामास लिङ्गं तीर्थवटं तथा ॥१२
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं पाद्यं यत्रोदकं स्थितम् ।
तस्मिन्स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ॥१३
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं वटलिङ्गस्य चान्तरे ।
तस्य प्रीताश्च पितरो दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥१४

इसके अनन्तर सब देवगण ब्रह्माजी की शरण में गये थे। ब्रह्माजी ने उस समय में उनसे पूछा था कि आप लोग यहाँ पर क्या किस प्रयोजन से आये हैं ॥८॥ तब सब देवों ने यही वचन ब्रह्माजी से कहा था कि हमको मनुष्यों से बड़ा तीव्र भय होगया है। हे पितामह! उनसे हमारी रक्षा करो ॥९॥ उस समय में उनसे ब्रह्माजी ने यह कहा था कि त्रिदशों के नायक देव का पांशु से आधा भाग पूरित करदो और इन्द्र का हित सम्पादन करो ॥१०॥ इसके पश्चात् भगवान् पाकशासन ने धूलि से वर्षा की थी। एक सप्ताह तक पूरित किया था। उस समय में इन्द्र के सहित देव कहे गये थे ॥११॥ उस पांशु की वर्षा को देखकर देवों के देव महेश्वर ने उस लिंग तथा तीर्थ वट को कर से धारण कर लिया था ॥१२॥ उससे पुण्यतम तीर्थ यह है जहाँ पर पाद्य का उदक स्थित था। उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त कर लेता है ॥१३॥ जो कोई उस वट लिंग के अन्तर में वहीं पर श्राद्ध करता है उससे उसके पितर अत्यन्त प्रसन्न होकर भूमण्डल में जो भी दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु प्रदान किया करते हैं ॥१४॥

पूरितं च ततो दृष्ट्वा ऋषयः सर्व एव ते ।
पांशुना सर्वगात्राणि स्पृशन्ति श्रद्धयाऽन्विताः ॥१५
तेऽपिनिर्धूतपापाश्च पांशुना मुनयो गताः ।
पूज्यमानाः सुरगणैः प्रयाता ब्रह्मणः पदम् ॥१६
ये तु सिद्धा महात्मानस्ते लिङ्गं पूजयन्ति च ।
व्रजन्ति परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥१७
एवं ज्ञात्वा तदा ब्रह्मा लिङ्गं शैलमयं तदा ।
आद्यं लिङ्गं तदाऽऽस्थाप्य तस्योपरि न्यधीयत ॥१८
ततः कालेन महता तेजसा तस्य रञ्जितम् ।
तस्यापि स्पर्शनात्सिद्धाः परं पदमवाप्नुयुः ॥१९
ततो देवैः पुनर्ब्रह्मा विज्ञप्तो द्विजसत्तमाः ।
एते यान्ति परां सिद्धिं लिङ्गसदर्शनात्पराम् ॥२०
तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा देवानां हितकाम्यया ।
उपर्युपरि लिङ्गानि सप्त तत्र चकार ह ॥२१

इसके उपरान्त उन सब ऋषियों ने पूरित देखकर श्रद्धा से युक्त हो पाँशु से सब गात्रों का स्पर्श करते थे ॥१५॥ वे मुनिगण भी उस पांशु से निर्धूत पापों वाले होगये थे और सुरगणों के द्वारा वे सब पूज्यमान होते हुए ब्रह्मा जी के पद को प्राप्त होगये थे ॥१६॥ जो सिद्ध महात्मा लोग थे वे भी लिंग की पूजा किया करते थे। तथा पुनरावृत्ति दुर्लभा सिद्धि को प्राप्त हो जाया करते थे ॥१७॥ इस प्रकार से ब्रह्माजी ने जान कर उस समय मे शैलमय आद्य लिंग की स्थापना करके उसके ऊपर रख दिया था ॥१८॥ इसके पश्चात् अधिक समय के होजाने पर उसके तेज से रञ्जित हो गया था। उसके भी स्पर्श से सिद्ध लोग परम पद को प्राप्त होते हैं ॥१९॥ हे द्विज श्रेष्ठो इसके अनन्तर देवों ने पुनः ब्रह्माजी को विज्ञप्त किया था। ये लिंग के सम्यक् प्रकार से दर्शन करने से परासिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ भगवान् ब्रह्माजी ने यह श्रवण करके देवों के हित की कामना से ऊपर-ऊपर सात लिंगों को कर दिया था ॥२१॥

ततो ये मुक्तिकामाश्च सिद्धाश्रमपरायणाः ।
सेव्य पांशुं प्रयत्नेनप्रयाताः परमं पदम् ॥२२
पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः ।
महादुष्कृतकर्माणः प्रापयन्ति परं पदम् ॥२३
अज्ञानाज्ज्ञानतोवाऽपि स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ।
नश्यते दुष्कृतं सर्वं स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥२४
लिङ्गस्य दर्शनान्मुक्तिः स्पर्शनाच्च वटस्य च ।
तत्सन्निधौ जले स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥२५
पितॄणां तर्पणं यस्तु जले तस्मिन्करिष्यति ।
बिन्दौ बिन्दौ तु तोयस्य ह्यनन्तफलमाप्नुयात् ॥२६
यस्तु कृष्णतिलैः श्राद्धं स्थाणोर्लिङ्गस्य पश्चिमे ।
तर्पयेच्छ्रद्धया युक्तः प्रीणयेत्स युगत्रयम् ॥२७
यावन्मन्वन्तरं प्रोक्तं यावल्लिङ्गस्य च स्थितिः ।
तावत्प्रीताश्च पितरः पिबन्ते जलमुत्तमम् ॥२८
कृते युगे सन्निहत्या त्रेताया वायुसंज्ञितम् ।
कलिद्वापरयोर्मध्ये कूपे रुद्रह्रद स्मृतम् ॥२९
चैत्रस्य कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां नरोत्तमः ।
स्नात्वा रुद्रह्रदे तीर्थे परं पदमवाप्नुयात् ॥३०
वटे यस्तु स्थितो रात्रौ ध्यायते परमेश्वरम् ।
स्थाणोर्वटप्रसादेन मनसा चिन्तितं फलम् ॥३१

इसके उपरान्त जो लोग मुक्ति के प्राप्त करने की कामना रखते थे और जो सिद्धाश्रम में परायण थे वे प्रयत्न पूर्वक पांशु का सेवन करके परम पद को प्राप्त कर गये थे ॥२२॥ वे धूलियाँ भी कुरुक्षेत्र में वायु के द्वारा समुदीरित हुई थीं। जो महान् दुष्कृत कर्म्म वाले भी लोग थे वे भी परम पद को प्राप्त हो जाते हैं ॥२३॥ अज्ञान से अथवा ज्ञान से स्त्रियों के अथवा पुरुषों के जो भी दुष्कृत होते हैं वे सब स्थाणु तीर्थ के प्रभाव से नष्ट हो जाया करते हैं ॥२४॥ लिंग के दर्शन से मुक्ति होती है और वट के स्पर्श करने से मोक्ष होता है। उसकी सन्निधि में

जल में स्नान करके मनुष्य अपने अभीष्ट फल को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ उस जल में जो भी कोई पुरुष अपने पितृगण का तर्पण किया करता है तो जल के प्रत्येक बिन्दु में अनन्त फल का भागी होता है ॥२६॥ जो कोई पुरुष काले तिलों से स्थाणु लिंग के पश्चिम में श्राद्ध करता है और श्रद्धा से युक्त होकर तर्पण करता है वह तीनों युगों में सबको प्रसन्न किया करता है ॥२७॥ जब तक मन्वन्तर बताया गया है लिंग की स्थिति रहती है तब तक पितर लोग प्रसन्न होते हुए उत्तम जल का पान किया करते हैं ॥२८॥ कृत युग में सन्नि हत्या —त्रेता में वायु सता वाला और द्वापर तथा कलियुग में मध्य कूप में रुद्र ह्रद कहा गया है ॥२९॥ चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में श्रेष्ठ मनुष्य रुद्र कर तीर्थ में स्नान करके परम पद की प्राप्ति करता है ॥३०॥ जो पुरुष वट में स्थित होकर रात्रि में परमेश्वर का ध्यान किया करता है वह स्थाणु के वर प्रसाद से मन के द्वारा चिन्तित किया हुआ फल प्राप्त कर लेता है ॥३१॥

४६—नानाविध शिवलिङ्गस्थान माहात्म्य

स्थाणोर्वटस्योत्तरतः शुक्ल तीर्थ प्रकीर्त्तितम् ।
स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण व्योमतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥१

स्थाणोर्वट दक्षिणतो दक्षतीर्थमुदाहृतम् ।
स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे नकुलस्य गणः स्मृत. ॥२

एतानि पुण्यतीर्थानि मध्ये स्थाणुरिति स्मृत. ।
तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परम पदम् ॥३

अष्टम्या च चतुर्दश्या यस्त्वेतानि परिक्रमेत् ।
उमा च लिङ्गरूपेण हरपार्श्वं न मुञ्चति ॥४

तस्या दर्शनमात्रेण सिद्धि प्राप्नोति मानवः ।
वटस्य उत्तरे पार्श्वे तक्षकेण महात्मना ॥५

उमा सा लिङ्गरूपेण हरपार्श्वं न मुञ्चति ।
यश्च पश्यति गोकर्णं तस्य पुण्यफलं लभेत् ॥२०
कामतोऽकामतो वाऽपि यत्पापं तेन संचितम् ।
तस्माद्विमुच्यते पापात्पूजयित्वा हरं शुचिः ॥२१

सिद्धिद नाम वाले लिंग का भली भाँति यजन करके यत्न से महती श्री की प्राप्ति किया करता है क्योंकि सिद्धियों के देने वाला उसका नाम ही है। उसके पश्चिम दिग्भाग में कुम्भकर्ण ने पूजन किया था ॥१५॥ ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष में अष्टमी तिथि के दिन श्रद्धा से मनुष्य उपवास के साथ वहां जो वास करे उसका पुण्य फल सुनो ॥१६॥ उसको एक २ पद में यज्ञ का फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है। इनको मुनि, साध्य, आदित्य, वसु, मरुद, वह्नि, इनके द्वारा प्रयत्न पूर्वक से लिंग किया गया है। अन्य प्राणियों ने भी सेवन किया है कुछ लोग इस उत्तम स्थाणु तीर्थ में प्रवेश कर गये थे ॥१७-१८॥ वे सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम पद को प्रयाण कर गये थे। जिसके समीप में देवों के देव भगवान् शूली का लिंग है ॥१९॥ वह उमा लिंग रूप से हर के पार्श्व का कभी त्याग नहीं किया करती है। जो गोकर्ण प्रभु का दर्शन करता है वह उसका पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ इच्छा से या अनिच्छा से जो भी कोई पाप उसने सञ्चित किया है उस पाप से हर का पूजन करके शुद्ध हो मनुष्य विमुक्त हो जाता है ॥२१॥

कौमारे ब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः ।
तत्पुण्यं शंकरं तस्यामष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम् ॥२२
यदीच्छेत्परमं रूपं सौभाग्यं धनसंपदः ।
कुमारेश्वरमाहात्म्यात्सिद्ध्यते नात्र संशयः ॥२३
[illegible] चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पूज्यं विभीषणः ।
[illegible] कल्पयित्वा बभूव ह ॥२४
[illegible] स्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत् ।
[illegible] मृतत्वमवाप्नुयात् ॥२५

प्रतिष्ठितं महालिङ्गं गोकर्णं नाम नामतः ।
आषाढमासे या कृष्णा भविष्यति चतुर्दशी ॥१३
तत्र स्नात्वा सोपवासो मुक्तो भवति किल्बिषैः ।
तत्रैव सिद्धिदं लिङ्गं मेघनादेन स्थापितम् ॥१४

उस देवी को प्रयत्न पूर्वक प्रणाम करके मनुष्य बुद्धि और मेधा को प्राप्त करता है । वट के पार्श्व में एक लिंग स्थित है जिसकी ब्रह्माजी ने प्रतिष्ठित किया है ॥८॥ वटेश्वर देव का दर्शन करके परम पद को प्रयाण किया करता है । इसके पश्चात् स्थाणु वट का दर्शन करके तथा उसकी प्रदक्षिणा करके मनुष्य सातद्वीपों वाली वसुन्धरा की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त कर लिया करता है । स्थाणु के पश्चिम दिग्भाग में नकुलीश गण स्थित हैं उसका प्रयत्न पूर्वक पूजन करके मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त होजाता है । उसके दक्षिण दिग्भाग में रुद्राकर तीर्थ कहा गया है ॥११॥ उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सब तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त कर लेता है । उसके उत्तर भाग में महात्मा रावण के द्वारा प्रतिष्ठित महालिंग है जिसका गोकर्ण नाम है । आषाढ मास में जो कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी हो उस दिन उस में स्नान करके उपवास करे तो सब किल्विषों से मुक्त होता है । वहीं पर सिद्धिद लिंग है जो मेघनाद के द्वारा स्थापित किया गया है ॥१२-१४॥

संपूजयित्वा यत्नेन लभते महतीं श्रियम् ।
तस्य पश्चिमदिग्भागे कुम्भकर्णेन पूजितम् ॥१५
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे अष्टम्यां श्रद्धया नरः ।
सोपवासो वसेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१६
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ।
एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ॥१७
मरुद्भिर्वह्निभिश्चैव सेवितानि प्रयत्नतः ।
अन्येऽपि प्राणिनः केचित्प्रविष्टाः स्थाणुमुत्तमम् ॥१८
ते सर्वे पापनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम् ।
अस्ति यत्सन्निधौ लिङ्गं देवदेवस्य शूलिनः ॥१९

उमा सा लिङ्गरूपेण हरपार्श्वं न मुञ्चति ।
यश्च पश्यति गोकर्णं तस्य पुण्यफलं लभेत् ॥२०
कामतोऽकामतो वाऽपि यत्पाप तेन सचितम ।
तस्माद्विमुच्यते पापात्पूजयित्वा हरं शुचि. ॥२१

सिद्धिद नाम वाले लिंग का भली भाँति यजन करके यत्न से महती श्री की प्राप्ति किया करता है क्योंकि सिद्धियों के देने वाला उसका नाम ही है। उसके पश्चिम दिग्भाग में कुम्भकर्ण ने पूजन किया था ॥१५॥ ज्येष्ठ मास म शुक्ल पक्ष मे अष्टमी तिथि के दिन श्रद्धा से मनुष्य उपवास के साथ वहां जो वास करे उसका पुण्य फल सुनो ॥१६॥ उसको एक २ पद में यज्ञ का फल मिलता है—इसमें संशय नहीं है। इसकी मुनि, साध्य, आदित्य, वसु, मरुद, वह्नि, इनके द्वारा प्रयत्न पूर्वक से नित किया गया है। अन्य प्राणियों ने भी सेवन किया है कुछ लोग इस उत्तम स्थाणु तीर्थ म प्रवेश कर गये थ ॥१७-१८॥ वे सभी पापो से निर्मुक्त होकर परम पद को प्रयाण कर गये थे। जिसके समीप में देवों के देव भगवान् शूली का लिंग है ॥१९॥ वह उमा लिंग रूप से हर के पार्श्व का कभी त्याग नही किया करती है। जो गोकर्ण प्रभु का दर्शन करता है वह उसका पुण्य फल प्राप्त कर लेता है ॥२०॥ इच्छा से या अनिच्छा से जो भी कोई पाप उसने संचित किया है उस पाप से हर का पूजन करके शुद्ध हो मनुष्य विमुक्त हो जाता है ॥२१॥

कौमारे ब्रह्मचर्येण यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः ।
तत्पुण्य शकर तस्यामष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम् ॥२२
यदीच्छेत्परमं रूपं सौभाग्य धनसंपदः ।
कुमारेश्वरमाहात्म्यात्सिद्धचते नात्र संशय ॥२३
तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्ग पूज्य विभीषण ।
अजरश्चामरश्चैव कल्पयित्वा बभूव ह ॥२४
आषाढस्य तु मासस्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत् ।
तस्यां पूज्य सोपवासस्त्वामृतत्वमवाप्नुयात् ॥२५

पूर्वे पूर्णरितं लिङ्गं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ।
तं पूजयित्वा यत्नेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥२६
दूषणस्त्रिशिराश्चैव तत्र पूज्य महेश्वरम् ।
यथाऽभिलषितान्कामानापतुस्तौ मुदाऽन्वितौ ॥२७
चैत्रमासे सिते पक्षे यो नरस्तत्र पूजयेत् ।
तस्य तौ वरदौ देवौ प्रयच्छेतेऽभिवाञ्छितम् ॥२८

कौमार अवस्था मे ब्रह्मचर्य धारण करके जो पुण्य मनुष्य प्राप्त किया करते हैं वही पुण्य वह प्राप्त करता है जो उस अष्टमी मे भगवान् शंकर का अर्चन किया करता है ॥२२॥ जो भी परम सुन्दर रूप-सौभाग्य, धन सम्पत्ति आदि कोई चाहता है वह कुमारेश्वर माहात्म्य से सिद्ध हो जाती हैं—इसमे संशय नही है ॥२३॥ उसके उत्तर दिग्भाग मे विभीषण ने लिंग का पूजन किया था सो वह अजर और अमर कल्पना करके हो गया था ॥२४॥ आषाढ मास की शुक्ल पक्ष मे जो अष्टमी होवे उसमे पूजा करके उपवास करे तो अमृत्व को प्राप्त कर लेता है ॥२५॥ हे द्विजोत्तम उस स्थान मे पूर्व मे पूर्णरित नामक लिंग है । उसका यत्न पूर्वक पूजन करके मनुष्य सभी कामनाओं को पाजाया करता है ॥२६॥ दूषण और त्रिशिरा इन दोनो राक्षसो ने वहाँ महेश्वर प्रभु का पूजन किया था और अपने अभिलषित कामनाओ की उनने प्राप्ति की थी और परम प्रसन्न हुए थे ॥२७॥ चैत्रमास के शुक्ल पक्ष मे वहाँ जो मनुष्य यजन करता है उसको वे वरदान देने वाले दो देव उसका अभिवाञ्छित प्रदान किया करते हैं ॥२८॥

स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण हस्तिपादेश्वरः शिवः।
तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैरन्यजन्मनिसंभवैः ॥२९
तस्य दक्षिणतो लिङ्गं हारीतस्य ऋषेः स्थितम् ।
यत्प्रणम्य प्रयत्नेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ॥३०
तस्य दक्षिणपार्श्वे तु वापी तस्य महात्मनः ।
लिङ्गं त्रैलोक्यविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् ॥३१

कङ्कालरूपिणा चापि रुद्रेण सुमहात्मना ।
प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३२
भुक्तिद मुक्तिद प्रोक्तं सर्वकिल्विपनाशनम् ।
लिङ्गस्य दर्शनादेव ह्यग्निष्टोमफलं लभेत् ॥३३
तस्य पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं सिद्धं प्रतिष्ठितम् ।
सिद्धेश्वरतु विख्यात सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३४
तस्य दक्षिणदिग्भागे मृकण्डेन महात्मना ।
तत्र प्रतिष्ठित लिङ्गं दर्शनात्सिद्धिदायकम् ॥३५

स्थाणुवट के पूर्व भाग मे हस्ति पादेश्वर शिव विराजमान हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य अन्य पूर्व जन्मो में होने वाले पापो से मुक्त हो जाता है ॥२६॥ उसके दक्षिण में हारीत ऋषि के लिङ्ग स्थित हैं जिनको प्रयत्न पूर्वक प्रणाम करके मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है ॥३०॥ उसके दक्षिण पार्श्व मे उसी महात्मा की वापी है और लिंग त्रिलोकी मे विख्यात सब पापों का हरण करने वाले शिव हैं ॥३१॥ सुन्दर महान् आत्मा वाले कङ्काल रूपी रुद्र के द्वारा सब पापों के नाश करने वाले महालिंग की प्रतिष्ठा यहाँ पर की गई है ॥३२॥ वह महा-लिंग भोगों को तथा मोक्ष को देने वाला और समस्त पापों का क्षय कर देने वाला बताया गया है। लिंग के दर्शन मात्र से ही मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है ॥३३॥ उसके पश्चिम दिग्भाग मे सिद्ध लिंग प्रतिष्ठित हैं और वह सिद्धेश्वर—इस नाम से विख्यात हैं जो समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ॥३४॥ उसके दक्षिण मे महात्मामृकण्ड के द्वारा लिंग प्रतिष्ठापित किये गये हैं जो केवल दर्शन से ही सिद्धियों के देने वाले हैं ॥३५॥

तस्य पूर्वे च दिग्भागे आदित्येन महात्मना ।
प्रतिष्ठित लिङ्गवर सर्वकिल्विपनाशनम् ॥३६
चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो रम्भा चाप्सरसा वरा ।
परस्पर सानुरागौ स्थाणुदर्शनकाङ्क्षिणौ ॥३७

दृष्ट्वा स्थाणुं पूजयित्वा सानुरागौ परस्परम् ।
आगम्य वरदं देवं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम् ॥३८
चित्राङ्गदेश्वरं दृष्ट्वा तथा रम्भेश्वरं द्विज ।
सुभगो दर्शनीयश्च कुले जन्म समाप्नुयात् ॥३९
तस्य दक्षिणतो लिङ्गं वज्रिणा स्थापितंपुरा ।
तस्य प्रसादात्सम्प्राप्तं मनसा चिन्तितं फलम् ॥४०
पराशरेण मुनिना तथैवाराध्य शङ्करम् ।
प्राप्तं कवित्वं परमं दर्शनाच्छङ्करस्य च ॥४१
वेदव्यासेन मुनिना आराध्य परमेश्वरम् ।
सर्वज्ञत्वं ब्रह्मज्ञानं प्राप्तं देवप्रसादतः ॥४२

उसके पूर्व दिग्भाग में महात्मा आदित्य के द्वारा प्रतिष्ठापित श्रेष्ठ लिंग सब किल्बिषों के नाश करने वाले हैं ॥३६॥ चित्राङ्गद नाम वाला गन्धर्व और अप्सराओं में परम श्रेष्ठ रम्भा दोनों परस्पर में अनुराग से युक्त थे और स्थाणु के दर्शन करने की आकांक्षा वाले भी थे ॥३७॥ इन्होंने दर्शन करके और पूजन करके परस्पर में अनुराग से युक्त होकर वे वहाँ आये और वरद देव महेश्वर की प्रतिष्ठा की थी ॥३८॥ चित्रांगदेश्वर का तथा रम्भेश्वर का दर्शन करके हे द्विज गण ! मनुष्य सुभग-दर्शनीय और श्रेष्ठकुल में जन्म प्राप्त किया करता है ॥३९॥ उसके दक्षिण में वज्री (इन्द्र) के द्वारा स्थापित एक लिंग है जो पहिले किया गया था । उसके प्रसाद से मन से जो भी चिन्तन किया जाता है वही फल प्राप्त हो गया था ॥४०॥ पराशर मुनि ने उसी भाँति से भगवान् शङ्कर की समाराधना की थी और परम श्रेष्ठ कवित्व प्राप्त किया था जो कि शङ्कर के केवल दर्शन से ही हो गया था ॥४१॥ वेद व्यास मुनि ने परमेश्वर की आराधना करके देव के प्रसाद से सर्वज्ञत्व-ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया था ॥४२॥

स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं हिमवतेश्वरम् ।
प्रतिष्ठितं पुण्यकृतां दर्शनात्सिद्धिदायकम् ॥४३

तस्यापि पश्चिमे भागे कार्तवीर्येण स्थापितम् ।
लिङ्ग पापहरं सद्यो दर्शनात्पुण्यमाप्नुयात् ॥४४
तस्याप्युत्तरतो भागे सुपार्श्वस्थापितं पुनः ।
अराध्य हनुमांश्चाप सिद्धि देव प्रसादतः ॥४५
तस्यैव पूर्वदिग्भागे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
आराध्य वरदं देवं चक्रमद्ये सुदर्शनम् ॥४६
तस्यापि पूर्वदिग्भागे इन्द्रेण वरुणेन च ।
प्रतिष्ठिते लिङ्गवरे सर्वकामप्रदायके ॥४७
एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ।
सेवितानि प्रयत्नेन सर्वपापहराणि वै ॥४८
स्वयंभुवं तथा स्थाणुमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां सख्या न विद्यते ॥४९

स्थाणु के पश्चिम में हिमवनेश्वर लिंग है जो पुण्यकारी लोगों ने प्रतिष्ठापित किये हैं और दर्शन मात्र से ही सिद्धियों के कर देने वाले हैं ॥४३॥ उसके भी पश्चिम भाग मे कार्तवीर्य्य के द्वारा प्रतिष्ठापित लिंग हैं जो सब पापों के हरण करने वाले है और तुरन्त ही दर्शन से पुण्य प्राप्त कराने वाले हैं ॥४४॥ उसके भी उत्तर भाग मे सुपार्श्व के द्वारा स्थापित लिंग हैं जिसकी अराधना करके देव प्रसाद से हनुमान् ने सिद्धि प्राप्त की थी ॥४५॥ उसके भी पूर्व दिग्भाग में प्रभविष्णु विष्णु के द्वारा स्थापित लिंग है जिन्होंने वरद देव की आराधना करके चक्र के मध्य मे सुदर्शन प्राप्त किया था ॥४६॥ उसके भी पूर्व दिग्भाग में इन्द्र और वरुण के द्वारा दो श्रेष्ठ लिंग प्रतिष्ठापित किये गये थे और जो समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले थे ॥४७॥ ये सब लिंग मुनि-साध्य, आदित्य और वसुगण के द्वारा प्रयत्न से सेवित हैं तथा सभी पापों के हरण करने वाले हैं ॥४८॥ स्वयम्भू तथा स्थाणु का तत्वदर्शी ऋषियों के द्वारा लिंगों की प्रतिष्ठा की गई है जो इतने हैं कि कोई भी उनकी संख्या नहीं हो सकती है ॥४९॥

तस्यामुत्तरतश्चैव यावदोघवती नदी ।
सहस्रमेकं लिङ्गानां देवपश्चिमतः स्थितम् ॥५०
तस्यापि पूर्वदिग्भागे वालखिल्यैर्महात्मभिः ।
प्रतिष्ठिता रुद्रकोटिर्यावत्सन्निहितं सरः ॥५१
दक्षिणेन तु देवस्य गन्धर्वैर्यक्षकिन्नरैः ।
प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां सख्या न विद्यते ॥५२
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च लिङ्गानां वायुरब्रवीत् ।
असख्याताः सहस्राणि यद्रुद्रस्थानमाश्रिता ॥५३
एतज्ज्ञात्वा श्रद्धानः स्थाणुलिङ्गं समाश्रयत् ।
यस्य प्रसादात्प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम् ॥५४
अकामो वा सकामो वा प्रविश्य स्थाणुमन्दिरम् ।
विमुक्तः पातकैर्घोरैः प्राप्नोति परमं पदम् ॥५५

उसके उत्तर में जहा तक ओघवती नदी है देव के पश्चिम में स्थित एक सहस्र लिंग स्थित हैं ॥५०॥ उस के भी पूर्व मे वालखिल्य महात्माओं के द्वारा प्रतिष्ठापित रुद्र कोटि है जहाँ तक सर सन्निहित है ॥५१॥ देव के दक्षिण में गन्धर्व और किन्नरों के द्वारा प्रतिष्ठित इतने अधिक लिंग हैं जिनकी कोई सख्या ही नहीं हैं ॥५२॥ वायुदेव ने यह कहा था कि साढ़े तीन करोड लिंग हैं। जो रुद्र के स्थान में समाश्रित हैं वे सहस्रों हैं और असख्यात हैं ॥५३॥ यह जानकर श्रद्धा करते हुए स्थाणु लिंग का समाश्रय करना चाहिए जिसके प्रसाद से मन के द्वारा चिन्तित कामना को मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥५४॥ कामना से युक्त हो या निष्काम भाव वाला हो भगवान् स्थाणु के मन्दिर में प्रवेश करके परम घोर पातकों से विमुक्त हो जाता है और अन्त समय में परम पद की प्राप्ति कर लेता है ॥५५॥

चैत्रे मासे त्रयोदश्यां दिव्यनक्षत्रयोगतः ।
शुक्रार्कचन्द्रसयोगे दिने पुण्यतमे शुभे ॥५६
प्रतिष्ठितं स्थाणुलिङ्गं ब्रह्मणा लोकधारिणा ।
ऋषिभिर्देवसंघैश्च पूजितं शाश्वतीः समाः ॥५७

तस्मिन्काले निराहारा मानवाः श्रद्धयाऽन्विताः ।
पूजयन्ति शिवं ये वै ते यान्ति परमं पदम् ॥५८
तत्रारूढमिदं ज्ञात्वा कुर्वन्ति च प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥५९

चैत्रमास में त्रयोदशी तिथि के दिन किसी दिव्य नक्षत्र के योग से शुक्र-रवि अथवा चन्द्रवार के संयोग होने पर प्रति पुण्यतम शुभ दिन में लोकों के धारण करने वाले ब्रह्माजी ने इस स्थाणु लिंग की प्रतिष्ठा की थी और सहस्रों वर्षों से इस लिंग को ऋषिगण तथा देव संघों के द्वारा अर्चना की गई है ॥५६-५७॥ उस समय में आहार का त्याग करके श्रद्धा भाव पूर्णतया समन्वित होते हुए जो मनुष्य भगवान् शिव का यजन करते हैं वे परम पद को निश्चय ही प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ५८ ॥ यह वहा पर आरूढ है—यह समझ कर जो इन की प्रदक्षिणा करते हैं उन्होंने मानो सातों द्वीपों वाली पूर्ण पृथ्वी की ही परिक्रमा करली है अर्थात् सम्पूर्ण सुधरा की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त हो जाता है ॥५९॥

४७—वेन चरित्र तथा शिव-स्तुति

स्थाणुतीर्थप्रभावं तु श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ।
केन सिद्धिरिह प्राप्ता सर्वपापभयापहा ॥१
शृणु सर्वमशेषेण स्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥२
एकार्णवेजगत्यस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
विष्णोर्नाभिसमुद्भूतः सर्वलोकपितामहः ॥३
तस्मान्मरीचिरभवन्मरीचेः कश्यपः सुतः ।
कश्यपादभवद्भास्वांस्तस्मान्मनुरजायत ॥४
मनोस्तु क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो मुखसम्भवः ।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया राजा धर्मस्य रक्षिता ॥५

तस्य पत्नी बभूवाथ भया नाम भयावहा ।
मृत्योः सकाशादुत्पन्ना कालस्य दुहिता तदा ॥६
तस्यां समभवद्वेनो दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
स दृष्ट्वा पुत्रवदनं क्षुतो राजा वनं ययौ ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे मुनि ! मैं स्थाणु तीर्थ के प्रभाव का श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूँ । यहाँ पर किसने सिद्धि की प्राप्ति की थी जो समस्त पापो के भयो का अपहरण करने वाली है ? ॥१॥ महामुनीन्द्र सनत्कुमार जी ने कहा—अत्युत्तम स्थाणु तीर्थ का जो माहात्म्य है उस का पूर्ण रूप से ही अब आप मुझसे श्रवण करलो जिसको सुनकर मानव सभी पापो से छुटकारा पाजाया करता है ॥२॥ इस सम्पूर्ण स्थावर और जगम चराचर जगत् के विनष्ट हो जाने पर जब एक मात्र समुन्द्र ही यहाँ पर था । उस मे भगवान् क्षीर शायी विष्णु की नाभि से समुत्पन्न यह सब लोको के पितामह हुए थे ॥३॥ उन ब्रह्मा से मरीचि हुए, मरीचि से कश्यप और कश्यप से भास्वान् हुए थे और उनसे मनु ने अपना जन्म ग्रहण किया था ॥४॥ मनु से मुख से सम्भव वाला क्षुवत पुत्र समुत्पन्न हुआ था जो इस चतुरन्ता पृथिवी का धर्म की रक्षा करने वाला राजा था ॥५॥ उसकी पत्नी भया नाम वाली अति भयावहा हुई थी । वह मृत्यु के सकाश से समुत्पन्न हुई थी और उस समय मे काल की पुत्री थी ॥६॥ उसमे राजा वेन उत्पन्न हुआ था जो अत्यन्त दुष्ट प्रकृति वाला और वेदो की निन्दा करने वाला था वह राजा क्षुत उस पुत्र के मुख को ही देखकर वन मे चला गया था ॥७॥

तत्र कृत्वा तपो घोरं धर्मणावृत्य रोदसी ।
प्राप्तवां स्तत्परं धाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥८
वेनो राजा समभवत्समस्ते क्षितिमण्डले ।
स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजात्मजः ॥६
घोषयामास नगरे दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं कदाचन ॥१०

अहमेवोऽत्र वैवन्द्यः पूज्योऽहं भवता सदा ।
मया हि पालिता यूयं निवसध्वं यथासुखम् ॥११
तन्मत्तोऽन्यो न देवोऽस्ति युष्माकं यत्परायणम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषयः सर्वं एव ते ।।१२
परस्परं समागम्य राजानं वाक्यमब्रुवन् ।
श्रुतिः प्रमाणं धर्मस्य ततो यज्ञः प्रतिष्ठितः ।।१३
यज्ञैर्विना नो प्रीयन्ते देवाः स्वर्गनिवासिनः ।
अप्रीता न प्रयच्छन्ति सस्यस्य च विवृद्धये ।।१४

वहाँ पर उसने अत्यन्त घोर तपश्चर्या की थी और धर्म से द्यावा पृथ्वी को आवृत कर दिया था। उसने पुन आवृत्ति से दुर्लभ जो परम धाम था उसकी प्राप्ति करली थी अर्थात् ऐसा धाम पा गया या जहाँ से पुनः जन्म ही नही होता है ।।८।। फिर इस समस्त क्षिति मण्डल मे वेन राजा हुआ था। वह अपने मातामह के दोष से कालात्मजा का पुत्र वेन था ।।९।। उस दुरात्मा वेद निन्दक ने नगर मे घोषणा करादी थी कि कोई भी दान करे—यजन न करे और किसी को भी कभी हवन भी नही करना चाहिए ।।१०।। उसने घोषणा मे सबसे यही कहा था कि केवल मे ही एक मात्र वन्दना करने के योग्य हूँ और आप सबका सदा मैं ही एकमात्र पूज्य हूँ। मेरे द्वारा ही पालित हुए आप सब सुख पूर्वक निवास किया करते हैं ।।११।। इसलिये मुझको छोड़कर अन्य कोई भी देव आपका नही है जिससे आप परायण हो। उसके इस वचन को सुन कर सब ऋषिगण परस्पर मे मिलकर उसके पास गये और राजा से यह वचन बोले। धर्म का प्रमाण श्रुति है फिर इसके लिये यज्ञों की प्रतिष्ठा हुई है ।।१२-१३।। यज्ञों के बिना स्वर्ग के निवासी देवगण कभी प्रसन्न नही होते हैं। जब वे प्रसन्न नहीं है। जब वे प्रसन्न नही हैं तो सस्य की वृद्धि नही किया करते हैं ।।१४।।

तस्माद्यज्ञैश्च देवैश्च धार्यते सचराचरम् ।
एतच्छ्रुत्वा क्रोधदृष्टिर्वेनः प्राह पुनः पुनः ॥१५

न यष्टव्यं न दातव्यमित्याह क्रोध मूर्च्छितः ।
ततः क्रोधसमाविष्टा ऋषयः सर्वं एव ते ॥१६
निर्जघ्नुर्मन्त्रपूतैस्ते कुशैर्वज्रसमन्वितैः ।
ततस्त्वराजके लोके तमसा सवृते तदा ॥१७
दस्युभिः पीड्यमानास्तानृषींस्ते शरणं ययुः ।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुस्तस्य वै करम् ॥१८
सव्यं तस्मात्समुत्तस्थौ पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।
तमूचुर्ऋ षयः सर्वे निषीदतु भवानिति ॥१९
तस्मान्निषादा उत्पन्ना वेनकल्मषसंभवाः ।
ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्थुर्दक्षिण करम् ॥२०

इसलिये यज्ञो के द्वारा और देवगण के द्वारा ही यह चराचर जगत् धारण किया जाता है । यह सुनते ही क्रोध की दृष्टि वाला बारम्बार यही बोला—यजन नहीं करना चाहिए-दान नहीं देना चाहिए-इतना इतना कहकर वह क्रोध क्रोध से मूछित हो गया था । इसके अनन्तर सब ऋषियो को भी क्रोधावेश होगया था ॥१५-१६॥ उन्होंने मन्त्रों से अभिमन्त्रित वज्र के समान कुशाओं से उसका हनन कर दिया था । इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोक राजा से रहित होगया था और उस समय मे तम से समावृत होगया था ॥१७॥ दस्युओं के द्वारा उत्पीड़ित लोग उन्हीं ऋषियो की शरण मे समागत हुए थे । तब उन समस्त ऋषियों ने उसके हाथ का मन्थन किया था ॥ १८ ॥ वाम करके मन्थन करने पर उससे एक छोटे आकार वाला पुरुष उठकर खड़ा हो गया था । उससे समस्त ऋषियो ने कहा—आप बैठ जाइये ॥१९॥ उससे वेन के कल्मषों से समुत्पन्न निषाद उत्पन्न हुए थे । इसके अनन्तर उन ऋषियों ने उसके दक्षिण करका मन्थन किया था ॥२०॥

मथ्यमाने करे तस्मिन्नुत्पन्नः पुरुषोऽपरः ।
बृहच्छैलप्रतीकाशो दिव्यलक्षणलक्षितः ॥२१
धनुर्बाणाङ्कितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः ।
तमुत्पन्नं तदा दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ॥२२

अभ्यषिञ्चन्पृथिव्या त राजानं भूमिपालकम् ।
ततः स रञ्जयामास धर्मेण पृथिवीं तदा ॥२३
पित्रा विरञ्जिता तस्य तेन सा परिपालिता ।
ततो राजेति शब्दोऽस्य पृथिव्या रञ्जनादभूत् ॥२४
स राज्यं प्राप्य वैन्यस्तु चिन्तयामास पार्थिव ।
पिता मम अधर्मिष्ठो यज्ञविच्छित्तिकारक ॥२५
कथं तस्य क्रिया कार्या परलोकसुखावहा ।
इत्येवं चिन्तयानस्य नारदोऽभ्याजगाम ह ॥२६
तस्मै स चासनं दत्त्वा प्रणिपत्य च पृष्टवान् ।
भगवन्सर्वलोकस्य जानासि त्वं शुभाशुभम् ॥२७
पिता मम दुराचारो देवब्राह्मणनिन्दक. ।
स्वधर्मरहितो विप्र परलोकमवाप्तवान् ॥२८

उस करके मध्यमान होने पर उसमें एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ था जो एक विशाल शैल के समान था और दिव्य लक्षणों से समन्वित दिखलाई देता था ॥२१॥ उसका कर धनुष और बाण से अंकित था तथा चक्र एवं ध्वज सेभी समन्वित था । उसको समुत्पन्न देखकर इन्द्र के सहित सब देवताओं ने पृथिवी में भूमि का पालक राजा बनाकर उसका अभिषेक किया था । इसके अनन्तर उसने उस समय भी धर्मनीति से पृथिवी को सुप्रसन्न कर दिया था ॥२२-२३॥ उसके पिता ने जिस पृथिवी को अनीति से विरञ्चित कर दिया था उसका उसने भलीभाँति परिपालन किया था । तभी से पृथिवी के रञ्जन करने से "राजा"— इस शब्द की समुत्पत्ति हुई थी ॥२४॥ उस राजा ने वेन के राज्य की प्राप्ति करके विचार किया था कि मेरा पिता तो अधर्मिष्ठ था जिसने यज्ञों की भी विछित्ति कर दी थी ॥२५॥ अब उसको परलोक में सुख देने वाली क्रिया किस प्रकार से करनी चाहिए । इस प्रकार से वह जब चिन्तन कर रहा था उसी समय में नारद वहाँ पर आगये थे ॥२६॥ उस राजा ने उन देवर्षि को आसन समर्पित करके प्रणाम किया था और उनसे पूछा था । हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण लोक के शुभ-अशुभ

को भली भाँति जानते हैं ॥२७॥ मेरा पिता महान् दुष्ट आचार वाला था और देवों तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला था। ऐसे ही अपने धर्म से रहित होकर हे विप्र ! अब वह परलोक में चला गया है ॥२८॥

ततोऽब्रवीन्नारदस्त ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुषा ।
म्लेच्छमध्ये समुत्पन्नः क्षयकुष्ठसमन्वितः ॥२९

तच्छ्रुत्वा वचन तस्य नारदस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास दुःखार्त्तः कथ कार्यं मया भवेत् ॥३०
इत्येव चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
पुत्रः स कथ्यते लोके यः पितृ त्रायते भयात् ।
एव सचिन्त्य स तदा नारद पृष्टवान्मुनिम् ॥३१
गच्छ त्व तस्य त देह तीर्थेषु कुरु निर्मलम् ।
यत्र स्नातो महत्तीर्थे सरः सनिहित प्रति ॥३२
एतच्छ्रुत्वा तु वचन नारदस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास त देश राजा स च जगाम ह ॥३३
स गत्वा उत्तर देश म्लेच्छमध्ये ददर्श ह ।
कुष्ठरोगेण त वीक्ष्य क्षयेण च समन्वितम् ॥३४
ततः शोकेन महता सतप्तो वाक्यमब्रवीत् ।
हा म्लेच्छा नौमि पुरुष स्वगृह च नयाम्यहम् ॥३५

इसके पश्चात् देवर्षि नारद जी ने अपनी दिव्य चक्षु के द्वारा उसे देखकर यह उस राजा से कहा था—वह म्लेच्छों के मध्य मे उत्पन्न हुआ है और क्षय तथा कुष्ट रोग से पीडित है ॥२९॥ महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर वह अत्यन्त दुःख से पीडित होकर सोचने लगा कि मुझे कैसे क्या करना चाहिए ॥३०॥ इस प्रकार से चिन्तन करते हुए ही उनकी ऐसी बुद्धि समुत्पन्न हुई थी कि लोक मे पुत्र तो वही कहा जाता है जो अपने पितागण को भय से त्राण करता है (पुनाम वाले नरक से जो त्राण करता है वही पुत्र है) इस प्रकार से भली भाँति चिन्तन करके उसने उसी समय मे न [illegible] से पूछा था ॥३१

षी ने कहा—आप यदि अपने पिता का उद्धार चाहते हैं तो आप तीर्थों में चले जाइये और उनके देह को तीर्थों में निर्मल करिये। सन्निहित सर महान् तीर्थ है उसमे स्नान करिये ॥३२॥ महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर राजा ने उसी देश का विचार किया और वह वहाँ पर चला गया था ॥३३॥ उसने उत्तर देश मे जाकर म्लेच्छों के मध्य मे देखा था। उसने उसको कुष्ठ रोग से पीड़ित तथा क्षय रोग से युक्त देखा ॥३४॥ इसके पश्चात् वह महान् शोक से संतप्त होकर यह वाक्य बोला—हा ! म्लेच्छो ! मैं इस पुरुष को नमस्कार करता हूँ और उसे अपने घर ले जाता हूँ ॥३५॥

तत्राहमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथ ।
तथेति सर्वतो म्लेच्छाः पुरुषं त दयापरम् ॥३६
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा यथा जानासि तत्कुरु ।
तत आनीय पुरुषाञ्छिबिकावाहनोचितान् ॥३७
दत्वा मुल्कं च द्विगुण सुखेनानीय तान्द्विज ।
ततः श्रुत्वा तु वचन तस्य राज्ञो यथावतः ॥३८
गृहीत्वा शिबिकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते ।
तत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थमवतीर्य ततो गताः ॥३९
ततः स राजा मध्याह्ने तं स्नापयितुमुद्यतः ।
ततो वायुरन्तरिक्षे इद वचनमब्रवीत् ॥४०
मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थं रक्ष प्रयत्नतः ।
अयं पापेन घोरेण अतीव परिवेष्टितः ॥४१
वेदनिन्दा महत्पाप तस्यान्तो नैव सम्मते ।
सोऽयं स्नातो महत्तीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणात् ॥४२

यदि आप लोग मुझे अनुमति दें तो मैं इसे ले जाकर वहाँ इसे नीरोग करूँगा। तब 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही आप करें, ऐसा सभी ओर से म्लेच्छों ने उस दया परायण पुरुष से कहा था। सबने उसे प्रणिपात किया था और कहा था कि जो भी कुछ आप जानते हैं वही

को भली भांति जानते हैं ॥२७॥ मेरा पिता महान् दुष्ट आचार वाला था और देवों तथा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला था। ऐसे ही अपने धर्म से रहित होकर हे विप्र ! अब वह परलोक मे चला गया है ॥२८॥

ततोऽब्रवीन्नारदस्त ज्ञात्वा दिव्येन चक्षुपा ।
म्लेच्छमध्ये समुत्पन्नः क्षयकुष्ठसमन्वितः ॥२९

तच्छ्रुत्वा वचन तस्य नारदस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास दुःखार्त्त कथ कार्यं मया भवेत् ॥३०
इत्येव चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः ।
पुत्र. स कथ्यते लोके यः पितृ त्रायते भयात् ।
एव सचिन्त्य स तदा नारद पृष्टवान्मुनिम् ॥३१
गच्छ त्व तस्य त देह तीर्थेषु कुरु निर्मलम् ।
यत्र स्नातो महत्तीर्थ सर. सनिहित प्रति ॥३२
एतच्छ्रुत्वा तु वचन नारदस्य महात्मनः ।
चिन्तयामास त देश राजा स च जगाम ह ॥३३
स गत्वा उत्तर देश म्लेच्छमध्ये ददर्श ह ।
कुष्ठरोगेण त वीक्ष्य क्षयेण च समन्वितम् ॥३४
तत. शोकेन महता सतप्तो वाक्यमब्रवीत् ।
हा म्लेच्छा नौमि पुरुष स्वगृह च नयाम्यहम् ॥३५

इसके पश्चात् देवर्षि नारद जी ने अपनी दिव्य चक्षु के द्वारा उसे देखकर यह उस राजा से कहा था—वह म्लेच्छों के मध्य मे उत्पन्न हुआ है और क्षय तथा कुष्ठ रोग से पीडित है ॥२९॥ महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर वह अत्यन्त दुःख से पीडित होकर सोचने लगा कि मुझे कैसे क्या करना चाहिए ॥३०॥ इस प्रकार से चिन्तन करते हुए ही उसकी ऐसी बुद्धि समुत्पन्न हुई थी कि लोक मे पुत्र तो वही कहा जाता है जो अपने पितागण को भय से त्राण करता है (पुनाम वाले नरक से जो त्राण करता है वही पुत्र है) इस प्रकार से भली भांति चिन्तन करके उसने उसी समय मे नारद जी से पूछा था ॥३१॥ नारद

जी ने कहा—आप यदि अपने पिता का उद्धार चाहते हैं तो आप तीर्थों में चले जाइये और उसके देह को तीर्थों में निर्मल करिये । सन्निहित सर महान् तीर्थ है उसमें स्नान करिये ॥३२॥ महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर राजा ने उसी देश का विचार किया और वह वहाँ पर चला गया था ॥३३॥ उसने उत्तर देश में जाकर म्लेच्छों के मध्य में देखा था । उसने उसको कुष्ठ रोग से पीड़ित तथा क्षय रोग से युक्त देखा ॥३४॥ इसके पश्चात् वह महान् शोक से सन्तप्त होकर यह वाक्य बोला—हा ! म्लेच्छो ! मैं इस पुरुष को नमस्कार करता हूं और उसे अपने घर ले जाता हूँ ॥३५॥

तत्राहमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथ ।
तथेति सर्वतो म्लेच्छाः पुरुषं त दयापरम् ॥३६
ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा यथा जानासि तत्कुरु ।
तत आनीय पुरुषाञ्छिबिकावाहनोचितान् ॥३७
दत्त्वा शुल्कं च द्विगुण सुखेनानीय तान्द्विज ।
ततः श्रुत्वा तु वचन तस्य राज्ञो दयावनः ॥३८
गृहीत्वा शिबिकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते ।
तत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थमवतीर्य ततो गताः ॥३९
ततः स राजा मध्याह्ने तं स्नापयितुमुद्यतः ।
ततो वायुरन्तरिक्षे इव वचनमब्रवीत् ॥४०
मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थं रक्ष प्रयत्नतः ।
अयं पापेन घोरेण अतीव परिवेष्टितः ॥४१
वेदनिन्दा महत्पापं तस्यान्तो नैव लभ्यते ।
सोऽयं स्नातो महत्तीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणात् ॥४२

यदि आप लोग मुझे अनुमति दें तो मैं इसे ले जाकर वहाँ इसे नीरोग करूँगा । तब 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही आप करें, ऐसा सभी ओर से म्लेच्छों ने उस दया परायण पुरुष से कहा था । सबने उसे प्रणिपात किया था और कहा था कि जो भी कुछ आप जानते हैं वही

कहिये । इसके पश्चात् शिविका (पालकी) के वाहन करने मे समर्थ पुरुषों को वहा लाकर उन्हे दुगुना पारिश्रमिक देकर हे द्विज ! सुख पूर्वक उनको लाकर उपस्थित किया था । इसके अनन्तर उस दयालु राजा के वचन सुनकर उन्होने शिविका उठा ली और शीघ्र ही वे कुरुक्षेत्र की ओर गमन करने लगे थे । वहाँ स्थाणु तीर्थ मे ले जाकर उतर कर फिर वे चले गये थे ।।३६-३६।। इसके अनन्तर वह राजा मध्यान्ह समय मे इसको स्नान कराने के लिये उद्यत हुआ था । इसके पश्चात् वायुदेव आकाश मे यह वचन बोले ।।४०।। हे तात ! ऐसा साहस मत करो । प्रयत्न पूर्वक इस तीर्थ की रक्षा करो । यह महान् घोर पाप से अत्यन्त परिवेष्टित हो रहा है ।।४१।। वेदो की निन्दा करना सबसे बड़ा पाप है उस पाप का कभी भी अन्त नहीं दिखलाई देता है । वह यह यदि इस तीर्थ मे स्नान करेगा तो इस अति महान् तीर्थ का उसी समय मे नाश कर देगा ।।४२।।

एतद्वायोर्वचः श्रुत्वा दुःखेन महताऽन्वितः ।
उवाच शोकसंतप्तस्तस्य दुःखेन दुःखितः ।
एष घोरेण पापेन ह्यतीव परिवेष्टितः ।।४३
प्रायश्चित्त करिष्येऽहं यद्वदिष्यन्ति देवताः ।
ततस्ता देवताः सर्वा इद वचनमब्रुवन् ।।४४
स्नात्वा स्नात्वा च तीर्थे त्वमभिषिञ्चस्व वारिणा ।
आगसो लुम्पन यावत्प्रतिकूला सरस्वतीम् ।।४५
स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति पुरुषः श्रद्धयाऽन्वितः ।
एष स्वपोषणपरो देवदूषणतत्परः ।।४६
ब्राह्मणैश्च परित्यक्तो नैव शुद्धयति कर्हिचित् ।
तस्मादेन समुद्दिश्य स्नात्वा तीर्थेषु भक्तितः ।।४७
अभिषिञ्चस्व तोयेन ततः पूतो भविष्यति ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा कृत्वा तस्याश्रम ततः ।।४८
तीर्थयात्रां ययौ राजा उद्दिश्य जनकं स्वकम् ।
स तेष्वाप्लवन कुर्वंस्तीर्थेषु च दिनेदिने ।।४९

वायुदेव के इस वचन का श्रवण करके वह राजा महान् दुःख से युक्त हो गया था। उसके दुःख से अत्यन्त दुःखित होकर महान् शोक से सतप्त हो गया था उस राजा ने कहा—यह महान् घोर पापो से अत्यन्त परिवेष्टित हो रहा है ॥४३॥ मैं इसका प्रायश्चित करूँगा और जो भी देवगण बतायेंगे वही करूँगा। इसके अनन्तर सब देवताओं ने यह वचन कहा था ॥४४॥ तुम बारम्बार तीर्थ में स्नान करके इस तीर्थ के जल से अभिषिञ्चन करो। जब तक सरस्वती प्रतिकूल है बराबर अभिषिञ्चन करते रहो। इससे इसको अपराधो का लुम्पन होगा ॥४५॥ फिर श्रद्धा से अन्वित होकर यह पुरुष स्नान करके मुक्ति को प्राप्त कर लेगा। यह सदा ही अपने ही पोषण मे तत्पर रहा था और देवो को दूषण देने मे ही सर्वदा परायण बना रहा था ॥४६॥ यह ब्राह्मणो के द्वारा परित्यक्त कर दिया गया था। इसलिये य कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता है। इसी वास्ते इसका उद्देश्य लेकर तीर्थों मे भक्ति के भाव से स्नान करके इसका तीर्थों के जल से अभिषिञ्चन करो तभी यह पवित्र हो जायगा। इस वचन को सुनकर फिर उसका एक आश्रम बनाया था ॥४७-४८॥ राजा ने अपने पिता का उद्देश्य करके तीर्थ यात्रा को गमन किया था यह आधे दिन तीर्थों मे आप्लवन करता रहता था ॥४९॥

अभ्यषिञ्चत्स्वपितरं तीर्थतोयेन नित्यशः।
एतस्मिन्नेव काले तु सारमेयो जगाम ह ॥५०
स्थाणोर्मठे कौलपतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता।
परिग्रहस्य द्रव्यस्य परिपालयिता सदा ॥५१
प्रियश्च सर्वलोकेषु देवकार्यपरायणः।
तस्यैव वर्त्तमानस्य धर्ममार्गे स्थितस्य च ॥५२
कालेन चलिता बुद्धिर्देवद्रव्यस्य नाशने।
तेनाधर्मेण युक्तस्य परलोकगतस्य च ॥५३
दृष्ट्वा यमोऽब्रवीद्वाक्यं श्वयोनिं व्रज माचिरम्।
तद्वाक्यानन्तरं जातः श्वा वै सौगन्धिके वने ॥५४

ततः कालेन महता श्वयूथपरिवारितः ।
परिभूतः सारमेयो दु.खेन महता वृतः ॥५५
त्यक्त्वा द्वैतवनं पुण्यं सानिहृत्य ययौ सरः ।
तस्मिन्प्रविष्टमात्रस्तु स्थाणोरेव प्रसादतः ॥५६
अतीव तृषया युक्त सरस्वत्या ममज्ज ह ।
तत्र सप्लुतदेहस्तु विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥५७

राजा नित्य प्रति तीर्थों के जल से अपने पिता का अभिषिञ्चन किया करता था । इसी समय मे एक सारमेय चला गया था ॥५०॥ स्थाणु के मठ मे देव-द्रव्यो की रक्षा करने वाला कोतपति था जो परिपालन करने वाला था ॥५१॥ वह समस्त लोको मे प्रिय और देवो के कार्य मे परायण रहता था । इस प्रकार से वर्तमान रहने वाले तथा धर्म कार्यों मे स्थित उसकी बुद्धि चलित हो गई थी और देव-द्रव्य के नाश करने मे सलग्न हो गई थी । उस अधर्म से युक्त वह जब परलोक गामी हुआ तो यमराज ने उसको देखकर यह वचन कहा तू कुत्ते की योनि मे जाओ किन्तु अधिक समय तक नहीं । इस वाक्य के अनन्तर वह कुत्ता सौगन्धिक वन मे समुत्पन्न हुआ था ॥५२-५४॥ इसके अनन्तर बहुत समय के बाद एक बार वह कुत्तो के यूथ से घिरा हुआ परिभूत हो गया था और महान् दु ख से युक्त हो गया ॥५५॥ उस द्वैतवन का त्याग कर वह सनिहृत्य सर पर चला गया था । उस सर मे जैसे ही उसने प्रवेश किया था भगवान् स्थाणु देव के प्रसाद से अत्यन्त तृषा से युक्त होकर उसने सरस्वती मे मज्जन किया था । वहा पर देह को सप्लुत करके ही वह समस्त किल्बिषों से मुक्त हो गया था ॥५७॥

आहारलोभेन तदा प्रविवेश कुलमठम् ।
प्रविशन्तं तदा दृष्ट्वा श्वानं भयसमन्वितम् ॥५८
स तं पस्पर्श शनकैः स्थाणुतीर्थं ममज्ज ह ।
पतितः पूर्वतीर्थेषु विप्रुषैः परिषेचितः ॥५९
शुनोऽस्य गात्रसंभूतैर्जलबिन्दुभिः स सिञ्चितः ।
विरक्तदृष्टिः स मुनः क्षणेन च ततः परम् ॥६०

स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यात्स पुत्रेण च तारितः ।
नियतस्तत्क्षणाज्जातो दिव्यदेहसमन्वितः ।
प्रणिपत्य तदा स्थाणुं स्तुतिं कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥६१
प्रपद्ये देवमीशानं त्वामजं चन्द्रभूषणम् ।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥६२
नमस्ते देवदेवेश सर्वशत्रुनिषूदन ।
देवेश बलिविष्टम्भिन्देवैर्दैत्यैश्च पूजित ॥६३
विरूपाक्ष सहस्राक्ष त्र्यक्ष यक्षेश्वरप्रिय ।
सर्वतः पाणिपाद त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुख ॥६४

उस समय में आहार के लोभ से कुत्ते मठ में प्रवेश किया था । तब भय से युक्त प्रवेश करते हुए श्वान को देखकर उसने घोर से उसका स्पर्श किया था और स्थाणु तीर्थ में मज्जन किया था । पवित्र पूत तीर्थों मे बिन्दुओं से परिप्रोक्षित हुआ ॥५८ ५६॥ इस कुत्ते के शरीर में समुत्पन्न जल की बिन्दुओं से वह सिञ्चित होगया । क्षण भर के लिये कुत्ते से विरक्त दृष्टि वह हो गया था और इसके आगे स्थाणु तीर्थ के माहात्म्य से उसको पुत्र ने तार दिया था । फौरन ही वह दिव्य देह से समन्वित होकर नियत होगया और उसी समय स्थाणु देव को प्रणिपात करके उसने स्थाणु देवका स्तुति करना आरम्भ कर दिया था ॥६०-६१॥ वेन ने कहा—अजन्मा चन्द्र के भूषण वाले देव ईशान महादेव महान् आत्मा वाल इस विश्व और जगत् के स्वामी आपकी मैं शरणा गति में हू ॥६२॥ हे देवदेवेश ! आप सब शत्रुओं के नाशक हैं । हे देवेश ! आप बलि के विष्टम्भ करने वाले हैं और देवों तथा दैत्यों के द्वारा अर्चित हैं । आप विरूपाक्ष-सहस्राक्ष-त्र्यक्ष (तीनों नत्रों वाले) और यक्षेश्वर के प्रिय हैं । आपके सभी ओर पाणि तथा पाद हैं तथा सभी ओर नेत्र शिर एवं मुख हैं ॥६४॥

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ।
शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ॥६५

गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते ।
शतजिह्व शतावर्त शतोदर शतानन ।।६६
गायन्ति त्वा गायत्रिणो ह्यर्कमन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माण त्वा शतक्रतोरूर्ध्वं त्वामिह मेनिरे ।।६७
मूर्त्तौ हि ते महामूर्त्ते समुद्रास्तु धरा तथा ।
देवताः सर्व एवात्र गोष्ठे गाव इवासते ।।६८
शरीरे तव पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम् ।
नारायणं तथा सूर्यं ब्रह्माण च वृहस्पतिम् ।।६९
भगवन्कारण कार्यं क्रिया कारणमेव तत् ।
प्रभवः प्रलयश्चैव सदसच्चापि दैवतम् ।।७०

आप सब ओर श्रुतिमान् हैं और लोक में सब को आवृत्त करके स्थित हैं, आप शङ्कुकर्ण-महाकर्ण-कुम्भकर्ण तथा सागर में आलय बनाने वाले हैं ।।६५।। आप गजेन्द्र के समान कर्ण वाले-गोकर्ण-पाणि कर्ण हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है । आप शत जिह्वा वाले हैं-शतावर्त्त हैं-शतोदर एवं शत आनन वाले हैं ।।६६।। गायत्रिण लोग आपका गान किया करते हैं और अर्क कर्म वाले आपका अर्चन किया करते हैं । ब्रह्मा आपको यहाँ शतक्रतु से भी ऊर्ध्व मानते थे ।।६७।। हे महान् मूर्त्ति वाले ! आपकी मूर्त्ति में समस्त समुद्र तथा धरा-सब देवगण गोष्ठ में गौओं की तरह ही यहाँ निवास किया करते हैं ।।६८।। हे भगवन् आपके शरीर में सोम-अग्नि-जलेश्वर-नारायण-सूर्य-ब्रह्मा और वृहस्पति इन सब का स्थित होना मैं देखता हूँ ।।६९।। हे भगवन् ! आप ही कारण कार्य्य-क्रिया और वही कारण हैं । आप प्रभव प्रलयसत् और दैवत भी हैं ।।७०।।

नमो भवाय शर्वाय वरदायोग्ररूपिणे ।
अन्धकासुरहन्त्रे च पशूनापतये नमः ।।७१
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलासक्तपाणये ।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्न नमोऽस्तु ते ।।७२

नमो दण्डाय चण्डाय अण्डायोत्पत्तिहेतवे ।
डिण्डिमासक्तहस्ताय दण्डिमुण्डाय ते नमः ॥७३
नमोर्ध्वकेशदंष्ट्राय शुक्लायाविकृताय च ।
धूम्रलोहितकृष्णाय नीलग्रीवाय ते नमः ॥७४
नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।
सूर्यमालाय सूर्याय स्वरूपध्वजमालिने ॥७५
नानाभिरामाय नमः पटुतराय च ।
नमो गणेन्द्रनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ॥७६
संक्रन्दनाय चण्डाय पर्णधारपुटाय च ।
नमो हिरण्यवर्णाय नमः कनकवर्चसे ॥७७

भव-शर्व-वरदाय तथा उग्ररूपी आपके लिये नमस्कार है । अन्धक असुर के हनन करने वाले और पशुओं के पति आपके लिये नमस्कार है ॥७१ । विजरा-त्रिशीर्ष और त्रिशूल मे आसक्त हाथ वाले-त्र्यम्बक-त्रिनेत्र और त्रिपुर के हनन करने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥७२॥ दण्डरूप-चण्ड तथा अण्ड स्वरूप-उत्पत्तिके हेतु डिण्डिम में समासक्त कर वाले और दण्डि मुण्ड आपके लिये नमस्कार है ॥७३॥ ऊर्ध्व केश और दंष्ट्रा वाले-शुक्ल-अविकृत-धूम्र, लोहित और कृष्ण वर्णों वाले तथा नील वर्ण की ग्रीवा वाले आपके लिये प्रणाम है ॥७४॥ अप्रति रूप वाले-विरूप-शिव-सूर्य माल-सूर्य और स्वरूप ध्वज माली आपके लिये नमस्कार है ॥७५॥ नाना भाँति के अभिराम स्वरूप वाले आपको प्रणाम है और सबसे अधिक कुशल आपको नस्कार है । गणेन्द्र नाथ-वृषस्कन्ध धन्वी आपको नमस्कार है ॥७६॥ संक्रन्दन-चण्ड-पर्णधार पुट-हिरण्य वर्ण और कनक वर्चस आपके लिये नमस्कार है ॥७७॥

नमः स्तुताय स्तुत्याय: स्तुतिस्थाय नमोऽस्तु ते ।
सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतशरीरिणे ॥७८
नमो होत्रे च हन्त्रे च सितोदग्रपताकिने ।
नमो नमाय मन्त्राय नमः कटंकटाय च ॥७९

नमोऽस्तु कृशनशाय शयिता योत्यिताय ।
स्थिताय धामसाराय मुण्डाय कुटिलाय च ॥८०
नमो नर्त्तनशीलाय लयवादित्रशालिने ।
नाट्योपहारलुब्धाय मुखवादित्रशालिने ॥८१
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलातिबलघातिने ।
कालनाशाय कालाय संसारक्षयरूपिणे ॥८२
हिमवद्दुहितुर्भर्त्रे भैरवाय नमोऽस्तु ते ।
उग्राय च नमो नित्यं नमोऽस्तु दशबाहवे ॥८३
चितिभस्मप्रियायैव कपालासक्तपाणये ।
विभीषणाय भीष्माय हिमव्रतधराय च ॥८४

स्तुत स्तुति के योग्य-स्तुतिमें संस्थित आपको प्रणाम है । सर्व-सर्वभक्ष और सर्व भूतों के शरीर वाले आपको नमस्कार है ॥७८॥ होता-हन्ता और जितोदग्र वक्ता की आपको प्रणाम है । नम-मन्त्र रूप और कट कट आपके लिये नमस्कार है ॥७६॥ कृशनश-शयित-उत्थित-स्थित-धाम सार-मुण्ड और कुटिल आपको प्रणाम है ॥८०॥ नृत्य करने के स्वभाव वाले तथा लय और वादित्र शाली आपके लिये नमस्कार है । नाट्यो पहार के लोभी तथा मुख के द्वारा वादित्र बजाने की शोभा वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥८१॥ ज्येष्ठ-श्रेष्ठ और बल में अति बल-वान के घात करने वाले काल के नाशक-काल स्वरूप और संसार के क्षय करने के रूप से समन्वित आप के लिये मेरा नमस्कार है । ॥८२॥ हिमवान् की दुहिता पार्वती के स्वामी भैरव आप के लिये नमस्कार है । उग्र स्वरूप आपको नित्य ही नमस्कार है । दश बाहुओं वाले आपको मेरा प्रणाम है ॥८३॥ चिता की भस्म से प्यार करने वाले तथा हाथ में कपाल ग्रहण करने वाले-विभीषण-भीष्म और हिम व्रत के धारण करने वाले आपके लिये नमस्कार है ॥८४॥

नमो विकृतवक्त्राय वक्रप्रान्तोग्रदृष्टये ।
पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च ॥८५

नमो वृषाङ्कवृष्टाय गोमिने ते नमो नम: ।
कटङ्कटाय भीमाय नम: पचपचाय च ॥८६
नम. सर्ववरिष्ठाय वराय वरदायिने ।
नमो विरक्तवक्राय भावनायाक्षमालिने ॥८७
विभेदभेदभिन्नाय छायायै तपनाय च ।
अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च ॥८८
नम: शिवाय शान्ताय नम: शान्ततमाय च ।
वहुनेत्रकपालाय एकमूर्त्ते नमोऽस्तु ते ॥८९
नम: क्षुद्राय लुब्धाय यज्ञभागप्रियाय च ।
पञ्चालाय सिताङ्गाय नमो यमनियामिने ॥९०
नमश्चित्रोरुघण्टाय घण्टाघण्टनिघण्टिने ।
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाविभूषिणे ॥९१
प्राणिसंघट्टघण्टाय नम: किलकिलप्रिय ।
हुं हुंकाराय पाराय हुंकाराय प्रियाय च ॥९२

विकृत वक्र वाले तथा वक्र शास्त्र मे उग्र दृष्टि वाले-पलक तथा आम (कच्चा) आमिष के लुब्धक और तुम्बी तथा वीणा से प्रेम करने वाले आपको नमस्कार है ॥८५॥ वृषाङ्कवृष्ट–गोमी आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । कटंकट—भीम और पचपच आपको प्रणाम है ॥८६॥ सब मे अति श्रेष्ठ–वर और वरदान प्रदान करने वाले-विरक्त-वक्र और भावना के लिये अक्ष माली आपको नमस्कार है ॥८७॥ विशेष भेद से भेदभिन्न, छाया, तपन, अघोर घोर रूप वाले, घोर से भी घोरतर शान्त स्वरूप शिव के लिये नमस्कार है तथा परम शान्ततम स्वरूप वाले के के लिये प्रणाम है । बहुत नेत्र और कपाल वाले के लिये हे एक मूर्त्ते ! आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥८८-८९॥ क्षुद्र-लुब्ध और यज्ञ के भाग पर प्यार करने वाले आपको मेरा नमस्कार है । पञ्चाल–सिताङ्ग और यमों के नियामी आपको मेरा प्रणाम है ॥९०॥ चित्रोरु घण्ट तथा घण्टा घण्ट निघण्टी—सहस्र शत घण्टा वाले और घण्टाओं की माला के भूषण वाले आपको नमस्कार है ॥ ९१ ॥ हे किलकिल

प्रिय ! प्राणियों के संघट्ट के घण्टा वाले आपको नमस्कार है। हुं हुंकार स्वरूप-पार हुंकार और प्रिय के लिये नमस्कार है ॥९२॥

नमः समसमे नित्य गृहवृक्षनिकेतिने ।
गर्भमासश्रृगालाय तारकाय तराय च ॥९३
नमो यज्ञाय यजिने हुताय प्रहुताय च ।
यज्ञवाहाय हव्याय तप्याय तपनाय च ॥९४
नमस्तुण्डाय तुण्ड्याय तुण्डाना पतये नमः ।
अन्नदायान्नपतये नमो नानान्नभोजिने ॥९५
नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ।
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्राभरणाय च ॥९६
बालानुचरगोप्त्रे च बालोलीलाविलासिने ।
नमो बालाय वृद्धाय क्षुब्धाय क्षोभणाय च ॥९७
गङ्गालुलितकेशाय मुञ्जकेशाय वै नमः ।
नमः षट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनिरताय च ॥९८

नित्य ही समसम तथा वृक्ष मे निकेत वाले आपको नमस्कार है। गर्भ मांस शृगाल-तारक, तर को नमस्कार है ॥९३॥ यज्ञरूप, यजी, हुत प्रहुत, यज्ञवाह, हव्य, तप्य और तपन के लिये मेरा नमस्कार है ॥९४॥ तुण्ड-तुण्ड्य और तुण्डों के पति के लिये मेरा प्रणाम है। अन्न का दान करने वाले-अन्न के पति और अनेक प्रकार के अन्नों के भोजन करने वाले आपको मेरा नमस्कार है ॥९५॥ सहस्र शीर्षों वाले-सहस्र चरण-युक्त-सहस्रोद्योत शूल और सहस्र आभरण वाले आपको नमस्कार है ॥९६॥ *बालानुचर गोप्त, बाल लीला के विलास वाले बाल, वृद्ध, क्षुब्ध* और क्षोभण के लिये नमस्कार है ॥९७॥ गंगा से अ गुलित केशों वाले और मुञ्जकेश आपको मेरा प्रणाम है। षट्कर्म से तुष्ट होने वाले त्रिकर्म मे निरत के लिये नमस्कार है ॥९८॥

नग्नप्राणाय चण्डाय कृशायास्फोटनाय च ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा कथ्याय कथनाय च ॥९९
साङ्ख्याय साङ्ख्यमुख्याय साङ्ख्ययोगमुखाय च ।
नमो विरथरथ्याय चतुष्पथरथाय च ॥१००

कृष्णाजिनोत्तरीयाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ।
त्र्यम्बिकाम्बिकनाथाय व्यक्ताव्यक्ताय वेधसे ।।१०१
काम कामद कामघ्न तृप्तातृप्त विचारिणे ।
नमः सर्वदयापघ्न कल्पमद्याविचारिणे ।।१०२
महासत्वमहाबाहो महाबल नमोऽस्तु ते ।
महामेघधरप्रख्य महाकाल महाद्युते ।।१०३
मेघावर्त्त युगावर्त्त चन्द्रार्कपतये नमः ।
त्वमन्नमन्नभोक्ता च पक्वभुक्पावनोऽनलः ।।१०४
जरायुजाश्चाण्डजाश्च स्वदोद्भिज्जाश्च ते नमः ।
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विध. ।।१०५

नग्न प्राणो वाले, चण्ड, कृश, आस्फोटन, धर्म अर्थ काम मोक्षो के कथ्य और कथन के लिये नमस्कार है ।।९९।। साङ्ख्य, साङ्ख्य, मुख्य-साङ्ख्य योग मुख्य विरथरथ्य और चतुष्पथ रथ के लिये मेरा नमस्कार है ।। १०० ।। कृष्णमृग चर्म के उत्तरीय वाले हे हरिकेश ! आपको नमस्कार है । त्र्यम्बिकाम्बिक नाथ-व्यक्ताव्यक्त और वेधा के लिये नमस्कार है ।।१०१।। काम, कामद, कामघ्न, तृप्त तृप्त, विचारी. सर्वदयापघ्न, कल्पसन्ध्या विचारी के लिये मेरा नमस्कार है ।।१०२।। हे महासत्व ! हे महाबाहो ! हे महाबल ! आपको मेरा नमस्कार है । हे महा मेघ धर प्रख्य ! हे महाकाल ! हे महाद्युति वाले ! मेघा वर्त्त, युगा वर्त्त और चन्द्र तथा सूर्य के स्वामी आपको मेरा प्रणाम है । आप ही अन्न हैं और आप ही अन्न के भोक्ता भी हैं तथा आप पक्व भोजी-पावन और अनल हैं ।।१०३-१०४।। आप ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज हैं ऐसे आपको सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है । हे देव देवेश ! आप ही चार प्रकार के भूतग्राम हैं ।।१०५।।

स्रष्टा चराचरस्यास्य पाता हन्ता तथैव च ।
त्वामाहुर्ब्रह्मविद्वांसः परं ब्रह्मविदां गतिः ।।१०६
मनसः परमं ज्योतिर्ज्योतिस्त्वं ज्योतिपामपि ।
हंसो वृक्षो मधुकरः प्राहुस्त्वा ब्रह्मवादिनः ।।१०७

यज्ञेष्टकाः श्रेष्ठकश्च त्वामाहुर्मुनयस्तथा ।
पठ्यसे स्तुतिभिर्नित्यं वेदोपनिषदा गणैः ॥१०८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये ।
त्वमेव मेघसघाश्च विद्युतोऽशनिगर्जितम् ॥१०९
संवत्सरस्त्वमृतवो मासो मासार्धमेव च ।
युगानि मेषाः काष्ठाश्च नक्षत्राणि ग्रहावलाः ॥११०
वृक्षाणां ककुभोऽसि त्व गिरीणां हिमवान्गिरिः ।
व्याघ्रो मृगाणां पततां तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ॥१११
क्षीरोदोऽस्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च ।
वज्र प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ॥११२

इस चराचर विश्व के सृजन करने वाले पालक और हन्ता आप ही हैं। ब्रह्म के ज्ञाता लोग आपको ही ब्रह्म वेत्ताओं की परम गति कहते हैं ॥१०६॥ आप मन की परम ज्योति हैं तथा ज्योतियों को भी ज्योति हैं। ब्रह्मवादी लोग आपको हस-वृक्ष और मधुकर कहा करते हैं ॥१०७॥ मुनिगण आपको यज्ञेष्टक, श्रेष्ठक कहा करते हैं। वेदों और उपनिषदों के समूहों के द्वारा आपका ही नित्य प्रति स्तवन पढ़ा जाया करता है ॥१०८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और जो भी वर्णावर हैं वे सभी आपकी ही स्तुति किया करते हैं। आप ही मेघों के सघ रूप हैं और ही विद्युत तथा वज्र का गर्जित हैं ॥१०९॥ आप ही सम्वत्सर हैं—ऋतुऐं हैं—मास, मासार्ध भी आप ही हैं। युग, मेष, नक्षत्र और ग्रह बल भी आप ही का स्वरूप है ॥११०॥ आप वृक्षों में ककुभो हैं और गिरिवरों में आप हिमवान् गिरि हैं। मृगों में आप ही व्याघ्र का स्वरूप धारण करने वाले हैं। पतन शीलों में तार्क्ष्य आप ही हैं और भोगियों में अनन्त आपका ही स्वरूप है ॥१११॥ उदधियों में क्षीर सागर आप ही हैं तथा यन्त्रों में धनु आप हैं। प्रहरणों में वज्र आपका ही रूप है। तथा व्रतों में सत्य आप हैं ॥११२॥

त्वमेव द्वेष इच्छा च रागो मोक्षः क्षमाक्षमे ।
व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जया जयौ ॥११३

तिन्दुको गिरिजो वृक्षो मुद्गं चाखिलजीविनाम् ।
प्राणाः सत्त्वं रजश्चैव तमश्च प्रतिपत्ततिः ॥१२१
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत जृम्भितमेव च ॥१२२
लोहितान्तर्गतोदृष्टिर्महावक्रो महोदरः ।
शुचिरोमा हरिश्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥१२३
गीतवादित्रनृत्यज्ञो गीतवादित्रकप्रियः ।
मत्स्यो जालो जलौकाश्च कालकेलिः कलाकलिः ॥१२४
अकालश्च विकालश्च दुष्कालः काल एवच ।
मृत्युश्च मृत्युकर्त्ता च यक्षो यक्षभयकरः ॥१२५
संवर्त्तकोऽन्तकश्चैव संवर्त्तकबलाहकः ।
घण्टो घण्टी महाघण्टी चरी माली च मातलिः ॥१२६

शिष्यगण, होम, त्रिलोपर्ण, यजुर्वेदियो का शत रुद्रिय, पवित्रों में परम पवित्र और मंगलों में अतीव मंगल भी आप हैं ॥१२०॥ तिन्दुक, गिरिज, वृक्ष, मुद्ग, समस्त जीव धारियों के प्राण, सत्य, रज, तम, प्रतिपत्तति आप ही है ॥१२१॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, निमेष, क्षुत, जृम्भित भी आप ही का स्वरूप है ॥१२२॥ लोहितान्तर्गत, दृष्टि, महावक्त्र, महोदर, शुचिरोमा, हरिश्मश्रु, ऊर्ध्वकेश, चलाचल आप हैं ॥१२३॥ (गीत और वादित्र तथा नृत्य के ज्ञाता और गीत वादित्र को प्यार करने वाले आप हैं) मत्स्य, जाल (मछलियों को फँसाने वाला) जलौका, काल केलि, कलाकेलि, अकाल, विकाल, दुष्काल काल, मृत्यु, मृत्यु के करने वाले, यक्ष और यक्ष के भयकर, संवर्त्तक, बलाहक, घण्ट, घण्टी, महाघण्टी, चरी, माली और मातलि भी आप ही हैं ॥१२४-१२६॥

ब्रह्म कालयमाग्नीनां दण्डी मुण्डी त्रिमुण्डधृक् ।
चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः ॥१२७
चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरस्तथा ।
नित्यलक्षप्रियो मूर्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः ॥१२८

रक्तमाल्याम्बरधरो गिरिको गैरिकप्रियः ।
शिल्पी च शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः ॥१२९
भगनेत्राङ्कुशः शम्भुः पूष्णो दन्तविनाशनः ।
स्वाहा स्वधावषट्कारो नमस्कारो नमो नमः ॥१३०
गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकस्तारकामयः ।
धाता विधाता सधाता पृथिव्या धरणे परः ॥१३१
ब्रह्मा तपश्च सत्यं च व्रतचर्यमथार्जवम् ।
भूतात्मा भूतकृद्भूतिर्भूतभव्यभवोद्भवः ॥१३२
भूर्भुवः स्वऋतं चैव ध्रुवो दन्तो महेश्वरः ।
दीक्षितोऽदीक्षितः कान्तो दुर्दान्तो दान्तसम्भवः ॥१३३

- ब्रह्म, काल, यम और अग्नि को दण्ड देने वाले-मुण्डी निमुण्डो को धारण करने वाले-चारों युग-चार वेद-चातुर्हौत्र प्रवर्त्तक आप हैं ॥१२७॥ चारों आश्रमों के नेता-चारों वर्णों के रचने वाले-नित्य लक्ष प्रिय मूर्त्त गुणों के अध्यक्ष और गणों के अधिप भी आप ही हैं ॥१२८॥ एकवर्ण की माला तथा अम्बर के धारण करने वाले-गिरिक तथा गैरिक पर प्रीति रखने वाले-शिल्पी-शिल्पकला के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ और समस्त प्रकार के शिल्पों के प्रवर्त्तक आप ही हैं ॥१२९॥ भगनेत्र के अङ्कुश-शम्भु-पूष्ण के दन्तों का विनाश करने वाले-स्वाहा-स्वधा-वषट्कार-नमस्कार और नमोनम भी आपही का स्वरूप है ॥१३०॥ गूढ व्रत वाले-गुह्य तपा, तारक, तारकामय, धाता, विधाता, सन्धाता और पृथिवी के धारण करने में पर भी आप ही हैं ॥१३१॥ ब्रह्मा, तप, सत्य, व्रत चर्य, आर्जव, भूतात्मा, भूत कृत्, भूति, भूत, भव्य और भवोद्भव भी आप ही हैं ॥१३२॥ भूः, भुवः, स्व, ऋत, ध्रुव, दन्त, महेश्वर दीक्षित, अदीक्षित, कान्त, दुर्दान्त और दान्त सम्भव भी आप हैं ॥१३३॥

चन्द्रावर्त्तो युगावर्त्तः संवर्त्तः सप्रवर्त्तकः ।
बिन्दुः कामो ह्यणुः स्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः ॥१३४
नन्दिमुखो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।
हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोरगपतिर्विराट् ॥१३५

अधर्महा महादेवो दण्डधारो गणोत्कटः ।
गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः ॥१३६
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोमार्गो मार्ग एव च ।
स्थिरः श्रेष्ठश्च स्थाणुश्च विकोप कोप एव च ॥१३७
दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः ।
दुर्द्धर्षो दुष्प्रकाशश्च दुर्दर्शो दुर्जयो जय ॥१३८
शशाङ्कनलशीतोष्णक्षुत् पाश्च जरामया ।
आधयो व्याधयश्चैव आधिहा व्याधिनाशन ॥१३९
समूहश्चासमूहश्च हन्ता देव सनातनः ।
शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः ॥१४०

चन्द्रावर्त्त–युगावर्त्त–संवर्त्त–सम्वर्त्तक–विन्दु–काम–अणु–स्थूल–कर्णिकार स्रज को प्यार करने वाले आप हैं ॥१३४॥ नन्दि मुख, भीम मुख, सुमुख, दुर्मुख, हिरण्यगर्भ, शकुनि, महोरग पति, विराट, अधर्महा महादेव, दण्डधार, गणोत्कट, गोनर्द, गोप्रतार, गो वृषेश्वर वाहन आपका स्वरूप है ॥१३५–१३६॥ आप त्रैलोक्य के गोप्ता हैं। गोविन्द, गोमार्ग, मार्ग, स्थिर, श्रेष्ठ, स्थाणु, विकोप, कोप आपके ही रूप हैं ॥१३७॥ दुर्वारण-दुर्विषह-दुःसह-दुरतिक्रम दुर्धर्ष-दुष्प्रकाश, दुर्दर्श, दुर्जय, जय आप ही हैं ॥१३८॥ शशांक, नल, शीत, उष्ण, क्षुत्, तृषा, जरा, आमय, आधि (मानसिक व्यथा) व्याधियाँ, आधियों को हरण करने वाले व्याधियों के नाशक आप ही हैं ॥१३९॥ समूह, असमूह, हन्ता और सनातन देव आप ही हैं। शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष, पुण्डरीक वनालय आपका ही स्वरूप है ॥१४०॥

त्र्यम्बको दण्डधारश्च उग्रदंष्ट्रः कुलान्तकः ।
विषापहः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्व मरुत्पतेः ॥१४१
अमृताशी जगन्नाथो वेददेवगणेश्वर
विषाग्निपाः सोमपाश्चक्षीरपा आ
मधुश्च्युताना मधुपा ब्रह्मावास्त्व घृत
सर्वलोकस्य भोक्ता

हिरण्यरेताः पुरुषस्त्वमेकस्त्वं स्त्रीपुमांस्त्व हि नपुंमकं च ।
बालो युवास्थविरो जीर्णदष्ट्रस्त्वन्ते गिरिर्विश्वकृद्विश्वकर्त्ता ॥
त्वं वै धाना विश्वकृतो वरेण्यस्त्वा पूजयन्ति प्रणता. सदैव ।
चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते भवानी त्वमेव चाग्नि प्रपितामहश्च ।
सरस्वती वाग्बलमूलभूना अहोरात्रे निमियो-मेषकर्त्ता ॥१४५
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते ।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन शङ्कर ॥१४६
पुंसां शतसहस्राणि यत्समावृत्य तिष्ठति ।
महतस्तमसः पारे गोप्ता मन्ता भवान्सदा ॥१४७

त्र्यम्बक, दण्डधार, उग्रदष्ट्र, कुलान्तक, विश्वगण गणों से जो सुर श्रेष्ठ सोमपा हैं हे महस्पते ! वह आप ही हैं ॥१४१॥ आप असृजाद्यो, जगनाथ, रुद्र और देवगण के ईश्वर हैं। विपाग्निपा, सोम पा, क्षीर पान करने वाले और आज्य (घृत) पीने वाले भी आप ही हैं ॥१४२॥ मधुश्च्युतों के मधुपा, ब्रह्मवान् और घृतच्युत आप हैं। समस्त लोक के भोक्ता तथा सब के पितामह भी आप ही हैं ॥१४३॥ आप हिरण्य रेता पुरुष हैं, आप एक हैं, आप ही पुमान् हैं, स्त्री भी आप ही हैं तथा नपुंसक भी आप ही हैं। बाल, युवा, स्थविर, जीर्ण दंष्ट्र, अन्तेगिरि, विश्वकृत्, विश्व कर्त्ता आप हो हैं ॥१४४॥ आप ही धाता हैं और विश्व कर्त्ता वरेण्य भी आप ही हैं। आपको सब प्रणत होकर सदा ही पूजते हैं। आपके नेत्र ही चन्द्र तथा आदित्य हैं। आप हो भवानी हैं तथा अग्नि और प्रपितामह भी आप ही हैं। सरस्वती जो वाग्बल की मूल भूत है वह आप ही का स्वरूप है, अहोरात्र, निमिषोन्मेष कर्त्ता भी आप हैं ॥१४५॥ ब्रह्मा, गोविन्द और पुराणों के ज्ञाता ऋषि गण हे शंकर ! यथावत् रूप से आपके माहात्म्य को जानने में समर्थ नहीं होते हैं ॥१४६॥ जो शत सहस्र पुरुषों को समावृत करके स्थित रहते हैं महान् तम से परे गोप्ता, मन्ता सदा आप ही हैं ॥१४७॥

य विनिद्रा जित श्वासा- सत्त्वस्थाः सजितेन्द्रियाः ।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥१४८

ये चानुपतिता गर्भा रुद्रलोकस्य रक्षिणः ।
नमस्तेऽस्तु स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्ति मुदं तु ते ॥१५५
येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थावरदेहिनाम् ।
रक्षन्तु देहिनां नित्यं ते ममाप्याययन्तु वै ॥१५६॥
ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥१५७
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।
हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥१५८
ये च पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।
चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥१५९
रसातलगता ये च ये च तस्मात्परं गताः ।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः ॥१६०
येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च ।
असंख्या ये गणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः ॥१६१
प्रसीद मम भद्रं ते तव भावगतस्य च ।
त्वयि मे हृदयं देव त्वयि बुद्धिर्मतिस्त्वयि ॥१६२
स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम द्विजोत्तमः ॥१६३

रुद्रलोक के रक्षी जो गर्भ अनुपतित हुए उन के लिये नमस्कार है। स्वाहा, स्वधा वे मुद को प्राप्त होते हैं। जो एक अंगुष्ठ मात्र पुरुष स्थावर देह के धारण करने वाले देही हैं वे देहियों की नित्य ही रक्षा करें और मुझे भी तृप्त करें ॥१५६॥ जो सरिताओं में—समुद्रों में—पर्वतों, गुफाओं में, वृक्षों के मूलों में गोष्ठों में-गहन अरण्यों में-चतुष्पथों में रथ्याओं में, चत्वरों में, सभाओं में, हस्ती, अश्व और रथ शालाओं में तथा जीर्ण उद्यान और आलयों में एवं जो पाँचो भूतों में, दिशाओं और विदिशाओं में, जो चन्द्र और सूर्य के मध्य में गत हैं और जो चन्द्र, सूर्य की रश्मियों में स्थित हैं-जो रसातल में गत हैं और जो उससे भी परे गत हैं उन सबके लिये नमस्कार है उन समस्तों की सेवा में मेरा नित्य ही प्रणाम समर्पित है ॥१५७-१६०॥ जिनकी कोई भी संख्या विद्यमान नहीं

या मूर्त यश्च सूक्ष्मास्ते न शक्या या निदर्शितुम् ।
ताभिर्मां सतत रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥१४६
रक्ष मा रक्षणीयोऽस्य तवानघ नमोऽस्तुते ।
भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाह सदा त्वयि ॥१५०
जटिने दण्डिने नित्य लम्बोदर तथा क्रतो ।
दीर्घजिह्व महाद्रंष्ट्र तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥१५१
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः ॥१५२
सभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्तेपर्युपस्थिते ।
यः शेते जलमध्यस्थस्त प्रपद्येऽम्बुशायिनम् ॥१५३
प्रविश्य वदन राहोर्यः सोम पिवते निशि ।
प्रसन्नर्क च स्वर्भानु रक्षितस्ते च तेजसा ॥१५४

जिसको निद्रा से रहित तथा श्वासो को जीतने वाले सत्व मे स्थित और भली भाति जितेन्द्रिय लोग युञ्जान होकर ज्योति को देखा करते हैं। उस योगात्मा के लिये नमस्कार है ॥१४८॥ जो मूर्तियाँ सूक्ष्म हैं वे देखी नही जा सकती है उनसे निरन्तर औरस पुत्र को पिता के समान मेरी रक्षा करो ॥१४६॥ मेरी रक्षा करो, मैं आपके द्वारा रक्षा करने के योग्य हूँ । हे अनघ ! आपके लिये मेरा नमस्कार है। आप तो अपने भक्तो पर अनुकम्पा करने वाले भगवान हैं और मैं सदा आपका परम भक्त हूँ ॥१५०॥ जटा धारी, दण्डी, नित्य लम्बोदर तथा क्रतु, दीर्घ जिह्वा वाले, महान दंष्ट्रा से युक्त रुद्रात्मा आपके लिये नमस्कार है ॥१५१॥ जिसके केशो मे जीमूत (मेघ) है तथा सर्वांग सन्धियो मे जिसके नदियाँ है, कुक्षि मे चारो समुद्र हैं उस तोयात्मा प्रभु के लिये मेरा नमस्कार है ॥१५२॥ समस्त भूतो का भली भाति भक्षण करके युगान्त के पर्युपस्थित होने पर जो जल के मध्य मे स्थित होकर शयन किया करते है उन अम्बु शायी प्रभु की मैं शरण मे आता हूँ॥१५३॥ जो राहु के मुख मे प्रवेश करके रात्रि मे सोम का पान करता है, अर्क को ग्रसता हुआ स्वर्भानु आपके तेज से रक्षित होता है ॥१५४॥

ये चानुपतिता गर्भा रुद्रलोकस्य रक्षिणः ।
नमस्तेऽस्तु स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्ति मुदं तु ते ॥१५५
येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थावरदेहिनाम् ।
रक्षन्तु देहिना नित्य ते ममाप्याययन्तु वै ॥१५६।
ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च ।
वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥१५७
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।
हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥१५८
ये च पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।
चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥१५९
रसातलगता ये च ये च तस्मात्परं गताः ।
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः ॥१६०
येषान विद्यते सख्या प्रमाणं रूपमेव च ।
असख्या ये गणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः ॥१६१
प्रसीद मम भद्र ते तव भावग तस्य च ।
त्वयि मे हृदय देव त्वयि बुद्धिर्मतिस्त्वयि ॥१६२
स्तुत्वैवं स महादेव विरराम द्विजोत्तमः ॥१६३

रुद्रलोक के रक्षी जो गर्भ अनुपतित हुए उन के लिये नमस्कार है। स्वाहा, स्वधा वे मुद को प्राप्त होते हैं। जो एक अगुष्ठ मात्र पुरुष स्थावर देह के धारण करने वाले देही हैं वे देहियों की नित्य ही रक्षा करें और मुझे भी तृप्त करें ॥१५६॥ जो सरिताओं मे—समुद्रों मे—पर्वतों, गुफाओ मे,वृक्षों के मूलों मे गोष्ठों मे-गहन जगलो मे-चतुष्पथो मे रथ्याओ मे, चत्वरों में, सभाओं मे, हस्ती, अश्व और रथ शालाओ मे तथा जीर्ण उद्यान और आलयो मे एव जो पाँचो भूतो मे, दिशाओ और विदिशाओ में, जो चन्द्र और सूर्य के मध्य मे गत हैं और जो चन्द्र, सूर्य की रश्मियों में स्थित हैं जो रसातल मे गत हैं और जो उससे भी परे गत हैं उन सबके लिये नमस्कार है उन समस्तों की सेवा मे मेरा नित्य ही प्रणाम समर्पित है ॥१५७-१६०॥ जिनकी कोई भी सख्या विद्यमान नहीं

है, न कोई प्रमाण ही है और न कुछ रूप है तथा जो अमरम्प गण एवं रुद्र हैं उन सबके लिये मेरा नमस्कार है ॥२६१॥ आप के भाव में गत मुझ पर आप प्रसन्न होइए। आपका भद्र हो। हे देव! आप के चरणों में मेरा हृदय है, आप में ही मेरी बुद्धि है और आप ही में मेरी मति है ॥१६२॥ इस प्रकार से उन महादेव की स्तुति करके वह द्विजोत्तम विरत हो गया था ॥१६३॥

४८—वेन वर प्रदान वर्णन

अथैनमब्रवीद्वक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः ।
आश्वासनकरं चास्य वाक्यविद्वाक्यमुत्तमम् ॥१
अहो तुष्टोऽस्मि ते राजन्स्तवेनानेन सुव्रत ।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपे वसिष्यसि ॥२
उषित्वा सुचिरं कालं मम गात्रोद्भवः पुनः ।
असुरो ह्यन्धको नाम भविष्यसि सुरान्तकृत् ॥३
हिरण्याक्षगृहे जन्म प्राप्य वृद्धिं गमिष्यसि ।
पूर्वाधर्मेण घोरेण वेदनिन्दाकृतेन च ॥४
साभिलाषो जगन्मातुर्भविष्यसि यदा तदा ।
देहं शूलेन हत्वाऽहं पातयिष्ये समार्बुदम् ॥५
तत्रापि कल्मषं त्यक्त्वा हृष्टा मा भक्तितः पुनः ।
ख्यातो गणाधिपो भूत्वा नाम्ना भृङ्गिरिटिः स्मृतः ॥६

महामुनीन्द्र सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर त्रैलोक्य के अधिपति भवदेव इससे बोले जो वाक्यों के पूर्ण वेत्ता थे और जो कुछ भी उन्होंने कहा था वह वाक्य अत्युत्तम एवं आश्वासन प्रदान करने वाला था ॥१॥ भगवान् शिव ने कहा—हे सुन्दर व्रत वाले राजन्! मैं आपके इस स्तवन से परम सन्तुष्ट होगया हूँ। अब अधिक क्या कहूँ यही कहता हूँ अब तुम मेरे ही समीप में निवास करोगे ॥२॥ बहुत अधिक समय पर्यन्त मेरे निकट निवास करके फिर मेरे ही गात्र से

उद्मद प्राप्त करने अन्धक नामक असुर होओगे जो सुरों का अन्त करने वाला होगा ॥३॥ हिरण्याक्ष के घर मे जाकर अर्थात् जन्म ग्रहण कर वृद्धि को प्राप्त होओगे। यह फल पूर्व में किये हुए घोर अधर्म और वेदों की निन्दा करने से ही प्राप्त होगा ॥४॥ जब कभी जगदम्बा का हृदय साभिलाष होगा तब मैं शूल के द्वारा देह का हनन करके समावृ द पावन करूंगा ॥५॥ वहाँ पर भी कल्मष का त्याग करके पुनः मेरा भक्ति पूर्वक दर्शन प्राप्त करके परम प्रसिद्ध गणों का स्वामी होकर नाम से भृंगिरिटि कहा जायेगा ॥६॥

मत्सन्निधाने स्थित्वा त्वं ततः सिद्धिं गमिष्यसि ।
वेनप्रोक्तं स्तवमिमं कीर्त्तयेद्यः शृणोति च ॥७
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
यथा सर्वेषु देवेषु विशिष्टो भगवाञ्छिवः ॥८
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां वेननिर्मितः ।
यशोराज्यसुखैश्वर्यधनमानार्थकाङ्क्षिभिः ॥९
श्रोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ।
व्याधितो दुःखितोदीनश्चोरराजभयान्वितः ॥१०
राजकार्यविमुक्तो वा मुच्यते महतो भयात् ।
अनेनैव तु देहेन वर्णानां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥११
तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः ।
न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः ॥१२
विघ्नं कुर्युर्गृहे तत्र यत्राय पठ्यते स्तवः ।
शृणुयाद्या स्तवं नारी अनुज्ञां प्राप्य भर्तृ त ॥१३
मातृपक्षे पितुः पक्षे पूज्या भवति देववत् ।
शृणुयाद्यः स्तवं दिव्यं कीर्त्तयेद्वा समाहितः ॥१४

इस प्रकार से मेरे सन्निधान में स्थिति प्राप्त करके फिर आप सिद्धि की प्राप्ति करेंगे। वेन के द्वारा कहे इस स्तव को जो कोई भी कहता है अथवा श्रवण किया करता है वह कुछ भी अशुभ की प्राप्ति नहीं करता है और अति दीर्घ आयु प्राप्त करता है। जिस तरह से

सब देहो मे भगवान् शिव विशिष्ट हैं ॥७ ८॥ उसी प्रकार से वेन के द्वारा निर्मित यह स्तव समस्त स्तोत्रो मे अत्यन्त श्रेष्ठ है । जो पुरुष यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन, मान और अर्थ की आकाङ्क्षा रखने वाले है उन्हें भक्ति की भावना से समास्थित होकर इसका श्रवण करना चाहिए जो विद्या की कामना वाले हैं उन्हे भी यत्नपूर्वक सुनना चाहिए व्याधित, दुःखित, दीन तथा चोर और राजा के भय से समन्वित हो तथा राजकार्य से विमुक्त हो वह महान् भय से विमुक्त हो जाता है और इसी देह से ही वर्णो की श्रेष्ठता प्राप्त किया करता है ॥६-११॥ वह पुरुष तेज और यश से युक्त होकर निर्मल हो जाता है । राक्षस, पिशाच भूत और विनायक इनमे कोई भी उसके घर मे कभी भी विघ्न नही किया करते हैं जहाँ पर इस स्तव का पाठ किया जाता है । जो नारी इस स्तव का श्रवण करती है वह अपने स्वामी से अनुज्ञा प्राप्तकर मातृ पक्ष में तथा पितृ पक्ष मे देवी की भांति पूज्या होती है । कोई भी पुरुष समाहित होकर इस दिव्य स्तव का कीर्तन करता है अथवा सुनता है वह सर्वत्र सफल होता है ॥१२-१४॥

तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्ति नित्यशः ।
मनसा चिन्तितं यच्च वाचाऽनुकीर्त्तितम् ॥१५
सर्वं सपद्यते तस्य स्तवनस्यानुकीर्त्तनात् ।
मनसा कर्मणा वाचा कृतमेनो विनश्यति ।
वरं वरय भद्रं ते यत्वया मनसेप्सितम् ॥१६
अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्तथा लिङ्गस्य दर्शनात् ।
मुक्तोऽहं पातकैः सर्वैस्तव दर्शनतः किल ॥१७
यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम ।
देवस्वभक्षणाज्जातं श्वयोनौ तव सेवकम् ॥१८
एतस्यापि प्रसादं त्वं कर्त्तु मर्हसि शङ्कर ।
एतस्यापि भवान्मद्य सरसोऽहं निमज्जितः ॥१९
देवैर्निवारितः पूर्वं तीर्थेऽस्मिन्स्नानकारणात् ।
अयं कृतोपकारश्च एतदर्थं वृणोम्यहम् ॥२०

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा तुष्टः प्रोवाच शंकरः ।
एषोऽपि पापनिर्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥२१

वेन-रचित इस स्तव श्रोता तथा वक्ता जो भी कार्य करना चाहता है उसके वे सभी कार्य सिद्ध हो जाया करते हैं चाहे वह मन से किसी कार्य का चिन्तन करे या वाणी से कथन करे वे सभी इस स्तव का कीर्त्तन करने से सम्पन्न हो जाया करते हैं तथा मानसिक और वाचिक पाप एवं कर्म द्वारा कृत पाप तुरन्त नष्ट हो जाता है। तुम्हारा कल्याण हो। जो भी तुम्हारे मन मे अभीष्ट हो उस वरदान को अब मुझसे प्राप्त करलो ॥१५-१६॥ वेन ने कहा—हे भगवन्! इस लिंग के माहात्म्य से और दर्शन से मैं समस्त पातकों से मुक्त हुआ हूँ तथा आपके दर्शन मे मेरी मुक्ति हुई है ॥१७॥ हे देवेश! यदि आप मुझ पर पूर्णतया सन्तुष्ट हैं और आप मुझे कोई वरदान देना चाहते हैं तो हे देव! देवस्व के भक्षण करने से आपका सेवक कुत्ते की योनि मे समुत्पन्न होगया है ॥१८॥ हे शंकर! इस पर भी आपका प्रसाद होना चाहिए। इसके भी मध्य सर मे मैंने निमज्जन किया है ॥१६॥ पहिले देवों न इस तीर्थ में स्नान करने के लिये निवारण किया था किन्तु इसने मेरा उपकार किया था। इसीलिये मैं इसके लिए वरदान चाहता हूँ ॥२०॥ उसके इस वचन को सुनकर सन्तुष्ट होकर शकर बोले—यह भी पापों से निर्मुक्त होकर छुटकारा पा जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२१॥

प्रसादान्मे महाबाहो शिवलोकं गमिष्यति ।
तथा स्तवमिमं श्रुत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥२२
कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्य सरसोऽस्य महीपते ।
मम लिङ्गस्य चोत्पत्ति श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥२३
इत्येवमुक्त्वा भगवान्सर्वलोकनमस्कृतः ।
पश्यतां सर्वलोकानां तत्रैवान्तरधीयत ॥२४
स च श्वा तत्क्षणादेव स्मृत्वा जन्म पुरातनम् ।
दिव्यमूर्त्तिधरो भूत्वा तं राजानमुपस्थितः ॥२५

कृत्वा स्नानं ततो वैन्यः पितृदर्शनलालसः ।
स्थाणुतीर्थे कुटीं शून्या दृष्ट्वा शोकसमन्वितः ॥२६
दृष्ट्वाऽब्रवीत्ततो वाक्यं हर्षेण महताऽन्वितः ।
सत्पुत्रेण त्वया वत्स त्रातोऽहं नरकार्णवात् ॥ ७
त्वयाऽभिषिञ्चितो नित्यं तीर्थस्थपुलिने स्थितः ।
अस्य साधो प्रसादेन स्थाणोर्देवस्य दर्शनात् ॥२८

हे महान् बाहुओं वाले ! मेरे प्रसाद से तुम शिव लोक को चले जाओगे । इस स्तव का श्रवण करके समस्त पातकों से मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥२२॥ हे महीपते ! कुरुक्षेत्र में इस सर का माहात्म्य और मेरे लिंग की उत्पत्ति को भी सुनकर मानव पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥२३॥ सनत्कुमार जी ने कहा—इस प्रकार से समस्त लोकों के द्वारा नमस्कृत भगवान् ने राजा से कहकर सम्पूर्ण लोगों के देखते रहने पर वहाँ ही वे अन्तर्धान हो गये थे ॥२४॥ और वह कुत्ता अपने पुराने जन्म का स्मरण करके दिव्य मूर्त्ति को धारण करने वाला होकर उस राजा के समीप में उपस्थित हुआ था ॥२५॥ राजा वेन का पुत्र स्नान करके अपने पिता के दर्शन की लालसा वाला हो गया था किन्तु उसने उस स्थाणु तीर्थ में कुटिया को सूनी देखा था और फिर वह शोक से समन्वित हो गया था ॥२६॥ इसके पश्चात् उसने अपने पुत्र को वहाँ पर देखकर यह वाक्य कहा था और महान् हर्ष से युक्त हो गया था हे वत्स ! तू मेरा बहुत ही सुपात्र पुत्र है । तुमने मुझको इस नरक रूपी सागर से उद्धार करके सुरक्षित बना दिया है ॥२७॥ तुमने इस तीर्थ के पुलिन पर स्थित होकर नित्य ही अभिषिञ्चित किया था । इस साधु के प्रसाद से और स्थाणु देव के दर्शन से मैं सब पापों से छुटकारा पा गया हूँ ॥२८॥

मुक्तपापश्च स्वर्लोकं यास्ये यत्र शिवः स्थितः ।
इत्येवमुक्त्वा राजानं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम् ॥२९
स्थाणुतीर्थे ययौ सिद्धिं तेन पुत्रेण तारितः ।
स च श्वा परमां सिद्धिं स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥३०

विमुक्त कलुषैः सर्वैर्जगाम भवमन्दिरम् ।
राजा पितृऋणैर्मुक्तः परिपाल्य वसुंधराम् ॥३१
पुत्रानुत्पाद्य धर्मेण कृत्वा यज्ञ निरर्गलम् ।
दत्वा कामाश्च विप्रेभ्यो भुक्त्वा भोगान्पृथग्विधान् ॥३२
सुहृदो द्रविणैर्युक्तान्कामैः सतर्प्य च स्त्रियः ।
अभिषिच्य सुतराज्ये कुरुक्षेत्रं ययौ नृपः ॥३३
तत्र तप्त्वा तपो घोर पूजयित्वा च शंकरम् ।
आत्मेच्छया तनुं त्यक्त्वा प्रयात. परम पदम् ॥३४
एतत्प्रभाव तीर्थस्य स्थाणोर्यः शृणुयान्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमा गतिम् ॥३५

अब पाप मुक्त होकर मैं स्वर्गलोक में जाऊंगा जहाँ पर भगवान् शिव साक्षात् विराजमान हैं। इस प्रकार से राजा को कहकर और महेश्वर को प्रतिष्ठापित करके उस पुत्र के द्वारा तारित वह स्थाणु तीर्थ में सिद्धि को प्राप्त हो गया था। और वह कुत्ता भी स्थाणु तीर्थ के प्रभाव से परम सिद्धि को प्राप्त हो गया था ॥२६-३०॥ समस्त कलुषों से विमुक्त होकर वह भी शिव के मन्दिर को चला गया था। राजा भी पितृगण का जो ऋण था उससे वसुन्धरा का परिपालन कर मुक्त होगया था ॥३१॥ धर्म पूर्वक अपने पुत्रों को उत्पन्न करके और निरर्गल यज्ञ करके तथा विप्रों की कामनाओं के अनुसार दान करके एवं पृथक् प्रकार के सुभोग भोगों का भोग करके मित्रगण को भूरिधन धान्य से समन्वित करके-स्त्रियों को कामों से भली भांति तृप्त करके और अपने राज्यासन पर पुत्र को अभिषिक्त करके राजा फिर अन्त में कुरु क्षेत्र को चला गया था ॥३२-३३॥ वहाँ पर अत्यन्त घोर तपश्चर्या करके और भगवान् शंकर की समर्चा करके तथा अपनी इच्छा से ही शरीर का त्याग करके परम पद को प्रयाण कर गया था ॥३४॥ इस स्थाणु तीर्थ के इस प्रभाव को जो भी कोई मनुष्य श्रवण करता है वह सभी प्रकार के पातकों से छुटकारा पाकर परम गति को प्राप्त हो जाया करता है ॥३५॥

४९—चतुर्मुख कृत शिव-स्तुति

चतुर्मुखानामुत्पत्तिं विस्तरेण ममानघ ।
पृथ्वीश्वराणां च तथा श्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥१
शृणु सर्वमशेषेण कथयिष्यामि तेऽनघ ।
ब्रह्मणः स्रष्टुकामस्य यद्वृत्तं पद्मजन्मनः ॥२
उत्पन्न एव भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ससर्ज सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥३
पुनश्चिन्तयतः सृष्टिं जज्ञे कन्या मनोरमा ।
नीलोत्पलदलश्यामा तनुमध्या सुलोचना ॥४
तां दृष्ट्वाऽभिमतां ब्रह्मा मैथुनाया जुहावताम् ।
तेन पापेन महता शिरोऽशीर्यत वेधसः ॥५
तेन शीर्णेन स ययौ तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
सन्निहत्य सरः पुण्यं सर्वपापक्षयावहम् ॥६
तत्र पुण्ये स्थाणुतीर्थे ऋषिसिद्धनिषेविते ।
सरस्वत्युत्तरे तीरे प्रतिष्ठाप्य चतुर्मुखं ॥७

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—चतुर्मुखों की उत्पत्ति हे अनघ ! मुझे विस्तार के साथ कहिए तथा पृथ्वी के ईश्वरों की उत्पत्ति भी श्रवण करने की मेरी इच्छा है। तब महा मुनीन्द्र सनत्कुमार जी ने कहा—हे अनघ ! सभी कुछ पूर्ण रूप से सुनो। मैं यह अशेष रूप से कहूँगा। सृष्टि की रचना करने की इच्छा वाले पद्मजन्मा को जो भी कुछ हुआ था। भगवान् लोक पितामह ब्रह्माजी ने समुत्पन्न होते ही समस्त स्थावर और चार भूतों का सृजन किया था ॥१-३॥ इसके अनन्तर फिर जब ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना करने का चिन्तन किया तो एक मनोरमा कन्या उत्पन्न हुई थी जो नील कमल के दल के तुल्य श्याम वर्ण वाली थी, जिसका मध्यभाग कृश था और दोनों सुन्दर नेत्र थे ॥४॥ उस अत्यन्त सुन्दरी अभिमत कन्या को देखकर ब्रह्माजी ने उसके साथ मैथुन करने के लिये उसे अपने निकट बुलाया था। उस महान् पाप से ब्रह्माजी का शिर शीर्ण हो गया था

॥५॥ उस तीर्थ से वह फिर सर्वलोक में विख्यात तीर्थ में गया था। सन्निहत्य पर परम पुण्यमय है और समस्त पापों के क्षय करने वाला है ॥६॥ ऋषि और सिद्धों के द्वारा निषेवित उस पुण्यस्थान तीर्थ में वहाँ पर सरस्वती के उत्तर भाग में तटपर चतुर्मुख ने शिव को प्रतिष्ठापित किया था ॥७॥

आराधयामास तदा धूपैर्गन्धैर्मनोरमैः ।
उपहारैस्तथा हृद्यै रुद्रसूक्तैर्दिनेदिने ॥८
तस्यैवं भक्तियुक्तस्य शिवपूजारतस्य च ।
स्वयमेवाजगामाय भगवान्नीललोहितः ॥६
तमागतं शिवं दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ स्तुतिं तस्य चकार ह ॥१०
नमस्तेऽस्तु महादेव भूतभव्यभवाश्रय ।
नमस्ते स्तुतिनित्याय नमस्त्रैलोक्यपालिने ॥११
नमः पवित्रदेहाय सर्वकल्मषनाशिने ।
चराचरगुरो गुह्य गुह्यानां च प्रकाशकृत् ॥१२
रोगा न यान्ति निपजः सर्वरोगविनाशन ।
चीरवाजिनसंवीत वीतशोक नमोऽस्तु ते ॥१३
वारिकल्लोलसंक्षुब्धमहाबुद्धिविघट्टन ।
त्वन्नामजापिनो देव न भवन्ति भवा भयाः ॥१४

उस समय में मनोरम धूप-गन्ध तथा परम सुन्दर उपहारों के द्वारा और प्रतिदिन रुद्र सूक्तों से शिव की समाराधना की थी ॥८॥ इस तरह से भक्ति की भावना में समास्थित और शिव के पूजन अनुरत उसके होने पर उसके समीप में नील लोहित भगवान् स्वयमेव आगये थे ॥९॥ लोक पितामह ब्रह्माजी ने आये हुए उन प्रभु शिव को देखकर भूमि में मस्तक टेककर प्रणाम किया और स्तुति की थी ॥१०॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे महादेव ! आप तो भूत-भव्य भव के आश्रय हैं। आपको मेरा नमस्कार है। स्तुति नित्य और त्रैलोक्य पालो आपके लिये नमस्कार है ॥११॥ पवित्रदेह वाले तथा समस्त कल्मषों के नाशक आपको

आपके लिये नमस्कार है ॥१७॥ फणियों के स्वामी शेष नाग द्वारा कही गई महिमावाले और फणीन्द्र के अंगद धारण करने वाले-फणीन्द्र के श्रेष्ठ हार वाले,भास्कर आपके लिये बारम्बार नमस्कार है॥१८॥इस प्रकार से स्तुति किये गये महादेव जी ब्रह्माजी से बोले—आपको होने वाले अर्थ में कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिए ॥१६॥ पहिले वाराह कल्प में जो आपका शिर मैंने अपहृत किया था वह चतुर्मुख हो गया है। यह कदाचित् शेष नहीं रहेगा ॥२०॥ इस सन्निहित तीर्थ में मेरे लिंगों की भक्ति भाव से प्रतिष्ठापित करके आप समस्त पापों से विमुक्त हो जायेंगे ॥२१॥

सृष्टिकामेन च त्वया यतोऽहं प्रेरितः किल ।
तेनाहं त्वा तथेत्युक्त्वा भूतेभ्यो दर्शनं गतः ॥२२
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा मग्नः सन्निहिते स्थितः ।
सुमहान्तं ततः कालं त्वं प्रतीक्षां मम करोः ॥२३
स्रष्टाऽहं सर्वभूतानां मनसा कल्पितस्त्वया ।
सोऽब्रवीत्त्वां तदा दृष्ट्वा मां मग्नं च ततोऽम्भसि ॥२४
यदि नैवाग्रजस्त्वेभ्यस्ततः स्रक्ष्याम्यहं प्रजाः ।
त्वयैवोक्तश्च नैवास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः ॥२५
स्थाणुरेष जले मग्नो विवशः कुरु मद्विधम् ।
स सर्वभूतानसृजद्दक्षादींश्च प्रजापतीन् ॥२६
यैरिमं प्राकरोत्सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम् ॥२७
जिघत्सवस्तदा ब्रह्मन्सहसा प्राद्रवस्तदा ।
संभक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवन् ॥२८

सृष्टि की रचना करने वाले आपने जो मुझे प्रेरित किया है उनसे मैंने 'तथास्तु'—अर्थात् ऐसा ही हो यह कह कर भूतों के लिये दर्शन को प्राप्त हुआ है ॥२२॥ दीर्घ काल तक तप करके सन्निहित में मग्न होकर स्थित हो। बहुत समय के पश्चात् तुमने मेरी प्रतीक्षा की थी ॥२३॥ मैं समस्त भूतों का स्रष्टा हूँ आपने मन से ही कल्पित किया है।

मेरा प्रणाम है। आप चराचर के गुरु है–परम गोपनीय है तथा जो गुह्य पदार्थ हैं उनको प्रकाश मे लाने वाले हैं ॥१२॥ भिषजों के द्वारा रोग नहीं जाया करते हैं और आप सभी रोगो के विनाश करने वाले हैं, आप कृष्ण मृग के चर्म से संवीत है तथा शोक से रहित हैं ऐसे प्रभु आपकी सेवा मे मेरा प्रणाम समर्पित है ॥१३॥ जल की तरगो से सक्षोभ को प्राप्त हुई महाबुद्धि की विघट्टन करने वाले आप हैं। हे देव ! आपके नाम का जो जाप किया करते हैं उनको फिर भव का आश्रय नहीं होता है ॥१४॥

नमस्ते नित्यनित्याय नमस्त्रैलोक्यनाशिने ।
शंकरायाप्रमेयाय व्याधीना शमनाय च ॥१५
परायापरिमेयाय सर्वभूतप्रियाय च ।
योगेश्वराय देवाय सर्वपापक्षयाय च ॥१६
नमः स्थाण्वे प्रसिद्धाय सिद्धवन्दिस्तुताय च ।
भूतसंसारदुर्गाय विश्वरूपाय ते नमः ॥१७
फणीन्द्रोक्तमहिम्ने ते फणीन्द्राङ्गदधारिणे ।
फणीन्द्रवरहाराय भास्कराय नमो नमः ॥१८
एव स्तुतो महादेवो ब्रह्माणं प्राह शंकरः ।
न च मन्युस्त्वया कार्यो भाविन्यर्थे कदाचन ॥१९
पुरा वाराह कल्पे ते यन्मयाऽपकृत शिरः ।
चतुर्मुखं च तदभूग्र कदाचिन्न शिष्यति ॥२०
अस्मिन्सन्निहिते तीर्थे लिङ्गानि मम भक्तितः ।
प्रतिष्ठाप्य विमुक्तस्त्व सर्वपापैर्भविष्यसि ॥२१

नित्य ही नित्य रूप से स्थित आपको नमस्कार है । त्रैलोक्य के के नाश करने वाले आपके लिये मेरा प्रणाम है । शकर, अप्रमेय और व्याधियों के शमन करने वाले आपको नमस्कार है ॥१५॥ पर, अपरिमेय, समस्त भूतों के प्रिय, योगेश्वर, सब पापो के क्षय करने वाले, देव के लिये नमस्कार है ॥१६॥ सिद्ध वन्दियो के द्वारा स्तुति किये गये प्रसिद्ध, भूतों के ससार के लिये दुर्ग रूप तथा विश्व के स्वरूप वाले

आपके लिये नमस्कार है ॥१७॥ फणियों के स्वामी शेष नाग द्वारा कही गई महिमावाले और फणीन्द्र के अंगद धारण करने वाले-फणीन्द्र के श्रेष्ठ हार वाले, भास्कर आपके लिये बारम्बार नमस्कार है॥१८॥इस प्रकार से स्तुति किये गये महादेव जी ब्रह्माजी से बोले—आपको होने वाले क्षयं में कभी भी क्रोध नहीं करना चाहिए ॥१९॥ पहिले वाराह कल्प में जो आपका शिर मैंने अपहृत किया था वह चतुर्मुख हो गया है। वह कदाचित् शेष नहीं रहेगा ॥२०॥ इस सन्निहित तीर्थ में मेरे लिंगों को भक्ति भाव से प्रतिष्ठापित करके आप समस्त पापों से विमुक्त हो जायँगे ॥२१॥

सृष्टिकामेन च त्वया यतोऽहं प्रेरितः किल ।
तेनाहं त्वा तथेत्युक्त्वा भूतेभ्यो दर्शनं गतः ॥२२
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा मग्नः सन्निहिते स्थितः ।
सुमहान्तं ततः कालं त्वं प्रतीक्षां मया करोः ॥२३
स्रष्टाऽहं सर्वभूतानां मनसा कल्पितस्त्वया ।
सोऽब्रवीत्त्वा तदा दृष्ट्वा मां मग्नं च ततोऽम्भसि ॥२४
यदि नैवाग्रजस्त्वेभ्यस्ततः स्रक्ष्यामहे प्रजाः ।
त्वयैवोक्तश्च नैवास्ति त्वदन्यः पुरुषोऽग्रजः ॥२५
स्थाणुरेष जले मग्नो विवशः कुरुमद्धितम् ।
स सर्वभूतानसृजद्दक्षादींश्च प्रजापतीन् ॥२६
यैरिमं प्राकरोत्सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम् ॥२७
जिघत्सवस्तदा ब्रह्मन्सहसा प्राद्रवस्तदा ।
सभक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहमुपाद्रवत् ॥२८

सृष्टि की रचना करने वाले आपने जो मुझे प्रेरित किया है उससे मैंने 'तथास्तु'—अर्थात् ऐसा ही हो यह कह कर भूतों के लिये दर्शन को प्राप्त हुआ हूँ ॥२२॥ दीर्घ काल तक तप करके सन्निहित में मग्न होकर स्थित हो। बहुत समय के पश्चात् तुमने मेरी प्रतीक्षा की थी ॥२३॥ मैं समस्त भूतों का स्रष्टा हूँ आपने मन से ही कल्पित किया है।

उस समय मे जल में मग्न मुझको देखकर वह तुमसे बोला था॥२४॥यदि कोई इनसे अग्रज नही है तो हम प्रजा का सृजन करते हैं। उस समय मे आपने कहा था-आपसे अन्य कोई भी अग्रज नही है ॥२५॥ यह स्थाणु विवश जल मे मग्न है इसे मेरे लिये कर देवें। उसने ही समस्त भूत और दक्ष आदि प्रजापतियो का सृजन किया था ॥२६॥ जिन्होने यह सब चार प्रकार का भूत ग्राम किया था। सृजन की हुई वह समस्त प्रजा क्षुधित होकर प्रजापति को ही खाने के लिये समुत्सुक हो हे ब्रह्मन् ! उसी समय दौड़ी थी। समद्यमाण त्राण चाहने वाला पितामह के पास दौड़ा था २७-२८॥

अथासा च महावृत्ति प्रजाना सविधीयताम् ।
दत्त ताभ्यस्त्वया ह्यन्नं स्थावराणां महौषधीः ॥२६
जङ्गमानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ।
विहितान्ना. प्रजाः सर्वा. पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥३०
ततो ववृधिरे सर्वाः प्रीतियुक्ताः परस्परम् ।
भूतग्रामे विवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरौ त्वयि ॥३१
समुत्तिष्ठञ्जलात्तस्मात्प्रजाः सद्दृष्टवानहम् ।
ततोऽहं ता· प्रजा दृष्ट्वा विहिता. स्वेन तेजसा ॥३२
क्रोधेन महता युक्तो लिङ्गमुत्पाट्य चाक्षिपम् ।
तत्क्षिप्त सरसो मध्ये ऊर्ध्वमेव यदा स्थितम् ॥३३
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन्स्थाणुरित्येष विश्रुत. ।
सकृद्दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥३४
प्रयाति परमं मोक्ष यस्मान्नावर्त्तते पुन. ।
यश्चेह तीर्थे निवसेत्कृष्णाष्टम्या समाहित. ॥३५

इसके पश्चात् प्रजाओं की महावृत्ति का सविधान करो,उस समय में आपने उनके लिये अन्न दिया था स्थावरो को महौषधि दी थी ॥२६॥ बलवानों मे जंगम भूत दुर्बल थे। इस तरह विहित अन्न वाली समस्त प्रजा फिर यथागत चलने लगी थी ॥३०॥ इसके अनन्तर समस्त प्रजा प्रीति से युक्त होती हुई परस्पर मे वृद्धि को प्राप्त हुई थी। जब यह

भूतों का समुदाय विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त हो गया तो लोकों के गुरु आप पूर्ण तय सन्तुष्ट हो गये थे ॥३१॥ उस जल से मैं उठा था इस के अनन्तर मैंने उस प्रजा को देखकर अपने तेज से विहित किया था ॥३२॥ महान् क्रोध से युक्त होकर उस लिंग को उखाड़कर प्रक्षिप्त कर दिया था। सर के मध्य में प्रक्षिप्त किया हुआ वह जब ऊर्ध्व में ही स्थित होगया था ॥३३॥ तभी से लेकर इस लोक में यह 'स्थाणु' इस नाम से विख्यात होगया था। इसके एक बार के ही केवल दर्शन करने से सब पापों से विमुक्त हो जाता है ॥३४॥ फिर वह विमुक्त मानव परम मोक्षपद को प्राप्त किया करता है। जहां से फिर प्राणी पुनर्जन्म प्राप्त नहीं किया करता है। जो पुरुष इस तीर्थ में समाहित होकर मास में कृष्ण पक्ष की अष्टमी में निवास किया करता है वह विमुक्ति प्राप्त करता है ॥३५॥

स मुक्तः पातकैः सर्वैरगम्यागमनोद्भवैः ।
इत्युक्त्वा भगवान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३६
ब्रह्मा विशुद्धपापस्तु पूज्य देवं चतुर्मुखम् ।
लिङ्गानि देवदेवस्य ससृजे शरमध्यतः ॥३७
आद्य ब्रह्मसरः पुण्य हरेः पार्श्वे प्रतिष्ठितम् ।
द्वितीय ब्रह्मसदनं स्वकीये ह्याश्रमे कृतम् ॥३८
सरस्यैव पूर्वदिग्भागे तृतीय च प्रतिष्ठितम् ।
चतुर्थं ब्रह्मणो लिङ्गं सरस्वत्यास्तटे स्थितम् ॥३९
कृतमेतानि तीर्थानि पुण्यानि पावनानि च ।
ये पश्यन्तिनिराहारास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥४०
कृते युगे हरेः पार्श्वे त्रेतायां ब्रह्मणाश्रमे ।
द्वापरे तस्य पूर्वेण सरस्वत्यास्तटे कलौ ॥४१
एतानि पूजयित्वा तु दृष्ट्वा भक्तिसमन्वितताः ।
विमुक्ताः कलुषैः सर्वैः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥४२

वह प्राणी अगम्या में गमन करने से समुत्पन्न पातकों से भी मुक्त होकर विशुद्ध हो जाया करता है। इतना कहकर भगवान् देव वहीं

पर अन्तर्धान होगये थे ॥३६॥ पापो से विशुद्ध ब्रह्माजी ने चतुर्मुख देव की पूजा की थी और सरके मध्य मे देव देव लिंगो का सृजन किया था ॥३७॥ आद्य परम पुण्य ब्रह्म सर है जो हरि के पार्श्व मे प्रतिष्ठित है। द्वितीय ब्रह्म सदन है जो अपने ही आश्रम मे किया है ॥३८॥ उसी के पूर्व दिग्भाग मे तृतीय की प्रतिष्ठा की है। चौथा ब्रह्म का लिंग सरस्वती के तट पर स्थित है ॥३९॥ ये तीर्थ पुण्य और पावन करने वाले किये हैं। जो पुरुप निराहार होकर इनका दर्शन करते हैं वे परम गति की अवश्य ही प्राप्ति किया करते हैं ॥४०॥ सत्ययुग मे हरि पार्श्व में त्रेता मे ब्रह्मा के आश्रम मे द्वापर मे उसके पूर्व भाग मे और कलियुग मे सरस्वती के तट पर स्थित हैं ॥४१॥ भक्ति भाव से समन्वित होकर इनका दर्शन और पूजन करके समस्त कलुषो से विमुक्त होकर परम गति को प्राप्त किया करते हैं ॥४२॥

सृष्टिकाले भगवता पूजितस्तु महेश्वरः ।
सरस्वत्युत्तरे तीरे नाम्ना ख्यातश्चतुर्मुखः ॥४३
त पूजयित्वा यत्नेन सोपवासो जितेन्द्रियः ।
अगम्या गमनैर्दोषैर्मुच्यते नात्र सशयः ॥४४
ततस्त्रेतायुगे प्राप्ते स्थाणोर्देवसमीपता ।
पूजित सुमहल्लिङ्ग तत्रापि च चतुर्मुखम् ॥४५
त प्रणम्य श्रद्धानो मुच्यते सर्वकिल्विषैः ।
लीलाशकरसभूतं तथा वै भानुशंकरम् ॥४६
तथैव द्वापरे प्राप्ते स्वाश्रमे प्राच्यशंकरम् ।
विमुक्तो राजसंभोवैर्वर्णसकरसभवैः ॥४७
ततः कृष्णचतुर्दश्यां पूजयित्वा तु मानवः ।
विमुक्त. पातकैः सर्वैरभोज्यस्यान्नसभवैः ॥४८
कलिकाले तु संप्राप्ते वसिष्ठाश्रममास्थितः ।
चतुर्मुख स्थापयित्वा ययौ सिद्धिमनुत्तमाम् ॥४९
तत्रापि ये निराहाराः श्रद्धाना जितन्द्रियाः ।
पूजयन्ति महादेवं ते यान्ति परम पदम् ॥५०

इत्येतत्स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यं कीर्त्तितं तव ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥५१

सृष्टि के काल मे भगवान् के द्वारा महेश्वर पूजित हुए थे। सरस्वती के उत्तर तीर पर चतुर्मुख-इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ।।४३।। उनका यत्न पूर्वक पूजन करके उपवास के सहित तथा इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष अगम्या स्त्री के गमन करने के दोषो से मुक्त हो जाया करता है—इसमे बिल्कुल भी संशय नही है ।।४४।। इसके पश्चात् त्रेतायुग के प्राप्त होने पर स्थाणु देव की समीपता हुई। वहाँ पर भी चतुर्मुख सुमहान् लिंग पूजित है। उसको प्रणाम करके श्रद्धा भाव वाला पुरुष सम्पूर्ण किल्विषो से मुक्ति पा जाता है। यह लीना शंकर सम्भूत तथा भानु शंकर है ।।४५-४६।। उसी भाँति द्वापर प्राप्त हो जाने पर अपने आश्रम मे शंकर की समर्चना करके सर्व संकर सम्भव राजस भावो से विमुक्त हो गया था ।।४७।। इसके पश्चात् कृष्ण पक्ष को चतुर्दशी मे मानव पूजन करके अभोज्य अन्न से समुत्पन्न समस्त पातकों से विमुक्त होता है ।।४८।। कलिकाल के प्राप्त होने पर वसिष्ठाश्रम मे आस्थित होकर चतुर्मुख की स्थापना कर सर्वोत्तमा सिद्धि को प्राप्त होगया था ।।४६।। वहाँ पर जो निराहार रहकर श्रद्धा से परिपूर्ण हृदय वाले जितेन्द्रिय पुरुष महादेव की पूजा किया करते हैं वे परम पद को प्राप्त होते हैं ।।५०।। यह स्थाणु तीर्थ का माहात्म्य आपको बतला दिया है जिसको श्रवण कर मनुष्य सब पापो से मुक्त हो जाता है ।।५१।।

५०—कुरुक्षेत्र माहात्म्य वर्णन

ततोऽब्रवीद्देववरस्तु तीर्थं यस्माद्भवानेकतया प्रयाति ।
पृथूदकेत्येव च नाम तुभ्यं भविष्यते तीर्थवरः पृथिव्याः ॥१
एवं पृथूदकं देवाः पुण्यं पापभयापहम् ।
गच्छध्वं महातीर्थं यावित्स्यन्तो निबोधत ॥२

यदा मृगशिरोऋक्षे शशिसूर्यौ वृहस्पतिः ।
तिष्ठन्ति सा तिथिः पूर्वा त्वक्षया परिगीयते ॥३
तद्गच्छध्व सुरश्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती ।
पितृनाराधयध्व च तत्र श्राद्धेन भक्तितः ॥४
ततो मुरारिवचन दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ।
समाजग्मु कुरुक्षेत्रे पुण्य तीर्थं पृथूदकम् ॥५
तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे वृहस्पतिमचोदयन् ।
विवस्वन्भगवन्नृक्षमिद मृगशिरः कुरु ॥६
पुण्या तिथि पापहरा तव कालोऽयमागतः ।
प्रवर्त्तते रविस्तत्र चन्द्रमाऽपि विशत्यसौ ॥७

महामुनीन्द्र श्री सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर देवकर ने तीर्थ से कहा था जिससे आप एकतया प्रयाण करते है । पृथिवी में श्रेष्ठ वर तीर्थ आप पृथूदक इसी नाम वाले होगे ॥१॥ इस प्रकार से परम पुण्य और पापो के भय का अपहरण करने वाला हे देवगण ! यह पृथूदक तीर्थ है । उसी महान् तीर्थ पर जाइए और याचना करें समस्त ॥२॥ जिस समय मे मृगशिरा नक्षत्र मे चन्द्र,सूर्य और वृहस्पति स्थित होते है वही तिथि पूर्वा और अक्षय परिगीत होती है ॥३॥ सो हे सुरो मे श्रेष्ठ गण ! आप लोग वहाँ पर जाइये जहा प्राची सरस्वती है । वहा पर भक्ति भाव से श्राद्ध के द्वारा अपने पितृगण का समाराधन करो ॥४॥ इसके अनन्तर मुरारि के वचन को श्रवण कर इन्द्र के सहित समस्त देवगण कुरुक्षेत्र मे जो पृथूदक पुण्य क्षेत्र है वहा आगये थे ॥५॥ वहाँ सब सुरगण स्नान करके वृहस्पति को प्रेरित करने लगे ।हे भगवन् ! हे विवस्वन् ! यह मृगशिरा नक्षत्र करदो ॥६॥ पुण्य पापो के हरण करने वाली तिथि करो । अब आपका यह काल आगया है । वहाँ रवि प्रवृत्त होते हैं और यह चन्द्र भी प्रवेश कर रहा है ॥७॥

तवायत्त गुरो कार्यं सुराणा त्वत्पुरःध्व वः ।
इत्येवमुक्तो दवैस्तु देवाचार्योऽब्रवीदिदम् ॥८

यदि वर्षाधिपोऽहं स्यां ततो यास्यामि देवताः ।
बाढमूचुः सुराः सर्वे ततोऽसौ प्राक्रमन्मृगम् ॥६
आषाढे मासि मार्गर्क्षे चन्द्रक्षयतिथिर्हि या ।
तस्यां पुरन्दरः प्रीतः पिण्डं पितृषु भक्तितः ॥१०
प्रादात्तिलमधून्मिष्टं हविष्यान्नं कुरुष्व च ।
ततः प्रीतास्तु पितरस्ताः प्राहुस्तनयां निजाम् ॥११
मेना देवाश्च शैलाय हिमयुक्ताय वै ददुः ।
तां मेनां हिमवाँल्लब्ध्वा प्रमादार्द्वर्तेऽवथ ।
प्रीतिमानभवच्चासौ रेमे स तु यथेच्छया ॥१२
ततो हिमाद्रिः पितृकन्यया समं सतर्पयन्वै विषयान्यथेष्टम् ।
अजीजनत्सा तनयाश्च तिस्रो रूपातियुक्ताः सुरयोषितस्तु ॥१३

हे गुरो ! यह सुरों का कार्य आपके ही अधीन है वह आप हमारा कार्य कर देवें । इस प्रकार से देवों के द्वारा कहे जाने पर देवाचार्य यह वचन बोले ॥८॥ यदि मैं वर्ष का अधिप होऊं तो हे देवगण ! मैं चला जाऊंगा । तब सब सुर गणों ने कहा—'बहुत अच्छा' और सब देवगणों के कहने पर मृगशिर पर प्रक्रान्त हुए थे ॥६॥ आषाढ मास में मृगशिरा नक्षत्र में जो चन्द्रक्षय तिथि थी उसमें प्रसन्न होकर इन्द्र ने भक्ति में पितृगण को पिण्ड दिया था ॥१०॥ तिल मधु से उन्मिष्ट हविष्यान्न करिये, इस तरह पिण्ड दिया था । इसके पश्चात पितृगण ने प्रसन्न होकर उस अपनी तनया से कहा था ॥११॥ देवों ने हिम से युक्त शैल के लिये मेना देदी थी । उस मेना को हिमवान् ने प्राप्त करके वर्त्तो के विषय में प्रमाद युक्त हो गया था । और वह प्रीतिवाला हो गया था । उसने यथेच्छा से रमण किया था ॥ १२ ॥ इसके पश्चात् हिमवान् पितृकन्या के साथ यथेष्ट विषयों को सतृप्त करता हुआ रहने लगा था । उसने भी तीन तनयाओं को जन्म दिया था जो रूप से अतियुक्त थी और सुरयोषित थी ॥१३॥

५१—शिव-उमा संवाद

मेनाया कन्यकास्तिस्रो जाता रूपगुणान्विता: ।
सुनाभ इति च ख्यातश्चतुर्थस्तनयोऽभवत् ॥१
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्ताम्बरविभूषिता ।
रागिणी नाम सजाता ज्येष्ठा मेनासुता मुने ॥२
शुभाङ्गी पद्मपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्धजा ।
श्वेतमाल्याम्बरधरा कुटिला नाम चापरा ॥३
नीलाञ्जनचयप्रख्या नीलेन्दीवरलोचना ।
रूपेणानुपमा काली जघन्या मेनकासुता ॥४
जातास्ता: कन्यकास्तिस्र: षडब्दास्पुरतो मुने ।
कर्तुं तप: प्रयाताश्च देवास्ता ददृशु: शुभा: ॥५
ततो दिवाकर: सर्वैर्वसुभिश्च तपस्विनी ।
कुटिला ब्रह्मलोकं तु नीता शशिकरप्रभा ॥६
अथोचुर्देवता: सर्वा: किं त्वियं जनयिष्यते ।
पुत्रं महिषहन्तारं ब्रह्मन्व्याख्यातुमर्हसि ॥७

पुलस्त्य मुनि ने कहा—मेना से तीन कन्याओं ने जन्म लिया था जो रूप-लावण्य के गुणों से समन्वित थीं। सुनाभ—इस शुभ नाम से विख्यात चौथा एक तनय उत्पन्न हुआ था ॥१॥ हे मुने ! रक्त अंगों वाली रक्त नेत्रों से युक्त तथा रक्त वस्त्रों से विभूषित रागिणी नाम वाली ज्येष्ठ मेना की सुता समुत्पन्न हुई थी ॥२॥ शुभ अंगों वाली पद्मपत्र के समान नेत्रों वाली तथा नील एवं कुञ्चित केशों वाली-श्वेत माल्य और वस्त्र धारिणी कुटिला नाम वाली दूसरी कन्या थी ॥३॥ नीलाञ्जन चय के समान प्रख्या ओर नील इन्दीवर के तुल्य नेत्रों वाली रूप सौन्दर्य में अनुपम जघन्य काली नाम वाली मेनका की सुता थी ॥४॥ वे समुत्पन्न तीनों कन्याऐं छै वर्ष से पहिले ही हे मुने ! तपस्या करने के लिये चली गईं थी। देवगण ने उन शुभाओं को देखा था ॥५॥ इसके अनन्तर सब दिवाकर तथा वसुगण के द्वारा तपस्विनी

कुटिला ब्रह्मलोक को ले जाई गयी थी जो शशिकर के समान प्रभा वाली थी ॥६॥ इसके अनन्तर सब देवगण ने कहा क्या यह हे ब्रह्मन् ! महिषासुर के हनन करने वाला पुत्र पैदा करेगी ? आप इसकी व्याख्या करने के योग्य होते हैं ॥७॥

ततोऽब्रवीत्सुरपतिर्नेयं शक्ता तपस्विनी ।
शार्वं धारयितुं तेजो वराकीमुच्यतां त्वियम् ॥८
ततस्तु कुटिला क्रुद्धा ब्रह्माणं प्राह नारद ।
तथा यतिष्ये भगवन्यथा शार्वं सुदुर्धरम् ॥६
धारयिष्याम्यहं तेजस्तथैव शृणु सत्तम ।
तपसाऽहं सुतप्तेन समाराध्य जनार्दनम् ॥१०
यथा हरस्य मूर्धानं नमयिष्ये पितामह ।
तथा देव करिष्यामि सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥११
ततः पितामहः क्रुद्धः कुटिलां प्राह दारुणाम् ।
भगवानादिकृद्ब्रह्मा सर्वेशोऽपि महामुने ॥१२
यस्मान्मद्वचनं पापे न क्षान्तं कुटिले त्वया ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धा सर्वाऽस्त्वापो भविष्यसि ॥१३
इत्येवं ब्रह्मणा शप्ता हिमवद्दुहिता मुने ।
आपोमयी ब्रह्मलोकं प्लावयामास वेगिनी ॥१४

इसके उपरान्त सुरपति ने कहा था—यह विचारी तपस्विनी भगवान् शिव के तेज को धारण करने में समर्थ नहीं है । इसको छोड़ दो ॥८॥ फिर हे नारद ! कुटिला क्रुद्ध होकर ब्रह्माजी से बोली—मैं वैसा ही यत्न करूंगी हे भगवन् ! जिससे भगवान् शिव का सुदुर्धर तेज धारण कर सूंगी । हे सत्तम ! आप मेरा कथन श्रवण करें । मैं भली भाँति किये तप से भगवान् जनार्दन का समाराधन करूंगी ॥६-१०॥ हे पितामह ! जिससे मैं हर के मूर्धा को नमित कर दूंगी । हे देव ! मैं वैसा ही सब कुछ करूंगी-यह सब मैंने बिल्कुल सत्य-सत्य ही कहा है ॥११॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इसके पश्चात् पितामह क्रोधित होकर उस दारुण कुटिला से बोले जो भगवान् आदिकृत हे महामुने! और सर्वेश

थे ॥१२॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे कुटिले ! हे पापे ! क्योंकि तूने मेरे कथित वचन को सहन नहीं किया था इसीलिए मेरे शाप निर्दग्धा होकर सब में आप स्वरूपा हो जायगी ॥१३॥ इस प्रकार से ब्रह्माजी के द्वारा शाप दी हुई वह हिमवान् की दुहिता हे मुने ! आपोमयी (जल स्वरूपा) होगई थी और वेग वाली उसने सम्पूर्ण ब्रह्मलोक को प्लावित कर दिया था ॥१४॥

तामुद्धतजलां दृष्ट्वा प्रबबन्ध पितामहः ।
ऋक्सामाथर्वयजुर्भिर्बन्धनैः सर्वतो दृढम् ॥१५
सा बद्धा सस्थिता ब्रह्म स्तत्रैव गिरिकन्यका ।
आपोमयी प्लावयन्ती ब्रह्मणो विमलालयम् ॥१६
या सा रागवती नाम साऽपि नीता सुरैर्दिवम् ।
ब्रह्मणे ता निवेद्यैव तामप्याह प्रजापति ॥१७
साऽपि क्रुद्धाऽब्रवीच्चैन तथा तप्स्ये महत्तपः ।
यथा मन्नामसयुक्तो महिपघ्नो भविष्यति ॥१८
ता शशापाथ स ब्रह्मा सध्यारागो भविष्यति ।
या मद्वाक्यमलङ्घ्य वै सुरैर्लङ्घयसे बलात् ॥१९
साऽपि जाता मुनिश्रेष्ठ सध्यारागवती ततः ।
प्रतीच्छन्कृत्तिकाभागे शैलेय्या विग्रह दृढम् ॥२०
ततो गते कन्यके द्वे ज्ञात्वा मेना तपस्विनी ।
तपसो वारयामास उमेत्येवाब्रवीच्च सा ॥२१

अत्यन्त उद्धत जल वाली उसको देखकर पितामह ने ऋक्–साम अथर्व और यजु के बन्धनों से सब ओर से दृढ़ता पूर्वक उसको बाँध दिया था ॥१५॥ हे ब्रह्मन् ! वह गिरि कन्या बद्ध होकर वहीं पर सस्थित होगई थी जो कि जलमयी ब्रह्मा जी के विमल आलय का प्लावन कर रही थी । ॥१६॥जो दूसरी रागवती नाम वाली एक कन्या थी वह भी देवों के द्वारा दिव लोक में ले जायी गई थी । जैसे ही ब्रह्मा जी को उसे निवेदन किया था वैसे प्रजापति ने उससे कहा था ॥१७॥ वह भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर इनसे बोली थी कि मैं महान् तपश्चर्या

यहा ले आओ ॥२४॥ तब सब देवगण वहाँ पर आगये थे और सबने शैलनन्दिनी को देखा था। उस तपस्या के कारण प्रवृद्ध तेज से वे सब विजित हो गये थे और आगे उसके समीप मे उपसर्पण करने की शक्ति उसमे नहीं रही थी। ॥२५॥ मरुद्गण के साथ इन्द्र को उसने अपने तेज से निर्धून कर दिया था। इसके अति अधिक तेज को ब्रह्मा जी से निवेदन करके इन्द्र वहीं प्रतिष्ठित हो गया था ॥२६॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा जी ने देवों से कहा निश्चय ही यह शंकर की वल्लभा है। आप तेज से युक्त होते हुए भी निश्चय ही विक्षिप्त और हत प्रभ हो गये हैं ॥२७॥ इसलिये आप लोग अपने स्थानों को चले जाइये और अब अपने सन्ताप का त्याग कर दीजिए। अबतो यही समझ लो कि तारक के सहित महिष रण मे निहत ही होगया है ॥२८॥

इत्येवमुक्ता देवेन ब्रह्मणा सेन्द्रकाः सुराः।
जग्मु. स्वान्येव धिष्ण्यानि सद्यो वै विगतज्वराः ॥२९
उमामपि तपस्यन्ती हिमवान्पर्वतेश्वरः।
निवर्त्य तपसस्तस्मात्सदारो ह्यनयद् गृहान् ॥३०
देवोऽप्याश्रित्य तद्रौद्र व्रत नाम निराश्रयम्।
विचचार महाशैलान्मेरुप्राग्र्यान्महामतिः ॥३१
स कदाचिन्महाशैल हिमवन्त समागतः।
तेनार्चितः श्रद्धयाऽसौ ता रात्रिमवसद्धरः ॥३२
द्वितीयेऽह्नि गिरीशेन महादेवो निमन्त्रितः।
इहैव तिष्ठस्व विभो तपःसाधनकारणात् ॥३३
इत्येवमुक्तो गिरिणा हरश्चक्रे मति च ताम्।
तथा चाश्रममाश्रित्य त्यक्त्वा स स्वं निराश्रमम् ॥३४
वसतोऽप्याश्रमे तस्य देवदेवस्य शूलिनः।
त देशमगमत्कान्ती गिरिराजसुता शुभा ॥३५

इस प्रकार से देव ब्रह्माजी के द्वारा कहे गये समस्त देवगण जिनमें इन्द्रदेव भी थे अपने-अपने स्थानों को तुरन्त ही विगत सन्ताप वाले होकर चले गये थे ॥२९॥ पर्वतों का ईश्वर हिमवान् भी

तपश्चर्या करती हुई उमा को भी उस तपसे निवृत्त कराकर अपनी स्त्री के सहित गृह में ले आये थे ॥३०॥ महान् मतिवाले देव भी निराश्रय उस रौद्र वन का आश्रय लेकर मेरुप्रमुख अर्थात् जिन में मेरु सर्वशिरोमणि है ऐसे महान् शैलों पर विचरण किया करते थे ॥३१॥ वह देवेश्वर एक बार किसी समय में महाशैल हिमवान पर आ गये थे। हिमवान् के द्वारा बहुत ही अधिक श्रद्धा से इन देवेश का अर्चन किया था और इनने वहां पर उसमें निवास किया था ॥३२॥ दूसरे दिन में गिरीश ने महादेव जी को निमन्त्रित किया था और प्रार्थना की थी—हे विभो ! तपस्या करने का साधन होने के कारण से आप यहीं पर ठहरिए ॥३३॥ इस प्रकार से गिरि के द्वारा कहे हुए भगवान हर ने उसी तरह की बुद्धि बना ली थी तथा अपने निराश्रय का त्यागकर के उन्होंने आश्रम का आश्रय ग्रहण कर लिया था ॥३४॥ देवों के भी देव शूली उनके आश्रय में निवास करने पर भी उसी देश में गिरिराज की पुत्री शुभा—काली चली गई थी ॥३५॥

तामागतां हरो दृष्ट्वा भूयोजातां प्रियां सतीम् ।
स्वागतेनाभिसंपूज्य तस्थौ योगरतो हरः ॥३६

सा चाभ्येत्य वरारोहा कृताञ्जलिपरिग्रहा ।
ववन्दे चरणौ शैले सखीभिः सह भामिनी ॥३७

ततस्तु सुचिराच्छर्वः समीक्ष्य गिरिकन्यकाम् ।
न युक्तं चवमुक्त्वाऽथ सगणोऽन्तर्दधे तत. ॥३८

साऽपि शर्व वचो रौद्रं श्रुत्वा ज्ञानसमन्विता ।
अन्तर्दुःखेन दह्यन्ती पितरं प्राह पार्वती ॥३९

तात यास्ये महारण्ये तप्तुं घोरं महत्तपः ।
आराधनाय देवस्य शंकरस्य पिनाकिनः ॥४०

तथेत्युक्तं वचः पित्रा पादे तस्यैव विस्तृते ।
ललिताख्या तप स्तेपे हराराधनकाम्यया ॥४१

तस्याः सख्यस्तदा देव्याः परिचर्या तु कुर्वते ।
समित्कुशफलं चापि मूलाहरणमादितः ॥४२

उनको समागत देखकर भगवान् हर ने पुनः समुत्पन्न हुई अपनी प्यारी सती को समझकर उनका स्वागत कर भली भाँति सत्कार किया था और फिर स्वयं योग में विरत होकर स्थित होगये थे ।।३६।। वह वरारोहा वहाँ आकर अपने दोनों हाथों को जोड कर स्थित होगई थी और शैल पर उस भामिनी ने सखियों के समुदाय के साथ चरणों की वन्दना की थी ।।३७।। इसके पश्चात् बहुत समय के अनन्तर भगवान् शिव ने गिरिकन्या को देखा था और इस प्रकार से युक्त नहीं है—यह कहकर वह पुनः गणों के सहित अन्तर्धान होगये थे ।।३८।। वह भी ज्ञान से समन्वित पार्वती इस प्रकार के रौद्र वचन को श्रवण कर अन्तर दुःख से दग्ध होती हुई अपने पिता से बोली ।।३९।। हे तात ! मैं तो अब महारण्य में परम घोर तपश्चर्या करने के लिये जाऊंगी और वहाँ पर पिनाकी शंकर देव की समाराधना करूंगी ।।४०।। पिताने भी तथास्तु अर्थात् ऐसा ही करो-यह वचन कह दिया था। फिर उसी हिमवान् एक विशाल पाद पर शिव भगवान् की आराधना की कामना से ललिता नाम वाली देवी ने तप किया था ।।४१।। उसकी सखियां उस समय में समिधा, कुशा, फल, मूल, आदि के समाहरण आदि की क्रिया करके उस देवी की पूर्णतया परिचर्या किया करती थी ।।४२।।

विनोदनार्थं पार्वत्या मृण्मयः शूलधृग्वरः ।
कृतश्च तेजोयुक्तश्च रुद्रो मेऽस्त्विति साऽब्रवीत् ।।४३
पूजां करोति तस्यैव तं पश्यन्ती मुहुर्मुहुः ।
ततोऽस्यास्तुष्टिमगमच्छ्रद्धया त्रिपुरान्तकृत् ।।४४
वटुरूपं समाधाय आषाढी मुञ्जमेखली ।
यज्ञोपवीती छत्री च मृगाजिनधरस्तथा ।।४५
धमण्डलुव्यग्रकरो भस्मारुणितविग्रहः ।
प्रत्याश्रमं पर्यटन्स तं काल्याश्रममागतः ।।४६
तमुत्थाय तदा बाली सखीभिः सह नारद ।
पूजयित्वा यथान्यायं पर्यपृच्छदिदं ततः ।।४७

कस्मा दागम्यते भिक्षो कुत्र स्थाने तवाश्रमः ।
कुतस्त्वं परिगन्तासि मम शीघ्रं निवेदय ॥४८

ममाश्रमपद बाले वाराणस्यां शुचिव्रते ।
अथतत्तीर्थयात्रायां गमिष्यामि पृथूदकम् ॥४९

पार्वती ने विनोदन के लिये एक मृण्मय अर्थात मृत्तिका से रचित शूलधारी भेद्र रुद्र तेज से युक्त किया था वही मेरे होवे ऐसा उस देवी ने कहा था ॥४३॥ उसी पार्थिव शिव की वह देवी पूजा किया करती थी और वारम्वार उसी का दर्शन किया करती थी । इसके पश्चात् देवी की श्रद्धा से त्रिपुरारि प्रभु परम तुष्टि को प्राप्त हो गये थे ॥४४॥ मुञ्ज की मेखला धारण करने वाला आषाढधारी शिव एक बटु का स्वरूप रखकर यज्ञोपवीत पहिने हुए छत्र और कृष्ण मृगछाला लेकर वहाँ आये थे । उनके हाथ में कमण्डलु लग रहा था और भस्म से उनका पूरा शरीर अरुणित हो रहा था । प्रत्येक आश्रमो मे पर्य्यटन करते हुए फिर अन्त मे उसी काली के आश्रम में आगये थे॥४५-४६॥हे नारद ! उस समय में काली ने सखियो के साथ उठकर उसकी पूजा करके यथान्याय यह पूछा था ॥४७॥ उमा देवी ने कहा—हे भिक्षो ! आप किस स्थान से आरहे हैं और किस स्थान मे आपका आश्रम है ? आप किस प्रयोजन से परिगमन करने वाले हैं—यह सभी कुछ मुझे शीघ्र बतलाइये॥४८॥भिक्षु ने कहा-हे बाले ! आपका व्रत तो परम शुचि है। मेरा आश्रम वाराणसी मे हैं। अब तो मैं तीर्थ यात्रा के लिये निकला हूँ और पृथूदक नामक तीर्थ को जाऊगा ॥४९॥

किं पुण्यं तत्र विप्रेन्द्र यद्यासि त्वं पृथूदके ।
पथि स्नानेन च फलं केषु किं लब्धवानसि ॥५०

मया स्नान प्रयागे तु कृतं प्रथममेव हि ।
ततोऽथ तीर्थे कुब्जाम्रे जयन्ते चण्डिकेश्वरे ॥५१

बन्धुवृन्दे च कर्कन्धे तीर्थे कनखले तथा ।
सरस्वत्यामग्निकुण्डे भद्रायां तु त्रिविष्टपे ॥५२

कौनटे कोटितीर्थे च तक्षके च कृशोदरि ।
निष्कामेन कृत स्नानं ततोऽभ्यागा तवाश्रमम् ॥५३
इहस्थां त्वा समाभाष्य गमिष्यामि पृथूदकम् ।
पृच्छामि यदहं त्वां वै तत्र न क्रोद्धुमर्हसि ॥५४
अहं यस्तपसाऽऽत्मानं शोषयामि कृशोदरि ।
बाल्येऽपि सयततनुस्ततः श्लाघ्य द्विजन्मनाम् ॥५५
किमर्थं भवती रौद्रं प्रथमे वयसि स्थिता ।
तपः समाश्रिता भीरु सशयः प्रतिभाति मे ॥५६

देवी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! यहां पर क्या पुण्य होता है जिसमे कि आप उस पृथूदक तीर्थ मे जारहे हैं । मार्ग मे स्नान करने से किन २ तीर्थों मे क्या फल आपने प्राप्त किया है ॥५०॥ देवी पार्वती के इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए वटुक भिक्षु ने कहा—मैंने सर्व प्रथम तो प्रयाग में स्नान किया था । इसके अनन्तर कुब्जाम्र तीर्थ मे, जयन्त, चण्डिकेश्वर, बन्धुवृन्द, कर्कन्ध, तीर्थ, तथा कनखल, सरस्वती, अग्नि, कुण्ड, भद्रा, त्रिविष्टप, कौनट, कोटि तीर्थ मे हे कृशोदरि ! निष्काम भाव से मैंने स्नान किया है । इसके पश्चात मैं तुम्हारे इस आश्रम मे आया हूँ ॥५१-५३॥ यहाँ पर स्थित आपसे सम्भाषण करके अब पुन. पृथूदक तीर्थ को जाऊ गा । मैं आप से अब जो कुछ भी पूछता हूं उसमे आप क्रोध न करने के योग्य होती हैं ॥५४॥ हे कृशोदरि ! मैं जो तप से अपने आपका शोषण करता हूँ । बचपन मे भी इस प्रकार से सयत शरीर वाला मैं हो रहा हूँ इससे द्विजन्माओं मे श्लाघा के योग्य हूँ ॥२५॥ किन्तु आप इस प्रथम अवस्था ही मे ऐसे रौद्र तप का समाश्रम ग्रहण करके किस प्रयोजन के लिये स्थित हो रही हैं । हे भीरु ! मुझे कुछ सशय प्रतीत हो रहा है ॥५६॥

प्रथमे वयसि स्त्रीणा सह भर्त्रा विलासिनि ।
सुभोगा भोगिताः काला व्रजन्ति स्थिरयौवने ॥५७
तपसा वाञ्छयन्तीह गिरिजे सचराचराः ।
रूपाभिजनमैश्वर्यं तच्च ते वर्त्तते बहु ॥५८

समान परम कोमल आपका कर शिव के सर्पों से ग्रहण करेगा ! ॥६३॥

तथा दुकूलाम्बरशालिनी त्वं
मृगारिचर्माभिवृतस्तु रुद्रः ।
त्वं चन्दनाक्ता स च भस्मभूषितो न
युक्तरूपं प्रतिभाति मे त्विदम् ॥६४
एवं वादिनि विप्रेन्द्र पार्वती ...
मामेवं वद भिक्षो त्वं हरः स...
शिवो वाऽप्यथवा भीमः सधनो ...
अलंकृतो वा देवेशस्तथा ...
यादृशस्तादृशो वाऽपि स मे नाथो
निवार्यतामय भिक्षुर्विवक्षुः स्फुरित...
न तथा निन्दकः पापो यथा श्रोता
इत्येवमुक्त्वा वरदा ...
ततोऽस्यजद्विक्षुरूपं ...
भूत्वोवाच प्रिये गच्छ स्वमेव भवनं .
तवार्थाय प्रहेष्यामि ...
गच्छेह रुद्रगीहन्त्या मृन्मयश्चेश्वरः
असौ गद्र भरेश्येवं ख्यातो लोके .

और भी वह बात है कि आप तो ... वाली हैं और वह रुद्र तो व्याघ्र के चर्म ... आपका तो शरीर सर्वदा चन्दन से ... भस्म से भूषित रहने वाले हो रहा करते ... प्रतीत होता ॥६४॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे ... इस प्रकार से कहने पर पार्वती ने भिक्षु से ... आप ऐसा मत बोलो ! भगवान् हर तो ... से अत्यधिक हैं ॥६५॥ वह शिव हों अथवा ... वह धनैश्वर्य सम्पन्न हों अथवा निर्धन हों, वह ...

अनलंकृत हों ॥६६॥ वे चाहे जैसे भी हों किन्तु उसी प्रकार के मेरे नाथ होंगे। इतना कहकर पार्वती ने एक सखी से कहा—हे शशि प्रभे ! इस भिक्षु को यहाँ से भगादो, यह अपने होठ फड़का रहा है ऐसा मालूम होता है कि आगे और कुछ भी बोलना चाहता है। निन्दा करने वाला उतना पापी नहीं होता है जितना उसकी हुई निन्दा का श्रोता पाप का भागी हुआ करता है ॥६७॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इतना ही कहकर वह वरदा वहाँ से उठना चाहती थी। इसके पश्चात् उस भिक्षु ने अपना रूप त्याग दिया था और स्वरूप स्थित शिव हो गये थे ॥६८॥ शिव अपने स्वरूप मे होकर बोले—हे प्रिये ! अब तुम अपने पिता ही के घरको जाओ। अब तेरे प्रयोजन के लिये मैं महर्षियों को हिमवान् के के घर में भेजूंगा ॥६६॥ और जो यहां पर रुद्र को चाहती हुई मृन्मय रुद्र बनाया था। यह 'मद्रेश्वर'—इस नाम से लोक मे प्रसिद्ध होंगे ॥७०॥

देवदानवगन्धर्वयिक्षाः किंपुरुषोरगाः।
पूजयिष्यन्ति सततं मानवाश्च शुभेप्सवः ॥७१
इत्येवमुक्ता देवेन गिरिराजसुता मुने।
जगामाम्बरमाविश्य स्वमेव भवनं पितुः ॥७२
शङ्करोऽपि महातेजा विसृज्य गिरिकन्यकाम्।
पृथूदकं जगामाथ स्नानं चक्रे विधानतः ॥७३
ततस्तु देवप्रवरो महेश्वरः पृथूदके स्नानमपास्तकल्मषः।
कृत्वा सनन्दी सगणःसवाहनो महागिरिं मन्दरमाजगाम ॥७४
आयाति त्रिपुरान्तके सह गणैः पर्यायतः
सप्तभिरारोहत्पुलको यमो गिरिवरः संहृष्टचित्तःक्षणात्।
चक्रे दिव्यफलैर्जलेन शुचिना मूलैश्च कन्दादिभिः
पूजां सर्वगणेश्वरैः सह विभोरद्रिस्त्रिनेत्रस्य तु ॥७५

जो अपना शुभ चाहने वाले मानव हैं वे तथा देव-दानव, गन्धर्व, यक्ष और किम्पुरुष तथा उरग सभी इनकी निरन्तर पूजा करते हैं ॥७१॥ हे मुने ! इस प्रकार से देवेश्वर के द्वारा कहे जाने पर वह गिरि-

समान परम कोमल आपका कर शिव के सर्पों से युक्त कर को कैसे ग्रहण करेगा ! ॥६३॥

तथा दुकूलाम्बरशालिनी त्वं
मृगारिचर्माभिवृतस्तु रुद्र ।
त्वं चन्दनाक्ता स च भस्मभूषितो न
युक्तरूपं प्रतिभाति मे त्विदम् ॥६४
एवं वादिनि विप्रेन्द्र पार्वती भिक्षुमब्रवीत् ।
मामैवं वद भिक्षो त्वं हरः सर्वगुणाधिकः ॥६५
शिवो वाऽप्यथवा भीमः सधनो निर्धनोऽथवा ।
अलंकृतो वा देवेशस्तथा वाऽप्यनलंकृतः ॥६६
यादृशस्तादृशो वाऽपि स मे नाथो भविष्यति ।
निवार्यतामयं भिक्षुर्विवक्षुः स्फुरिताधरः ।
न तथा निन्दकः पापी यथा श्रोता शशिप्रभे ॥६७
इत्येवमुक्त्वा वरदा समुत्थातुमथैच्छत ।
ततोऽत्यजद्भिक्षुरूपं स्वरूपस्थोऽभवच्छिवः ॥६८
भूत्वोवाच प्रिये गच्छ स्वमेव भवनं पितुः ।
तवार्थाय महेष्यामि महर्षीन्हिमवद्गृहे ॥६९
यच्चेह रुद्रमीहन्त्या मृन्मयस्त्वेश्वरः कृतः ।
असौ भद्रेश्वरेत्येव ख्यातो लोके भविष्यति ॥७०

और भी यह बात है कि आप तो दुकूलाम्बरों को धारण करने वाली हैं और वह रुद्र तो व्याघ्र के चर्म को धारण करने वाले हैं। आपका तो शरीर सर्वदा चन्दन से अक्त रहता है और वह शिव तो भस्म से भूषित रहने वाले ही रहा करते हैं। मुझे तो यह युक्त नहीं प्रतीत होता ॥६४॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! भिक्षु के इस प्रकार से करने पर पार्वती ने भिक्षु से कहा—हे भिक्षुवर ! आप ऐसा मत बोलो ! भगवान् हर तो सर्व प्रकार के गुणों से अत्यधिक हैं ॥६५॥ वह शिव हों अथवा भीम (भयानक) हों, वह धनैश्वर्य सम्पन्न हों अथवा निर्धन हों, वह देवेश अलङ्कृत हों या

अनलंकृत हों ॥६६॥ वे चाहे जैसे भी हों किन्तु उसी प्रकार के मेरे नाथ होंगे। इतना कहकर पार्वती ने एक सखी से कहा—हे शशि प्रभे ! इस भिक्षु को यहाँ से भगादो, यह अपने होंठ फड़का रहा है ऐसा मालूम होता है कि आगे और कुछ भी बोलना चाहता है। निन्दा करने वाला उतना पापी नहीं होता है जितना उसकी हुई निन्दा का श्रोता पाप का भागी हुआ करता है ॥६७॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इतना ही कहकर वह वरदा वहाँ से उठना चाहती थी। इसके पश्चात् उस भिक्षु ने अपना रूप त्याग दिया था और स्वरूप स्थित शिव हो गये थे ॥६८॥ शिव अपने स्वरूप में होकर बोले—हे प्रिये ! अब तुम अपने पिता ही के घरको जाओ। अब तेरे प्रयोजन के लिये मैं महर्षियों को हिमवान् के के घर में भेजूंगा ॥६९॥ और जो यहाँ पर रुद्र को चाहती हुई मृन्मय रुद्र बनाया था। यह 'भद्रेश्वर'—इस नाम से लोक में प्रसिद्ध होंगे ॥७०॥

देवदानवगन्धर्वायक्षाः किंपुरुषोरगाः।
पूजयिष्यन्ति सततं मानवाश्च शुभेप्सवः ॥७१॥
इत्येवमुक्ता देवेन गिरिराजसुता मुने।
जगामाम्बरमाविश्य स्वमेव भवनं पितुः ॥७२
शङ्करोऽपि महातेजा विसृज्य गिरिकन्यकाम्।
पृथूदकं जगामाथ स्नानं चक्रे विधानतः ॥७३
ततस्तु देवप्रवरो महेश्वरः पृथूदके स्नानमगास्तकल्मषः।
कृत्वा सनन्दी सगण.सवाहनो महागिरिं मन्दरमाजगाम ॥७४
आयाति त्रिपुरान्तके सह गणैः पर्यायतः
सप्तभिरारोहत्पुलको वशी गिरिवरः सहर्षचित्तःक्षणात्।
चक्रे दिव्यफलंजलेन शुचिना मूलैश्च कन्दरादिभिः
पूजां सर्वगणेश्वरैः सह विभोरद्रिस्त्रिनेत्रस्य तु ॥७५

जो अपना शुभ चाहने वाले मानव हैं वे तथा देव—दानव, गन्धर्व, यक्ष और किम्पुरुष तथा उरग सभी इनकी निरन्तर पूजा करते हैं ॥७१॥ हे मुने ! इस प्रकार से देवेश्वर के द्वारा कहे जाने पर वह गिरि-

राज की पुत्री अम्बर में आविष्ट होकर अपने पिता के भवन को चली गयी थी ।।७२।। महान् तेजस्वी भगवान् शंकर भी उस गिरि की कन्या को छोड़कर फिर पृथूदक तीर्थ को चले गये थे और वहाँ विधि-विधान से स्नान किया था ।।७३।। इसके पश्चात् देवों में परमश्रेष्ठ महेश्वर ने पृथूदक तीर्थ में स्नान करके अपास्त कल्मष हो गये थे फिर नन्दी-गण और वाहनों के सहित महान् गिरि मन्दर को आगये थे ।।७४।। भगवान् त्रिपुरान्तक के आने पर गिरिवर सात गणों के सहित पर्याय से पुलकायमान होगया था और तुरन्त प्रसन्न चित्त वाला होगया था। फिर उसने दिव्य फलों से शुचि जल से मूलों से और कन्द आदि से समस्त गणेश्वरों के साथ अद्रि ने विभु त्रिनेत्र की पूजा की थी ।।७५।।

५२—देवगण की हिमालय से प्रार्थना

ततः संपूजितो रुद्रः शैलेन प्रीतिमानभूत् ।
सस्मार च महर्षींस्तु अरुन्धत्या समं ततः ।।१
सस्मृतास्ते तु ऋषयः शंकरेण महात्मना ।
समाजग्मुर्महाशैलं मन्दरं चारुकन्दरम् ।।२
तानागतान्समीक्ष्यैव देवस्त्रिपुरनाशनः ।
अभ्युत्थायाभिपूज्यैतानिदं वचनमब्रवीत् ।।३
धन्योऽयं पर्वतश्रेष्ठः श्लाघ्यः पूज्यश्च दैवतैः ।
धूतपापस्तथा जातो भवतां पादपङ्कजैः ।।४
स्थीयतां विस्तृते रम्ये गिरिप्रस्थे समे शुभे ।
शिलासु पद्मवर्णासु श्लक्ष्णासु च मृदुष्वथ ।।५
इत्येवमुक्ता देवेन शंकरेण महर्षयः ।
समवेत्यारुन्धत्या विविशुः शैलसानुनि ।।६
उपविष्टेषु ऋषिषु नन्दी देवगणाग्रणीः ।
अर्घ्यादिभिः समभ्यर्च्य स्थितः प्रयतमानसः ।।७

ततोऽब्रवीत्सुरपतिर्धर्म्यं वाक्यं हितं सुरान् ।
आत्मनो यशसो वृद्धयै सप्तर्षीन्विनयान्वितान् ॥८

महर्षि पुलस्त्य ने कहा—फिर शैल के द्वारा भली भाँति पूजित भगवान् शम्भु प्रीतिमान् होगये थे। इसके पश्चात् उन्होंने अरुन्धती के सहित महर्षियों का स्मरण किया था ॥१॥ महात्मा शंकर के द्वारा स्मरण किये गये वे ऋषिगण उस महान् शैल मन्दर पर आगये थे जिसकी बहुत सुन्दर कन्दराऐं थीं ॥२॥ त्रिपुर के नाश करने वाले देव ने उनको समागत देखकर के अभ्युत्थान किया था और फिर पूजन करके यह वचन बोले ॥३॥ यह शैल पर्वत परम धन्य है और श्लाघा करने के योग्य भी है तथा देवों के द्वारा पूजा करने के योग्य है तथा अब इस समय में आप लोगों के चरण कमलों से यह धूत पाप भी होगया है ॥४॥ इस परम शुभ सुन्दर एवं विस्तृत तथा सम गिरि प्रस्थ पर आप लोग विराजमान होइये। इसकी मृदु तथा पद्म वर्ण वाली एवं श्लक्ष्ण शिलाओं पर आप लोग अपनी स्थिति कीजिये ॥५॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—जब इस तरह से समस्त महर्षि वृन्द से भगवान् शंकर ने कहा तो समस्त महर्षिगण एकत्रित होकर जिनके साथ में भगवती अरुन्धती भी थी शैल के सानु (शिखर) पर प्रविष्ट होगये थे ॥६॥ ऋषियों के उपविष्ट हो जाने पर देवगण के अग्रणी नन्दी ने अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा अभ्यर्चना करके प्रयत मन वाले स्थित होगये थे ॥७॥ इसके अनन्तर सुरपति धर्म से युक्त, हित और उचित वाक्य सुरों से बोले जो अपने यश की वृद्धि के लिये था ऐसा वचन विनय से युक्त सप्तर्षियों से कहा था ॥८॥

कश्यपात्रे वारुणेय गाधेय शृणु गौतम ।
भरद्वाज शृणुष्व त्वमङ्गिरस्त्व शृणुष्व च ॥९
ममासीद्दक्षतनुजा प्रिया सा दक्षकोपतः ।
उत्ससर्ज सती प्राणान्योग दृष्ट्वा पुरा किल ॥१०
साद्य भूयः समुद्भूता शैलराजसुता उमा ।
ता मदर्थाय शैलेन्द्रो याच्यता द्विजसत्तमाः ॥११

सप्तर्षयश्चैवमुक्त्वा बाढमित्यन्न वन्यच ।
ॐ नमः शंकरायेति प्रोक्त्वा जग्मुर्हिमालयम् ॥१२
ततोऽप्यरुन्धती शर्वः प्राह गच्छस्व सुन्दरि ।
पुरन्ध्र्यो हि पुरन्ध्रीणा गतिं धर्मस्य वै विदुः ॥१३
इत्येवमुक्ता दुर्लङ्घ्य लोकाचारा त्वरुन्धती ।
नमस्ते रुद्र इत्युक्त्वा जगाम पतिना सह ॥१४

भगवान् हर ने कहा—हे कश्यप ! अत्रे ! वरुणेय ! गांधेय ! गौतम ! आप श्रवण करो । हे भरद्वाज ! अङ्गिरस ! तुम मेरा वचन सुनो ॥६॥ मेरी प्यारी दक्ष की पुत्री थी जो दक्ष प्रजापति के कोप से पहले योग के द्वारा अपने प्राणों का उत्सर्ग कर चुकी थी ॥१०॥ वही अब शैलराज की पुत्री उमा समुत्पन्न हुई है । हे द्विजसत्तमो ! उसी को आप लोग जाकर मेरे लिये शैलराज से याचना करो ॥११॥ पुलस्त्य महर्षि ने कहा—सप्तर्षियों से जब इस प्रकार से कहा गया तो सब ने 'बहुत अच्छा', यह वचन बोला था 'ॐ नमः शंकराय'—यह कहकर सब हिमालय में गये थे ॥१२॥ इसके पश्चात् भगवान् शर्व अरुन्धती से बोले—हे सुन्दरि ! आप भी जाइये क्योंकि पुरन्ध्रियों के धर्म की गति को पुरन्ध्रीगण ही जाना करती हैं ॥१३॥ इस तरह से कही हुई अरुन्धती जोकि लोकाचार को उल्लङ्घन करने वाली नहीं थी 'हे रुद्रदेव ! आपको नमस्कार है—ऐसा कहकर अपने ही पति के साथ गई थी ॥१४॥

गत्वा हिमाद्रिशिखरमोषधिप्रस्थमेव च ।
ददृशुः शैलराजस्य पुरंदरपुरीमिव ॥१५
ततः संपूज्यमानास्ते शैलयोषिद्भिरादरात् ।
सुनाभादिभिरव्यग्रैः पूज्यमाना तु पार्वती ॥१६
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैस्तथाऽन्यैस्तत्पुरस्सरैः ।
विविशुर्भुवनं रम्यं हिमाद्रेर्हाटकोज्ज्वलम् ॥१७
ततः सर्वे महात्मानस्तपसा धौतकल्मषाः ।
समासाद्य महाद्वारं संतस्थुर्द्वाःस्थकारणात् ॥१८

ततस्तुत्वरितोऽभ्यागाद्द्वाः स्थोऽद्रिर्गन्धमादनः ।
धारयन्वै करे दण्डं पद्मरागमयं महत् ॥१९
ततस्तमूचुर्मुनयो गत्वा शैलपतिं शुभम् ।
निवेदयास्मान्सम्प्राप्तान्महत्कार्यार्थिनो वयम् ॥२०
इत्येवमुक्तः शैलेन्द्रमृषिभिर्गन्धमादनः ।
जगाम तत्र यत्रास्ते शैलराजोऽद्रिभिर्वृतः ॥२१

फिर हिमाद्रि के शिखर पर तथा ओषधि प्रस्थ पर जाकर सब ने उसको इन्द्र की पुरी के ही समान देखा था ॥१५॥ इसके अनन्तर शैल-राज की स्त्रियों के द्वारा वे सब बहुत ही आदर के साथ भली भाँति पूज्यमान हुए थे। अव्यग्र सुनाम आदि के द्वारा पार्वती पूज्यमान हुई थी ॥१६॥ फिर वे गन्धर्व, किन्नर, यक्ष तथा अन्यों के साथ उस परम रम्य हिमवान् शैल के सुवर्ण के सदृश समुज्ज्वल भवन में प्रविष्ट हुए थे ॥१७॥ इसके अनन्तर सभी महान् आत्मा वाले लोग जिन्होंने तपश्चर्या से अपने सम्पूर्ण कल्मषों को धो डाला था महाद्वार पर पहुँच कर द्वारपाल के स्थित होने के कारण से संस्थित हो गये थे ॥१८॥ इसके पश्चात् अद्रि गन्धमादन द्वारपाल बहुत ही शीघ्रगामी होता हुआ आया था जिसके हाथ में एक पद्मरागमय महान् दण्ड था ॥१९॥ इसके पश्चात् उन मुनियों ने उस द्वारपाल से कहा था कि आप शैलपति के समीप में जाकर हम सबका आगमन निवेदित करदो और यह भी कह देना कि हम सब एक अति महान् कार्य के लिए आये हुए हैं ॥२०॥ इस भाँति से ऋषियों के द्वारा कहे जाने पर वह गन्धमादन शैलेन्द्र के समीप में गया था जहाँ पर वह शैलों के राजा अन्य अनेक अद्रियों से समावृत होकर संस्थित थे ॥२१॥

निषण्णो भुवि जानुभ्यां दत्वा हस्तौ मुखे गिरिः ।
दण्डं निःक्षिप्य कक्षायामिदं वचनमब्रवीत् ॥२२
इमे हि ऋषयः प्राप्ताः शैलराज तवाजिरे ।
द्वारे स्थिताः कार्यिणस्ते तव दर्शनलालसाः ॥२३

द्वा:स्थवाक्यं स माकर्ण्य समुत्थायाचलेश्वरः ।
स्वयमभ्यागमद्द्वारि समादायार्घ्यमुत्तमम् ॥२४
तानर्च्यार्घ्यादिना शैलः समानीय सभातलम् ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः कृतासनपरिग्रहान् ॥२५
अनभ्रवृष्टिः किमियमुताहोऽकुसुमं फलम् ।
अप्रतर्क्यमचिन्त्यं च भवदागमनं त्विदम् ॥२६
अद्यप्रभृति धन्योऽस्मि शैलराजोऽस्मि सत्तमाः ।
संशुद्धदेहोऽस्म्यद्यैव यद्भवन्तो ममाजिरम् ॥२७
असत्संसर्गसंशुद्धं कृतवन्तो द्विजोत्तमाः ।
दृष्टिपूतं पदाक्रान्तं तीर्थं सारस्वतं यथा ॥२८

भूमि पर घुटनो को टेककर स्थित तथा दोनो हाथो को मुख पर रखकर और कक्षा मे दण्ड को नि:क्षिप्त करके गिरि गन्धमादन शैलराज से यह वचन बोला—॥२२॥ गन्धमादन ने कहा—हे शैलराज ! ये महर्षि वृन्द आपके आँगन मे प्राप्त हुए हैं और वे द्वार पर स्थित हैं। उन्हें कुछ महान् कार्य आपसे है और वे आपका दर्शन करना चाहते है ॥२३॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस तरह के द्वारपाल के वचन को सुनकर अचलेश्वर तुरन्त खडे हो गये थे और स्वय ही द्वार पर समागत हुए थे। उनके साथ मे उत्तम अर्घ्य पात्र भी था ॥२४॥ शैलराज ने अर्घ्या-दिक के द्वारा उनकी अर्चना करके फिर उनको सभातल मे ले आये थे। जब सब ने अपना २ आसन आदि ग्रहण कर लिया तब बोलने मे चतुर हिमवान् उनसे यह वचन बोला था ॥२५॥ हिमवान् ने कहा—बिना ही मेघो के समागम के क्या यह कोई वर्षा हो गई है अथवा पुष्पोद्गम के न होते हुए ही यह कोई फल समुत्पन्न हो गये हैं। आप का आगमन तो कभी तक न करने के योग्य तथा चिन्तय के योग्य न होते हुए भी आज बिना मेघ के वर्षा और बिना पुष्पो के फलोत्पत्ति के ही समान ही है ॥२६॥ हे सत्तमवृन्द ! आज से लेकर—मैं परम धन्य हूँ मैं शैलराज हूँ। मैं आज ही संशुद्ध देह वाला हो गया हूँ कि आप लोगों के चरण मेरे आँगन मे पधारे हैं ॥२७॥ हे द्विजोत्तमगण ! आप लोगों ने असद्

पुरुषो के सम्पर्क से जो अशुचिता आगई थी उसे भी आज शुद्ध कर दिया है। दृष्टि से पवित्र और पदो से समाक्रान्त कर जिस प्रकार से सारस्वत तीर्थ होता है मुझे आपने बना दिया है ॥२८॥

दासोऽहं भवता विप्राः कृतपुण्यश्च साम्प्रतम् ।
येनार्थिनो हि ते यूय तन्माऽनुज्ञातुमर्हथ ॥२६
सदारोऽहं सम पुत्रैर्भृत्येन प्रभुरव्ययः ।
किंकरोऽस्मि स्थितो युष्मदाज्ञाकारी तदुच्यताम् ॥३०
शैलराज वच. श्रुत्वा ऋषयः सशितव्रता ।
ऊचुरङ्गिरस वृद्धं कार्यमद्रौ निवेदय ॥३१
इत्येव चोदितः सर्वैर्ऋषिभि कश्यपादिभिः ।
प्रत्युवाच पर वाक्य गिरिराज तमङ्गिरा. ॥३२
श्रूयता पर्वतश्रेष्ठ येन कार्येण वै वयम् ।
समागतास्त्वत्सदनमरुन्धत्या सम गिरे ॥३३
योऽसौ महात्मा सर्वात्मा दक्षयज्ञक्षयकरः ।
शकरः शूलधृक् शर्वस्त्रिणेत्रो वृषवाहनः ॥३४
जीमूतकेतुः शत्रुघ्नो यज्ञभोक्ता स्वय प्रभुः ।
यमीश्वर वदन्त्येके शिव स्थाणुवर हरम् ॥३५

हे विप्रगण ! मैं तो आप लोगो का दास हूँ । और अब तो मैं परम पुण्य करने वाला हूँ । जिस अर्थ के लिये आप यहा पर पधारे हैं उसे अब मुझे आज्ञा देने के लिये आप योग्य हैं ॥२६॥ मैं पत्नी के सहित तथा पुत्रों के सहित एवं सब भृत्यवर्ग के साथ आपका सेवक हूँ और आप अव्यय मेरे प्रभु हैं। मैं आपकी आज्ञा का परिपालन करने को स्थित हूँ आप लोग अब अपने मुख से मुझे आदेश दीजिएगा ॥३०॥ पुलस्त्यमुनि ने कहा—शैलराज के ऐसे मृदु और अतीव शिष्ट वचन को श्रवण करके ऋषिलोग सशित व्रत वाले होगए थे और सबने अगिरस वृद्ध ऋषि से कहा था कि जो भी कुछ अपना कार्य हो वह आप ही अद्रिराज से निवेदन करदें ॥३१॥ इस तरह से समस्त ऋषियों के प्रेरित होकर जिनमें प्रेरणा करने वाले कश्यप आदि सभी थे अगिरा ऋषि उस

गिरिराज से परम सुन्दर वाक्य बोले थे ॥३२॥ अंगिरा ने कहा—हे सम्पूर्ण पर्वतों में परम श्रेष्ठ ! अब आप सुनिये जिस कार्य के लिये देवी अरुन्धती के सहित हम सब लोग आज आपके घर मे समागत हुए हैं ॥३३॥ महान् आत्मा से सुसम्पन्न और सबकी आत्मा जो यह भगवान् शूलधारी और दक्ष के यज्ञ का क्षय करने वाले शर्व शंकर हैं वह वृष के वाहन वाले हैं ॥३४॥ वह जीमूतकेतु, शत्रुओं के नाशक और स्वयं प्रभु यज्ञो के भोक्ता हैं जिनको कुछ मनीषी लोग ईश्वर, हर, शिव तथा स्थाणुवर कहा करते हैं ॥३५॥

भीममुग्रं महेशान महादेव पशोः पतिम् ।
वयं तेन प्रेषिता. स्मस्त्वत्सकाशं गिरीश्वर ॥३६
इयं या त्वत्सुता काली सर्वलोकेषु सुन्दरी ।
तां प्रार्थयति देवेशस्तां भवान्दातुमर्हसि ॥३७
स एव धन्यो हि पिता यस्य पुत्री पतिं शुभम् ।
रूपाभिजनसंपत्त्या प्राप्नोति गिरिसत्तम ॥३८
यावन्तो जङ्गमागम्या भूताः शैल चतुर्विधाः ।
तेषां माता स्मृता देवी यतः प्रोक्तः पिता हरः ॥३९
प्रणम्य शंकर देवा. प्रणमन्तु सुतां तव ।
कुरुष्व पादं शत्रूणां मूर्ध्नि भस्मपरिप्लुतम् ॥४०
याचितारो वयं शर्वो वरो दाता त्वमप्युत ।
वधूः सर्वजगन्माता कुरु यच्छ्रेयसे तव ॥४१

उनको भीम, उग्र, महेशान, महादेव और पशुपति ... कहते हैं । हे गिरीश्वर ! उन्हीं प्रभु ने हम लोगों को आपके स ... है ॥३६॥ यह जो आपकी पुत्री काली है वह सम ... सुन्दरी है । उसी आपकी कन्या ... देवेश्वर चाहते हैं ... उनकी सेवा मे समर्पित कर ... ॥ ... वह परम धन्य भाग्य शाली ... सन्तति मे ऐसा परम शुभ ... जंगम प्राणी हैं और अगम्य ...

यह देवी उन सब की माता है क्योंकि सबका पिता भगवान् हर ही बताये गये हैं ।।३६।। देवगण भगवान् शंकर को प्रणाम करके आपकी सुता को प्रणाम करते हैं। शत्रुओं के मस्तक पर भस्म से परिप्लुत चरण करिए ।।४०।। हम सब याचना करने वाले हैं और वर के प्रदान करने वाले आप हैं। सम्पूर्ण जगत् की माता उमा को शिव की वधू बनादो जिससे आपका परम श्रेय हो ।।४१।।

तद्वचोऽङ्गिरसः श्रुत्वा काली तस्थावधोमुखी ।
हर्षमागम्य सहसा पुनर्दैन्यमुपागता ।।४२
ततः शैलपतिः प्राह पर्वतं गन्धमादनम् ।
गच्छ शैलानुपामन्त्र्य सर्वानाहर्तुमर्हसि ।।४३
ततः शीघ्रतरः शैलो गृहाद्गृहमगाज्जवी ।
मेर्वाद्यान्पर्वतश्रेष्ठानाजुहाव समन्ततः ।।४४
तेऽप्याजग्मुस्त्वरावन्तः कार्यं मत्वा महत्तदा ।
विविशुर्विस्मयाविष्टाः सौवर्णेष्वासनेषु च ।।४५
उदयो हेमकूटश्च रम्यको मन्दरस्तथा ।
उद्दालको वारुणश्च वराहो गरुडासनः ।।४६
शुक्तिमान्वेगसानुश्च दृढशृङ्गोऽपि शृङ्गवान् ।
चित्रकूटस्त्रिकूटश्च तथाऽन्ये क्षुद्र पर्वताः ।
उपविष्टाः सभायां वै प्रणिपत्य ऋषींश्च तान् ।।४७
ततो गिरीशः स्वां भार्यां मेनामाहूतवान्स्वयम् ।
समागच्छतु कल्याणी सम पुत्रेण भामिनी ।।४८
साऽभिवन्द्य ऋषीणां च चरणांश्च तपस्विनी ।
सर्वाञ्ज्ञानीन्समाभाष्य विवेश ससुता तदा ।।४९

पुलस्त्य मुनि ने कहा—अङ्गिरा के इस वचन का श्रवण कर काली नीचे की ओर मुख वाली होकर स्थित हो गई थी। सहसा वह देवी हर्ष को प्राप्त होकर फिर दीनता को प्राप्त हो गई ।।४२।। इसके अनन्तर वह शैलराज गन्धमादन पर्वत से बोले—जाओ, सब शैलों को आमन्त्रित करके यहाँ पर बुलालो ।।४३।। इसके उपरान्त वह गन्धमादन

गिरिराज से परम सुन्दर वाक्य बोले थे ॥३२॥ अंगिरा ने कहा—हे सम्पूर्ण पर्वतों में परम श्रेष्ठ ! अब आप सुनिये जिस कार्य के लिये देवी अरुन्धती के सहित हम सब लोग आज आपके घर में समागत हुए हैं ॥३३॥ महान् आत्मा से सुसम्पन्न और सबकी आत्मा जो यह भगवान् शूलधारी और दक्ष के यज्ञ का क्षय करने वाले शर्व शंकर हैं वह वृष के वाहन वाले हैं ॥३४॥ वह जीमूतकेतु, शत्रुओं के नाशक और स्वयं प्रभु यज्ञों के भोक्ता हैं जिनको कुछ मनीषी लोग ईश्वर, हर, शिव तथा स्थाणुवर कहा करते हैं ॥३५॥

भीममुग्रं महेशानं महादेवं पशोः पतिम् ।
वयं तेन प्रेषिताः स्मस्त्वत्सकाशं गिरीश्वर ॥३६
इयं या त्वत्सुता काली सर्वलोकेषु सुन्दरी ।
तां प्रार्थयति देवेशस्तां भवान्दातुमर्हसि ॥३७
स एव धन्यो हि पिता यस्य पुत्री पतिं शुभम् ।
रूपाभिजनसंपन्नं प्राप्नोति गिरिसत्तम ॥३८
यावन्तो जङ्गमागम्या भूताः शैल चतुर्विधाः ।
तेषां माता स्थिता देवी यतः प्रोक्तः पिता हरः ॥३९
प्रणम्य शंकरं देवाः प्रणमन्तु सुतां तव ।
कुरुष्व पादं शत्रूणां मूर्ध्नि भस्मपरिप्लुतम् ॥४०
याचितारो वयं शर्वो वरो दाता त्वमप्युमा ।
वधूः सर्वजगन्माता कुरु यच्छ्रेयसे तव ॥४१

उनको भीम, उग्र, महेशान, महादेव और पशुपति भी कहते हैं। हे गिरीश्वर ! उन्हीं प्रभु ने हम लोगों को आपके समीप में प्रेषित किया है ॥३६॥ यह जो आपकी पुत्री काली है वह समस्त लोकों में परम सुन्दरी है। उसी आपकी कन्या को देवेश्वर चाहते हैं और आप भी उसे उनकी सेवा में समर्पित कर देने के लिये योग्य हैं ॥३७॥ हे गिरि श्रेष्ठ ! वह परम धन्य भाग्य शाली पिता है जिसकी पुत्री रूप और अभिजन की सम्पत्ति से ऐसा परम शुभ पति प्राप्त कर लेती है ॥३८॥ जितने भी जंगम प्राणी हैं और अगम्य शैल हैं जो सब चार प्रकार के होते हैं।

यह देवी उन सब की माता है क्योंकि सबका पिता भगवान् हर ही बताये गये हैं ॥३६॥ देवगण भगवान् शंकर को प्रणाम करके आपकी सुता को प्रणाम करते हैं। शत्रुओं के मस्तक पर भस्म से परिप्लुत चरण करिए ॥४०॥ हम सब याचना करने वाले हैं और वर के प्रदान करने वाले आप हैं। सम्पूर्ण जगत् की माता उमा को शिव की वधू बनादो जिससे आपका परम श्रेय हो ॥४१॥

तद्वचोऽङ्गिरसः श्रुत्वा काली तस्यावधोमुखी।
हर्षमागम्य सहसा पुनर्दैन्यमुपागता ॥४२
ततः शैलपतिः प्राह पर्वतं गन्धमादनम्।
गच्छ शैलानुपामन्त्र्य सर्वानाहर्तुमर्हसि ॥४३
ततः शीघ्रतरः शैलो गृहाद्गृहमगाञ्जवी।
मेर्वाद्यान्पर्वतश्रेष्ठानाजुहाव समन्ततः ॥४४
तेऽप्याजग्मुस्त्वरावन्तः कार्यं मत्वा महत्तदा।
विविशुर्विस्मयाविष्टाः सौवर्णेष्वासनेषु च ॥४५
उदयो हेमकूटश्च रम्यको मन्दरस्तथा।
उद्दालको वारुणश्च वराहो गरुडासनः ॥४६
शुक्तिमान्वेगसानुश्च दृढशृङ्गोऽपि शृङ्गवान्।
चित्रकूटस्त्रिकूटश्च तथाऽन्ये क्षुद्र पर्वताः।
उपविष्टाः सभायां वै प्रणिपत्य ऋषींश्च तान् ॥४७
ततो गिरीशः स्वां भार्यां मेनामाहूतवांस्स्वयम्।
समागच्छतु कल्याणी समं पुत्रेण भामिनी ॥४८
साऽभिवन्द्य ऋषीणां च चरणांश्च तपस्विनी।
सर्वाञ्ज्ञानीन्समाभाष्य विवेश ससुता तदा ॥४९

पुलस्त्य मुनि ने कहा—अङ्गिरा के इस वचन का श्रवण कर काली नीचे की ओर मुख वाली होकर स्थित हो गई थी। सहसा वह देवी हर्ष को प्राप्त होकर फिर दीनता को प्राप्त हो गई ॥४२॥ इसके अनन्तर वह शैलराज गन्धमादन पर्वत से बोले—जाओ, सब शैलों को आमन्त्रित करके यहाँ पर बुलालो ॥४३॥ इसके उपरान्त वह गन्धमादन

शैल जो बहुत ही शीघ्रगामी था, घर-घर में जाकर मेघादि पर्वत श्रेष्ठों को सभी ओर से बुला लाया था ।।४४।। वे सभी शैल भी त्वरापूर्ण होकर वहाँ आ गये थे क्योंकि उस समय में उन्होंने भी महत्त्वपूर्ण कार्य समझ लिया था । बड़े विस्मय से परिपूर्ण होते हुए सौ वर्ण आसनों पर समुपविष्ट हो गये थे ।।४५।। उन शैलों के कुछ नाम ये थे—उदय, हेमकूट, रम्यक, मन्दर, उद्दालक, वारुण, वराह, गरुडासन, शुक्तिमान्, वेगसानु, दृढश्रृङ्ग, श्रृंगवान्, चित्रकूट, त्रिकूट आदि पर्वत थे तथा इनके अतिरिक्त अन्ययी बहुत से छोटे २ पर्वत थे । सभी पर्वत ऋषियों को प्रणाम करके उस सभा में उपस्थित होकर बैठ गये थे ।।४६-४७।। इसके पश्चात् गिरीश ने स्वयं ही अपनी भार्या मेना को बुलाया था और कहा था—हे कल्याणी ! आप भी अपने पुत्र के साथ यहाँ पर उपस्थित हो जाओ ।।४८।। वह भी तपस्विनी ऋषियों के चरणों की अभिवन्दना करके तथा समस्त ज्ञाति के लोगों के साथ सम्भाषण करके उसने उसी समय में अपनी पुत्री के साथ वहाँ पर प्रवेश किया था ।।४९।।

ततोऽद्रिषु महाशैल उपविष्टेषु नारद ।
उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सर्वानाभाष्य सुस्वरम् ।।५०
इमे सप्तर्षयः पुण्या याचितारः सुतां मम ।
महेश्वरार्थं कन्या तु तन्नावेद्यं भवत्सु वै ।।५१
तद्वदध्वं यथान्यायज्ञातयो यूयमेवमे ।
नोल्लङ्घ्य युष्मान्दास्यामि तत्क्षमं वक्तुमर्हथ ।।५२
हिमवद्वचनं श्रुत्वा मेर्वाद्याः स्थावरोत्तमाः ।
सर्व एवाब्रुवन्वाक्यं स्थितास्तेष्वासनेषु ते ।।५३
याचितारश्च मुनयो वरस्त्रिपुरहा हरः ।
दीयतां शैल कालीयं जामाताऽभिमतो हि नः ।।५४
मेनाऽथ प्राह भर्तारं श्रृणु शैलेन्द्र मे वचः ।
पितृभिस्तनया मह्यं दत्ताऽनेनैव हेतुना ।।५५
यस्तस्यां भूतपतिना पुत्रो दत्तो भविष्यति ।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं तारकं तथा ।।५६

हे नारद ! जब सब पर्वत वृन्द उपविष्ट हो गये थे तब वह महाशैल जो वाक्य बोलने के बहुत ज्ञाता थे अच्छे स्वर में सबसे भाषण करके यह वचन बोले ॥५०॥ हिमवान् ने कहा—ये सब सप्तर्षि गण जो परम पुण्यमय हैं मेरी सुता की याचना करने के लिए यहाँ पर समागत हुए हैं और वह भी महेश्वर के लिए कन्या को चाहते हैं। वही विषय में आप से निवेदन करता हूँ ॥५१॥ आप सब लोग मेरी ज्ञाति के बन्धुगण है जो भी न्याय हो वही इस समय में मुझे बतलाइये। आपकी राय का उल्लंघन करके मैं नहीं दूंगा सो आप अपनी सम्मति मुझे देने में सभी समर्थ हैं ॥५२॥ पुलस्त्य मुनि ने कहा—इस हिमवान् के वचन को सुन कर मेरु आदि जो भी वहाँ पर उत्तम स्थावर थे सभी ने वाक्य बोले जो भी वहाँ पर आसनों पर समवस्थित थे ॥५३॥ मुनिगण तो याचना करने वाले हैं और त्रिपुर का हनन करने वाले वर हर हैं। हे शैलराज ! आप अपनी काली कन्या को दे दीजिए। आपका जामाता हम सबको तो बहुत अभिमत है ॥५४॥ इसके पश्चात् मेना अपने स्वामी से बोली— हे शैलेन्द्र ! मेरा भी एक वचन और सुन लीजिए। पितृगण ने यह पुत्री मुझे इसी हेतु से दी है कि जो भूतपति के द्वारा इसमें दिया हुआ पुत्र होगा वह दैत्येन्द्र महिष और तारक का हनन करेगा ॥५५-५६॥

इत्येवं मेनया प्रोक्तः शैले शैलेश्वरः सुताम् ।
प्रोवाच पुत्रि दत्तासि शर्वाय त्वं मयाऽधुना ॥५७

ऋषीनुवाच कालीयं मम पुत्री तपोधनाः ।
प्रणामं शंकरवधूर्भक्तिनम्रा करोति वः ॥५८

ततोऽप्यरुन्धती कालीमङ्कमारोप्य चाटुकैः ।
विलज्जमानामाश्वास्य हरनामोचितैः शुभैः ॥५९

ततः सप्तर्षयः प्रोचुः शैलराज निशामय ।
जामित्रगुणसंयुक्तां तिथिं पुण्यां सुमङ्गलाम् ॥६०

उत्तराफाल्गुनीयोगं तृतीयेऽह्नि हिमांशुमान् ।
गमिष्यति च तत्रोक्तो मुहूर्तो मैत्रनामकः ॥६१

तस्यां तिथौ हरः पाणिं ग्रहीष्यति समन्त्रकम् ।
तव पुत्र्या वयं यामस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥६२
ततः संपूज्य विधिना फलमूलादिभिः शुभैः ।
विसर्जयामास शनैः शैलराड्ऋषिपुंगवान् ॥६३

इस प्रकार से मेना के द्वारा कहे जाने पर शैलराज हिमवान् ने अपनी पुत्री से कहा—हे पुत्रि ! अब तुम मेरे द्वारा भगवान् शर्व के लिये देदी गई हो ॥५७॥ फिर वह हिमवान् ऋषियों से बोला—हे तपोधनो ! यह मेरी पुत्री काली जो आज से ही शंकर भगवान् की वधू निश्चित हो गई है भक्तिभाव से विनम्र होती हुई आप सबको प्रणाम करती है ॥५८॥ इसके पश्चात् अरुन्धवती ने उस देवी काली को अपनी गोद में बिठाकर जो इन चाटूक्तियों से विशेष रूप से लज्जित हो रही थी उसको समाश्वासन शुभ हर के नामों के द्वारा दिया था ॥५९॥ इसके अनन्तर सप्तर्षियों ने कहा—हे शैलराज ! अब जामित्र गुणों से समन्वित परम पुण्यमयी सुमगला तिथि का भी श्रवण करादो ॥६०॥ आज से तीसरे दिन मे हिमांशुमान् उत्तरा फाल्गुनी योग को जायगा । उसी में मैत्र नामक मुहूर्त कहा गया है ॥६१॥ उस तिथि में भगवान् शंकर मन्त्रों के सहित पार्वती का पाणिग्रहण करेंगे जो कि आपकी पुत्री है । अब हम लोग जाते हैं अब हमको विदा होने की आज्ञा प्रदान करने के योग्य हैं ॥६२॥ इसके पश्चात् शुभ फल मूलादि के द्वारा विधि पूर्वक शैलराज ने ऋषियों का भली भाँति पूजन कर शनैः विसर्जित किया था ॥६३॥

तेऽप्याजग्मुर्महावेगात्त्वाक्रम्य महदालयम् ।
आसाद्य मन्दरगिरिं भूयोऽपश्यन्त शंकरम् ॥६४
प्रणम्योचुर्महेशानं भवान्भर्ताद्रिजा वधूः ।
सब्रह्मकास्त्रयो लोका द्रक्ष्यन्ति घनवाहनम् ॥६५
ततो महेश्वरः प्रीत ऋषीन्सर्वाननुक्रमात् ।
पूजयामास विधिना अरुन्धत्या समं हरः ॥६६

ततः संपूजिता जग्मुः सुराणां मन्त्रणाय ते ।
तेऽथाजग्मुर्हरं द्रष्टुं ब्रह्मविष्ण्वन्द्रभास्कराः ॥६७
ततः समभ्येत्य महेश्वरस्य कृतप्रणामा विविशुर्महर्षे ।
सस्मारनन्दिप्रमुखाश्चसर्वानभ्येत्य ते वन्द्य हरंनिषण्णाः ॥६८
देवैर्गणैश्चापि वृतो गणेशः संशोभते मुक्तजटाप्रभारः ।
यथा वने सर्ज्जकदम्बमध्ये प्ररोहमूलोऽथ वनस्पतिर्वा ॥६९

वे सब महान् वेग के साथ उस महान् आलय का आक्रमण करके वहाँ से चल दिये थे और मन्दर गिरि में आकर उन्होंने पुनः शंकर का दर्शन किया था ॥६४॥ शंकर को सबने प्रणाम करके कहा—अब आप भर्त्ता होगये हैं और वह हिमवान् की पुत्री आपकी वधू बन गई हैं ब्रह्मा के साथ तीनों लोक धन वाहन को देखेंगे ॥६५॥ इसके उपरान्त प्रसन्न हुए और समस्त ऋषियों का अनुक्रम से उन्होंने पूजन किया था उसमें अरुन्धती देवी का भी विधि से यजन किया था ॥६६॥ इसके अनन्तर वे सम्पूजित होकर सुरों से मन्त्रणा करने के लिये गये थे और वे सब ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और भास्कर भगवान् शंकर से मिलने के लिये आये थे ॥६७॥ हे महर्षे ! इसके पश्चात् उन सब ने आकर उन्हें प्रणाम किया था नन्दी प्रमुख जो सब गण थे उनको भी याद कर बुलाया था और वे सब वन्दना करके बैठ गये थे ॥६८॥ देवगणों के साथ मुक्त जटाप्रभार वाले गणेश भी युक्त होते हुए शोभित हो रहे थे जिस प्रकार से वन में सर्ज्ज और कदम्बों के मध्य में प्ररोह मूल वाला वनस्पति शोभित हुआ करता है ॥६९॥
